

कालिका पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल हिन्दी अनुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम —

पूर्व सम्पादक : 'जीवन यज्ञ', 'युग संस्कृति'

रचयिता : मन्त्र महाविज्ञान, तन्त्र महाविज्ञान, उपासना महाविज्ञान,
वैदिक मन्त्रे विद्या, मन्त्रयोग, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग,
बोकार सिद्धि, मन्त्र शक्ति से रोग निवारण, विपत्ति
निवारण, कामना सिद्धि, विष्णु रहस्य,
शिव रहस्य आदि ।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर), वरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान,

खाजा कुतुब (वेद नगर)

दरेली (उ० प्र०)



सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम



सर्वाधिकार सुरक्षित



प्रथम सम्स्करण :

१९७३



मुद्रक :

शैलेन्द्र पी. माहेश्वरी

नव-श्रयोति प्रेस,

सेठ भीरबहादुर मार्ग, मथुरा ।



मूल्य :

गात-संस्कृत-विज्ञान-संस्थान-मार्ग-१०००००

दो शब्द

कालिका पुराण के द्वितीय खण्ड पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह एक विरोध योजना के अनुसार लिखा गया है। इसके सभी अध्याय काफी बड़े हैं और उनमें जो वर्णन किये हैं उनको सर्वाङ्ग पूर्ण और विशद बनाने की चेष्टा की गई है। शिव-पार्वती का उपाख्यान जो अनेक पुराणों और रामायण आदि में विस्तारपूर्वक किया गया है, वह इस पुराण में काफी परिवर्धित रूप में दिया गया है। इतना ही क्यों नहीं “कालिकापुराण” का मुख्य आधार है। पार्वती ही “काली” कहलाती है और उसी को केन्द्र स्वरूप बनाकर इस खण्ड का अधिकांश कथानक पूरा किया गया है।

यद्यपि पार्वती का जन्म, ताम्बा और भगवान शिव के साथ उसके विवाह का वर्णन इस पुराण में भी पाया जाता है, पर उसमें स्थान-स्थान पर कितनी ही भिन्नताएँ भी हैं। इसमें भी तारकामुर के वचन के निमित्त शिव-पार्वती के विवाह और उनमें स्कन्द की उत्पत्ति की चर्चा है, पर साथ ही यह भी लिख दिया गया है कि इन दोनों के विवाह का निश्चय पहले ही हो चुका था और पार्वती बहुत पहले से ही शिव जी की सेवा किया करती थी। जब कामदेव ने शिवजी पर आक्रमण किया तो उस समय भी पार्वती वहाँ उपस्थित थी और उसी को देखकर शिवजी को काम-वैषम्य उत्पन्न हुआ था। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि जिस समय पार्वती तपस्या कर रही थी उस समय शिवजी ने स्वयं वेद बदल कर उसकी परीक्षा ली थी, और उसके आन्तरिक प्रेम का परिचय पाकर प्रणय की मिश्रा माँगी थी। पार्वती ने कहा ‘मैं तो आपको पति बना ही चुकी हूँ, पर आप मेरे पिता हिमवान के हाथों से मुझे कन्यादान के रूप में ग्रहण करें, जिससे

लौकिक रीति की भी पूर्ति हो जाय ।" ये सब बातें रामायण में वर्णित शिव-पार्वती विवाह में नहीं मिलती हैं । "शिव पुराण" में पार्वती की परीक्षा के लिए ब्रह्मचारी के वेष में शिवजी का आना लिखा है, पर उनमें प्रकट रूप से विवाह की कोई बात नहीं हुई ।

इस प्रकार इस पुराण में वर्णित शिव-पार्वती चरित्र अन्य पुराणों की तुलना में बहुत कुछ मौलिक जान पड़ता है और उसमें हमको स्वाभिकता अधिक जान पड़ती है ।

×

×

×

इस पुराण के "राजधर्म" वर्णन में कूटनीति तथा गुप्तचर विभाग का वर्णन अपने ढंग का निराण्य हो है । राजा को सभी जिम्मेदार अधिकारियों और परिजनो की जाँच जिस प्रकार करने को लिखा है, ठीसा शायद ही और किसी धर्म ग्रन्थ में हो । राजा अपने मंत्रियों की प्रामाणिकता की जाँच किस प्रकार कर इस सम्बन्ध में एक उदाहरण इस प्रकार है—

"दामिनी, शिल्पिनी, वृद्धा, मेधा और धृति वाली स्त्रियाँ, जो राजमहल के भीतर और बाहर आती जाती रहती हैं और राज मंत्रियों से भी परिचित हैं, उनके साथ गुप्त रूप से मन्त्रणा करके राज्याधिकारियों तथा परिजनो की परीक्षा ली जाय । वे स्त्रियाँ अधिकारियों में से जिन दूषित समझें उसके पास जाकर कहे कि राजा की प्रमुख रानी आपको चाहती है, यदि आपको इच्छा हो तो मैं मिलन की व्यवस्था कर दूँ । इसी प्रकार महलों में रहने वाली रानियों, राज पुत्र बधू, पुन, पुत्री, पीत्र आदि के चरित्र की भी जाँच करनी चाहिए । वे जामून स्त्रियाँ महल की स्त्रियों से गुप्त रूप से चर्चा करें कि अमुक राज्य-मन्त्री आपको चाहता है और वास्तव में आपको योग्य भी है । आप चाह तो मैं मेल करा सकती हूँ । इस प्रकार की जाँच में जो व्यक्ति दोषी सिद्ध हो उनको मरवा डालना चाहिए । स्त्रियों को भी दण्ड दिया जाय और यदि ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण हो तो तो उसे देश निकाला दिया जाय ।"

ऐसी ही परीक्षा अर्थ (धन) और धर्म (यज्ञ तथा कर्मकाण्ड) आदि के विषय में भी की जानी आवश्यक है और जो व्यक्ति किसी दृष्टि से राजा से प्रतियोगिता का भाव रखता हो अथवा उसको हटाकर स्वयं शासक बन बैठने की अभिलाषा रखता हो उन सबको कटक स्वरूप समझ कर, दूर हटा देना ही बुद्धिमत्ता है। हम अध्याय के अन्त में यह भी प्रकट कर दिया गया है कि राजनीति की ये चार्ले वृहस्पति और शुक्र के राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थों के आधार पर सगह की गई हैं। यद्यपि वर्तमान समय में एकतन्त्र शासको (राजाओं) का अन्त हो जाने से, ये बातें निरर्थक जान पड़ती हैं, जिस समय राज्य की बागडोर केवल एक दो व्यक्तियों के हाथ में ही रहती थी और अन्य लोग उनकी मारकर स्वयं उस पद को ग्रहण करने के लिये सदैव पड़पड़ रचते रहते थे उस समय निस्तन्देह इस प्रकार की जानकारी बड़ी महत्वपूर्ण थी।

×

×

×

यद्यपि यह एक पौराणिक रचना है, जिसमें कालिका (महाशक्ति) की पूजा, उपासना, जप, ध्यान आदि का ही विशेष वर्णन किया गया है और देवी की विभिन्न शक्तियों—दुर्गा, चण्डी, तारा, कीमारी, छिन्नमस्ता घूमावती आदि की विभिन्न साधना विधियों पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। हम जानते हैं कि आधुनिक विद्वान् इस प्रकार के पूजा-पाठ को निरर्थक और काल्पनिक बतलाते हैं और प्राचीन ज्ञान मार्ग वालों ने भी उसे बहुत नीचे दर्जे की उपासना माना है, क्योंकि उनके मतानुसार सबसे उच्चकोटि की उपासना अपनी आत्मा की है। जब मनुष्य अपनी आत्मा को परमात्मा का अंश मानकर उसका ही ध्यान करने लगता है तभी वह ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है। पाठकों को यह देखकर कुछ आश्चर्य होगा कि दृढ़ साम्प्रदायिक होते हुए भी कालिका-पुराण के रचयिता ने इस तथ्य को सर्वथा भुला नहीं दिया है। उन्होंने गन्ध, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य आदि से देवी की षोडशाचार पूजा करने का विधान बतलाते हुए भी यह संकेत कर दिया है

कि साधक को देवी उपासना करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये सब पदार्थ परमात्मा के अंश हैं और हम भी इसी में से निकले हैं—

अहं देवोऽयं नैवेद्यं पुष्पगन्धादिकं शयत् ।

पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते ॥

देवाधारोऽयं देवो देव देवाम योजयेत् ।

सर्वेषां देवतासृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ॥

अर्थात्— 'मैं देव (ईश्वर) हूँ—जब यह भवना दृढ़ हो जाती है, तो पुष्प, गन्ध, नैवेद्य आदि पूजा के सभी उपकरण देव-स्वरूप मालूम पड़ने लगते हैं। ईश्वर ही सबका मूल है इसलिये मैं भी ईश्वर हूँ अतएव ईश्वर ही ईश्वर की पूजा कर रहा है, और सब कुछ ईश्वरमय है तो किसी वस्तु में अशुद्धता का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है अर्थात् सभी पूजा सामग्री शुद्ध है और हम भी शुद्ध हैं।'

यह वेदान्त-शास्त्र का सर्वोच्च सिद्धान्त है और आधुनिक विज्ञान इसका खण्डन नहीं कर सका है। हम जानते हैं कि अनेक पाखंडी और बातूनी भी स्वार्थसिद्धि के लिये ब्रह्मज्ञान और "एकोऽहम्, द्वितीयो-नास्ति" का ढिंढोरा पीटा करते हैं, पर हम यही वास्तविक वेदान्त सिद्धान्त और उस पर आन्तरिक विश्वास रखने वालों को चर्चा कर रहे हैं। इस दृष्टि में 'कालिका पुराण' एक उपपुराण होते हुए भी षोडश दृष्टि से अनेक ऐसी ही अन्य रचनाओं से उत्तम हैं।

×

×

×

जैसा हमारा नियम है हमने इस पुराण के उतने ही भाग को अपने घर में ग्रहण किया है, जिससे पाठक कुछ मदुशिक्षाएँ प्राप्त कर सकते हैं। जो बानें सभी पुराणों में बार-बार दुहराई जा चुकी हैं उनको छोड़ दिया है।

विषय सूची

...

१. श्रीवासुर की तपस्या	६
२. नरकासुर-उपास्यान	२७
३. नारदा-आगमन वर्णन	५२
४. भगवान शिव का हिमवान में निवास	६७
५. गौरी पगीक्षा वर्णन	१०१
६. कालीहर समागम वर्णन	१२२
७. गौरी शिव विहार वर्णन	१३३
८. वेताल भैरव उत्पत्ति	१४८
९. महामाया कल्पे अष्टादश पटल	१८०
१०. महामाया कल्प-वर्णन (१)	१८५
११. महामाया कल्प-वर्णन (२)	१९१
१२. महामाया कल्प-वर्णन (३)	१९६
१३. महामाया मन्त्र का कवच	२११
१४. मन्त्र छाषना के अङ्ग	२२७
१५. देवी-मन्त्र कथन	२५८

१६ चडिका मन्त्र वर्णन	१७०
१७ महिषासुरोपास्यन	२८५
१८ कामार्या माहात्म्य	३१३
१९ नृपधर्म कथन	३३३
२० सदाचार कथन	३५५
२१ राज्याभिषेक वर्णन	३६७
२२ शक्र-ध्वजोत्सव वर्णन	३८६
२३ राजा के पालनीय नियमादि	३९८
२४ सदाचार वर्णन	४१०
२५ घोडशोपचार वर्णन	४३७
२६ देवाराधन के अन्य उपचार	४४६
२७ घोडशोपचार निर्णय	४७६
२८ कामार्या कवच माहात्म्य वर्णन	४८१
२९ मातृका ग्यास वर्णन	४९२
३० मार्कण्डेय कथन	४९८

कालिका पुराण

[द्वितीय खण्ड]

★

॥ भीमासुर की तपस्या ॥

स राजा नरक श्रीमारिचरञ्जीवी महामुज ।
मानुषेणैव भावेन चिर राज्यमयाकरात् ॥१॥
त्रेताया च व्यतीताया द्वापरस्य तु जेपत ।
अभवच्छोणितपुर बाणो नाम महासुर ॥२॥
तस्याग्निदुर्गं नगरं स च शम्भुमखा वली ।
सहस्रबाहुर्दुर्धरं प्रियं पुन स वै बल ॥३॥
नरकेण सम तम्य महार्मन्त्री व्यज्रायत ।
गमनागमनान्नित्यमयान्यानुग्रहैस्तथा ।
नयोरभूद् महाप्रीति पवनान्तलयोर्यथा ॥४॥
स च बाण समाराध्य महादेव जगत्प्रभुम् ।
आसुरेणाय भावेन व्यचरन्बाकुतोभय ॥५॥
तत्ससर्गान् स नरको दृष्ट्वा तस्यादभुता कृतिम् ।
तेनैव सह भावेन विहर्तुमुपचक्रमे ॥६॥
न ब्राह्मणान् पूजयति यथा पूर्वं तथा द्विजा ।
न च यज्ञेषु दानेषु पूर्ववन्मुदित स च ॥७॥

भाकण्डेय महर्षि न कटा—वह श्रीमान् राजा नरक जो
चिरञ्जीवी और महान् भुजावा वाला था । मानुष भाव से ही चिरकाल

पर्यन्त उत्तर राज्य किया था ॥ १ ॥ श्रोता गुण के ध्येयता ही जान पर
 द्वापर के शेष में शीतलपुर में बाण नाम वाला महान् अमुर हुआ था
 ॥ २ ॥ उसका अग्नि दुर्ग नगर था और वह बनवान् शम्भु का सखा
 था । उसके एक सहस्र बाहुएँ थी और वह बहुत दुर्धर्ष था तथा राजा
 बलि का प्रिय पुत्र था ॥ ३ ॥ उसकी राजा नरक के साथ बड़ी भारी
 मित्रता हो गयी थी । नित्य ही गमन और आगमन से तथा परस्पर में
 अनुग्रह से उन दोनों में पवन और अनल की ही भाँति महती प्रीति हो
 गई थी ॥ ४ ॥ उस बाण ने जगत् के शम्भु भगवान् शम्भु की समारा-
 धना की थी और वह बिना भय वाला होकर अमुर भाव से विचरण
 किया करता था ॥ ५ ॥ उसी के समर्थ में वह नरक भी उसकी
 इस अत्युद्भुत कृति को देखकर उसी के साथ उसी भाव से
 विहार करने का उसने आरम्भ कर दिया था ॥ ६ ॥ हे द्विजो ! वह
 फिर ब्राह्मणों का पूजन नहीं करता था जैसे कि पहिले किया करता था
 और वह यज्ञों में और दान देने में भी पूव को भाँति प्रसन्न नहीं होता
 था ॥ ७ ॥

न तथा विष्णुमभ्येति पृथिवी वापि नाच्वेति ।

कामाख्याया तथा भक्तिस्तदा तस्याथ नाभवत् ॥८॥

एतस्मिन्नन्तरे धातुस्तनयो मुनिसत्तम ।

वसिष्ठो नाम कामाख्या द्रष्टु प्रागज्योतिष गत ॥९॥

ता दुर्गाभ्यन्तरे नीलकूटदेवी व्यवस्थिताम् ।

द्रष्टु गन्तु वसिष्ठस्य न द्वार नरको ह्येदानीम् ॥१०॥

ततो वसिष्ठ कुपितो वचन परुष मुनि ।

अगाद नरक घोर गह्वरमुनिमत्तम ॥११॥

कथं पृथिव्यास्तनयो वराहस्य सुतोऽञ्जसा ।

देवी द्रष्टु ब्राह्मणस्य न ददासि तथागत ॥१२॥

किं ते कुतोचितं कर्म त्वं करोषि घरात्मज ।

देवी प्राग्ज्योतिष गत्वा पूजयिष्ये जगन्मयीम् ॥१३॥

तत स नरको राजा प्राप्तकाल क्षिते सुत ।
 परुषेणाथ वाक्येन तमाक्षिप्य निरस्नवान् ॥
 ततो मुनि स कुपित शशाप नरक नृपम् ॥१४

पूर्व की तरह वह भगवान् विष्णु के समीप में गमन नहीं किया करता था और वह पृथिवी का भी अर्चन नहीं करता था । उस अवसर पर कामाख्या में उस भाँति की भक्ति उसकी नहीं हुई थी । ८ । इसी बीच में विधाता का पुत्र मुनियो में परम श्रेष्ठ वसिष्ठ नाम वाले कामाख्या का दर्शन करने के लिए प्राग्ज्योतिष पुर में गये थे ॥ ६ ॥ दुर्ग के अन्दर व्यवस्थित उस नील बूट देवी का दर्शन करने के लिये जाने की वसिष्ठ मुनि को नरक ने द्वार नहीं दिया था । १० । इसके अनन्तर मुनि श्रेष्ठ बहुत कुपित होकर धीरे नरक की निन्दा करते हुए कठोर वचन बोले थे । ११ । वसिष्ठ मुनि ने कहा—कैसे पृथिवी का पुत्र और वराह का सुत अचानक ही बाह्यण को देवी के दर्शन करने के लिये स्वागत नहीं करता है । १२ । हे रजरा के पुत्र ! तेरे कुल में उचित कम क्या है ? जिसको कि तू कर रहा है । प्राग्ज्योतिष पुर में जाकर मैं देवी का पूजन करूँगा । १३ । माकण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वह राजा नरक जो पृथ्वी का पुत्र था काल प्राप्त होकर कठोर वाक्य के द्वारा उस मुनि पर आक्षेप करके उसने उनको निरस्त कर दिया था । इसके उपरान्त उस मुनि ने कुपित होकर राजा नरक को शाप दे दिया था । १४ ।

नचिराद् येन जातोऽसि तेन मानुषरूपिणा ।
 भरण भविता पाप वराहकुलपासन ॥१५
 मृते त्वयि महादेवी कामाख्या जगता प्रभुम् ।
 पूजयिष्याम्यह पाप तिष्ठ यास्ये स्वमालयम् ॥१६
 त्व यावज्जीविता पाप कामाख्यापि जगत्प्रभु ।
 सर्वे परिकरं सार्धमन्तर्धानाय गच्छतु ॥१७

इत्युक्त्वा ब्रह्मपुत्र स स्वस्थान गतवान् मुनि ।
 वसिष्ठस्तेन भीमेन निगस्त कुपितो भृशम् ॥१८॥
 गते वसिष्ठे नरक शीघ्र विस्मयमयुत ।
 जगाम देवीभवन नीलकूट महागिरिम् ॥१९॥
 तत्र गत्वा न चापश्यत् कामाख्या कामरूपिणीम् ।
 न योनिमण्डल तस्या सर्वान् परिवरास्तथा ॥२०॥
 ततः स विमना भ्रुत्वा क्षितिं सम्मार मानरम् ।
 पितरं च जगन्नाथ नरक प्रभ्रमव्ययम् ॥२१॥

वसिष्ठ मुनि ने कहा—हे वनाह के कुस को बलक्षित करने वाले ! हे पापी ! जिससे अभी उपास हुआ है उसी मानव रूप में मरण को प्राप्त होगा । १९ । तेरे मुत हो जाने पर जगतों की प्रभु महादेवी कामाख्या को मैं पजित कहूँगा । हे पापी ! तब यहाँ स्थित रहो मैं तो अपने निवाम स्थान को चला जाऊँगा । १९ । हे पापी ! जब तक तू जीवित रहेगा तब तक जगन् की स्वामिनी यह कामाख्या देवी भी सब परिकरों के साथ अंतर्धान को प्राप्त हो जावे । १९ । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वह ब्रह्मजी के पुत्र मुनि इतना कहकर अपने स्थान को चले गये थे । उस भूमि के पुत्र के द्वारा निगस्त किये हुए मुनि विमिष्ट बहुत ही अधिष्ठा कृपित हो गये थे ॥ १९८ ॥ वसिष्ठ मुनि के चले जाने पर नरक शीघ्र ही विस्मय में मयुत होकर नील कूट महान् गिरि पर देवी के भवन में चला गया था । १९९ । वहाँ पर जाकर उसने कामरूप वाली कामाख्या देवी को नहीं देखा था । उसके योनिमण्डल को और सब परिकरों को भी नहीं देखा था । २० । इसके उपरान्त वह बहुत ही उदाम हो गया था और माता पृथिवी का उसने स्मरण किया था । नरक ने अविनाशी जगत् के नाथ प्रभु पिता का भी स्मरण किया था ॥ २१ ॥

न तावपि तदा यातौ यस्य प्रत्यक्षाता द्विजा ।

व्युत्क्रान्तसमयस्येति नीतिहीनस्य शम्भवे ॥२२॥

चिर प्रतीक्ष्य तो तत्र भौमो वज्रध्वजस्तदा ।
 अप्राप्तशितिविष्णुं स सशोकं स्वं निवेशनम् ॥२३॥
 स गच्छन् स्वग्रहं भौमं पुरीं स्वा दृष्ट्वास्तु स ।
 पूर्वश्रिया परित्यक्त्वा मलिनां वनितामिव ॥२४॥
 देव्यामन्तहिताया तु वेदवादविवर्जितम् ।
 पुण्यम्बल्पदारजनं तत्र पुरं समपद्यन् ॥२५॥
 न देवास्तत्र गच्छन्ति न विष्णो न महर्षयः ।
 बभूव नगरं तस्य म्बल्पयज्ञक्रियोत्सवम् ॥२६॥
 ईतयो बहवो जाता मृताश्च बहवो जनाः ।
 लौहित्यनदराजोऽपि ह्रीननोयस्तदाऽभवन् ॥२७॥
 बहूनि विपरीतानि दृष्ट्वा स नरकस्तदा ।
 मेने मरणमासन्नमात्मनो ग्रहाशापतः ॥२८॥

हे द्विजो ! उस समय मैं वे दोनों ही उसके मामले प्रत्यक्ष रूप में प्रकट नहीं हुए थे क्योंकि वह समय का व्युत्क्रमण करने वाला और शम्भु के लिये नीति में विज्ञान हो गया था । २२ । उस भूमि के पुत्र ने वहाँ पर चिर काल तक उन दोनों की प्रतीक्षा की थी । उस समय में वज्रध्वज वर विष्णु भगवान् और क्षिति को न प्राप्त करने वाला होकर शोक में मुक्त हो अपने घर में चला गया था । २३ । अपने घर को जाने हुए उस भूमि के पुत्र ने अपनी पुरी को देखा था जो अपनी पूर्व की श्री में परित्यक्त थी और मलिन वनिता की ही समान हो रही थी । २४ । उस देवी के अन्तर्धान हो जाने पर उस पुर को उसने वेद बाद से रहित और पवित्र दाराजनों के स्वल्प रह जाने वाला ही पाया था । २५ । वहाँ पर न तो देव गण जाते हैं और न विप्र तथा महर्षिगण हो जाया करते हैं । उसका नगर बहुत ही कम यज्ञों की क्रिया तथा उत्सवों वाला हो गया था । २६ । बहुत सी ईतियाँ उस समय में हो गई थीं (विनाश करने वाली ६ प्रकार की ईतियाँ होती हैं) और बहुत से जन

अचल मति हुई थी । उसने वाण के नगर की ओर दीस हूत को प्रेषित किया था ॥३२॥ वह शीघ्र गमन करने वाले रथ के द्वारा शोणित पुर को जा कर फिर उसने भूमि के पुत्र नरक का वृत्तांत शीघ्र ही वाण के लिये निवेदन कर दिया था ॥३३॥ जिस प्रकार से वसिष्ठ मुनि ने शाप दिया था और जैसे अम्बका अन्तर्धान हो गई थी और जैसे प्राग्योतिष नाम वाले पुर में विघ्न उत्पन्न हो गया था ॥३४॥ भूमि और माधव का समय जिस तरह से व्याप्त क्रांत हुआ था अर्थात् समय का अतिक्रमण किया गया था—यह सब भूम पुत्र के उस हूत ने बलि के पुत्र वाण से कह दिया था ॥३५॥

स समाकारमित्रस्य सम्यगदवपराभवम् ।
स्वयं जगाम नरकं सभाजयितुमीश्वरम् ॥३६॥
स काचनविचित्रागं युक्तमश्वशतंस्त्रिभिः ।
लोहचक्रं च वयाघ्रं मयूरध्वजभूषितम् ॥३७॥
हेमदण्डसितच्छत्रच्छादितं किकिणीगणम् ।
नानारत्नौघरचितमारुरोहं महारथम् ॥३८॥
स सहस्रभुतं श्रीमाश्चतुरगवलयुतम् ।
प्राग्योतिषं भौमपुरमचिराजगाम ह ॥३९॥
तमासाद्य महाबाहुर्वाणः प्राग्योतिषेश्वरम् ।
हीनपूर्वाश्रया मित्रमपश्यन्नगरं च तत् ॥४०॥
स तेन पुजितो वाणो यथायोग्यं सुतेन को ।
पप्रच्छ किं निमित्तं ते हीनश्रीकमभूत् पुरम् ॥४१॥
शरीरं च यथापूर्वं तथा न तव राजते ।
मनश्च ते नास्ति हृष्टं तत्र हेतुं वदस्व मे ॥४२॥

उसने समान आकार वाले मित्र का यह पराभव जो दैव के ही द्वारा हुआ था अपनी भाँति जानकर वह ईश्वर नरक को समन्तान अर्थात् सात्वना देने के लिये वहाँ स्वयं ही गया था ॥३६॥ वह सुवर्ण से रचित

विचित्र अङ्गो वाले—तीन सौ अश्वो से युक्त—लोहे के पहियो वाले—
 बैयाघ्र—मयूर ध्वज से भूषित—सुवर्ण के दण्ड वाले सिवछत्र से समा-
 ष्टादित—किङ्किणी बणो से समन्वित—अनेक रत्नो से समूह से
 निमित्त महान् रथ पर वह समाह्वित हुआ था ॥३७॥३८॥ वह एक
 सहस्र भूजाओ वाला—श्रीमान् चतुरङ्गणी सेनाओ से युक्त होकर भीम
 (नरक) के पुर प्राग्ज्योतिष में जोघ्न हो समागत हो गया था ॥३९॥
 उनके समीप पहुँच कर महा बाहु बाण ने प्राग्ज्योतिष नगर के स्वामी
 को पूर्व धा से हीन भिन को और उस नगर को देखा था ॥४०॥ वह
 वही घर वृषिको के सुन उसके द्वारा क्या उचित रीति से वह पूजित
 किया गया था अर्थात् उसका समुचित सरकार दिया था । और उसने
 पूछा था कि किस कारण ने तुम्हारा यह बुर श्री से हीन हो गया था ।
 ॥४१॥ बाण ने कहा—आपका यह शरीर भी जैसा पहिले था वैसा
 शोभित नहीं हो रहा है । आपका मन भी पहिले के समान प्रसन्न नहीं
 है—इसके क्या कारण है यही मुझे श्रुताकर दत्तताइये ॥४२॥

एवमाशीनि गृष्टः स नरकः क्षितिनन्दनः ।

यथा यमिष्ठशापोऽभूत् तत् सर्वं तस्य चाग्रवीत् ॥४३॥

यच्छ्रुत् भीमवदनात्तद्दूतावेष्टितं पुरा ।

ज्ञात्वा तथा स प्रोवाच दाणां वज्रध्वज पुनः ॥४४॥

महि मय्युत्सवा कार्यः मुपे दुपे शरीरिणाम् ।

वज्रवत् परिवर्तते ननाभ्या गोर्जवि होयते ॥४५॥

परं तस्य प्रतीकारं कार्ष्णं धीरं विभूतये ।

भयानवि प्रतीकारं वक्तुं महंति सम्प्रति ॥४६॥

य एष मानुषः पृथ्याममाधारणमृतिभिः ।

बधेते दानवो वापि दैत्यो वाप्यथवागुरः ॥४७॥

गताय विप्ररो वापि अश्वत्थान् गृह्णते नहि ।

न गोष्ठिनं देवगणे गार्धं कुर्वेद्विप्रतनय ।

यथा नदा प्रशारेण प्रशयायेव न धिय ॥४८॥

तस्य चेष्टनमो देवो विष्णुर्नित्यं सनातनः ।

स न शक्तस्य कुरुते मनोऽनिष्ट मनागपि ॥४३॥

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से बहुत से प्रश्न पूछे गये भूमि के पुत्र उम नरक ने जिस तरह से षष्ठिष्ठ मुनि का दिया हुआ शाप हुआ था वह सभी उसको कह दिया था ॥४३॥ भूमि के पुत्र से जो भी सुना था वह पहिले ही दून के द्वारा आबेदित था । उस भाँति स जान करके बाण उस बज्र ध्वज से पुन बोला था ॥४४॥ बाण ने कहा—आपको क्रोध नहीं करना चाहिए । शरीर धारियों को मुख और दुःख चक्र की ही भाँति परिवर्तित होत रहा करत हैं अर्थात् मुख के बाद दुःख और दुःख के पश्चात् मुख लौट फेर कर आया करत हैं । इन सुख दुःख से कोई भी हीन नहीं हुआ करता है ॥४५॥ परन्तु घोर पुरषों को विभूति के लिये उसमें प्रतीकार करना ही चाहिए । आप भी अब उमका प्रतीकार करने के योग्य होने हैं । अर्थात् आपको भी प्रतीकार करना ही चाहिए ॥ ४६ ॥ पृथिवी में यह मनुष्य असाधारण विभूतियों से वधित होता है । ऐसा सभी को होता है चाहे कोई दानव हो—दैत्य हो अथवा अमुर हो ॥४७॥ राक्षस हो अथवा किन्नर हो—इन्द्र उनको सहन नहीं किया करता है । वह इन्द्र देवगणों के साथ हृदय-उधर कुटिलता किया करता है । और जिस—किसी भी प्रकार से उसकी श्री को भ्रष्ट करके उसे विनष्ट कर दिया करता है ॥४८॥ उस का परम इष्टतम दव नित्य ही सनातन विष्णु भगवान् हैं । वे इन्द्र का थोड़ा सा भी अनिष्ट कभी नहीं किया करते हैं ॥४९॥

य समाराधयेद् विष्णुं शक्रस्यानिष्टकारकः ।

तस्मै वर तु सच्छिद्र दत्त्वा त श्चातयत्वित ॥५०॥

चिरमाराधितो विष्णुरिष्टान् कामान् प्रयच्छति ।

महता कायदुःखेन पूजित सम्प्रसीदति ॥५१॥

विनेष्टदेवतापूजा विभूतिमतुला पुमान् ।

क. प्राप्नोति श्रुत पूर्वं न वा पूर्वतरः क्वचित् ॥५२॥

त्वया नाराधित पूर्वं ब्रह्मा वा विष्णुरीश्वरः ।

तेन तेऽद्य महाविघ्ना उत्पन्ना विषये तव ॥५३॥

यो वा विष्णुः पालयस्ते न निसर्गानुकम्पकः ।

किन्तु ते स क्षितेर्वाम्यासया चाराधितो मुहुः ॥५४॥

दत्त छिद्र च ते विष्णुर्नापराध्यास्त्वया द्विजाः ।

इतोऽन्यथा त्व भविता हर्योरिति नः श्रुतम् ॥५५॥

अपराध्यस्त्वया भूप वसिष्ठः परमो मुनिः ।

तेन स्मरणमात्रेण नायातो क्षितिमाधवी ॥५६॥

छिद्र के अनिष्ट करने वाला जो भी कोई भगवान् विष्णु की ममाराधना किया करता है उसको भच्छिद्र बरदान देकर उसका शासन करते हैं ॥५०॥ चिरकाल पर्यन्त आराधना किये हुए भगवान् विष्णु अभीष्ट कामों का प्रदान किया करते हैं और महान् शरीर के दुःख से पूजा दिये हुए वे परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥५१॥ इष्ट देवता की पूजा के दिना कौन पुरुष अतुल्य विभूति को प्राप्त किया करता है अर्थात् कोई भी नहीं पाता है । पूर्व में होने वालों के भी ऐसा कहीं भी कोई पुरुष पूर्व में नहीं सुना गया है ॥५२॥ तुमने पूर्व में ब्रह्माजी की अपवा ईश्वर भगवान् विष्णु की आराधना नहीं की है । इसी कारण से तुमको आज ही विघ्न समुत्पन्न हुए हैं जो तुम्हारे विषय में ही हैं ॥५३॥ जो भगवान् विष्णु है जो स्वभाव से ही अनुकम्पा करने वाले है तुम्हारे पालन करने वाले नहीं हो रहे हैं । किन्तु तुमने पृथिवी के वाक्य से पुनः उाकी आराधना की थी ॥५४॥ विष्णु भगवान् ने तुम को छिद्र दे दिया है । आपकों द्विजों वा अपराध नहीं करना चाहिए । अन्यथा इससे आप हत श्री हो जायेंगे—ऐसा हमने सुना है ॥५५॥ आपने परम श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि का अपराध किया है हे भूप ! इसीलिये उस स्मरण मात्र में पृथिवी और माधव नहीं समागत हुए हैं ॥५६॥

तस्मात्त्व मित्र पुण्यस्व कोटिल्य हरिमेघस ।
नाघुना युज्यते भीम तवादासीनताकृति ॥५७॥
यत्ते मनसि तातोऽयमिति सम्प्रत्यय स ते ।
वराह एव ते तात स च नाकान्तर गत ॥५८॥
वराहोऽपि हरेर श इति यच्छ्रूयते त्वया ।
तस्याश इत्यनुक्रोश ज्ञेय वा क्रियते वद ॥५९॥
तस्मात्त्व बुरु शम्भोर्वा ब्रह्मणो वाधुनाच्चनम् ।
स ते प्रसन्न परममिष्टकाम प्रदास्यति ॥६०॥
विघ्नो वा मुनिशापो वा महेनिर्वातिपीडक ।
विघ्नी प्रसन्न शम्भो वा नाचरात्क्षयमेष्यति ॥६१॥
जातसम्प्रत्ययो भामो वाणस्य वचनात् तदा ।
सुप्रीत समुवाचेद धीरघघनि स्वन् ॥६२॥

हे मित्र ! इस कारण स आप हार भगवान् की मघा की
कुटिलता की समझ लीजिए । हे भीम ! अर्थात् भूम के पुत्र नरक ।
इस समय मे आपकी उदासीन आकृति का हाना युक्त नहीं होता है ।
॥५७॥ जो तुम्हार मन म यह है कि यह मर तात है, ऐसा विश्वास है
वह तो दूसरे लोक मे चल गये है क्या? वराह हा आपका पिता थे ।
वह चले गये है ॥५८॥ वराह भी हरि भगवान् का ही अंश है जिनका
आप सेवन किया करते हैं । उसका अंश है—यह अनुकम्पा ही है ।
यह किसके द्वारा किया जाता है, वतसादए ॥ ५९ ॥ इससे अब
तुम भगवान् शम्भु का अथवा ब्रह्माजी का अभ्यर्चन करिए ।
वह प्रसन्न होकर आपका परम अभीष्ट काम प्रदान कर देगे
॥ ६० ॥ विघ्न अथवा मुनि का शाप या पीडा करन वाली महती
इति विघ्नाता अथवा शम्भु भगवान् के प्रसन्न हान पर ये सभी
शीघ्र ही शम्भु की प्राप्त हो जायेंगे । ६१ । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उक्त
समय में वाण के वचन से भीम अर्थात् नरक को पूर्ण विश्वास समुत्पन्न

हो गया था । वह बहुत ही प्रसन्न होकर धीरता से घर्घर ध्वनि वाला यह वचन बोला ॥६२॥

यत् त्वया गदितं बाण हित मे मित्रवत्सल ।
 तत् कार्यमचिरादेव तपश्चरणमुत्तमम् ॥६३॥
 विष्णुर्नाराधनीयो मे तत्र हेतुस्त्वयोदितः ।
 नैवाराध्यस्तथा शम्भुरन्तर्गुप्तः स मे पुरे ॥६४॥
 तस्माद् ग्रह्या समाराध्यो वचनात् तव मित्रक ।
 तत्पुत्रस्य महाबाहो लोहित्यस्याम्बुसन्निधौ ॥६५॥
 भवताध्यापितश्चाह शिष्योऽयं गुरुणा यथा ।
 मित्र मित्र यथा धीर साम्ना परमवल्गुना ॥६६॥
 इत्युक्त्वा स महाबाहुर्बाण वज्रध्वजस्तदा ।
 यथावत् पूजयामास तन्मित्र मित्रवत्सलः ॥६७॥
 अर्चयित्वा यथायोग्यं प्रस्थाप्य च वले सुतम् ।
 ग्रह्याराधनमत्युग्रं कर्तुं निच्छन् क्षितेः सुतः ॥६८॥
 स तीरे नदराजस्य लोहित्यस्य महात्मनः ।
 ग्रह्याचल समारुह्य तपस्तप्तुमुपस्थितः ॥६९॥
 स मानुषेण मानेन क्षितिपुत्रं शत समा ।
 जलाहारव्रतेनैव समानर्चं पितृमहम् ॥७०॥

भीम ने कहा—हे मित्र! पर प्यार करने वाले ! जो भी आपने कहा है वह मेरा हित है अर्थात् भलाई करने वाला है । वह मैं गुरुराज ही उत्तम तपश्चर्या करेगा ॥ ६३ ॥ मुझे भगवान् विष्णु की आराधना नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसमें हेतु बतला दिया है । उसी भाँति शम्भु भगवान् की भी आराधना नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे मेरे पुर में अन्तर्गुप्त है ॥६४॥ इस कारण ग्रह्याजी की ही आराधना करनी चाहिए ऐसा ही है मित्र ! आपका भी वचन है । हे महाबाहो ! उनसे पुत्र लोहित्य के जल की गन्निधि में आपने द्वारा मैं अध्यापित

किया गया है जिम तरह मे गुरु के हाग जिप्य को पढाया जाता है ।
हे धीर ! जैसे मित्र को मित्र परम बल्लु माम मे किया करता है ।
॥६५॥६६॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इतना बाण मे कहकर वह महा-
बाहु बज्र ध्वज ने उम समय मे यथावत् उम मित्र की पूजा की थी
क्योकि वह मित्रो पर प्यार करने वाला था ॥६७॥ क्षिति के पुत्र
नरक ने यथोचित रूप मे अर्चन करके और वनि के पुत्र को प्रस्थापित
करके अर्थान् विदा करके उमने अत्यन्त उग्र ब्रह्माजी की आराधन करने
की इच्छा की थी ॥६८॥ वह महात्मा लौहित्य के तट पर जो कि नदी
का राजा था ब्रह्माचन पर समास्थित होकर तपश्चर्या करने के लिये
उपस्थित हो गया था ॥६९॥ उम क्षिति के पुत्र ने मनुष्यों के मान से
सौ वर्ष तक जन के आहार के व्रत मे पितामह की अर्चना की थी ॥७०॥

सन्तुष्टः शतवर्षान्ते ब्रह्मा लोकापितामहः ।
प्रत्यक्षीभूय नरकस्याग्रतः समुपस्थितः ॥७१॥
प्रीतोऽस्मि ते वर दास्ये वर वरय मुग्रतः ।
इति बोधाच्च नरकं स तदा कमलामनः ॥७२॥
स दृष्ट्वा सर्वलोकेशं प्रत्यक्ष कमलामनम् ।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्रोचे विनयानतकन्धरः ॥७३॥
देवामुरेभ्यो रक्षोभ्यः सर्वेभ्यो देवयोनिषु ।
अवध्यत्वा मुखेष्ट वरमेकं प्रयच्छ मे ॥७४॥
अविच्छिन्ना सन्ततिर्मे यावच्चन्द्रो रविस्तपेत् ।
तावदमवतु लोकेश द्वितीयोऽयं वरो मम ॥७५॥
तिलोत्तमाद्या या देव्यः सद्रूपगुणसंयुताः ।
तास्ता मे दयिताः सन्तु सहस्राणि तु षोडश ॥७६॥
अजेयत्वं सदा श्रीर्मा न जहातु कदाचन ।
इति पंच वरा मेऽथ वृतास्त्वत्तः पितामह ॥७७॥

सौवों के पितामह सौ वर्ष तक तप करने के अन्त मे परम
गन्तुष्ट हुए थे और प्रत्यक्ष में आकर नरक के मामने गमुरस्थित हो गये

थे। ७१। हे सुव्रत मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हो गया हूँ । मैं तुमको वरदान दूँगा । जो भी चाहो कर माँग लो । उन भगवान् कमलासन ने यह उस अवसर पर नरक ने कहा था । ७२। उस नरक ने समस्त लोको के स्वामी कमलासन प्रभू का प्रत्यक्ष दर्शन करके उसने उनकी प्रणाम किया था और फिर दोनों को जोड़कर विनय से अवनत बन्धन को करके बोला-हे सुरथोष्ठ ! आप मुझे एक वरदान यह दीजिए कि मैं देवीसे—असुरों से—राक्षसों से और सभी देव योनियों में अवस्था होऊँ अर्थात् वध होने के योग्य न रहूँ ॥७३॥७४॥ मेरी मन्तति भी विच्छिन्न न होवे और वह जब तक रहै जब तक ये चन्द्र तथा दिवाकर रहें । हे लोकोत्तर ! तभी तक मेरी मन्तति कथम धनी रहे—यही मेरा दूसरा वरदान है ॥७५॥ तिलोत्तमा आदि जो देवियाँ सुन्दर रूप और गुणों से समन्वित हैं वे-वे सब सोलह महत्त्व मेरी दयिता हो जावें ॥७६॥ मुझे अजेयत्व की प्राप्ति होवे अर्थात् मैं किसी में भी विजित न होऊँ । और श्री मुझकी कभी भी परिस्थान न करे । हे पितामह ! ये ३२ पाँच वर हैं जो आपसे मैंने आज वरण करने की इच्छा प्रकट की है ॥७७॥

मायया मोहितो भौमो मुनिशाप विस्मृत्य च ।
 अन्यद्वरान्तर वव्रे मुनिशापस्तथा स्थित ॥७८॥
 एवमस्त्विति तान् सर्वान् वरान् दत्त्वा पितामह ।
 उवाचेद द्वापरान्ते सन्ध्याया मुरकन्यका ॥७९॥
 तिलोत्तमाद्यास्ते जाया सम्भविष्यन्ति भूतले ।
 न यावन्नारदो याति वज्रध्वज पुर तव ।
 तावन्न मय्युने योज्या भवता ता क्षिते सुत ॥८०॥
 इत्युक्त्वा मर्वलोवेश क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।
 मुदमासाद्य परमा स्वस्थान नरकोऽभ्यगात् ॥८१॥
 ततो मुदितलोक त नगर श्रीनिपेक्षितम् ।
 सदा सोत्साहसम्पूर्णमीतिविघ्नविवर्जितम् ॥८२॥
 अभयन् पशुसर्पश्च वाजिवारणकुम्भकैः ।

सम्पूर्ण देवराजस्य दयितेवामगवती ॥८३॥

उत्तीर्णतपस श्रुत्वा वाणो दत्तवर तथा ।

स्वयं पुनरुपातिष्ठद् भोम वज्रध्वज तदा ॥८४॥

यार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वह भोम नरक माया से मोहित हो गया था और मुनि के शाप को विस्मृत कर दिया था । मुनि का शाप उसी भाँति स्थित था । उसने अन्य अन्य वरदानों की याचना की थी ॥७८॥ पितामह ने ऐसा ही होव—ऐसी रीति में उन सब वरों को देकर यह कहा था—द्वापर के अन्त में सन्ध्या में नितोत्तमा आदि सुर कन्याएँ भक्त में तेरी पत्नियाँ होंगी । हे वज्रध्वज ! जब तक देवर्षि नारद तरे पुर में नहीं जाते हैं । हे क्षिति के पुत्र ! तब तक आपको उनके साथ मैत्रुण कर्म नहीं करना चाहिए ॥७९॥८०॥ इतना ही कहकर सत्र लोको के ईश एक ही क्षण में अतर्घनि हो गये थे । नरको भी परम प्रसन्नता की प्राप्ति करके अपने स्थान को गमन कर गया था ॥८१॥ इसके अन्तर वह उस प्रमन्न लोगो वाले नगर को चला गया था । वह नगर था से निषेवित था और मदा ही उत्साह में परिपूर्ण था तथा इतियो के विघ्ना में रहित था ॥८२॥ वह नगर देवराज की दयिता (धारी) अमरावती ही के समान पशुओं के समुदायो में और अश्व—गज कुम्भका में परिपूर्ण हो गया था ॥८३॥ वाण ने नरक को उत्तीर्ण तप वाला तथा दिये हुए वरों वाला ध्वज करके उस समय में वह वज्र ध्वज के समीप में पुनः स्वयं समुपस्थित हो गया था ॥८४॥

स गत्वा भोमनगरं वाणं प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।

पप्रच्छ नरकं मित्र तपसं सन्निवेशनम् ॥८५॥

पुत्र त्वया तपस्तप्तं किं वा चीर्णं त्वया व्रतम् ।

कोदृशो वा वरो लब्धस्त्वममाम्यातुमर्हसि ॥८६॥

दृष्टं तव पुरं सर्वं प्रहृष्टजनसकुलम् ।

वाजिवारणरत्नौघं पूरितं भग्नस्वर्नम् ॥८७॥

दृश्यतेऽद्य त्वया पाल्यं शस्यपूर्णमनामयम् ।

कथ्यतां वा कथं ब्रह्मा वरं तुभ्य प्रदत्तवान् ॥८८॥

ब्रह्मा स्वयं पर्यन्तरूपधारी

कामेश्वरी धर्तुं मिहावतीण ।

तत्र स्वयं सम्प्रति घस्यमेति

पुरा न यावच्छयते वसिष्ठ ॥८९॥

सौम्य पुरे मे वलिपुत्र राजते

देवौघमेव्योऽप्यमरोत्तमाश ।

तत्राहमेको धरतोयभोजनो

वर्पाण्यकार्पं च तप शनानि यं ॥९०॥

लीहित्यतीरे घनवायुसेविते

मनोहरैः प्राणभृता सुखप्रदे ।

तप प्रवृत्तस्य मुखं समागम-

च्छरद् यथंका शरदा शतानि मे ॥९१॥

उस बाण ने नरक के प्राग्ज्योति नामक नगर में गमन करके फिर अपने मित्र नरक में तपश्चर्या का मुनि वैश्वान पूछा था ॥८५॥ उसने पूछा कि आपने तब कहा किया था अथवा आपने क्या व्रतों को चीर्ण किया था । आपने किस प्रकार का वर प्राप्त किया था यह सभी आप मुझसे कहने के योग्य हैं ॥८६॥ अब मैंने आपके पुरको सम्पूर्ण रूप से प्रसन्न जनों में सकुल देखा है । अथ—गज और रत्नों के समूहों से तथा मङ्गल ध्वनियों से भरा—पूरा देखा है ॥८७॥ आज आपके द्वारा पालन के योग्य प्रजा एवं भूमि शस्त्रों से परिपूर्ण और रोष रहित देखी जा रही है । आप बतलाइये ब्रह्माजी ने कैसे आपकी वरदान दिया था ॥८८॥ नरक ने कहा—पर्वत के रूप की धारण करने वाले ब्रह्माजी स्वयं कामेश्वरी की धारण करने के लिये यहां पर अवतीर्ण हुए थे । वहां पर अब स्वयं यक्ष गमन किया करता है जब तब पहिले वसिष्ठ मुनि शाप नहीं देते हैं ॥८९॥ हे वनि पुत्र ! वह यक्ष मेरे पुर में

विराजित होने हैं जो देवोंके समुदाय द्वारा मेव्य हैं और अमरी का उत्तम अण है । वहीं पर मैं अकेला जन के आहार करने वाला सौ वर्ष तक तपस्या करने वाला रहा था ॥६०॥ लौहित्य कातर घन वायु मे मेवित था वह परम मणोहर था और प्राणियों को मुख प्रदान करने वाला था । वहीं पर तपस्या करने मे प्रवृत्त हुए मुझे मुख पूर्वक सौ वर्ष एक वर्ष की ही भांति समागन हुए थे ॥६१॥

तत म तुष्टश्चतुराननोऽभवन्

प्रत्यक्षतो मा न्यगदच्च मद्वितम् ।

तव प्रमन्नोऽस्मि वरं ययेप्सिन्

दास्ये गृहाणेति पुरोऽय भूत्वा ॥६२

अवध्यता मे सुरयोनित सुरा-

दच्छिन्नसन्मानोजेयता तथा ।

सदा विभूतिर्न जहातु मामिति

वराश्च नार्यो नवयोवनाम्बिता ॥६३

एते वरा पच मया ततो वृता

सोऽपि प्रतिश्रुत्य गतो निजाम्पदम् ।

ततोऽह्यभ्येत्य पुर निज मुदा

मन्त्रिप्रवीरं सहितं पुनस्तान् ॥६४

पौरान् मवन्धून् सगणानमादयम्

दानेन मानेन च भोजनेन ॥६५

इतीरित तस्य बले सुतस्तदा

भौमस्य श्रुत्वा मुमुदे न तत्क्षणात् ।

इद तदोचे वचन क्षिते मुत

तत्तायुवन न च सूनृतोद्भवम् ॥६६

न ते मुने शापमनीत्य गन्तु

भूता मनिमित्र तदा विधे पुर ।

यथ तु भद्र भविता तवेह

भावीत्यवश्य क्षितिपुत्र नित्यम् ॥६७॥

कृतस्य वरुण नास्ति दैवाधिष्ठितकर्मण ।

भावीत्यवश्य यद्भाव्य तत्र ब्रह्माप्यवाधक ॥६८॥

इसके उपरान्त चतुरानन के ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये थे और प्रत्यक्ष में समागत होकर उन्होंने मेरे हित के वचन कहे थे । उन्होंने मेरे सामने होकर मुझ से कहा था—मैं तुझ पर प्रसन्न हो गया हूँ और जो भी तुझे अभीष्ट होगा वही वर तुझको दूँगा—तुम मुझसे वर ग्रहण करलो ॥६२॥ मैंने उनसे पाँच वरदानों की याचना की थी—मुर योनि से मुझे मेरी अवध्याता होवे—मेरी सन्तति कभी भी छिन्न न होवे—अजेयता मुझे प्राप्त रहे—विभूति सदा ही बनी रहे और कभी भी मेरा परित्याग न करे । और परम भ्रष्ट नव यौवन में समाविष्ट मेरी नागियाँ होवे—ये ही पाँच वरदान मैंने माँगे थे । उनसे भी सभी वरदानों को प्रतिभूत किया था और फिर वे अपने स्थान को चले गये थे । इससे उपरान्त मैं प्रसन्नता से अपने नगर में प्राप्त हो गया था । फिर मैंने मन्त्रियों से थोड़े के सहित पुनः उन नगर निवासियों की गणों के महिम्न दान मात्र और भोजन के द्वारा प्रसन्न किया था ॥६३॥॥६४॥॥६५॥ माकण्डेय मुनि ने कहा—इस तरहसे उससे कहे हुए वचनका श्रवण करके धर्मिक पुत्र उस क्षण में प्रसन्न नहीं हुआ था और उस समय में उसने भूमि के पुत्र में यह वचन कहा था वह वचन उस बाल के मुक्त था और सूमृतीद्भव नहीं था । अर्थात् प्रिय लगने वाला नहीं था ॥६६॥ वाण न ब्रह्मा—हे मित्र ! उस समय में विधाता के आगे आपकी बुद्धि मुनि के शाप अतिक्रमण करने की नहीं हुई थी । यहाँ पर आपका कल्याण कैसे होगा । हे भूमि पुत्र ! जो होनहार है वह नित्य ही अवश्य ही होने वाली है ॥६७॥ किये हुए दैव से अधिष्ठित कर्मों का करण नहीं है । जो हानहार है वह अवश्य ही होगी ही उसमें ब्रह्मा भी बाधक नहीं हो सके हैं ॥६८॥

तस्मात् त्वं सुमहावीरानसूतान् पावकोपमान् ।
 सन्ध्याय च पुरस्कृत्य सावित्र्ये विनियोजय ॥६६॥
 द्वारि सस्थाप्य वं वीरान् देवैर्गपि दुरासदान् ।
 अतिक्रमस्व देवेश यदि लब्धवरो भवान् ॥१००॥
 विधिना यो वरो दत्तो भवते तन्-परीक्षयम् ।
 कर्तुं मर्हसि जायायामपुत्रो जनयात्मजम् ॥१०१॥
 हृत्पूज्यत्वा प्रययौ वाणो यथावत् तेन पूजितः ।
 नरको मित्रवचनं कर्तुं समुपचक्रमे ॥१०२॥

इस कारण से आप बहुत महान् वीर आसुरों को मन्थि करके
 उन्हें आगे करो और मन्त्रियों के पदों पर उनको नियुक्त करो ॥६६॥
 जो देवों को भी दुरासद हों ऐसे वीरों को द्वार पर सस्थापित करो ।
 आप यदि बरदान प्राप्त किये हुए हैं तो देवेश्वर का भी अति क्रमण
 करो ॥१००॥ विष्णु ने जो वर दिया है आपके लिये वह परीक्षण है ।
 अनुग्रह आन जाया में आत्मज को जन्म दो ॥१०१॥ इतना कहकर वाण
 उसमें द्वारा पूजित होकर वहाँ से चला गया था । नरक ने भी अपने
 मित्र के द्वारा कहे हुये वचनों के अनुसार ही कार्य करने का आरम्भ
 किया था ॥१०२॥



॥ नरकासुर उपाख्यान ॥

श्रुतुमत्या तु जायाया काले स नरकः क्रमान् ।
 भगदत्त महाशीर्षं मदवन्त सुमालिनम् ॥१॥
 चतुरो जनयामास पुत्रानेतान् क्षितेः सुतः ।
 महासत्त्वान् महावीर्यान् वीरैरन्यदुरासदान् ॥२॥
 ततो वाणस्य वचनाद् ह्यशोकं तया मुहुम् ।

स धायथ समानीय सनापत्येऽन्यपचयत् ॥३॥
 मुरु सन्निहितं श्रुत्वा हयग्रीव भीमिना ।
 ये ये क्षितौ तदा ह्यामन्सुरास्तऽपि सगता ॥४॥
 हयग्रीव मुरु श्रुत्वा नरकेण समागतम् ।
 निसुन्दमुन्दनामारावसुरौ सैनिक सह ॥५॥
 विरूपाक्षस्तदा दत्त्य सब तेन समागमन् ।
 ततः स पश्चिमद्वारि नरक सेनया सह ॥६॥
 मुरु द्वाशघ्न चक्र हयग्रीव तयोत्तर ।
 पूवद्वारि निसुन्दन्तु विरूपाक्ष तु दक्षिणे ॥७॥

माण्डेय महर्षि ने कहा—कान के सम्प्राप्त होने पर भूमि के पुत्र नरक ने त्राम के ऋतुमती अपनी जाया में भगदत्त—महा शीप—मदव त और सुमानी इन चार पुत्रों का समुत्पन्न किया था जो कि महान् मत्स्य वाले—महान् बीय—पराक्रम वाले और अन्य धीरो के द्वारा दुरासद थे ॥१॥२॥ इसके अनन्तर वाण के वचन के अनुसार हयग्रीव तथा मुरु को बुला कर इनके साथ संधि करके अपने सेना के अधिपत्य पदों पर अभिषिक्त कर दिया था ॥३॥ भीम के द्वारा नियुक्त किये हुए मुरु और हयग्रीव को सुनकर उस समय म जो जो भी भूमि पर असुर थे वे भी सब सङ्गृत हो गये थे ॥४॥ नरक के द्वारा समागत मुरु और हयग्रीव को सुनकर सेना के सहित निसुन्द और सुन्द नामा वाले तथा दैत्य विरूपाक्ष उस समय म ये सभी समागत हो गये थे । इसके अनन्तर उस नरक ने सेना के साथ पश्चिम द्वार पर मुरु को द्वार का अधिष्ट बना दिया था तथा हयग्रीव का उत्तर द्वार पर नियुक्त किया था । पूव द्वार पर निसुन्द को और विरूपाक्ष को दक्षिण द्वार पर नियुक्त किया था ॥५॥६॥७॥

मध्ये पचजन सुन्द सैनापत्येऽन्यपेचयत् ।

मुरु क्षुरातान् पाशाश्च पट्सहस्राप्ययोजयत् ॥८॥

द्वारि तत् पुररक्षार्थं सत्कृत क्षितिसूनुना ।
 एव पूर्वान् पूर्वतरानवमत्स्य सुमन्त्रिण ॥८६॥
 अमुरं रेव सतत सोऽमुरो मुदितोऽभवत् ।
 पूर्वं गृहोत्त भाव स परित्यज्य क्षिते. सुत. ॥९०॥
 आसुर भावमासाद्य बाधते त्रिदिवीकस ।
 न देवान् न मुनीन् सर्वान् न च जानाति काञ्चन ॥९१॥
 सुरेश्वर जिगायाशु ह्यग्रीवसहायवान् ।
 एव स चासुर भाव तन्वानो विचरन् क्षितौ ॥९२॥
 वाणस्य वचनाच्छक्र बाधयत्येव वै मुनीन् ।
 देवेश्वर त्रिधा जित्वा ह्यग्रीवसहायवान् ॥९३॥
 अदित्या कुण्डलयुग त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
 सर्वरत्नामृतस्नावि दुःखविघ्नहर परम् ॥९४॥

मध्य में पचजन मुन्द को सेनापति के आधिपत्य पद पर नियुक्त किया था अथवा अभिषिक्त कर दिया था । मुन्द को क्षुरान्त को और पाशा को छै सहस्रो को योजित किया था ॥८६॥ द्वार पर भूमि पुत्र के द्वारा पुर की रक्षा के लिये इनका सत्कार किया गया था । इस प्रकार से जो पूर्व में थे तथा उसमें भी पहिले थे उन अच्छे मन्त्रियों को हटा दिया था ॥८६॥ वह अमुर निरग्नर अनुरा के ही साथ से परम प्रसन्न हुआ था । उस भूमि के पुत्र ने पूर्व में ग्रहण किण्ठे हुए भाव का परित्याग कर दिया था ॥९०॥ वह आसुर भाव को प्राप्त करके देवों को बाधा दिया करता था । वह न तो देवों को—न मुनियों को और किन्हीं भी सज्जनों सहित जानता था अर्थात् अन्य किसी का भी आदर नहीं किया करता था ॥९१॥ सुरेश्वर को शीघ्र ही उसने ह्यग्रीव की सहायता से युक्त होकर जीत लिया था । इस प्रकार से वह आसुर भाव को बढ़ाता हुआ ही पृथ्वी पर विचरण किया करता था ॥९२॥ वाण के वचन में यह ह्यग्रीव की सहायता से समन्वित होकर देवों के स्वामी इन्द्र को

बधा देता हैं और मुनियों को भी बाधा दिया करता है । देवश को तीन प्रकार से जीत कर अदिति के दो कुण्डलों को जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं जो सर्वरत्ना मृत्न का स्रवण करने वाले थे और दुष्ट तथा विघ्नो का हरण करने वाले परम श्रेष्ठ थे ॥१३॥१४॥

जहार नरको भौमो निर्भीतो मुनिशायत ।

एव देवान् बाधमानो मुनीन् विप्रान क्षिते सुत ।

पञ्चवर्षसहस्राणि राज्य प्राग्ज्योतिषेऽकरोत् ॥१५॥

एतस्मिन्नन्तरे देवो महाभारादिता क्षिति ।

ब्रह्माविष्णुमुखान् देवान् रक्षार्थं शरण गता ।

इदं चोवाच घातार प्रणम्योर्वो समाधवम् ॥१६॥

दानवा राजसा दंत्या हरिणा ये च सूदिता ।

ते राज्ञा मन्दिरे जाना अधुना बलगविता ॥१७॥

तेषा मारमह सोढुं न शक्नोमि महत्तरम् ।

असक्याताश्च ते सर्वे तान् सख्यातु न चोत्सहे ॥१८॥

अष्टौ शतसहस्राणि तेषा मुख्या महाबल ।

तेऽप्यतिबलान् वोढुं न ताञ्छक्नोमि चाधुना ॥१९॥

वाण वले सुत वीर कस धेनुकमेव च ।

अरिष्टं च प्रजम्ब च मुनामान मेरुं शलम् ॥२०॥

चारणमुष्टिकी मल्ली जरासन्ध महाबलम् ।

नरकं च हयग्रीवं निमुन्द सुन्दमेव च ॥२१॥

भूमि के पुत्र नरक ने मुनि का शाप से निर्भीत होकर उन कुण्डलों का हरण कर लिया था । इस तरह से देवों को—मुनियों को और विप्रों को बाधा करता हुए उस भूमि के पुत्र ने पाँच सहस्र वर्ष तक प्राग्ज्योतिष में राज्य का शासन किया था । १५ । इसी बीच में महान् भार में पीड़ित हुई पृथ्वी देवी ब्रह्मा—विष्णु प्रमुख देवों की शरण-गति में अपनी गथा के नये गयी थी । वहाँ पृथ्वी ने ब्रह्माजी और माधव प्रभु को प्रणाम करके यह कहा था । १६ । पृथिवी ने कहा—

दानव—राक्षस और दैत्य जो हरि क द्वारा मूर्छित कर दिये गये थे व सब राजाओं के मन्दिर में इस समय में बल से गवित होकर समुत्पन्न हो गये थे । १७ । उनका इनका अधिक भार है कि उनको सहन और बहन करने में समर्थ नहीं हैं । उनकी मर्या इतनी अधिक है कि मैं उन सब की मर्या बतलान में भी असमर्थ हूँ और मुझे उत्साह नहीं हाता है कि मैं बतलाऊँ । १८ । उनमें मुख्य महान् बल वाले आठ मों सहस्र हैं । उनमें भी अत्यधिक बल वाले हैं । मैं इस समय में उनका बहन करने में असमर्थ हूँ ॥ १९ ॥ उनके नामों को बतान हुए पृथ्वी ने कहा—
बाण—बलि का पुत्र, घोर वम, धेनुक अरिष्ट—प्रलम्ब, सुनामा, मुर, शल, मत्त चारण और गृष्टिक, महान् बल शाली जरा सन्ध, नरक, हयग्रीव, तिसुन्द और मुन्द हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

विरूपाक्ष पञ्चजन हिडिम्ब च वक् वलम् ।

जटामुरं च किर्मोरमनायुधमलम्बुपम् ॥ २२

सौभाम्य च जरासन्ध द्विविद चापि वानरम् ।

श्रुतायुध महाइत्य शतायुधमयापगम् ॥ २३

ऋष्यशृङ्गसुत चैव मुवाहुमतिबाहुवम् ।

कालकस्तथास्तथा दंत्यान् हिरण्यपुरवाग्निम् ॥ २४

एतेषां तु पदक्षोभं विशीर्णाहि दिने दिने ।

लोकान् वोढुं न शक्नोमि तस्मिन्नु मुरोत्तमा ॥ २५

नचेद्रक्षा प्रकुर्वन्ति भवन्त सुरमत्तमा ।

तदा विशीर्णा यास्यामि पातालमवशाश्रुना ॥ २६

ततस्तरया यच्च श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।

इत्युच्यन्ते करिष्यामि क्षिते भारविमोक्षणम् ॥ २७

विसर्ज्य पृथिवी देवी सर्वं देवा मनान्नम् ।

माघेव तोषयामुर्भारिवतरण प्रति ॥ २८

विरूपाक्ष—पञ्चजन—हिडिम्ब—वक्—बल—जटामुर—

किर्मीर मनायुध—अलम्बुप—सीमाख्या—जरागन्ध—वानर द्विविद—
 श्रुतायुध—महादैत्य शतायुध—शृण्व शृङ्ग सुत—सुबाहु—अति
 बाहुक—कालकज्ज—हिरण्य पुरवासी दैत्य इन सबके पदों में क्षोभो
 से मैं दिनो दिन विषीर्ण हो रही हूँ । हे सुरोत्तमो ! मैं लोको का
 वहन करने में असमर्थ हो रही हूँ । आप इनका विहनन करिये ।
 ॥२२—२५॥ यदि सुर श्रेष्ठ मेरी रक्षा नहीं करे मे तो मैं परमाधिक
 विषीर्ण होकर इस समय में अवश होकर पाताल में चली जाऊँगी ।
 । २६ । माण्ड्येय महाप ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्मा—भगवान् विष्णु
 और महेश्वर ने उसके वचन का श्रवण करके उन्होंने यह कहा था कि
 पृथ्वी के भार का विमोचन हम करेंगे । २७ । पृथ्वी देवी को विदा
 करके सभी देवगण सनातन माधव को भूमि के भार के उत्तारन में
 विषय में प्रसन्न करने लगे थे ॥ २८ ॥

स तु तुष्ट सुरान् सर्वान् स्वाशैरवरन्तु व ।
 क्षिती भारावतारायेत्युक्त्वा स्वयमिह प्रभु ॥२६
 अवतीर्णोऽथ देवयया गर्भे भारावतारण ।
 विष्णु चावतरिष्यन्त ज्ञात्वा देवा सनातनम् ॥२७
 रम्भातिलोत्तमाद्याश्च देव्यो रूपगुणान्विता ।
 क्षितामुत्पादयामासु सहस्राणि तु पौडश ॥२८
 ता सर्वा हिमवत्पृष्ठे क्रीडमाना वरस्त्रिय ।
 अपश्यन्नरको भीमस्त्रा जहार तदा हठात् ॥२९
 ते ता घपिता देव्यो नीता प्रागुज्योतिष प्रति ।
 नरक प्रायंयामासु समयं मेथुन प्रति ॥३०
 नारदो यावदायाति नगरं प्रति भीम ते ।
 अस्माकं कुरु रक्षा च तावन्मो मु च मेथुने ॥३१
 स समेप्यति वीर त्वा न चिराद्मो ह्यनुग्रहात् ।
 तेन दृष्टा वयं सार्धमेयाम सगम त्वया ॥३२

वे पद्म प्रमन्न होकर समस्त सुरों में उन्होंने कहा था कि वे सब भूमि में उसके भार को उतारने के लिये अपने-अपने अंशों में अवतरित होंगे—इतना कहकर प्रभु स्वयं भी यहाँ पर भार के अवतारण में देवकी के गर्भ में अवतीर्ण हुए थे । देवों ने स्वयं भगवान् विष्णु को अवतीर्ण होते हुए जान कर जो कि सन्तान है । उन देवगणों ने रम्भा और तिलोत्तमा आदि देवियों को जो रूप लावण्य और गुणों में समन्वित थी उन मोक्षह मन्त्रों को उत्पादित कर दिया था ॥२६॥३०॥३१॥ वे सब परम धेष्ठ नारियाँ हिमालय के पृष्ठ भाग पर क्रीडा करने वाली थी । उनको भूमि के पुत्र नरक ने देखा था और उनको हठ में अर्थात् बल पूर्वक उसने हरण कर लिया था । उस नरक ने उन सबको धपिन दिया था और अपने प्राग्भ्योतिष नगर में उन सबको ले आया था । नरक ने मैत्रुन के प्रति समय-समय उन से प्रार्थना की थी । उन्होंने कहा हे भौम ! जब तक देवर्षि नारद तैरे नगर की ओर आते हैं तब तक आप हमारी रक्षा करें और मैत्रुन के प्रति हमको छोड़ दें । ३२ । ३३ । ३४ । वे शीघ्र ही हमारे प्रति अनुग्रह करेंगे हे वीर ! आपके समीप में आये गे । उनके द्वारा देखी गयी हम सब तुम्हारे माथ सज्जम करने के लिये आज्ञा देंगे ॥३५॥

इति सम्प्रार्थितस्ताभिर्नरको भूमिनन्दन ।

ब्रह्मवाक्य तदा स्मृत्वा एवमस्नूचिवान् मुहु ॥३६॥

एनस्मिन्नन्तरे देवो भगवान् लोकभावन ।

देवक्या जठराज्जातो वृद्धो नन्दगृहेऽभवन् ॥३७॥

कसकेशिप्रलवादीन् हत्वा दंत्याननेकश ।

अकरोद् द्वारकावास सागरे सलिलान्तरे ॥३८॥

तत्राष्टौ कन्यकास्तेन स्वधर्मेण च स्वीकृता ।

कालिन्दी मानुषोत्पा रुक्मिणी रमणी ततः ॥३९॥

नम्रजित्तनया सत्या सक्षमणा चारुहामिनी ।

सुशीला शीलसम्पन्ना तथा जाम्बवती सती ॥८०

एतामु श्रीपुत्र तना ह्यपुरवाम्य नग्य व ।

घटत्रिशद्वत्सरा जाता यनदयसहायिन ॥८१

प्रद्युम्नसाम्प्रप्रमुखा पुत्रास्तग्य महावना ।

जातास्तत्र द्विजत्रष्टा शास्त्र शस्त्रे न वायिदा ॥८२

उनके द्वारा हम प्रकार से प्रायश्चा किया गया उस भूमि के पुत्र नरक में उस अवसर पर ब्रह्माजी के वाक्य का स्मरण करने लगा ही होवे — यह उमा कहा था । ३६ । इसी बीच में सोना की रक्षा करने जाने देव भगवान् देवकी के गर्भ से समुत्पन्न हुये थे । और नन्द के घर में पालित होकर बड़े हुए थे । ३७ । उन प्रभु ने नक्षत्र कशी और प्रलम्ब आदि अनेक दैत्या को मार कर जन के अन्तर गागर में बसी हुई द्वारका पुरी में अपना निवास किया था । ३८ । वहीं पर उन्होंने अपने धर्म से आठ बच्चाओं को स्वीकार किया था । उनमें मानवी के रूप वाली कनिदी थी—रमणी—मन्त्रजित् की पुत्री—सत्या—चार हास वाली लक्ष्मण—परम सुशील और शील से सम्पन्न सती जाम्बवती भी । ३९ । ४० । वसुदेव की सहायता जाने उमको इन नारियाँ में अनुगम करने वाले उनको छत्तीस वर्ष व्यतीत होगये थे । ४१ । हे द्विज श्रेष्ठ ! उसके महान् बल वाले इस प्रकार से प्रद्युम्न—साम्ब जिनमें प्रमुख थे ऐसे पुत्र समुत्पन्न हुये थे जो शास्त्र में और शस्त्र विद्या में परम पणित थे ॥ ४२ ॥

अनेके निहता दैत्या भारभूतास्तदा क्षिते ।

प्रहृष्ट ब्रीडमानश्च द्वारकायामुवासस ॥४३

अथ शक्रस्तदायातो नरकेणादितो भृशम् ।

द्वारका प्रति कृष्णस्य दशनाय गण सह ॥४४

तत्र गत्वा परिष्वज्य कृष्ण लोकनमस्कृतम् ।

पूजितस्तेन बहुश आसने वाचने स्थित ॥४५

कथयामास हरये नरकस्य विचेष्टितम् ।
 शक्रो यथा पूर्ववृत्त यथा वा वर्ततेऽधुना ॥४६॥
 शृणु कृष्ण महाबाहो यदर्थमहमागत ।
 कथयिष्यामि तत् सर्वं तत्र शका न सकुरु ॥४७॥
 भूमिपुत्रोऽसुरो नाम्ना नरक. सुरमर्दन ।
 चिरजीवी पुरा विष्णुक्षितिभ्या परिपालितः ॥४८॥
 अधुना स क्षिति विष्णुमवजाय दुरासद. ।
 वाणस्य वचनाद् भौमो ब्रह्माण पर्यतोपयत् ॥४९॥

उस समय में जो भूमि के भार स्वरूप थे ऐसे अनेक दैत्यो को निहत्त कर दिया था । फिर परम प्रसन्न होकर क्रीडा करते हुए उन्होंने द्वारका में निवास किया था । ४३ । इसके अनन्तर इन्द्रदेव अपने गणों के सहित नरक के द्वारा अत्यन्त उत्पीडित होकर वहाँ पर समागत हुआ और द्वारका में भगवान् के दर्शन के लिये ही उपस्थित हुआ था । ४४ । वहाँ पर गमन करके लोगों के द्वारा बन्धित प्रभु कृष्ण का परिष्वजन करके उनके द्वारा पूजित होते हुए वह मृगण के आसन पर विराजमान हो गया था ॥ ४५ ॥ वहाँ पर उस इन्द्रदेव ने भगवान् हरि के लिये नरक का जो विचेष्टित था वह सब कह दिया था । जो पूर्व में हुआ था और इस समय में हो रहा है वह सभी इन्द्र ने निवेदन कर दिया था । ४६ । इन्द्र ने कहा—हे महाबाहो ! हे श्रीकृष्ण ! जिस प्रयोजन के लिये मैं यहाँ आया हूँ उसका आप श्रवण कीजिए । मैं वह सभी कुछ निवेदन करूँगा । इसमें आप कुछ भी शङ्का न करिए । ४७ । एक भूमि का पुत्र नरक नाम वाला असुर है जो सुरों का मर्दन करने वाला है । वह चिरजीवी है और पहिले भगवान् विष्णु और क्षिति के द्वारा पालित हुआ है । ४८ । इस समय में वह दुरासद वह क्षिति और भगवान् विष्णु की अवज्ञा करके वाण के वचन से उमने तप के द्वारा ब्रह्माजी को परि-
 तुष्ट कर लिया है । ४९ ।

ब्रह्मत स वरान् सख्वाह्यतीवाभूत् प्रदर्शितः ।
 माधव पृथिवी वापि सस्मार न कदाचन ॥५०॥
 पूर्वमासीत् स धर्मात्मा ह्याराधितसुरो व्रती ।
 अधुना वाधते सर्वानासुर भावमाश्रितः ॥५१॥
 अदिते कुण्डले मोहाज्जहाराभृतसम्भवे ।
 देवानृषीन् वाधमानो विप्राणामप्रिये रतः ॥५२॥
 मा चापि वाधते नित्य कामगामी दुरासदः ।
 जैता तु सुरदेत्यानामवध्य सर्वदेहिनाम् ॥५३॥
 तव चाप्यन्तरप्रेक्षी त पाप जहि भूतये ।
 त्वदर्थं सर्वदेवैर्घा देवगन्धर्वकन्यका ॥५४॥
 पुरा पर्वतमुख्ये तु हिमवत्यवतारिता ।
 चतुर्दश सहस्राणि सहस्रे द्वे शताधिके ॥५५॥
 ता सर्वा कन्यका पापः प्रमह्य वरदर्शितः ।
 जहार स दुराधर्षो ह्यग्रीवसहायवान् ॥५६॥

ब्रह्माजी ने वरदानों को प्राप्त करके वह अत्यन्त ही
 घमण्डी हो गया है। वह इस समय में ऐसा दर्शित हो गया है कि न तो
 उसने माधव का और न पृथ्वी का कभी भी स्मरण किया है। ५०।
 पूर्व में वह धर्मात्मा था सुरों की आराधना की थी और वह व्रतधारी
 था किन्तु इस समय में वह आसुर भाव का आश्रय वाला होकर सबको
 बाधा दिया करता है। ५१। अदिति के अमृत से समुद्रमृत दोनों कुण्डलों
 का मोह से उसने हरण कर लिया था और देवगणों को और ऋषियों
 को बाधा देना हुआ। वरों के अप्रिय कर्म में वह रत रहता है। ५२।
 कामगामी दुरासद वह मुझको भी नित्य बाधा देता है। वह सुरों का
 और दैत्यों का जीतने वाला है तथा समस्त देहधारियों से वध करने के
 धर्मोन्मत्त है अर्थात् कोई भी देहधारी उसका वध करने में समर्थ नहीं
 है। ५३। आपका भी वह अन्तर प्रेक्षी है। उस पापी को भूति के लिए

चघ कीजिए । मव देवगणो न आपके लिये दबो और गन्धर्वों की कन्य-
पाएँ पहिल मुट्य पवन पर हिमालय म अबतारित की थी । वे सोलह
सहस्र हैं । वरदान के घमण्ड मे भरे हुए प पी उनन के सभी कन्यपाएँ
चलपूर्वक हरण करली हैं । वन दुग्धप हैं और हयग्रीव की मशायना वाला
है ॥ ५४—५६ ॥

सागरे यानि रत्नानि पृथिव्या च त्रिविष्टपे ।
नानि सर्वाणि सहस्र प्रमथ्य सुरमानुपान् ॥५७
सीरे लौहित्यतीर्थस्य सोऽकरोन्मणिपवतम् ।
नन्मिन गिरी पुरी रम्या कारयित्वाऽलकाहवयाम् ॥५८
तां सर्वां वासयामास देवगन्धर्वयोपित ।
एकवेणीधरा मर्वी मम्भागपार्वजिता ॥५९
त्वामेव ता प्रताक्षन्त सनाथा कुह कृष्ण ता ।
यावदागच्छन्ति पुर भवतो नारदो मुनि ॥६०
तावन्न मैथुन यन भीम त्व सकरिष्यसि ।
इति ता सनय चक्रुर्नरकस्य दुरात्मन ॥६१
नारदश्च तदायात प्राग्ज्जातिपपुर प्रति ।
यदा त्व नरक हन्तु गन्ता तत्पुरमुत्तमम् ॥६२
तस्मात् त्व पापकर्माणि नरक नरकोपमम् ।
जहि देवमनुष्याणा कण्टक त दुरासदम् ॥६३

सागर म जो भी रत्न हैं—गृध्रिवी जीर स्वय म जा हैं उन
सबको महत करव और सुरा तथा मनुष्या का प्रणथन करके उमन
लौहित्य तीर्थ के तट पर मणि पवत प्रताया है । उम पवत म अलका
नाम वाली रम्य पुरी की रचन कराकर देवा और गन्धर्वों की
नारियो का वहाँ पर ही उमने बसा दिया है । वे मव एक वेणी की
धारण करने वाली हैं और सम्मोय से वज्रित हैं ॥ ५७—५९ ॥ वे मव
आपकी ही प्रतीक्षा कर रही हैं । हे ऋष ! अब उन सबको सनाथ

करिए । जब तब आपके पुर में नारद मुनि आगमन करे छ भौम । तब तक उनके साथ मैथुन करने का तुम प्रयत्न ही करोगे । यही उ हाने दुरात्मा नरक के साथ समय किया था । जिस समय में नारद मुनि उस प्राग्ज्योतिष पुर के प्रति आयात होंगे उसी समय में आप उसके उत्तम पुर में नरक के हनन करने के लिये जमन करेगे ॥ ६०—६१ ॥ इस कारण से उस पाप कम करने वाले नरक के ही सहस्र नरक को मार दीजिए क्योंकि वह बहुत दुरासद है और देखें तथा मनुष्यों का बन्धक है ॥ ६२ ॥

वधात् तस्य क्षिति दधी पुनशाक् न चाप्स्यति ।
स्वयमेव वध तस्य देवेभ्यो यदयाचत ॥६४
सम्मान् त जहि पापिष्ठ नरक पापपूरुषम् ।
स्त्रीरत्नान्यपि रत्नानि त निहत्य समुद्धर ॥६५
इत्युक्तो जगता नाथ शक्रंण सुमहात्मना ।
प्रतिजज्ञे क्षितिसुत हन्तुं प्रति तदैव हि ॥६६
पतिज्ञाय वध तस्य शक्रंण सह वैशव ।
तदैव यात्रामकरोत् प्राग्ज्योतिषपुर प्रति ॥६७
आरुह्य गरुड कृष्ण सत्यभामाद्वितीयक ।
प्राग्ज्योतिषमुखोऽगच्छद्द्वामवस्त्रिदिव ययो ॥६८
दिवमाक्रम्य गच्छन्तो कृष्णशक्नी महाद्युतो ।
पादवा दृष्टुस्तत्र सूर्याधिन्द्रमसो यथा ॥६९
सस्तूपमानी गन्धर्वदेवैरप्सरसा गण ।
कृष्ण शक्र क्षणादेव गतौ च तावदृश्यताम् ॥७०

उमके वध कर देने से देवी पृथिवी पुत्र के शोक को नहीं प्राप्त होगी क्योंकि उमन स्वयं ही उसके वध करने के लिये देवताओं से प्राथना की थी । ६४ । इस कारण से उस महान् पापी पाप पुर में नरक का वध करिये । उमका हनन करके स्त्री रत्नों को तथा अथ रत्नों

उद्धार कीजिये अर्थात् इन सबको वहाँ से ले आइये • ६५ । महान्
 आत्मा वाले इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से जगतों के नाथ से कहा गया तो
 उन्होंने पृथ्वी के पुत्र नरक के हनन करने के लिये प्रतिज्ञा की थी और
 उसी समय में मार देने का वचन दिया था । ६६ । इन्द्र के साथ भग-
 वान् केशव उसके वध करने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने उसी समय में
 प्राग्ज्योतिष पुर की ओर यात्रा करदी थी । ६७ । भगवान् कृष्ण ने
 गरुड पर ममारोहण किया था और उनके साथ दूसरी सत्यभामा भी थी
 वे प्राग्ज्योतिष की ओर मुख करके चले गये थे और इन्द्रदेव स्वर्ग में
 गमन कर गये थे । ६८ । दिवगोच का आक्रमण करके गमन करत
 हुये इन्द्र और श्री कृष्ण को जो महती श्रुति में सम्पन्न थे पादवी ने
 वहाँ पर सूर्य और चन्द्र के समान ही इन दोनों को देखा था । ६९ । वे
 दोनों गन्धर्व—देव और अप्सराओं के गणों के द्वारा मस्तवन किये हुये
 थे । श्री कृष्ण और इन्द्र क्षण भर में ही आकाश में अदृश्य हो गये
 थे ॥७०॥

तत क्षणेन गरुडेनाससाद जगत्पति ।
 पुर प्राग्ज्योतिष रम्य नरकेण वशीकृतम् ॥७१
 स दुर्ग मौरवं पाशै पट्सहस्रं भयकरं ।
 क्षुरान्तर्बद्धित पाशैर्वै मृत्युपाशैरिवोच्छ्रितम् ॥७२
 निगच्छन्त पुरान् तस्मात् नारद च ददर्श स ।
 स तु देवमुनि श्रीमान् यदागान्तरक प्रति ॥७३
 तदा प्राग्ज्योतिष गत्वा सत्कृतस्तेन नारद ।
 सगमे समय प्रोचे नरकाय स योषिताम् ॥७४
 प्रवर्ततेऽद्य चैत्रस्य शुक्लपक्षस्य पचमी ।
 नवन्या तु घरापुत्र प्राप्नोति महदापदम् ॥७५
 तदा यदि चतुदश्या सुस्नात्ता योषितस्त्विव ।
 सुरतेषु त्वया तत्र प्रयाक्तव्या यथासुखम् ॥७६

नादरस्य वच श्रुत्वा नरकी भयमोहित ।

आसार च प्रसार च नगरे सन्त्यवेदयन् ॥७७॥

फिर क्षण भर में ही जगत् के स्वामी गरुड के द्वारा नरक से वशीकृत परम रम्य प्राग्ज्योतिष पुर में प्राप्त हो गये थे अर्थात् वहाँ पर पहुँच गये थे । ७१ । वह दुर्ग छै सहस्र भयङ्कर मौरव पाशों से और क्षुरान्तों से घेड़ित था और पार्श्व में मृत्यु पाशों के समान उन्छित था । ७२ । उन्होंने उस पुर से उसी समय में निकलते हुये नारद को देखा था । वह देव मुनि श्रीमान् अत्र नरक के प्रति गये थे । ७३ । उस समय में प्राग्ज्योतिष में गमन करके वे नारद मुनि उसके द्वारा सत्कार को प्राप्त हुये थे । उन्होंने नरक में यो गतों के साथ सङ्गम करने में उस समय कह दिया । ७४ । आज चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी प्रवृत्त है । हे धरा पुत्र ! नवमी तिथि में तुम महान् आपदाओं को प्राप्त करते हो । ७५ । उस समय में षतदुष्टी भ यदि ये योषिर्न सुस्नात हो उसी समय में तुमको सुख पूर्वक सुरता में प्रयुक्त करनी चाहिये । ७६ । देवर्षि नारदजी के इस वचन का श्रवण करके नरक भय से माहित हो गया था । उसने आसार और प्रसार नगर में निवेदित कर दिया था ॥७७॥

रक्षिभी रक्षित राज्य रक्षित च समन्तत ।

भयहर्षयुतो भौम समय समवैक्षत ॥७८॥

तस्मिन्नवसरे प्राप कृष्ण प्राग्ज्योतिष पुरम् ।

प्रथम पश्चिम द्वारमासाद्य गरुडध्वज ॥७९॥

पाशाना पटसहस्राणि क्षुरान् सञ्छिद्य नैवधा ।

जघान स गुरु दैत्यं सानुग च सवान्धवम् ॥८०॥

पट्सहस्रा महावीरा दानवा द्वारि सस्थिता ।

हताश्चक्रैण हरिणा तदैव गुरुणा सह ॥८१॥

मूर्ध्नि हत्वा सहस्राणि पुत्रास्तस्यापराश्च पद ।

जघान चक्रेण तदा खण्डशोऽन्याश्च दानवान् ॥८२॥

ततोऽनेकशिनासघानतिक्रम्य जनार्दन ।

सगण सानुग चैव निमुन्द्र समपोययन् ॥८३॥

एको यो योघयेद्देवान् महम् वत्सुरान् पुरा ।

शक्र च समतिक्रम्य महावीरपराक्रम ॥८४॥

भीम (नरक) ने गल्लसो में मुरझित नजार को मर्त्री और मै राज्य को रक्षित कर दिया था । और अथ तथा हर्ष में दुष्यन् नरक में समय की प्रतीक्षा की थी । उस अवसर में भगवान्, श्री कृष्ण प्राग्ज्योतिष नगर में प्राप्त हो गये थे । प्रथम गन्धर्व भगवान्, पश्चिम द्वार पर प्राप्त हुए थे । ८२ । छै महत्स पाशों व क्षुरों का अनेक प्रकार से घसी भीत छदन करके उन्होंने गणों के साथ गीर बांधवों के सहित मृद दैत्य का हनन कर दिया था । ८० । छै महत्स महान्, वीर दानव द्वार पर मथ्यित थे भगवान्, हरि न उमो समय में मृद के साथ ही चक्र में निहित कर दिये थे । ८१ । मृद को मार कर क्रूर जो छै महत्स उनके पुत्र थे उस समय उनकी चक्र से मार गिराया था और अन्य दानवों को भी खण्ड खण्ड कर दिया था ॥८२॥ इनके उपरान्त वहाँ पर अनेक जो शिलाश्रु के भय थे उन सब का अतिक्रमण करके भगवान् जनार्दन ने गणों के सहित और अनुचरो से मधुन निमुन्द्र का मार गिराया था । ८३ । जिसने एक ही न पहिले महत्स वषे तक देवा में घुड़ किया था और महान् पगक्रम वाला वीर था उसने इन्द्र पर आक्रमण किया था ॥ ८४ ॥

त जघान ह्यग्रीव समतिक्रम्य केशव ।

मध्ये लौहित्यसज्ञस्य भगवान् देवकीसुत ॥८५॥

औदकाया विम्पाक्ष सुन्द हत्वा महाबल ।

तन पचजन वीर जघान परमेश्वर ॥८६॥

एतान् हत्वा महाबायान् महावीरान्, दुरामदान् ।

आमगाद जगन्नाथ पुरं प्राग्ज्योतिषास्त्वयम् ॥८७

वियत्स्थोर्देवतं सर्वैर्नारदेन महात्मना ।

जयशब्दं स्तूयमानं प्रविवेश यथेश्वरः ॥८८

श्रिया युक्ता दीप्यमाना प्रकाशाट्टालभृषिताम् ।

म मेने नगरी विष्णुं विमिन्द्रस्यामरावती ॥८९

तत्र युद्धं महद्भूतं नानाप्रहरणोद्यमम् ।

भीष्मणा प्राप्तजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ।

यथा देवासरं युद्धं तथैव समपद्यत ॥९०

ततः शाङ्गं विनिर्मुक्तं वर्णैस्तान् दानवान् बहून् ।

निजघान महाबाहुर्गोहृदस्यो जनार्दन ॥९१

अष्टौ शतसहस्राणि अष्टौ शतशतानि च ।

हत्वासुरान् महाबाहुर्नरकं तं समासदन् ॥९२

भगवान् केजव ने आक्रमण करके उस हयघ्रीव का हनन किया था । महान् बलवान् भगवान् देवकी के पुत्र ने मध्य में लीहृत्य नामक की ओदका में विरूपाक्ष और सुन्द का हनन किया था । इसके अनन्तर फिर परमेश्वर ने वीर पञ्चजन को मारा था ॥८५—८६॥ इन महान् शरीरो वाले तथा महान् वीर्य वाले दुरासदों का वध करके फिर जगत् के नाथ प्राग्ज्योतिष पुर में प्राप्त हो गये थे ॥८७॥ आकाश में स्थित देवों के द्वारा तथा महात्मा नारद के द्वारा जय—जयकार की ध्वनि से मस्तबन किये गये ईश्वर ने प्रवेश किया था ॥८८॥ उन भगवान् विष्णु ने श्री से समन्वित—दीप्यमान—प्रकाश अट्टालिकाओं से विभूषित उस नगरी को ऐसा ही समझा था कि क्या यह इन्द्र की अमरावती है ॥८९॥ वहाँ पर महान् युद्ध हुआ था जिसमें अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र थे । वह युद्ध ऐसा भयङ्कर हुआ था जो डरपोकों को भय देने वाला था और शूरो के हर्ष को बढ़ाने वाला था । जैसा कि देवामुर युद्ध हुआ था ठीक उसी प्रकार का यह युद्ध भी हुआ था

॥ ६० ॥ फिर गरुड पर विराजमान महान् बाहुओं वाले जनार्दन प्रभु ने अपने 'शाङ्ग' नामक घनपु मे छोटे गये बाणों के द्वारा उन बहुत—से दानवों का हनन कर दिया था । ६१ । महान् बाहुओं मे समन्वित प्रभु आठ सौ सहस्र और आठसौ अमुरों को मारकर नरक के समीप में पहुँच गये थे । ६२ ।

तत श्रुत्वा स नरक पतितानमुरान् बहून् ।
 दृष्ट्वा कृष्ण महाबाहु गरुडस्य महाबलम् ॥ ६३
 वसिष्ठशाप मस्मार समय माघवस्य च ।
 नारदन्य वचश्चापि वरच्छिद्र तथा विधे ॥ ६४
 स प्राप्तकालश्च तदा केशवेन ममागतः ।
 युद्धमेव पर मेने स्मरन् बाणवचस्तदा ॥ ६५
 स वाचन समारुह्य रथ वज्रध्वज वरम् ।
 लोहचक्राष्टसयुक्तां त्रिनवप्रमित रथम् ॥ ६६
 युवनमश्वमहर्षन्तु वज्रध्वजविराजितम् ।
 नानाप्रहरणोपेत बहुतूणीरसयुतम् ।
 अगच्छन् समारायाशु नरक पृथिवीमुतः ॥ ६७
 स गच्छन् समारायाशु मानुषं भावमचितम् ।
 निन्द्य तथामुर मेने स्मरन् पूर्ववचो हरे ॥ ६८

इसके अनन्तर उस नरक में बहुत से अमुरों को मृत हुए मुनिकर गरुड पर स्थित महा बलवान् महाबाहु भगवान् कृष्ण का दर्शन किया था । ६३ । उसने वसिष्ठ मुनि के शाप का तथा माघव के समय का स्मरण किया था । उसने देवर्षि नारद जी के वचन और विद्याता के वर के छेदन का भी स्मरण किया था । ६४ । उस समय में काल के प्राप्त हो जाने वाले ने भगवान् के भावने समागमन किया था । उस समय में बाण के वचन का स्मरण करते हुए उसने युद्ध करना ही परम वृत्तव्य मान लिया था ॥ ६५ ॥ वह सुवर्ण के रथ पर समारुद्ध

हुआ था जो बड़ की ध्वजा वाला और श्रेष्ठ था । वह रथ मोढ़े के बाट चक्रों (पहियों) में युक्त था तथा त्रिनयन प्रमित था । उम रथ में एक हजार अश्व थे और बड़ की ध्वजा में गुणोभिता था उम रथ में अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र विद्यमान थे तथा बहुत नगीर भी रक्ते हुए थे । ऐसे रथ में बैठार पृथिवी का पुत्र नरक गमन करने के निम्न लीला हुआ चला गया था ॥६६—६७॥ वह जब युद्ध के लिये जा रहा था तो उसने शीघ्र ही मनु भाव को स्मरि दिया था और हरिके पूर्व वचन का स्मरण करते हुए उसने समुद्र भाव को निन्दा अर्थात् बुरा मान लिया था ॥६८॥

क्षणान् कृष्ण रा ददर्शं गरुडोपरि सस्थितम् ।

शखचक्रगदाशाङ्गं वरामिधरमच्युतम् ॥६९॥

किरीटकुण्डलयुत श्रीवत्सवलस हरिम् ।

कौस्तुभोद्भामितोरस्क पोताम्बरधर परम् ॥७०॥

स तेन युयुधे वीरो विष्णुना प्रभविष्णुना ।

प्राग्ज्योतिषाधिपो भौमो नरक पृथिवीसुत ॥७१॥

स युध्यत कृष्णनिकटे कालिका कालिकोपमाम् ।

रक्तास्यनयना दीर्घा खड्गशक्तिधरा तदा ॥७२॥

अपश्यज्जगता धात्री कामाख्यामपि मोहिनीम् ॥७३॥

स विस्मितस्तदा भीतस्ता दृष्ट्वा जगता प्रसूम् ।

योद्धव्यमित्येव तदा युयुधे नरकोऽमुर ॥७४॥

तेन सार्धं तदा कृष्ण कृत्वा सुमहद्भुतम् ।

युद्धं यादृक् पुरा भूत न देवे न च मानुषे ॥७५॥

क्षण भर में ही उसने भगवान् कृष्ण का गरुड पर विराजमान

हृष्ट का दर्शन प्राप्त किया था । भगवान् कृष्ण शख—चक्र—गदा—

शाङ्ग धनुष—वर और असि (खड्ग) को धारण किये हुये थे । अच्युत

थे । ६९। वे किरीट और कुण्डलो को धारण करने वाले थे और उन

के वक्ष स्थल में श्री वत्स का चिह्न था । कौस्तुभ मणि में समुद्भासित

वक्ष स्थल मे युन—पीताम्बर घागे परम हृन् का उगने दर्शन किया था । १०० । उन प्रभा विष्णु भगवान् विष्णु के नाथ उस बीर ने मुद्ध किया था । वह प्राग्ज्योतिष नगर का स्वामी पृथिवी का पुत्र भीम नर था । उसने श्रीकृष्ण के निकट मे मुद्ध करने हूये कलिका के समान कालिका को देखा था जिसके बाल नेत्र जोर मुख था—विनायक काय थी—वह उस समय मे खड्ग धीर शक्ति को धारण किये हुए थी । १०१ । १०२ । उसने छात्री और मांहीनी कामाट्या का भी वहाँ दर्शन किया था । १०३ । उस समय मे जगत् को प्रमूढ करने वाली उस देवी का दर्शन करके वह भय मे भीन होकर बहूँ ही विम्बित हो गया था । मुद्ध तो करना ही है अतएव उस समय मे नरका मुर ने मुद्ध किया था । १०४ । उस अवसर पर भगवान् कृष्ण ने उसके नाथ मुमहान् वदधुन मुद्ध किया था । जैसा मुद्ध पहिल देवी मे और मनुष्यों मे कभी भी नहीं हुआ था ॥ १०५ ॥

ततस्तेनाय भीमेन युद्धकेलि म मावव ।

चिर कृत्वा जघानाय देवेन्द्र प्रतिहपंयन् ॥१०६

सुदर्शनेन चक्रेण मध्यदेशे तदा हरि ।

द्विधा चिच्छेद नरकं खण्डिनोऽभ्यपतद् भुवि ॥१०७

विभक्ततच्छरीरं तु भूमा निपतितं तदा ।

विराजन्ते वर्जभिन्नो यथा गैरिकपर्वतः ॥१०८

पतिते तनये देवी पृथ्वी दृष्ट्वा शरीरकम् ।

शोकवेगं तदा सेहे ज्ञात्वा काल तदागतम् ॥१०९

अदिते कुण्डलयुग स्वयमादाय काश्यपी ।

उपातिष्ठत गोविन्दं वचन चेदमब्रवीत् ॥११०

त्वया वराहरूपेण यदाहं चोद्धृता दुरा ।

तदा त्वद्गालसंस्पर्शान् पुत्रो मे नरकः स्थितः ।

सोज्य त्वया पालितश्च पातितश्चाधुना सुतः ॥१११

गृहाण कुण्डले चेमे अदिते भवंकामदे ।

सन्तति चास्य गोविन्द प्रतिपानय नित्यदा ॥११२

इसके अनन्तर ब्रह्म भीम के साथ भगवान् माधव ने युद्ध की क्रीडा को चिरवाले पयन्त करके इसके उपरान्त देवेन्द्र को हर्षित करते हुए प्रभु ने उसका हनन कर दिया था । १०६ । उस समय में भगवान् हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा मध्य देश में दो भागों में छेद कर मार गिराया था । वह नरक छण्ड-छण्ड होकर भूमि पर गिर गया था । वह खण्ड ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे वज्र में भिन्न हुआ गैरिष पर्वत होवे । १०८ । तनय के गिर जाने पर देवी पृथिवी ने उसने पतित शरीर का अवलोकन करके उस समय में शोक के बग को सहन कर लिया था क्योंकि उसने ममागत काल का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । १०९ । काष्ठापी अर्धान् पृथ्वी अदिति के दोनों कुण्डलों को लेकर स्वयं उपस्थित हुई थी और भगवान् गोविन्द से यह वचन कहा था— ११० । पृथिवी ने कहा—आपने वराह के रूप से पहिले मेरा उद्धार किया था । उसी समय में आपके गान के स्पर्श से यह नरक मेरा पुत्र गर्भ में स्थित हुआ था । वह आपके ही द्वारा प्रतिपासित हुआ था और अब वह मुत्त आपने ही मार गिराया है । ११८ । अब आप अदिति के इन दोनों कुण्डलों को ग्रहण कीजिए जो कि सब कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं और अब आप इसकी सन्तति का हे गोविन्द ! नित्य ही प्रतिपालन कीजिए । ११२ ।

भारावतरणे देवि नरकस्य वध पुरा ।

त्वयैव प्रार्थितो यस्मात् तेनासी निहतो मया ॥११३

पालयिष्येऽस्य सन्तानं देवि त्वद्वचनादहम् ।

प्राग्ज्योतिषेऽभिवेदयामि नम्रार भगदत्तकम् ॥११४

एवमुक्त्वा महाबाहुर्भगवान् मधुसूदन ।

अन्तःपुरं विवेशाथ नरकस्य घनालयम् ॥११५

स तत्र ददृशे वीरो रत्नानि विविधानि च ।
 राशीभूतानि शुद्धानि पर्वतानिव राजन ॥११६॥
 मुक्तामणिप्रवालानां वैदूर्यस्य च पर्वतम् ।
 तथा रजतकूटानि वज्रकूटानि माघव ॥११७॥
 सुवर्णसाचयान् स्वप्नदडान्, रत्नमयध्वजान् ।
 बाहूनानि विचित्राणि यानानि शयनानि च ॥११८॥
 खचितानि स्वर्णरत्नैर्महार्हाणि महान्ति च ।
 यद् यद् दृष्टं च यावच्च धनं रत्नं मणिस्तथा ॥११९॥

श्री भगवान् न कहे—हे देवि ! पहिले मार के अपहरण करने के लिये आपन ही नरक के वध की प्रायना की थी । इमीतिथ में इसका वध किया है ॥११३॥ हे देवि ! आपके वचन में मैं इसकी सन्तान का प्रतिपालन करूँगा इसके नाती भगदत्त का मैं प्राग्ज्योतिष में अभिषेक कर दूँगा ॥११४॥ इस तरह से बहकर महाबाहु भगवान्, नद्युमूदन प्रभु ने अन्त पुर में प्रवेश किया था जा कि नरक के धन का आलय था ॥११५॥ वहाँ पर उन वीर ने अनेक प्रकार के रत्न देखे थे । वे सब शुद्ध रत्न समुदाय में एकत्रित हो रहे थे जैसे कोई पर्वत शोभायमान होवे । ११६ । वहाँ पर मुक्तामणि और प्रवाला का तथा वैदूर्यमणिका एक पर्वत—सा ही उभर रहा था तथा रत्नकूट और वज्र कूट भी माघव प्रभु ने देखे थे । ११७ । सुवर्ण के सञ्चित ढेरो का—स्वप्नदण्डों को और रत्न से परिपूर्ण ध्वजा—विचित्र बाहना को—यानों को और शयनों का देखा था । ११८ । ये सभी स्वर्ण और रत्नों से संचित थे—य महान् मूल्य वाले और बहुव बड़े थे । जो—जो भी देखा और जितना धन—रत्न और मणियाँ थी उस प्रकार की और उतनी नरक आलय के अतिरिक्त अन्य स्थान में कहीं भी नहीं देखे गये थे ॥११९॥

भुवि ताड्यं च नो दृष्टमन्यत्र नरकाजगत् ।

न कुबेरस्य नेन्द्रस्य न यमस्याप्यपा पतेः ॥१२०
 तावन्ति थनरत्नान यावन्ति नरकालवे ।
 केशवोऽप्यथ तत्रैव नारदेन च सङ्गत ॥१२१
 अवेक्ष्यान्त पुरघन सार सात्तर तत ।
 तेषां समाददे ग्राह्य प्रभूत परवीरहा ॥१२२
 या दत्ता वंष्णकीशक्तिर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 हत्वा भीम तु ता शक्ति जगृहे देवकीसुत ॥१२३
 पृथिव्या नारदेनैव सहित. केशवस्तदा ।
 भगदत्त भीमसुत प्राग्ज्योतिषपुरोत्तमे ॥१२४
 अभिपिच्य तदा भूत पुरमध्ये न्यवेशयत् ।
 अभिपिबत तु त दृष्ट्वा भगदत्त तदा क्षिति ॥१२५
 नप्तुरर्थेऽथ ता शक्ति केशव समयाचत ।
 केशवोऽपि क्षितेर्वाक्यान्नारदानुमतेन च ।
 ता शक्ति भगदत्ताय सुप्रोतमनसा ददा ॥१२६

जितना धन और जितने रत्न नरक के आसन्न में थे वैसे और
 उतने कुबेर—इन्द्र—यम और वरुण के यहाँ पर भी नहीं थे । भगवान्
 केशव यहाँ पर ही दक्षिण नारद के साथ सङ्गत हुये थे । उस अन्त. पुर
 के धन का अवेशन करके जो मार तथा सारतः था पर वीरों के हनन
 करने वाले ने ग्रहण करने के योग्य बहुत उनमें से ले लिया था । १२० ।
 १२१ । १२२ । प्रभु विष्णु भगवान् विष्णु ने जो वैष्णवी शक्ति दी थी
 उमकी भीम का हनन करके देवकी सुत ने शक्ति की वापिस ग्रहण कर
 लिया था । १२३ । पृथिवी देवी न देवर्षि नारद के सहित उस अवसर
 पर भगवान् के शव ने भगदत्त भीम के मुन की प्राग्ज्योतिष उत्तम पुर
 में अभिपिबत करके उस पुर के मध्य में निवेशित कर दिया था । क्षिति
 ने उग भगदत्त अभिपिबत लिया हुआ देवहर अपने नत्ता (नाती)
 के लिये भगवान् केशव ने उगी शक्ति की याचना की थी ।

भगवान् केशव ने भी नारदजी की अनुमति प्राप्त करके क्षिति के कहने में मुप्रसन्न मन में उग्र प्रविष्ट का भगदत्त क लिये द दिया था ॥१२४—१२६॥

यच्छत्र वरुण जित्वा काचनसूविसाजकम् ।
ममानयन् पुरा भोमस्तच्छत्र हरिराददे ॥१२७
अष्टभारसुवर्णाणि यत्साम्भ्रति चान्वहम् ।
यन् क्रोशमात्रविस्तीर्णमध्ययोजनमुच्छ्रितम् ॥१२८
रत्नोत्तमानि सर्वाणि चतुर्दन्तास्तथा गजान् ।
चतुर्दशसहस्राणि पूजिता प्रमदास्तथा ॥१२९
द्वारका प्रति दत्त्योर्ध्ववाहयामास केशव ॥१३०
या देवकन्यका पूर्वं नरकेण हृता बलात् ।
तासा कृत्वा हृषीकेशो व्रणोवन्धविमोक्षणम् ॥१३१
वामोभिर्भूषणदिव्यस्ता भक्तृत्य मुहुर्मुहुः ।
आरोप्य च विमाने तु रक्षिभिवर्लिभर्हृद ॥१३२
नारदाधिष्ठिता मवा द्वारका प्रत्यवाहयत् ।
य कृत सुरवन्यार्थे भामन मणिपयत ॥१३३

जिम छत्र का वरुण का पराजित करके भाम पाहल से आया था जा कि काञ्चन का अवन करने वाल नाम से सयुक्त था उम छत्र को भगवान् हरि ने ल लिये था ॥१२७॥ जो आठ भार सुवर्ण का प्रतिदिन सस्रवित किया करता था जो एक कास तक विस्तीर्ण और आधे योजन तक ऊँचा था ॥ १२८ ॥ केशव भगवान् ने समस्त उत्तम रत्ना का तथा चार दाँतों वाले गजों का—चादह हजार पूजित प्रमदाया का दत्तवा के समुदायो के द्वारा द्वारका के ग्राम भेज दिया था । ॥ १२९—१३० ॥ पूर्व में जा देव कन्याएँ नरक के द्वारा लायी गयी थी और बलपूर्वक उनका हरण किया गया था उनको लिये हृषीकेश भगवान् ने व्रणोवन्ध विमोक्षण किया था । उनको अनक वस्त्र और

दिव्य मूपगा ने मस्तकन किया था । उनको विमान में बिठाकर मुहूर्त और बली रक्षणों से रक्षित करके वे सब नारद मुनि से अधिष्ठित होनी हुई द्वारका की ओर भेज दी गयी थी । जो मुर कन्याओं के लिए भूमि मुन न मणियों का पर्वत बनाया था ॥१३१—१३२॥

मणिरत्नोद्यमपूर्णो दिवाकरसमप्रभः ।

उत्पादय त जगन्न यत्तार्क्ष्यपृष्ठे न्यधापयत् ॥१३४

तथैव वारण छत्र गरुडोपरि माधवः ।

आरोप्य सत्यया सार्धमासीन सुमना हरि ॥१३५

भगदत्त समाभाष्य पृथिवी च जगत्पति ।

प्रत्यये द्वारका वागे वियन्मार्गेण वै द्रुतम् ॥१३६

मुपण वाचनम्रायिच्छत्र ममणिपर्वतम् ।

केशव सत्यया मार्गं हेलया ग्रं यहन ययौ ॥१३७

क्षणं द्वारका प्राप्य केशव परवीरहा ।

मुद च लेभे सकलैर्वाग्धवैश्च तथा गणैः ॥१३८

ब = पर्वत मणियों और रत्नों के समूह से परिपूर्ण था और सम

एव काली महामाया कामिकाया जगन्मयी ।
 विष्णु च जगता नाथ पद्मपर्जन हरिम् ॥१३६
 जगत्कारणकर्तार ज्ञानगम्य जगन्मयम् ।
 सन्मोहयत्येव तथा हानुरागविगमवान् ॥१४०
 अनुगृह्णाति मित्राणि ह्यमित्राणि निहन्ति च ।
 नारायण मूढा रमन्त द्वन्द्वेनापि च मुह्यते ॥१४१
 इति व कथितं विप्रा यथागून्मरकोऽमुर ।
 यथा च वरलाभोऽभूद यथा चाम्य विचेष्टितम् ॥१४२
 आराधिता यथा ब्रह्मा बाणबुद्ध्याय भौमिना ।
 किमन्यदुचितं वाग्मि तद्व्यवन्तु द्विजोत्तमा ॥१४३

इमी रीति मे महामाया—जगन्मयी कालिका नाम वाली जगता के नाथ—परावर के पति हरि भगवान् विष्णु का जा जगत के कारण। व करने वाला है—ज्ञान के ही द्वारा ज्ञान के योग है और जगत् से परिपूर्ण है उगी भीति सम्माहित किया करती है जा अनुराग और विराग दाना ही मे समन्वित है ॥ १३६—१४० ॥ जा मित्र है उन पर अनुग्रह दिया करने हैं और जा गन्तु है उनका हनन किया करते हैं । ये नारायण मे गूढ़ ज्ञान समझ गया करत है । और द्वन्द्वा मे भी मोहित होत है ॥ १४१ ॥ हे विप्रा ! यह आपका सामन मन कह दिया है जैन नरक अमुर हुआ था । और जिस तरह से वरदान का लाभ उसका हुआ था । और जैसा भा कुछ उसका विचेष्टित अपात कृत्य था ॥ १४२ ॥ कण की बुद्धि मे भीमी ने जिस तरह से ब्रह्माजी का आराधना की था । हे द्विजोत्तमा ! अब अब बचन करने के नियम क्या उचित है । हे द्विजोत्तमा ! अब अब आप साम मृगे बन साथ ॥१४३॥



॥ नारद-आगमन वर्णन ॥

कथं गिरिसुता काली वभूव जगता प्रसूः ।
 दाक्षायणी त्यक्ततनु, कथमाप हर पतिम् ॥१॥
 कथमर्धशरीर सा जहार च पिनाकिन ।
 एतन्न पृच्छता सम्यक् वयसस्व महामते ॥२॥
 शृणुध्व मुनिशार्दूलो यथा दाक्षायणी सती ।
 भूता गिरिसुता पूर्वं यथार्धमहरत्तनुम् ॥३॥
 यदाऽत्यजत्तनु देवी पूर्वं दाक्षायणी सती ।
 तदैव मनसागच्छन् मेनका हिमवद्गिरिम् ॥४॥
 यदा हरेण सहिता दक्षकन्या हिमाचले ।
 चित्रौघं च तदा तस्या मेनकाऽभृद् हितैपिणी ॥५॥
 तस्या सुता स्यामिति च आघाय मनसि द्विजोः ।
 त्यक्तप्राणा तदा देवी भूता हिमवत सुता ॥६॥
 यदा दाक्षायणी प्राणान् दक्षकोपाज्जहौ पुरा ।
 तदैव मेनका देवी आरिराधयिष शिवाम् ॥७॥

ऋषिजो ने कहा—गिरि की पुत्री काली कैसे जगतों को प्रसूत करने वाली हुई थी । दाक्षायणी अर्थात् दक्ष की पुत्री ने तनु का त्याग करके हर को फिर अपना पति किस प्रकार में प्राप्त कर लिया था ? उसने पिताकी प्रभु का आधा शरीर कैसे हरण किया था—यह सब हम पूछने वाले हैं । हे महामते ! आप भली भाँति यह सब वर्णन कीजिए ॥ १—२ ॥ मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—हे मुनि शार्दूलो ! आप लोग अब श्रवण कीजिए कि जिस तरह से दाक्षायणी सती हुई और फिर गिरि की पुत्री ने जैसे पूर्व में आधा शरीर हरण किया था ॥ ३ ॥ पूर्व में दाक्षायणी सती ने शरीर का त्याग किया था । उसी समय में हिमवान् गिरि को मेनका मन से गई थी ॥ ४ ॥ जिस समय में हिमाचल पर दक्ष कन्या हर के साथ खेलती थी उस समय में मेनका उसकी

हितैषिणी हुई थी ॥५॥ हे द्विजों ! मैं उसकी मुता होऊँ—वह मन में धारण करके उसी मन में देवी ने प्राण त्याग दिये थे और वह हिमवान् की पुत्री हुई थी ॥६॥ जिन समय में पहिले दक्ष के ऊपर क्रोध करके दत्तात्रेय ने प्राणों का त्याग किया था । उसी समय में मेरु पर देवी शिवा की आराधन करने को इच्छा वाली हुई थी । ७।

महामाया जगन्नाथो योगनिद्रा सनातनीम् ।
मोहिनी सर्वभूतानां शरणं सर्वनाकिनाम् ॥८॥
अष्टम्यामुपवास्य नु कृत्वा मा नवमीतिथौ ।
मोदकं वंनिभिः पिष्टैः पायसैर्गन्धपुष्पैः ॥९॥
चैत्रे मासि समागम्य सप्तविंशतिवासरात् ।
यावत् सम्पूजयामास पुत्रार्थिन्यन्वहं शुचिः ॥१०॥
गतायामोषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्तिं महोदयीम् ।
कदाचिन् मा निराहारा कदाचिन् सा घृतव्रता ॥११॥
शिवाविन्द्यस्तमनसा सप्तविंशतिवन्मरात् ।
निनाय मनका देवी परमा भूतिमिच्छती ॥१२॥
सप्तविंशतिवर्षान्ते जगन्माता जगन्मयी ।
मुप्रीताऽभवदत्यर्थं प्राहुः प्रत्यक्षतां गता ॥१३॥

उसने महामाया—जगत् की धात्री—सनातनी योगनिद्रा—
मोहिनी जो सब प्राणियों का मोहन करने वाली है और सब स्वर्ग-
वासियों की रक्षिका है उसी शिवा का आराधन किया था ॥ ८ ॥
उसने अष्टमी में उपवास करके नवमी तिथि में मोदकों में—वलियों
में—पिष्टों में और पायसों में तथा गन्ध और पुष्पों में चैत्र मास में
आरम्भ करके सत्ताईस वर्ष तक प्रतिदिन शुचि होकर पुत्र को इच्छा
वाली ने भनो भौति पूजा की थी ॥ ९—१० ॥ गङ्गा में ओषधियों के
प्रस्थ में मृत्तिका में परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण करके पूजा करती थी ।
जिसी समय तो बिना ही आज्ञा के रह जानी थी और किसी समय में

वन के धारण करने वाली होती थी। ११। शिवा में अपने मन को विन्यस्त कर देने वाली उस मेनका देखी ने जो परम भक्त की इच्छा रखन वाली थी मत्तार्द्धम वषं वपनीन किये थे ॥ १२ ॥ मत्तार्द्धम वषों के अन्त में जगत् की माना जगत्सर्वा परम प्रमत्त हो गई थी और प्रत्यक्ष में प्राप्त होकर बोली ॥ १३ ॥

यत् प्रायित त्वयः देवि भक्तस्तनुप्रार्थयाधुना ।
 दास्ये तवाहं तनुसर्वं वाञ्छितं यद् हृदा भवेत् ॥ १४
 तत मा मेनका देवी प्रत्यक्ष कालिका गताम् ।
 दृष्ट्वैव प्रणमामास वचनं चेदमश्र्वीन् ॥ १५
 देवी प्रत्यक्षतो रूपं न च दृष्ट मयाधुना ।
 त्वामहं स्तोतुमिच्छामि प्रमत्ता यदि मे शिवे ॥ १६
 तत मा मातरित्युक्त्वा कालिका सर्वमोहिनी ।
 बाहुभ्यां चारुवृत्ताभ्यां मेनका परिणम्वजे ॥ १७
 तत मा मेनका देवी कालिका परमेश्वरीम् ।
 तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शिवा प्रत्यक्षत स्मिन्नाम् ॥ १८
 प्रेम्ण्यन्ती जगद्गाम चण्डिका लोकधारिणीम् ।
 प्रणमामि जगद्गामी सर्वयामार्थमाधिनीम् ॥ १९
 नित्यानन्दा ज्ञानमयी योगनिद्रा जगत्प्रभुम् ।
 प्रणमामि शिवा शुद्धा विधिशौरिशिवात्मिकाम् ॥ २०
 मायामयी महामाया भवाशोकविनशिनीम् ।
 मागम्य वनिता भद्रा नमामि त्वां चित्ति शिवाम् ॥ २१

देवी ने कहा है देव । आपन जो प्रार्थना की थी वह अब मूर्तम मानना करो । मैं तुमसे सभी कुछ दे दूँगी जो भी तुम्हारे हृदय में वाञ्छित मनोरथ होवे ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर मेनका देवी ने प्रत्यक्ष में समागत हुई कालिका का दर्शन करके उतने देवी की प्रणाम किया

था । इसके अनन्तर वह यह वचन बोली ॥ १५ ॥ देवी, मैंने इस समय
मे आपका प्रत्यक्ष मे स्वरूप का दर्शन प्राप्त किया है । हे शिवे ! यदि
आप मुझ पर मृगमन है तो मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ ॥ १६ ॥
इसके अनन्तर मयकी मोहित करने वाली कानिका 'मातः'—यह कहकर
कैसी हुई राहुओं मे मयका का उगने जालिङ्गन किया था । १७ ॥ इसके
उपरांत उस मेमका देवी न परमेश्वरी कानिका देवी का अभीष्ट
वाणियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में विराजमान शिव का स्तवन किया था
॥ १८ ॥ गेयका ने कहा—जगत् के धाम को प्रेरणा करने वाली—
लोकों को धारण करने वाली चण्डिका जगत् की गायत्री और सत्र कामों
और अर्थों को माधन करने वाली को मैं प्रणाम करती हूँ ॥ १९ ॥ नित्य
आनन्द वाली—ज्ञान मे परिपूर्णा—योग निद्रा—जगत् को प्रसूत करने
वाली—शुद्धा—शिवा—विघाता, शौरि और शिव के स्वरूप वाली को
मैं प्रणाम करती हूँ ॥ २० ॥ मायामयी—महामाया—भक्तों के शोक
का विनाश करने वाली—काम की वनिता—चिन्ति शिवा आपको मैं
नमस्कार करती हूँ ॥ २१ ॥

मत्सोद्वेकाद् या भवित्रीह

नित्या चापि प्राणिना बुद्धिरूपा ।

मा त्व वन्धच्छेदहेतुर्यतीना

कस्ते कस्यो मादृशीभिः प्रभावः ॥ २२

ता त्व साम्ना मिद्विरुक्तिस्तथाचा

या वृत्तिर्या यजुषा दीर्घरूपा ।

हिंसा या याऽयवेदस्य सा त्व

नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि ॥ २३

नित्यानित्यैर्भागिनीनं पुरस्यै -

स्तन्मात्रैर्यैत्यते भूतवर्गः ।

तेषा शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा

का ते योषा योग्यं वक्तुं ममर्या ॥ २४

क्षितिर्धरित्री जगता त्वमेव

त्वमेव नित्या प्रवृत्तिस्वरूपा ।

यया वश क्रियते ब्रह्मरूप

मा त्व नित्या मे प्रसीदाम्नु मात ॥२५॥

त्व जानयेदोगतशक्तिरूपा

त्व दाहिका सूर्यकरस्य शक्ति ।

आह्लादिका त्व वह चन्द्रिकाया-

स्ता तामह स्तौमि नमामि चाम्बिकाम् ॥२६॥

योषा योषितिप्रयाणा त्व विद्या त्व चोर्ध्वं रेतसाम् ।

वाञ्छा त्व सर्वजगता माया च त्व तथा हरे ॥२७॥

याऽनेकरूपाणि विधाय नित्य

सृष्टि स्थिति हानिमपीह कर्त्री ।

ब्रह्माच्युतस्याणशरीरहेतु

मा त्व प्रसीदाद्य पुनर्नमस्ते ॥२८॥

मत्स्य के उद्देव मे मिथ्या जो यहाँ पर होने वाली है और जो
 रित्या प्राणियों की बुद्धि के स्वरूप वाली है वही आप यतियों के बन्धन
 का छदन करम का हेतु हैं ऐसा कौन है जो तुझ जैसी के द्वारा आपका
 प्रभाव करने के योग्य होवे । अर्थात् आपके प्रभाव को कोई भी मुक्त
 करी का नहीं कह सकता । २२ । जो आप मामो की मित्र की शक्ति
 है तथा अर्थात् जो आप यजुर्वेद की ऋचाओं की दीर्घ रूप वाली वृत्ति
 है—जो आप अथर्व वेद की हिमा हैं वह आप नित्य काम है और मेर
 दृष्ट का परे । २३ । नित्या नित्य—मागहीन—पुनस्त्य जिन तन्मात्राओं
 में भूतों का वग एतित जाना है उनको सदा नित्य रूपा शक्ति आप ही
 है । कौन गो म्थी है जो आपके योग्य बन्धन करने से समर्थ है । २४ ।
 जगता का धारण करने वाली शक्ति आप ही हैं—आप ही नित्या प्रवृत्ति
 के स्वरूप वाली है जिनके द्वारा द्रष्टा स्वरूप जाना वश विद्या जाता है

वह आप नित्या हैं मुख पर है माता ? प्रमत्त होवें । २५ । आप ज्ञात वेद में रहने वाली शक्ति के स्वरूप वाली हैं—मूर्त के किरणों की दाह करने वाली शक्ति आप ही हैं—मूर्त के किरणों की दाह करने वाली शक्ति आप ही हैं—अथ सर्वादि का आह्वादन करने वाली शक्ति हैं—जन्म आपका मैं स्मरण करती हैं और उस अम्बिका को मैं प्रणाम करती हूँ । २६ । आपिन् के विप्रों की आप योपा हैं—आप उर्ध्व रैताओं की आप ही विद्या हैं—आप समस्त जगत् की वाञ्छा हैं और आप ही भगवान् हरि की माता हैं । २७ । जो नित्य ही अनेक स्वरूपों को धारण कर के सृष्टि—स्थिति और हानि को करने वाली हैं । आप ही ब्रह्मा—अच्युत और शिव के शरीरों के हनु हैं । वह आप आज मुख पर प्रमत्त हो जाइए । मैं आपको पुनः प्रणाम करती हूँ । २८ ।

तत मा जगता माता कालिका पुनरेव हि ।
उवाच मेनका देवी वाञ्छित वरमेत्युत ॥२९॥
तत सा प्रथम पुत्रशत वद्रे यशस्विनी ।
वीर्यवच्चाय्या युवनमृद्धिसिद्धिसमन्वितम् ॥३०॥
पञ्चानु तथैका तनया मुखा गुणशालिनीम् ।
बुलद्वयानन्दकरी भुवनत्रयदुर्लभाम् ॥३१॥
ततो भगवती प्राह मेनका मुनिमग्निभाम् ।
स्मितपूर्वं नदा तस्या पूरयन्ती मनोरथम् ॥३२॥
शत पुत्रा सम्भवन्तु भवत्या वीर्यमयुता ।
तत्रैको बलवान्मुह्य प्रथम सम्भविष्यति ॥३३॥
मुता च तव देवाना मानुषाणा च रक्षमाम् ।
हिताय सर्वजगता भविष्याम्यहमेव ते ॥३४॥
त्वं सुखप्रमदा नित्य तथा नित्य पतिव्रता ।
अम्लाना रूपसम्पन्ना सुभगा च भविष्यसि ॥३५॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अन्तर वह जगत की माता

वसन्तम्भरे देवी नवभ्यामृक्षयोगत ॥४१

ऽर्ध्रगतने समुत्पन्ना गगेव शशिमण्डलान् ।

तनमन्या नृ जानाया प्रमन्ना अभवन् दिश ॥४२

इस गीति में देवी का दर्शन जगत् की धात्री बनी पर अन्तर्धान हो गई थी । मेनका परम प्रमन्ना की प्राप्ति करके अपने स्थान में प्रवेश कर गयी थी । ३६ । इसके उपरान्त काल के सम्प्राप्त होने पर मेनका ने अचलो में अष्टोत्तम मैनाक पद्म को प्रनृत किया था जो आज तक भी पृथ्वी के सहित सागर के मध्य में निवास किया करता है । ३७ । मेनका ने स्पर्धा में आगन द्रवेन्द्र का प्रनव किया था । उस मती ने अन्य एक बस सो पुत्रों का क्रम में समुत्पन्न किया था । ३८ । य सभी पुत्र महान् वीर्य वाले—महान् सख में समन्वित और सभी प्रकार में गुण—गणों में सुसम्पन्न थे । इसके उपरान्त वह जगन्मयी योग निद्रा कालिका देवी जिसने पूर्व में मती के रूप का त्याग कर दिया था जन्म ग्रहण करने के लिये मेनका के समीप में गयी थी । भय के अनुसार मेनका के उदर में शिवा ने समुद्भूत होकर सागर से लट्ठी की ही भाँति समुत्पत्ति ग्रहण की थी । वनम के समय में तक्षक के योग में नवमी तिथि में देवी प्राची रात्रि में शशि के मण्डल में गङ्गा के ही समान समुत्पन्न हुई थी । उनके समुत्पन्न होने पर सभी दिगर्धे प्रमन्न हो गयी थी ॥३६—४२॥

अनुकूलो बभौ वायुर्गन्भीरो गन्धवान् शुभ ।

वभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिस्तथापि ॥४३

जज्वलश्चाग्नय ज्ञान्ना जगज्जुश्च घनाघनम् ।

तस्या तु जानमात्राया सर्वं स्वान्ध्यामपद्यत ॥४४

ता तु दृष्ट्वा तथा जाता नीलोत्पलदलानुगाम् ।

श्यामा सा मेनका देवी मुदमापातिर्हृषिना ॥४५

देवाश्च ह्यमनुल प्रापुस्तत्र मुहूर्मुह ।

तुष्टुवश्चान्तरिक्षम्या गन्धर्वाप्सरसा गणा ॥४६॥
 ना तु नीलोत्पलदलश्यामा हिमवत मुताम् ।
 कालोति नाम्ना हिमवानाजुहाव कृतोदने ॥४७॥
 बान्धवैस्तु ममस्तस्तन्नाम्ना सा पार्वतीति च ।
 कालोति च तथा नाम्ना कीर्तिता गिरिनन्दनी ॥४८॥
 सत सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शुभा ।
 गणैव वर्षासमये शरदीवाय चन्द्रिका ॥४९॥

उस अवसर परम शुभ—सुगन्धित और गम्भीर वायुबह्न करने लगा
 था । उस समय मे पत्थों की वर्षा हुई थी और जल की वृष्टि भी हुई थी ।
 जो अग्निवी शान्तवी के प्रशम्यितहोगई थी और एत गम्भीरगर्जन करने
 लगे थे । उस देवी के समुत्पन्न होनेही मायमे सबने स्वास्थ्य की प्राप्ति
 की । ४३ । ४४ । नील कमलों के दलों के अनुशा समुत्पन्न हुई उसका
 दर्शन करके जो श्यामा थी, देवी मेनका अनीव हर्षित होकर परमाधिक
 आनन्द को प्राप्त हुई थी । ४५ । और देवी ने भी उस समय मे बारम्बार
 अनुल हर्ष की प्राप्ति की थी । गन्धर्व और अप्सराओं के समुदाय आकाश
 में मस्त्यन होकर स्तवन कर रहे थे । ४६ । हिमवान् ने उग नील उत्पल
 दल के समान श्यामा हिमवान् की मुता की वृत्त दिन मे हिमवान् ने
 ने 'काली' इस नाम मे बुलाया था । ४६ । ४७ । गम्य बान्धवों के
 द्वारा उस नाम मे वह पार्वती—यही कही गयी थी । तथा काली—इस
 नाम मे गिरिनन्दनी कीर्तिता की गयी थी । ४८ । इसके उपरान्त वह शुभा
 देवी गिरिराज हिमवान् के घर मे बड़ी हो गई थी । जिस तरह से वर्षा
 के समय मे गङ्गा बढ़ जाया करती है तथा शरत्काल मे चाँदनी बड़ी हो
 जाती है ॥४९॥

एधमानानुदिवसं चार्वंगी चार
 दधे सानुदिन कासो चन्द्रवि
 मा वालभायमापन्ना श्रीहन्त

सखीभिः प्राप विपला कालिन्दोत्र सरिद्ब्रजं ॥५१
 षड्गुणास्ता स्वयं देवी पूर्वजन्मवशीकृताः ।
 म्वयमोषुद्विजश्रेष्ठा प्रावृष कालिका यथा ॥५२
 अतिचक्राम स्वगुणं सा देवी देवकन्यका ।
 स्पैरप्सरस सर्वा गीतैर्गन्धर्वकन्यका । ॥५३
 मा वाल्य एव सतत वन्धुवर्गप्रिया शुभा ।
 गुणैः स्ववन्धून् पितर मातरं चाप्यतोपयत् ॥५४
 मातुः स्तुतिकरो नित्य पितृपूजनतत्परा ।
 सर्वदा भ्रातृसहिता जगन्माताऽभवत्तदा ॥५५
 सर्वदा सा जगन्माता कन्या सा समुपस्थिता ।
 पितुः समीपे वसति कालिन्दीव विभावसो ॥५६

प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुई वह सुन्दर अङ्गों वाली अधिक सुन्दरता को वह वाली चन्द्र बिम्ब की कला हो की भाँति ब्रह्म वाली ने धारण की थी । अर्थात् वह दिनों दिन विशेष सुन्दरी होती चली गयी थी । ५० । वह कालिका बाल भाव को प्राप्त हुई क्रीडा करती हुई सखियों के साथ परम प्रसन्नता को प्राप्त होती थी जिस प्रकार से सरिताओं के समुदायों से कालिन्दी विपुलता को प्राप्त किया करती है । ५१ । षड् गुणों ने स्वयं ही उस देवी के पूर्व जन्म के वशीकृतता को प्राप्त कर लिया था ; हे द्विज श्रेष्ठो ! वे षड्गुण वर्षा को कालिका के ही समान स्वयं ही उसके समीप में आकर उपस्थित हो गये थे ॥५२॥ उस देवी ने अपने गुणों से देवी की कन्याओं का भी अति क्रमण कर दिया था अर्थात् देव कन्याओं में भी अधिक गुणों वाली हो गयी थी । अपने रूप लावण्य से सब अप्सराओं से भी आगे बढ़ो हुई थी और गीतों से वह गन्धर्व कन्याओं से भी अधिक गायन करने वाली थी । ५३ । वह बाल्यकाल में ही निरन्तर बन्धु वर्ग की प्रिय और शुभ थी । उसने अपने मङ्गुणों के द्वारा अपने वन्धुओं को—माता और पिता को भी मनुष्ट

कर दिया था । ५४ । वह नित्य ही अपनी माता का स्तवन करने वाली थी और अपने पिता के यजन करने में तत्पर रहा करती थी । उह सर्वदा अपन भाइयो के साथ में रहने वाली जगत् की माता हो गई थी । अर्थात् जगत् की माता सदा ही भाइयो के साथ रहा करती थी । ५५ । वह सम्पूर्ण जगत् की माता सर्वदा कन्या के स्वरूप में समुपस्थित हुई भी । जिस तरह में विभावसु के समीप में कालिन्दी निवास किया करती है उसी भाँति वह भी सदा अपने पिता के समीप निवास किया करती है ॥५६॥

अथैकदा ता निकटे निधाय हिमवद्गिरिः ।

तनयै सह सगन्ध स्थित परमकीर्तुवत् ॥५७

अथागतस्तत्र मुनिर्नारदो देवतोक्त ।

हिमवन्त सुखासीन सुतं साधं ददर्श स ॥५८

अपश्यन्निकटे काली कालिकामिव मूयत ।

उयोत्सनामिव मुधाशास्तु सम्पद्बद्धा शरन्निशि ॥५९

पूजितस्तेन गिरिणा कृतामन-परिग्रह ।

को देखा था । ५८ । उनके ही निम्न म उन्होंने सूर्य में बालिका के समान ही काली का भी अवलोकन किया था जैसे चन्द्रमा की चांदनी हो जो कि शरत्काल की रात्रि में भग्नी भाँति बड़ी हुई हुआ करती है । ५९ । उस गिरिराज के द्वारा उन नारद मुनि का अभ्यर्चन किया गया था । और उनको आसन उपविष्ट होन के लिये दिया गया था । उस आसन पर बैठे हुए देवर्षि नारदजी ने सबसे प्रथम उस पर्वत राज से कुशल प्रश्न पूछा था और वृत्तान्त भी पूछा था ॥६०॥ बोलने में महान् कुशल देवर्षि नारदजी ने जब सम्पूर्ण वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया तो फिर वे बहुत ही हर्षित होते हुये मनका से बोले— यह आपकी पुत्री बहुत सुन्दर है और चन्द्रमा की दाक्ष कला के ही समान वर्धित होगई है । हे शैलराज ! यह आपकी कन्या ममस्त मुलक्षणो मे शोभायमान है ॥६१॥६२॥ यह मदा हर की सानुकूल होती हुई भगवान् शम्भु की दायिता होने वाली है । यह तपस्विनी उनके चित्त को अपने वश में कर लेगी ॥६३॥

स चाप्येनामृते जाया नान्यामुद्धाहयिष्यति ।
 एतयोर्यादृश प्रेमा बयोश्चिन्नव तादृश ॥६४
 भूतो वा भविता वापि नापुना च द्रवतंते ।
 अनया गुरकार्याणि वर्तव्यापि बहूनि च ॥६५
 अनयैव गिरिर्ध्रुष्ठ अर्धनाराश्वरो हर ।
 भविष्यति च सौहृदाज्योत्स्नयैवात्मनात्मन ॥६६
 शरीरार्ध हरस्यैषा करिष्यति निजास्पदे ।
 स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोषिते हरे ॥६७
 त्रिचुदगौरी त्वय काली तव पुत्रो गविष्यति ।
 गौरीति नाम्ना पश्चात्तु प्यातिमेषा गमिष्यति ॥६८
 नान्यस्मै त्वमिमा दातु मन कर्तुं मिहाहंसि ।
 इदं चोपाशु देवाना न प्रकाश करिष्यसि ॥६९

और व भगवान् शम्भु भी इसके अतिरिक्त अन्य विमा भा जाया के साथ विवाह नहीं करेगे । इन दाना का जो भा प्रेम है वंसा काइ भी दूसरो का नहीं है ॥६४॥ न ता ऐसा प्रेम नभी हुआ है और न इस समय मे है तथा भविष्य मे भी नहीं होगा । इसक द्वारा बहुत स गुरा के काय करन क योग्य होग ॥६५॥ ह गिणियों मे परम श्रेष्ठ । इसी के द्वारा भगव न् हर अध नारीश्वर है । और इसा को चन्द्रमा की प्योत्सना के ही सत्य परम मोहनि होगा ॥६६॥ यह भगवान् शिव क आधे शरीर को आपन आस्पद मे करेगी । स्वर्ण गौरी और सुवर्ण क समान आभा वाली तप के द्वारा भगवान् हर क प्रसन्न हान पर यह विद्युत् के समान गौरी तुम्हारी पुना वाली हा जायगी । इसक पाछ यह गौरी इस नाम से लोक मे ख्याति को प्राप्त करेगा ॥६७॥६८॥ शिव के अतिरिक्त अय किमी क भी लिय इससे प्रदान करन का आप अपना मन करो क योग्य नहीं हात ह । और यह उपाशु दवा का प्रकाश नहीं कर मे ॥६९॥

इति तस्य वच न्नुवा दवपनारदस्य च ।
 उवाच हिमवान वाक्य मुनि प्रति विशारद ॥७०॥
 श्रूयत त्वत्तस्य स महादेवा यतात्मवान् ।
 तपश्चोपाश्रु तपति दवानामप्यगोचर ॥७१॥
 स वय ध्यानमागस्थ परब्रह्मार्पित मन ।
 अशयिष्यति दवप तत्त म सशया महान् ॥७२॥
 अक्षर परम ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् ।
 सोऽन्त पश्यति सवत्र न तु बाह्य निराक्षत ॥७३॥
 इति स्म श्रूयत नित्य कितराणा मुखाद द्विज ।
 स वय तादृश स्वात्त शक्तो अ शयितु हर ॥७४॥
 विशपत श्रूयते स्म दाक्षायण्या सम हर ।
 समय जातवान पूव तमे निगदत शृणु ॥७५॥

त्वामृतज्या न वनिता दाक्षायणि सति प्रिये ।

भार्यायै सग्रहोप्यामि सस्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥७६॥

इति सत्या सम तेन पुरैव समय कृत ।

तस्या मृताया स कथं स्त्रियमन्या ग्रहीष्यति ॥७७॥

माकण्डेय महर्षि ने कहा—दक्षर्षि नारदजी के इस वचन का श्रवण करके विशारद हिमवान् ने मुन के प्रति यह वाक्य कहा था । ॥७०॥ व महादवजी सङ्ग को त्याग किय हुए हैं और चल आत्मा वाले हैं । व तो देवा के आगोचर उपाशु तप का समाचरण कर रह हैं ॥७१॥ ह दक्षर्षि ! व ध्यान के माग म समास्थित है और उनम अपना मन परब्रह्म म अपिन कर रक्खा है । वे उसस किम प्रकार भ्रष्ट हागे— इसम मुने बड़ा भारी सशय हो रहा है ॥ ७२ ॥ वह परब्रह्म अक्षर हैं और प्रदीप की कसिका के ही समान है । वे सबत्र अदर ही देखा करत हैं और बाहिर के पदार्थों को कभी भी नहीं देखते हैं ॥ ७३ ॥ हे द्विज ! यह बात नित्य ही किनरा क मुख स सुनी जाती थी । जिनका अ त करण इस प्रकार का है वे हर कैस ध्यान से भ्रष्ट किय जा सकत हैं ॥७४॥ विष्णु रूप से यह मुना गया है कि भगवान् शम्भु न दाक्षा यणी क साथ समय पूव म ही ज्ञात किया था । उस में कहता हूँ मुषस आप श्रवण कोनिए ॥७५॥ शिव ने दाक्षायणी स कहा था—ह दाक्षा माण ! ह प्रिये ! ह सता ! तुम्हारे विषा में अब किसी भी वनिता का अपनी भार्या बनान क लिये ग्रहण न्ही करूँगा—यह सवथा सत्य है जिस में आपका वात रहा हू ॥ ७६ ॥ यही सता क साथ उहान पहिने ही समय किया है । अब उस सती के मृत हा जान पर व कैस अब म्ना का ग्रहण करग । ७७॥

नात्र कार्या त्वया चिन्ता गिरिराज भवत्सुता ।

एषा सती समुत्पन्ना हरायैव न सशय ॥७८॥

इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदस्तु यथा सती ।

मेनकाया समुत्पन्ना सर्वं तत् प्रोक्तवान् गिरौ ॥७६॥

तत्सर्वं पूयंवृत्तान्त नारदरय मुक्ताद् गिरिः ।

श्रुत्वा सपुत्रदारः स तदा निःसशयोऽभवत् ॥७७॥

ततः काली कथा श्रुत्वा नारदस्य मुखात् तदा ।

सज्जयाऽधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारितानता ॥७८॥

करेण तां तु सगृह्य प्रोन्नमय्य मुखं गिरिः ।

मूर्ध्नि सम्यगुपाधाय स्वासने सन्यवेशयत् ॥७९॥

ततस्ता पुनरेवाह नारद शंखपुत्रिकाम् ।

हर्षयन् गिरिराज तु मेनका तनयः सह ॥८०॥

सिंहासनेन किं स्वस्याः शंखराज भवेत् तव ।

शम्भोरूह सदैवास्या जासन तु भविष्यति ॥८१॥

हरोरुमासन प्राप्य तनया तव सततम् ।

नान्यत्र कुत्रचित्तुष्टिमासने प्राप्यते गिरे ॥८२॥

इति वचनमुदार नारद शंखराज

त्रिदिवमगमदुक्त्वा तत्क्षणाद् देवयानैः ।

गिरिपतिरपि चिन्ताहर्षसन्मोहयुक्तः

प्रविशदचलयासी स्वान्तर पथगर्भम् ॥८३॥

देवर्षिं नारदजी ने कहा—हे गिरिराज ! इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए । यह आपकी पुत्री सती ही उत्पन्न हुई है और यह हर के ही लिये जन्म धारण करने वाली हुई है—इससे लेण मात्र भी संशय नहीं है ॥७६॥ भार्कण्डेय मुनि ने कहा—इतना कहकर ही देवर्षि नारदजी ने गिरिराज से यह सभी कहकर सुन लिया था जिस तरह से सती मेनका के उदर से समुत्पन्न हुई थी ॥७७॥ गिरिराज ने वह सब पूर्व में भटित वृत्तान्त नारदजी के मुख से श्रवण किया तो वह अपने पुत्री और दारा के सहित सशय से हीन हो गये थे ॥७८॥ उस अवसर पर काली ने नारदजी के मुख से यह सब कथा का श्रवण

किया था और वह मन्ता स नोचे की ओर मुख वाली हो गई थी और मन्द मुस्कान स विस्तृत मुख वाली हो गई थी ॥८१॥ गिरि हिमवान न उस सती को हाथ से पकड़ कर और मुख को ऊपर की ओर उठा कर उसके मस्तक पर आघ्राण करके उसको अपने ही आसन पर बिठा लिया था ॥८२॥ इसके अनन्तर नारदजी न पुन शैलराज की पुत्री से कहा था जिससे गिरिराज और तनयो के सहित मेनका बड़ा हर्ष हो रहा था ॥ ८३ ॥ हे शैलराज ! आपके इस सिंहासन से इसको क्या होगा । इसका आसन तो सदा ही भगवान् शम्भु के ऊरु होगा । अर्थात् आपके द्वारा दिया हुआ सिंहासन का आसन इसके लिये कोई महत्त्व की बात नहीं है क्योंकि यह तो शम्भु के ऊरुओ पर बैठने वाली होगी ॥ ८४ ॥ हे गिरे ! आपकी यह पुत्री हर के ऊरुआ का आसन प्राप्त करके इसे अन्य किसी भी आसन पर तुष्टि की प्राप्ति नहीं हा सकती है ॥८५॥ देवपि नारदजी ने यह परम उदार वचन शैलराज स कहा था और देवयाना के द्वारा व उसी क्षण म स्वर्ग को गमन कर गये थे । गिरिपति भी चिन्ता—हर्ष और सम्मोह स समुत होकर अपनी अचला भार्या के सहित अपन पद्म गभ अन्तपुर म प्रवेश कर गये थे ॥८६॥



भगवान शिव का हिमवान मे निवास

एतस्मिन्नतरे शम्भु क्षिप्र त्यक्त्वा तदा सर ।
गगावतारमगमद् हिमवत्-प्रस्थमुत्तमम् ॥१॥
यत्र गगा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात् सृता ।
औपधीप्रस्थनगरस्यादूरे सानुत्तम ॥२॥
तत्र भर्ग स्वमात्मानमक्षर परमात्परम् ।

चेतो ज्ञानमय नित्यं ज्योतीरूपं निराबुलम् ॥३॥

जगन्मय प्रदीप द्वैतहीनाविशेषकम् ।

एकाग्र चिन्तयामास भगवान् वृषभध्वजः ॥४॥

हरे ध्यानपरे तस्मिन् प्रमथा ध्यानतत्पराः ।

अभवन् केचिदपरे नन्दिभृग्धादयो गणाः ॥५॥

द्वा स्या भूता महाभागा ये पूर्वद्वारि योजिताः ।

तावन्तोऽपि गणास्तत्र नय किञ्चन कृजितम् ॥६॥

तेषां सन्धूयते सर्वे नि शब्दाः सस्थितास्ततः ।

अन्ये तु तत्र क्रीडन्ति गणा दूरान्तरस्थिताः ॥७॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसी बीच मे भगवान् शम्भु ने उस समय मे सरोवर का त्याग कर दिया था और वे हिमवान् के उत्तम प्रस्थ गङ्गावतार हो चले गये थे ॥ १ ॥ जहाँ पर पहिले ब्रह्मपुर से सूत होकर गङ्गा निपतित हुई थी । योषधिप्रस्थ नामक नगर के समीप मे ही एक उत्तम शिखर था ॥ २ ॥ वही पर भगदेव परम मे भी पर अक्षर अपने आत्मा को तथा नित्य ही ज्ञानमय चित्त एक निरामय और निराबुल ज्योती रूप—प्रदीप की आभा वाले—जगन्मय—द्वैत से हीन विशेषको एकाग्र होकर वृषभध्वज भगवान् चिन्तन करने लगे थे ॥ ३—४ ॥ भगवान् हर के ध्यान मे तत्पर होने पर प्रथम भी ध्यान मे परायण हो गये थे । कुछ दूसरे नन्दी—भृङ्गी आदि जो गण थे वे महाभाग द्वार पर स्थित थे जो पूर्व के द्वार पर नियोजित किये गये थे । वही पर उतने गण थे किन्तु भी ध्वनि नहीं होती थी ॥ ५—६ ॥ उनकी कोई भी ध्वनि नहीं सुनाई नहीं देती थी । सभी शब्दहीन होते हुए संस्थित थे । अन्य गण वहाँ से सुदूर अन्तर पर स्थित होकर क्रीडा कर रहे थे ॥ ७ ॥

कुसुमेश्च दलैर्भक्तैर्गिरिप्रस्रवणोदकैः ।

रत्नानि च विचिन्वन्तो भूषिता गैरिक्तस्तथा ॥८॥

सगण तु तथा दृष्ट्वा गिरिराजो गत हरम् ।
 स्वस्थानमोपधिप्रस्थानि मृत्यु सहितो गणं ॥८
 पूजार्थमुपतस्थे स यथायोग्य तथार्चयत् ।
 स चापि शम्भुस्तस्यार्चां परया श्रद्धया युतः ।
 प्रतिजग्राह कूटस्यो गगाशीर्षे यथा पुरा ॥९०
 पूजितस्तेन सहसा गिरिराज वृषध्वजः ।
 उवाच ध्यानयोगस्थ स्मयन्निव जगत्पति ॥९१
 तव प्रस्ये तपस्तप्तु रहस्यमहमागतः ।
 न यथा कोऽपि निकट समायाति तथा कुरु ॥९२
 त्व महात्मा जगद्धाम मुनीना च सदाश्रयः ।
 देवाना राक्षसाना च यक्षाणा किन्नरस्य च ॥९३
 सदावासो द्विजानीना गगापूतश्च नित्यदा ।
 त्वत्पुरस्थाम्य निकटे प्रस्थ गगावनारणम् ॥९४

कुसुमा से—दत्तो से—भक्तों से और गिरि के प्रसन्नवर्ण के जनो से रत्नों को खोजते हुए गौरिको से भूषित वे गण थे ॥ ८ ॥ गिरिराज ने गणों के सहित गये हुए भगवान् हर का विलोक्न करके गणों के सहित अपने स्थान ओपधि प्रस्थ में निर्गत होकर वे पूजा के लिये उपस्थित हुए थे और उन्होंने यथोचित रूप से उनका अभ्यर्चन किया था । व भगवान् शम्भु भी परा श्रद्धा से मग्न होकर उसकी अर्चा का ग्रहण करने वाले हुए थे जिस तरह से पहिले यज्ञा शीर्ष में कूट पर सस्थित थे ॥ ८—९० ॥ सहसा उसके द्वारा पूजित हुए वृषध्वज ध्यान योग में स्थित होते हुए जगत्पति भुस्वरात् हुए से उस गिरिराज से बोले ॥ ९१ ॥ ईश्वर ने कहा—मैं आपके इस प्रस्य पर तप का समाचरण करने के लिये ही इस एकान्त स्थल में ममागत हुआ हूँ । मेरे समीप मैं कोई भी न आये ऐसी व्यवस्था कर दीजिये ॥ ९२ ॥ आप महान् आत्मा वाले हैं—आप जगत् के घाम हैं और मुनियों के सदाश्रय हैं देवों के—राक्षसों के—यक्षा के और किन्नरों के तथा द्विजातीयों के

सद आवास है तथा नित्य ही गङ्गा से पूत रहत हैं । आपने इस नगर के निकट में एक गङ्गावतरण प्रस्थ है ॥१५॥

आश्रितोऽहं गिरिश्रेष्ठ तदयोग्यं कुरु साम्प्रतम् ॥१५॥

इत्युक्त्वा जगता नाथस्तूष्णीमास वृषध्वज ।

गिरिराजस्तदा शम्भु प्रणयादिदमब्रवीत् ॥१६॥

पूतोऽस्मि जगता नाथ त्वयाऽहं परमेश्वर ।

आगतेनाद्य धिपयमितं कृत्य किमस्ति मे ॥१७॥

तपसा महता त्वं हि देवैर्यज्ञपरस्थितं ।

न प्राप्यमे जगन्नाथ स त्वं स्वयमुपस्थित ॥१८॥

मत्तो घन्यनरो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान् ।

यद्भवान् हिमवन्-प्रस्थे तपसे समुपस्थित ॥१९॥

देवेन्द्रादधिकं मन्ये आत्मानं परमेश्वर ।

सगणेन त्वया प्राप्तो यदाऽहं कामचारतः ॥२०॥

इत्युक्त्वा गिरिराजोऽथ स्ववेश्म पुनरागमत् ।

नियमाय परिवारान् गणानप्यवदत् स्वकान् ॥२१॥

हे गिरि श्रेष्ठ ! मैंने वहाँ पर आश्रम ग्रहण किया है सो अब योग्य हो वह आप करिये ॥ १५ ॥ इतना ही कहकर जगतों के स्वामी वृषभध्वज चुप हो गये थे । उसी समय में गिरिराज ने भगवान् शम्भु से प्रणय कीं ही भाँति यह कहा था ॥१६॥ हे परमेश्वर ! आप तो जगतों के स्वामी हैं । आपने मुझे पवित्र कर दिया है कि आपने इस मेरे देश में समागमन किया है । इससे आगे जो भी मेरा वत्सल्य हो वह मुझे उपदेश कीजिए कि क्या करना है ॥ १७ ॥ आप तो महान् तप के द्वारा यत्नो में परायण देवों के द्वारा भी प्राप्त नहीं हुआ करते हैं । हे जगन्नाथ ! मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप स्वयं ही यहाँ पर पदार्पण कर उपस्थित हो गये हैं ॥१८॥ मैं तो यही समझता हूँ कि मुझसे अधिक धन्य कोई भी नहीं है । और मुझसे अधिक कोई पुण्यशाली ही है कि

आप तपश्चर्या करने के लिये हिमवान् के प्रस्थ पर स्वयं ही समुपस्थित हो गये हैं ॥ १८ ॥ हे परमेश्वर ! मैं तो अपने आपको देवेन्द्र से भी अधिक मानता हूँ कि गणों के सहित आपके द्वारा स्वेच्छा से ही जिस समय में मैं प्राप्त हो गया हूँ इतना कहकर गिरिराज पुनः अपने घर में आ गये थे । और उनमें नियम के नियम अपने परिवारों को तथा गणों को कह दिया था ॥२०॥२१॥

अथ प्रभृति नो गन्ता कोऽपि गगावतारणम् ।
मच्छासन न हि विनः यो गन्ता दण्डये ह्यहम् ॥२२॥
इति स्वान् स नियम्याशु तिलपुष्पकुशान् फलम् ।
समादायाश तनयासहितोज्गाद् हरान्तिकम् ॥२३॥
अथ गत्वा जगन्नाथ हर ध्यानपर तदा ।
नमयामास तनया काली सर्वगुणान्विताम् ॥२४॥
तिलपुष्पादिकं यद् यत्तत्तदग्रे निधाय स ।
अग्रे कृत्वा मुता शम्भुमिदमाह स शैलराट् ॥२५॥
भगवस्तनयेयं मे त्वमाराधयितुं प्रति ।
समादिष्टा समानीता त्वदाराधनकाक्षिणी ॥२६॥
सखिम्या सह नित्यं त्वां सेवतामीश शकर ।
अनुजानीहि सेवार्यं मयि ते यद्यनुग्रह ॥२७॥
अथ तां शकरोऽपश्यन् प्रथमारूढयोवनाम् ।
फुल्लेन्दीवरपत्राभा पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥२८॥

आज से आरम्भ करके कोई भी गङ्गावतरण पर नहीं जायेगा । मेरे शासन के बिना जो कोई भी यहाँ पर गमन करेगा उसको मैं दण्डित करूँगा । २२ । उस गिरिराज हिमवान् ने इस रीति से अपने लोगों को नियमित करके वह तिल—पुष्प—कुशा और फल लेकर शीघ्र ही अपनी पुत्री के साथ भगवान् शम्भु के समीप में गमन किया था । २३ । इसके अनन्तर ध्यान में परायण जगन्नाथ शम्भु के समीप में उस समय

मे गमन करके गव गुणों से गमनिवता बामो अपनी पुत्री का नमन कराया था अर्थात् उससे प्रमाण करवाया था । २४ । जो तिन पुत्र आदि से वह गभी उमने उनके आगे रख दिया था । फिर अपनी पुत्री को आगे करके उम जैनों के राजा ने भगवान् शम्भु से यह कहा था । २५ । हे भगवन् ! यह मेरी पुत्री आपकी आराधना करने के लिये समादिष्ट की गभी है और आपको आराधना की इच्छा बामो है यह यह पर लार्ड गई है । २६ । हे ईश ! हे शङ्कर ! यह अपनी गण्डियों के साथ निश्च ही आपको मेवा करती है । यदि आपका मेरे ऊपर अनुग्रह है तो आप इसको मेवा करने के लिये अनुज्ञा प्रदान कीजिय । २७ । इसके अनन्तर भगवान् शङ्कर ने उसका अवतीर्ण किया था कि वह प्रथम यौवन में आरुढ़ थी और उसके विकसित कमलों के दलों के तुल्य नेत्र थे तथा उसका चेहरा एव खिले हुये कमल के ही सदृश था एव उसका मुख पूर्ण चन्द्र के समान था । २८ ।

ममग्रनीचकेशौघ-प्राप्तवेश-विजृम्भिकाम् ।

कम्बुग्रीवा विशालाक्षी चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम् ॥२९॥

मृणालायतपर्यन्त-बाहुयुग्ममनोरमाम् ।

राजीवकुण्डलप्रत्य घनपीनोन्नतस्तनौ ॥३०॥

विभ्रती क्षीणसन्मध्या रक्तपाणितलद्वयाम् ।

स्थलपद्मप्रतीकाश पादयुग्ममनोरमाम् ॥३१॥

मध्यक्षीणा महासत्त्वा वृत्तमूलधनोज्ज्वलाम् ।

मुजघा नागनामोरु निम्ननाभिविभूषिनाम् ॥३२॥

सुवृत्तचारुजघाग्रा त्रिगम्भीरा पद्मप्रनाम् ।

सर्वलक्षणसम्पूर्णा त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥३३॥

ध्यानपजरनिर्वन्ध-मुनिमानसमप्यरम् ।

दशनाद् भ्रशितु शक्ता योपिद गणशिरोमणिम् ॥३४॥

ना हृष्ट्वा तपसे नित्य ध्यानिना च मनोहराम् ।

विघ्नहेतु चानुरागवर्धनी कामरूपिणीम् ॥३५॥

अब शिवा के सुन्दर स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह समग्र केशों के समूह से वेश विजृम्भिका को प्राप्त हुई थी । उस की ग्रीवा कम्बु के ही समान थी । उसके नेत्र विजाल थे और उसके दोनों कानों का जोड़ा परम सुन्दर एवं उज्ज्वल था । २६ । मृणाल के सहस्र आयत एवं पर्यन्त बाहुओं के युग्म से वह परम मनोहर थी । उसके कृण्डलों के स्थान में कमल थे तथा वह घन और पीन एवं उन्नत स्तनों से शोभित थी । ३० । सुन्दर और क्षीण मध्य भाग के धारण करने वाली थी और उसके दोनों बेटों के तम भाग रक्त वर्ण के थे । स्थल पद्म के सहस्र दोनों पादों में वह परम मनोरम थी । ३१ । मध्य भाग से क्षीण—महान् मत्स्य वाली स्थूल और घन वृत्त में उज्ज्वल थी । उसकी जघायें सुन्दर थी—नाभ के समान उसकी नाभिका थी तथा वह निम्न नाभि में भूषित थी । ३२ । उसकी जंघाओं के अप्रभाग सुवृत्त और सुन्दर थे । तीन स्थानों में गम्भीर और छै स्थानों में समुन्नत थी । सभी मुलक्षणों से सम्पन्न थी तथा वह तीनों लोकों में दुर्लभ थी । ३३ । ध्यान के पिंजर में बँधे दृष्टे मृत्तियों के मन को भी दर्शन करने ही से भ्रष्ट करन में समर्थ वह योपिनो के समूह की शिरोमणि थी । ३४ । उस मनोहर को देखकर तद्दृष्ट्या के लिये नित्य ध्यान करने वालों को विघ्नों का हेतु और अनुराग को बढ़ाने वाली तथा कामरूप वाली थी । ३५ ।

गिरिराजस्य वचनात्तनया तस्य श्रवर ।

पर्येषणायै जगृहे गौरवादपि गोरश ॥३६॥

उवाचेद तव सुता सखिम्या सह शंलराट् ।

नित्य मे मेवया यत्ता निर्भोता ह्यत्र तिष्ठतु ॥३७॥

एवमुक्त्वा तु ता देवी सेवार्यै जगृहे हर ।

इदमेव महद् धैर्यं यद् विघ्नो न हि विघ्नयेत् ।

निर्विघ्न स्थानमासाद्य यत्तप क्रियते द्विजैः ॥३८॥
 सविघ्नो विघ्नहेतुः यः परिभूय प्रवर्तते ।
 त्वन्महत्त्वं च तपसा धीरता च तपस्विनाम् ॥३९॥
 ततः स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकं ।
 हरश्च ध्यानयोगेन परं चिन्तयितुं स्थितः ॥४०॥
 काली सखिन्या महिता प्रत्यहं चन्द्रशेखरम् ।
 सेवमाना महादेव गमनागमनं स्थिता ॥४१॥
 कदाचित् सहिता काली सखिन्या शकराग्रतः ।
 विसन्वतो शुभं गीतं पञ्चमञ्चातनोत्तदा ॥४२॥

उन गिरिराज के वचन में उसकी पुत्री को भगवान् शङ्कर ने जो गौरव से भी गौरव से सेवा करने के लिये स्वीकार कर लिया था । ॥३६॥ भगवान् शम्भु ने कहा था कि हे शंकरान् ! यह आपकी पुत्री अपनी सखियों के साथ नित्य ही मेरी सेवा करने के लिये निर्भीक होकर यहाँ पर स्थित रहे ॥३७॥ यह इस प्रकार से कहकर भगवान् हर ने उस देवी को सेवा के लिये ग्रहण कर लिया था । यह ही महान् धर्म है कि विघ्न बाधा न डालें । विघ्न रहित स्थान को प्राप्त करके जो तप द्विजों के द्वारा किया जाता है ॥३८॥ विघ्नो के सहित विघ्न के हेतु को पराभूत करके जो द्रव्य होता है । वह तपो का महत्त्व है और तपस्वियों की धीरता है ॥३९॥ इसके अनन्तर गिरि राजा अपने परिचारकों के सहित अपने पुर में आ गया था और भगवान् शम्भु ध्यान के योग से परेश का चिन्तन करने के लिये स्थित हो गये थे ॥४०॥ काली अपनी सखियों के साथ प्रति दिन महादेव चन्द्र शेखर की सेवा करती हुई गमन और आगमनों के द्वारा स्थित हो गई थी ॥४१॥ किसी समय में वह काली सखियों के सहित भगवान् शङ्कर के आने शुभगीत का विस्तार करती हुई पञ्चम स्वर का गान किया करती थी ॥४२॥

कदाचिन् कुशपुष्पादिसमिद्धारि हृगय सा ।
 सखिभ्या स्नानसत्कार कुर्वन्ती न्यवसत्तदा ॥४३॥
 कदाचिदग्रे नियता म्यिता चन्द्रभृतो मुखम् ।
 वीक्षन्ती चिन्तयामास सकामा चन्द्रशेखरम् ॥४४॥
 यदा कार्येषु सा व्यग्रा तदा तत्कर्म चेष्टते ।
 कृत्यहीना यदा सा तु तदैवाचिन्तयद्धरम् ॥४५॥
 कदा मामेष भूतेश कर्ता पाणिगृहीतिकाम् ।
 कदा मया मम ग्ना नानामदभावभावनं ॥४६॥
 इति चिन्तापरा काली स्वप्नेऽपि परमेश्वरम् ।
 अर्चयत्येव परम सदाचिन्तनतत्परा ॥४७॥
 अग्र गता यदा काली प्रध्यायनि महेश्वरम् ।
 तदा तद् वेदभूतेशस्ता निसर्गपरिस्थिताम् ॥४८॥
 किन्तु गर्भगतैर्वीजैर्धूतदेहेति ता तदा ।
 नाग्रहोदिगरिषा काली भार्यायै ह्यधृन्वताम् ॥४९॥

किसी समय ये वह भगवान् हर के लिये कुश—पुष्प आदि—
 ममिधा और जल का मखियो के सहित स्नान का सत्कार करती हुई उस
 समय मे वही पर निवाम किया करती थी ॥४३॥ किसी समय में नियत
 रूप मे शिव के मुख का वीक्षण करती हुई सकाम होकर चन्द्र शेखर के
 के विषय मे चिन्तन किया करती थी ॥४४॥ जिस समय मे कार्यों मे
 व्यग्र होती हुई वह उम कर्म की चेष्टा किया करती थी जब वह कृत्य मे
 रहित होती थी तब ही वह हर के मुख का चिन्तन किया करती थी ।
 ॥४५॥ किस समय मे यह भूतेश्वर मेरा पाणि ग्रहण करने वाले होंगे
 और अनेक सद्भावो की भावनाओं से मेरे साथ रमण करेंगे ॥४६॥
 इसी चिन्ता मे परायण होती हुई काली स्वप्न मे भी परमेश्वर का अर्चन
 करती हुई सदा उन्ही परम प्रभु की चिन्ता मे तत्पर रहा करती थी ।
 ॥४७॥ आगे गमन की हुई काली जब महेश्वर का ध्यान करती थी तब

भगवान् भूतेश ने उमको स्वभाव से परिस्थित हुयी जाना था ॥४८॥
 किन्तु उस समय भूतेशगर्भगत बीजा से घूत देह वाली है—इसमे उस
 समय मे उसको गिरिश ने अघूत व्रत वाली को भार्या बनाने के निये
 ग्रहण नहीं किया था ॥४९॥

महादेवोऽपि ता दृष्ट्वा तदैवेदमचिन्तयत् ।
 कथमेया तपश्चर्याव्रत कुर्याद् गिरे सुता ॥५०॥
 कृतव्रता ग्रहीष्यामि गर्भवीजविवर्जिताम् ।
 काली भार्या स्वदयिता योनिजामतिदूषिताम् ॥५१॥
 व्रतेन चाय सस्वारंगंभवीज विमुच्यते ।
 तस्माद व्रत यथा काली कुर्यान् तद् युज्यते कथम् ॥५२॥
 इति सचिन्त्य भूतेशस्तदा ध्यानमना स्थित ।
 ध्यानोपगतस्य तस्याय नान्यचिन्ता व्यजायत ॥५३॥
 काली त्वनुदिन शम्भु भक्त्या भृशमसेवत ।
 विचिन्त्यन्ती सतत तस्य रूप महात्मन ॥५४॥
 हरो ध्यानपर काली नित्य प्रत्यक्षत स्थिताम् ।
 विष्मृत्य पूर्ववृत्तान्त पश्यन्नापि न पश्यति ॥५५॥
 एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारगो नाम दैत्यराट् ।
 ववाधे सर्वलोकाश्च ब्रह्मणो वरदर्पित ॥५६॥

महादेवजी ने भी उस समय मे उमको देख कर यही चिन्तन
 किया था कि यह गिरि की पुत्री किस प्रकार से तपश्चर्या के व्रत को
 पड़ेगी ॥५०॥ किये हुये व्रत वाली और शम्भु बीज से वज्रित काली को
 जो योनिजा और अति दूषिता है अपनी प्यारी भार्या के रूप मे ग्रहण
 करुंगा व्रत से और गस्वारो मे गर्भ बीज की विमुक्ति होती है । इस
 मे जैसे भी यह कानी व्रत करे—यह कैसे युक्त होवे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥
 मावष्टेय महाप ने कहा—भूतेश शम्भु यह चिन्तन करते हुये उस समय

मे ध्यान म मन लगाने वाले होकर स्थित हो गये थे । ध्यान म समापत्त
उनको अन्य कोई भी चिन्ता न हुई थी ॥५३॥ काली प्रतिदिन
भक्ति भाव से शम्भु का अत्यधिक सेवा किया करती थी उस महात्मा
के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन किया करती थी ॥५४॥ ध्यान म परायण
होकर नित्य ही प्रत्यक्ष म स्थित हुई काली का भुलकर पूव वृत्तान्त को
देखने हुए भी नहीं देखते थे । हमी बीच म तारक नाम वाला दैत्यो का
राजा ब्रह्माजी के वरदान से बहुत ही घमण्डी होकर देवा को और सभी
लोकों को बाध दे रहा था ॥५५॥५६ ।

वशावृत्त्य स लोकास्त्रीन स्वयमिन्द्रो वभूव ह ।

विद्राव्य सकलान् देवान् दत्यान् स्वास्तत् पदेषु च ।

स्वय नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ ॥५७

न यम स्वच्छया लोकास्तस्मिन् राज्ञि नियच्छति ।

न स्वच्छया तथा सूर्या लोकास्तपति तदमयात् ॥५८

चन्द्रस्तु नमसाचिव्य तस्य कुवन् स रश्मिभि ।

वायुना सह सगम्य तत् सेवा विदधेऽनिशम् ॥५९

सदा मौगन्वगाम्माय श यस्तिग्धत्वमयुन ।

न बीजयन् ववौ वायु शासनानस्य भूभृत ॥६०

धनदाऽपि ययासार धनमादाय यत्नत ।

सावधानस्तस्य सेवामकरोत्तारकच्छया ॥६१

अग्निस्तस्याभवत् सूद शासनान्तारकस्य तु ।

व्यजनान्यथ भोज्यानि चक्रे तस्येच्छया तदा ॥६२

निश्रुतिस्तस्य सतत सहित सर्वराक्षसं ।

अश्वान गजान वाहनानि कारयामास साध्वसात् ॥६३

उसने तीनों लोकों को अपने वश म करके वह स्वय ही इन्द्र बन
गया था । उसने सब देवों को भगा कर उनके पदा पर अपने दैत्या का
स्वय नियोजन कर दिया था । और वह देव मृनिया ने भी नियुक्ति

करन वाला बन गया था ॥५७॥ उसके राज्य में यम अपनी इच्छा से
 लोगों का नियोजन नहीं किया करता । उसके भय से मृत्यु भी लोग
 को ताप नहीं दिया करता था ॥५८॥ चन्द्रदेव तो अपनी किरणों के
 द्वारा उनके गम का मन्त्रिण्य किया करता था अर्थात् उनके बिहार की
 लीला में सहायता करता था । वायु के साथ सङ्गत होकर वह रात दिन
 उसकी सेवा में ही निरत रहता था ॥५९॥ वायु सदा ही सुगन्ध—
 गन्धीरता और शीतलता से एवं स्निग्धता से समन्वित होकर उस नृप
 के शासन से उसको जीजित करता हुआ ही बहने लगा करता ॥६०॥
 कुबेर भी तारकनी इच्छा से यथा सार धन यत्न पूर्वक लेकर सावधान
 होकर उसकी सेवा किया करता था ॥६१॥ तारक के शासन से अग्नि
 सूद हो गया था उस समय में उसकी इच्छा में ही सदा भोग्य व्यञ्जनो
 को किया करता था ॥६२॥ निश्च्युति समस्त राक्षसों के सहित निरन्तर
 भय से अश्व—गज और वाहनो को कराता था ॥६३॥

नूतनदभिरप्सरोभिश्च स्तुवद्भि सूतमागर्ध ।
 गायसानैश्च गन्धर्वै सचिब्रीड सुरान द्विपन ॥६४॥
 एव स सर्वलोकास्तु त्रिष्वप्यथ विलोडयन् ।
 लोकेषु सारान् साराश्च देवानामप्यथाग्रहीत् ॥६५॥
 तेनाभियाधिता सर्वे देवा शक्रपुरोगमा ।
 ब्रह्माण शरण जग्मुरनाथा नाथमुत्तमम् ॥६६॥
 ते प्रणम्य सुरा सर्वे पुरुहूतपुरोगमा ।
 इदमूचुर्भहात्मान सर्वलोक पितामहम् ॥६७॥
 लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दपित ।
 निरस्यास्मान् हठादस्मद्विषयान् स्वयमग्रहीत् ॥६८॥
 रात्रिदिव बाधतेऽस्मान् यत्र तत्र स्थिता वयम् ।
 पलायिताश्च पश्याम सर्वकाष्ठासु तारकम् ॥६९॥
 अग्निर्यमाय वरुणो निश्च्युतिर्वायुरेव च ।

तथा मनुष्यधर्मा च सर्वेः परिकरं युतः ॥७०॥

वहतारक सुरो मे द्वेय रघता था और नृत्य करती हुई अप्स-
राओं के साथ—स्तवन करने वाले सूत और मागधो के साथ तथा गान
करने वाले गन्धर्वों के साथ भली भाँति क्रीडा किया करता था ॥६४॥
इस रीति से वह तीनों लोकों में त्रिलोडन करता हुआ लोकों में देवों के
जो भी सार-सार थे उनका सब का उसने ग्रहण कर लिया था ॥६५॥
उसने सभी देवों को जिनमें इन्द्र प्रमुख थे अभि वाधित कर दिया था ।
तब सब देवगण अग्राय होने हुए उत्तम नाथ ब्रह्माजी की शरणा गति में
प्राप्त हुए थे ॥६६॥ उन देवों ने प्रणाम करके जिन सबमें पुरहूत अगुआ
थे महान् आत्मा वाले सब लोकों के पिता मद से यह बोले ॥ ६७ ॥
देवों ने कहा—हे लोकों के स्वामिन् ! दैत्य तारक आपके दिये हुए
वरदान से बहुत ही दमित अर्थात् धमण्डी हो गया है । बल पूर्वक उस
ने हम सबको निरस्त करके हमारे देशों को स्वयं ही ग्रहण कर लिया है
। ३८ । हम लोग जहाँ तहाँ पर स्थित हैं वह हमको दिन-रात बाधा
दिया करता है । हम लोग भागे हुए हैं और सभी दिशाओं में तारक
को ही देखा करते हैं । ६६ । आग्नि—यम—वरुण—निष्कृति—वायु
और मनुष्य धर्म वाला सब परिकरो से युक्त है ॥७०॥

एते तेनादिता ब्रह्मान् देवास्तस्यैव शासनात् ।

अनिच्छाकार्यनिरताः सर्वे तस्यानुजीविनः ॥७१॥

या देववनिताः स्वर्गे ये चाप्यसरसा गणाः ।

तान् सर्वानग्रहीद् दैत्य सारं लोकेषु यच्च यत् ॥७२॥

न यज्ञाः सप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः ।

दानधर्मादिक किञ्चिद् न लोकेषु प्रवर्तते ॥७३॥

तस्य सेनापतिः पापः क्रौञ्ची नामास्ति दानवः ।

स पातालतलं गत्वा बाधतेऽर्हनिश प्रजाः ॥७४॥

तस्मात् तु तारकेणेदं सकल भुवनत्रयम् ।

हृत सर्वं जगत् त्राहि पापात्तस्मात् पितामह ॥७५

वयं च यत्र स्थास्यामस्तत्स्थानं विनिदेशय ।

स्वस्थानाञ्च्यावितास्तेन लोकनाथ जगद्गुरो ॥७६

त्वं नो गतिश्च शास्ता च त्वं नस्त्राता पिता प्रभू ।

त्वमेव भुवनानां च स्थापकः पालकः कृती ॥७७

तस्माद् यावत्तारकाख्ये बह्वी दग्धा प्रजापते ।

न भवामस्तथा कर्तुं भवता युज्यतेऽधुना ॥७८

हे ब्रह्मन् ! ये सब देव गण उसके द्वारा आदित हैं और उनके

ही शासन से उसके ही अनुजीवी होकर उस के कार्यों में इच्छा न होने पर भी निरत रहा करते हैं । ७९ । जो स्वर्ग में देवा की वनिताये हैं और जो अप्सराओं के समुदाय हैं तथा जो भी लोको में सार पदार्थ हैं इन सबका तारक देव ने ग्रहण कर लिया है । ८० । इस समय में न तो यज्ञ ही प्रवृत्त हो रहे हैं और न तापसगण तपश्चर्या ही किया करते हैं । तथा दान धर्म आदि कुछ भी लोको में प्रवृत्त नहीं हो रहे हैं । ८१ । उसका सेनापति पापी कौञ्ज नाम वाला दानव है । वह पाताल के तल में जाकर प्रजा का रात दिन बाधा दिया करता है । ८२ । हे पितामह ! उस तारक ने यह सम्पूर्ण त्रिभुवन को हृत कर लिया है । वह सम्पूर्ण जगत् उसी के हरण किया हुआ है । इस पापी से आप हमारा परित्राण करिए । ८३ । हम लोग जहाँ पर जाकर स्थित रहेंगे उस स्थान को बतलाइए । हे लोकनाथ ! आप तो जगत् के गुरु हैं उसके द्वारा हम सब लोग च्यावित कर दिये गये हैं अर्थात् स्थान से भ्रष्ट कर दिये गये हैं । ८४ । आप ही हम लोगों की गति है—शास्ता है—आपही हमारे रक्षक पिता और प्रभू करने वाले हैं । आप ही भुवनो के स्थापक हैं—पालन करने वाले हैं और कृती हैं । ८५ । हे प्रजापते ! जब तक हम लोग तारक नाम वाली अग्नि में भस्म होकर दग्ध न होंगे अब आपकी दीक्षा ही करना समुचित है । अर्थात् बीसा ही करने के लिए आप योग्य हैं ॥८६॥

सुगणा वचन श्रुत्वा ब्रह्मलोके पितामह ।
 प्रत्युवाच सुरान् सर्वास्तत्कालमदृश वच ॥७६॥
 ममैव वरदानेन तारकाख्य समेधित ।
 न मत्तस्तस्य मरण युज्यते विदिवौकस ॥८०॥
 युष्माकञ्च प्रतीकार कर्तव्य प्रतिकर्मणि ।
 किन्तु मम्यक न शक्नोमि प्रतिकर्तुं प्रचोदित ॥८१॥
 तन्मादि यथा तारकाख्य स्वयमेप्यति सक्षयम् ।
 तथा यूय सविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ॥८२॥
 न मया तारको वध्यो न तथा वनमालिना ।
 न हरेण तथा वध्यो नान्यैरपि सुरैर्नरैः ॥८३॥
 एष एव वरो दत्तो मया तस्मै तपस्यते ।
 उपायश्चिन्तितश्चास्ति तत्कुर्वन्तु सुरोत्तमाः ॥८४॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—ब्रह्मलोक मे पितामह ने सुरा के इस वचन का श्रवण करके उसी समय मे उन समस्त सुरा से उस काल के समान ही वचन उत्तर मे बोला था ॥ ७६ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—मेरे ही वरदान मे तारक नाम वाला समृद्ध हुआ है । हे देवगणो ! अब उसका मरण मुझसे होना युक्त नहीं होगा है ॥ ८० ॥ आपका भी प्रतीकार करना ही चाहिए क्योंकि उसका कम जैसा है वैसा ही प्रतीकार होना भी चाहिए किन्तु मैं आपका द्वारा प्रेरित होकर भी भली भाँति कुछ भी प्रतिकार कर नहीं सकता हूँ ॥ ८१ ॥ इस कारण से जैसे भी तारक नामधारी स्वयं ही मर्त्य को प्राप्त हो जावेगा वैसा आप लोग मुझसे समझ लें मेँ ता उपदेश ही कर दन वाला हूँ ॥ ८२ ॥ मेरे द्वारा तारक वध नहीं होगा अर्थात् मुझसे उसका वध नहीं होगा और वनमाली प्रभु के द्वारा भी वह वध के योग्य नहीं होगा । न हर के द्वारा तथा अन्य गुरुओं और मनुष्यों के द्वारा वह मारा जा सकता है ॥ ८३ ॥ उसका तपश्चर्या करते हुए यह ही वरदान मेँ दे दिया था । हे

सुरोत्तमो ! इसका एक उपाय सोच लिया गया है उसे ही आप करिए ॥८४॥

सती दाक्षायणी पूर्वं त्यक्तदेहा स्वजन्मने ।
 अगच्छन्मेनका देवी शैलराजस्य योषितम् ॥८५॥
 ता समुत्पादयामास मेनकाजठरे गिरि ।
 सद्यमीमिव पुरा द्याता भृगु स्वतनयो मम ॥८६॥
 तामवश्य महादेव कुर्यात् पाणिगृहीतिकाम् ।
 यथा स नचिरात्तस्यामनुरक्तो भवेत् सुरा ॥८७॥
 तथा विदध्व सुतरां तत्तज्ज प्रतिकर्तुं व ।
 तमूर्ध्वं रेतस शम्भु संव प्रच्युतरेतसम् ॥८८॥
 कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यवतापरा ।
 तस्य तेजश्च्युत गच्छ तस्माद् यो जायते सुत ॥८९॥
 स एव तारकाप्यस्य हन्ता नान्यस्तु विद्यते ।
 सा सुता गिरिराजस्य साम्प्रत रुढयीवना ॥९०॥
 तपस्यन्त गिरिप्रस्थे नित्य पर्यपते हरम् ।
 वाक्याद् हिमवत सा तु काली नाम्ना निषेवते ।
 सखिभ्या सह सर्वज्ञ ध्यानस्थ परमेश्वरम् ॥९१॥

पूर्व समय में सती दाक्षायणी ने देह का त्याग कर दिया था और अपने जन्म धारण करने के लिए शैलराज की योषित में नका देवी के यहाँ गयी थी । ८५ । गिरिराज ने उनको मेनका के उदर में समुत्पादित किया था । वह पहिले साक्षात् सद्यमी की ही भाँति प्रसिद्ध हुई थी— भृगु मेरा ही अपना पुत्र था । ८६ । महादेव अवश्य ही उनका पाणिग्रहण करने में । ऐ मुने ! जग प्रसार में वह शीघ्र ही उत्तम अनुराग करने वाले हैं । ८७ । उसी भाँति आप परे । उनका तेज ही आप गदगा प्रतीकार करने वाला है । वे शम्भु भगवान् उर्ध्वं रेतस हैं उनके बीचों बीच प्रच्युत बहो करन वाली है । उसी की ऐसी सामर्थ्य है

हमरो कोई भी अन्य अवला ऐसी शक्ति शक्तिनी नहीं है । उमका
च्युन हुआ जो तेज है उनने जो भी पुत्र उत्पन्न होगा ॥८८॥८९॥ वह
ही इस तारक नामक का हनन करने वाला है अन्य कोई भी नहीं है ।
वह गिरिराज की पुत्री इस समय मे गमाहूँ यौवन वाली अर्थात् पूर्ण
युवनी है । ८० : मिरि के प्रस्य पर तपश्चर्या नित्य ही करने वाले उन
भगवान् शम्भु की वह सेवा कर रही है । वाली नाम वाली वह हिम-
वान् के वाक्य मे ही अपनी सखियों के साथ ध्यान मे स्थित परमेश्वर
सर्वज्ञ की वह सेवा कर रही है ॥८९॥

तामग्रतो वनमाना त्रिलोकवरवर्णिनीम् ।

ध्यानासक्तो महादेवो मनसापि न चेच्छति ॥९०॥

यदा समीहते भार्या काली च चन्द्रशेखरः ।

तथा कुरुध्वं त्रिदशा नचिरादेव यत्नतः ॥९१॥

स्वस्थान भवता स्वर्गस्तस्मान् तारकमप्यहम् ।

निवर्तयिष्ये सगम्य गच्छध्व विगतज्वराः ॥९२॥

इत्युक्त्वा सर्वलोनेशस्तारकाख्यमुपस्थितः ।

उपगम्य वचन ममानाप्येदमब्रवीत् ॥९३॥

भो भो तारक मा स्वर्गराज्य त्वं परिश्राधि भोः ।

तदर्थं न तपस्तप्त ममये भवता पुरा ॥९४॥

वरो नापि मया दत्तो न मया स्वर्गराजता ।

तस्मान् स्वर्गं परित्यज्य क्षिती राज्यं समाचर ॥९५॥

देवभोग्यानि नर्त्रव मम्ननिप्यन्ति तेऽमुर ।

इत्युक्त्वा सर्वलोनेशमन्त्रैवान्तर्गधीयत ॥९६॥

अपने आगे विद्यमान रहने वाली तीनों लोकों मे हर वर्णिनी
को ध्यान मे समागत महादेव मन मे भी नहीं चाहते हैं ॥ ९० ॥ चन्द्र-
शेखर जिस रीति मे भी उस वाली को अपनी भार्या बनाना चाहे हे
देवगर्वा ! आज नीच वैसा ही जन्मपूर्वक शीघ्र ही करे ॥ ९१ ॥ आप

लोगों का स्वर्ग अपना स्थान है । उससे मैं तारक को भी निवृत्त कर दूँगा । मैं उसके साथ सङ्गत होऊँगा । आप लोमदुखा से रहित होकर ही यहाँ से गमन कीजिए ॥ ६४ ॥ इतना कहकर सब लोको के स्वामी तारक नामक दैत्य के पास उपस्थित हुए थे । उसके समीप में जाकर यह वचन का सम्भाषण करके उन्होंने कहा था '॥६५॥ हे तारक ! आप स्वर्ग के राज्य का शासन न करें । उसके लिये आपने पहिले तपस्या नहीं की थी ॥ ६६ ॥ मैंने भी ऐसा वरदान नहीं दिया था कि भरे द्वारा आप स्वर्ग के राजा [होवें] । इस कारण से स्वर्ग का परित्याग करके भूमि पर ही राज्य के शासन को करें ॥ ६७ ॥ हे अमुर ! देवों के योग्य भोगों का उपभोग करने के लिये आपको वही पर भूमि में सब पदार्थ प्राप्त होंगे । इतना कहकर सब लोको के स्वामी ब्रह्माजी वही पर अन्तर्धान हो गये थे ॥६८॥

स तारक परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्ययात् ।
 तत्रैव सस्थितो देवान् वाधते स्म स नित्यशः ।
 इन्द्र करप्रद चक्रे निदेशरथ महाबलम् ॥६६॥
 तमिन्द्र. सतत देवभोग्यानि वितरन् मुहुः ।
 सेवमान. क्षमो नाभूत् सन्तोषयितुमीश्वरम् ॥१००॥
 एव तेनादिता देवा मन्युना परिपीडिताः ।
 विधातुरुपदेशेन यत्न चक्रुर्हरान्वये ॥१०१॥
 तत इन्द्रोऽथ गुरुणा सगम्य कृतनिश्चयः ।
 कुमुभेषु समाहूय वचन चेदमग्रवीत् ॥१०२॥
 स्वयेद पाल्यते विश्व त्वया विश्व प्रमूयते ।
 त्वं ब्रह्मविष्णुराणा प्रीतिहेतु पुरा भव. ॥१०३॥
 ब्रह्मा प्रीत्या यथा पूर्वमगृह्णाच्चरितव्रताम् ।
 सावित्री माधवी लक्ष्मी गती दादायणी हर. ॥१०४॥

ता प्रीतये पुरा तेषा देवेशाना यथा कृता ।

तथैव कुरु मे प्रीति काम प्राणमृता सदा ॥१०५॥

वह तारक भी स्वर्ग का परित्याग करके इसके उपरान्त भूमि पर समागम हो गया था । वहाँ पर ही मस्थिर होकर वह नित्य ही देवों को बाधित किया करता था । उसने इन्द्र को बर देने वाला बना दिया था और उस महान् वनवान् को अपने निदेश में स्थिर कर दिया था ॥ ८८ ॥ इन्द्रदेव उसको निम्नतर देवों के भोगने के योग्य पदार्थों को समर्पित करते हुए भी भेदा करके उस ईश्वर को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हुआ था ॥ १०० ॥ इस रीति में उसके द्वारा उत्पीडित हुए और क्रोध में परिपीडित होने हुए देवों ने विद्याता उपदेश से भगवान् शम्भु के वश में यत्न किया था । अशम्भु को सुतोत्पत्ति हो जावे— इस कार्य के सम्पादन करने में प्रयत्नशील देवगण हो गये थे ॥ १०१ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रदेव गुरुदेव के साथ मङ्गल होकर गेमा निश्चय कर लिया था कि शम्भु को सुतोत्पत्ति के लिये उद्यत किया जावे । इन्द्र ने कामदेव को बुला कर उसमें यह वचन कहा था ॥१०२॥ इन्द्र देव ने कहा—आपके द्वारा इस विश्व की प्रभूति की जाती है और आपके हाँ द्वारा विश्व का पालन किया जाता है । पहिले आपही ग्रहा—विष्णु और रुद्र की प्रीति का हेतु हुए थे । १०३ । ग्रहाओं ने पहिले समय में प्रीति में जिस प्रकार में चरित व्रत वाली मावित्री का ग्रहण कर लिया था । भगवान् माधव ने लक्ष्मी का ग्रहण किया था और भगवान् हर ने दाशायणी का ग्रहण कर लिया था ॥१०४॥ पहिले समय में देवेशों की प्रीति के लिये जैसे उनको कर दिया था उसी भाँति मेरी भी प्रीति अब करिए । आप तो सदा ही प्राणधारियों की प्रीति के करने वाले रहे हैं ॥१०५॥

न त्व न कस्यचित् स्वर्गे पाताले वाथ भूतले ।

प्रिय प्राणमृता काम मत्तन जपता मन ॥१०६॥

देवदानवयक्षाणा रक्षमा मानुषस्य च ।
 त्व पालकश्च कर्ता च हृदये च प्रवर्तसे ॥१०७॥
 तस्मात् त्व सर्वजगता हिताय कुर चेष्टितम् ।
 देवदानवयक्षाणा मानुषाणा महात्मनाम् ॥१०८॥
 एतच्छ्र त्वा वचस्तस्य शत्रुस्य मकरध्वज ।
 देवराजमुवाचेद सुप्रीतस्तद्वचोऽमृतं ॥१०९॥
 यथाहमोशिता चक्र तत्कर्म विदित त्वया ।
 तस्मान्ममोचित शक्य करिष्ये तन्निदेशय ॥११०॥
 पचैव वाणा मृदवस्ते च पुष्पमया मम ।
 चापस्तथा पुष्पमय शिञ्जिमी भ्रमरात्मिका ॥१११॥
 रतिर्मे दयिता जाया वसन्त सचिवो मम ।
 यन्ता मलयजो वायुमित्र मम मुधानिधि ॥११२॥

हे काम ! आप स्वर्ग—पाताल और भू मण्डल में किमके प्रिय नहीं है । आप जगत् के प्राण धारियों का सभी का अभिमत हैं ॥१०९॥ देव—दानव—यक्ष—राक्षस और मनुष्यों के आप पालक तथा कर्ता हैं और आप सभी के हृदय में प्रवृत्त रहा करते हैं ॥१०७॥ इसी कारण मैं आप अथ सम्पूर्ण जगत् के हित के सम्पादन करने के लिये विशेष चेष्टित कीजिये । इसमें देव—दानव—यक्ष और महात्मा तथा मनुष्यों का हित हो वही करिए ॥१०८॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—मकर ध्वज ने यह इन्द्र का वचन श्रवण करके उसके वचन रूरी अमृतों से बहुत ही प्रसन्न होकर देव राज में यह वचन कहा था ॥१०९॥ जहाँ मेरी ईश्वरता है । हे शक्र ! वह कर्म आपको ज्ञात ही है इस कारण से मेरे लायक किये जाने के योग्य जो मैं कर सकता हूँ उसे मैं करूँगा । आप इसका निदेश कीजिये ॥११०॥ मेरे पाँच ही वाण हैं जो बहुत ही योग्य पुष्पमय हैं । मेरा चाप भी पुष्पों से ही पूरिपूर्ण है और उस चाप की डोरी भ्रमरा के स्वरूप वाली ही है ॥१११॥ रति मेरी प्यारी

जाया है । वसन्त मेरा सचिव है । मनय से सम्भूत वायु मन्ता है और मेरा मित्र सुप्रानिधि चन्द्रमा है ॥१११॥

सेनाधिपो मे शृंगारो हावा भावाश्च सैनिका ।
सर्वे मे मृदवोऽङ्गूरा अह चापि तथाविध ॥११२॥
यद् येन यज्यते कार्यं धीमास्तत्तेन योजयेत् ।
यम योग्य तु यत् कर्म तस्मात्तस्मिन् नियोजय ॥११३॥
यत् कारयितुमिच्छामि भवता तन्मनोभव ।
तत्तो समुचितं कर्म तस्मिन् परिवृतो भवान् ॥११४॥
कृतकर्मापि तत्र त्वं कृती चापि मनोभव ।
त्वदन्यं किन्तु दुःसाध्यं तत्त्वा तत्र नितोजये ॥११५॥
श्रूयते हि तपस्यन्तं ध्यानस्य वृषभध्वजम् ।
गिरेहिमव प्रस्थे निराकाक्ष वधूकृती ॥११६॥
तत् पितुर्बन्धनात् काली तपस्यन्तं निषेवते ।
सखिम्या सहिता नित्यं हरस्यानुमतेऽगुना ॥११७॥
आरुढयौवना ता तु स्त्रीरत्नमपि सुन्दरीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो नेहते मनसापि च ॥११८॥
सानुरागो यथा तस्या जायते वृषभध्वज ।
तथा विधत्स्व देवानां हिताय जगतामपि ॥११९॥

मेरी सेना का अधिप शृङ्गार है और हाव तथा भाव मेरे सैनिक हैं । ये सभी मेरे सहयोगी क्रूरता से रहित और कोमल हैं और मैं भी वैसा ही मृदु हूँ । ११२ । जिसके द्वारा जो भी कार्य युक्त होता है आप तो धीमान् हैं उम्मी को उसमें योजित कर दीजिये । मेरे करने का जो भी समुचित कार्य हो उसका भी नियोजन कीजिये ॥११३॥ इन्द्र देव न रहा—जिमके कराने की मैं इच्छा कर रहा हूँ हे मनोभव । आपसे आ भी कराना चाहता हूँ । यह आपका समुचित कर्म है । उसमें आप परिवृत हैं ॥११४॥ आप उम्मी शूत वर्मा हैं अर्थात् आपको उस

का अनुभव है । हे मनोभव आप कृती हैं । आपको छोड़ कर अन्यो से वह कर्म दुस्साध्य है । इसी से मैं आपका नियोजन करता हू । १११६ । यह सुना जा रहा है कि हिमालय के प्रस्थ मे वृषभध्वज तपश्चर्या करने वाले—ध्यान मे स्थित हैं और यधू के लिये वे काङ्क्षा मे रहित हैं । १११७ । उन शम्भु को पिता के वचन से नाली सखियों के सहित नित्य ही हर की अनुमति मे होश्वर अब सेवा किया करती है । वे शम्भु तपश्चर्या कर रहे हैं । १११७ । यद्यपि वह समारूढ यौवन वाली युवती है—स्त्रियो मे रत्न के समान परम दिव्य है और अत्यधिक सुन्दरी भी है किन्तु महादेव ध्यान मे ऐसे आसक्त हैं कि उमको मन मे भी नहीं चाहते हैं । १११८ । जिस रीति मे भी भगवान् वृषध्वज उसमे अनुराग करने वाले हो जावे वैसे ही आप कार्य करिये । इसमे देवों का और जगतों का परम हित है यही जान कर आप ऐसा करे ॥१११६॥

सह सत्या यथा रेमे सानुरागो वषध्वज ।

तथैतया गिरिजया रमता तन्कृतेन वै ॥११२०

तस्या कृते तु यत्तेज प्रच्युत यद् हरस्य वै ।

ततो यो जायते सोऽस्मारस्तारकादुद्धरिष्यति ॥११२१

तत स देवराजस्य वच श्रुत्वा मनोभव ।

प्राप्तकाल च मस्मार शाप ब्रह्मकृत पुरा ॥११२२

सन्ध्या प्रतिविधातार यदा शस्त्र परीक्षितम् ।

कामोऽहनन पुष्पगर्गणस्तदा तमशपद्विधि ॥११२३

शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्व भविष्यसि द्विजोत्तमा ।

यदा दुर्याद् गिरिसुता हर पाणिगृहोन्निकाम् ॥११२४

तदा भवान् शरीरेणागमिष्यति समग्रताम् ।

इति स्मृत्वा विधे शाप भीतोऽपि भवरध्वज ॥११२५

अगीचक्रे शक्रवाक्यान् वात्स्या योजयितु हरम् ।

इद च वचन प्रोचे तत्त्वानसदृश पुन ॥११२६

वृषभ ध्वज सती के साथ जिस प्रकार से भी उस सती के साथ अनुराग वाले होकर रमण करे । उनके करने में इस गिरिजा के साथ रमण में तत्पर होवें नैसा ही करे । १२० । उनके रमण करने पर हर का जो तेज प्रच्युत होगा और उसमें जो भी पुत्र समुत्पन्न होगा वही हमारा इस तारक से उद्धार करेगा । १२१ । मार्कण्डेय मुनि ने कहा— इसके अनन्तर कामदेव ने देव राज के वचन का श्रवण करके पहिले ब्रह्माजी के दिये हुए शाप का काल प्राप्त हो गया है—यह स्मरण किया था । १२२ । मन्त्र्य करने वाले विधाता पर जिस समय में अपने शस्त्र की परीक्षा की थी उस समय में कामदेव ने पुष्प के बाणों में प्रहार किया था और उसी अवसर पर विधाता ने उसको शाप दे दिया था ॥२३॥ हे द्विजोत्तमो विधाता ने कहा कि तू शम्भु के नेत्र की अग्नि से विदग्ध हो जायगा । जिस समय में भगवान् हर गिरि की पुत्री को पाणि प्रणीता भार्या करेगे उसी समय में आप शरीर के द्वारा सम्पूर्णता को प्राप्त कर ले गे । इस विधाता के शाप का स्मरण करके भयभीत भी कामदेव ने शक्र के वचन में हर को काली के साथ योजित कर देने के कार्य को स्वीकार कर लिया था । और फिर उन बात के सदृश कामदेव ने यह वचन कहा था ॥१२६॥

करिष्ये तद्वच शक्र हर सगमयाम्यहम् ।

काल्या गिरिजया सार्धं दाक्षायण्या यथा पुरा ॥१२७

किन्त्वेक मम साहाय्य कर्ता त्व हरमोहने ।

यदा सन्मोहनेनाह हर सन्मोहयामि च ॥१२८

तदा कुरु सहाय त्व स्वस्थनाप्याययस्व माम् ।

प्रविश्याह मुरभिणा न चिराच्छक्राश्रमम् ॥१२९

विधाय पूर्वं मनसो विचार हर्षजेन तु ।

समोहनेन सुदेह मोहयिष्ये वृषध्वजम् ॥१३०

स्मरिष्यसि त्व मन्प्राप्ते काले मा मम पालने ।

अहं गच्छामि सहितं तत्त्वतुं वलमूदन ॥१३१॥
 इत्युक्त्वा स जगामाथ मदनं शंकराश्रमम् ।
 शक्रोऽपि त्रिदशान् सर्वानिदमाह वचस्तदा ॥१३२॥
 यूयं कुरुध्वं साहाय्यं यत्र याति मनोभव ।
 तत्र तत्रानुगम्यं व समये मा च वोधत ॥१३३॥

मदन ने कहा—हे इन्द्र देव ! मैं आपके वचन यां पूर्ण करूँगा और गिरिजा वाली के साथ भगवान् शम्भु को मङ्गत कर दूँगा जैसा कि पहिले दाक्षायणी के साथ किया था ॥१३३॥ किन्तु इस शम्भु के मोहन करने में आप मेरी एक सहायता करने वाले होंगे । जिस समय मैं सम्मोहन के द्वारा हर का सम्मोहन करूँ उस अवसर पर आप मेरी सहायता करें और स्वस्थ मुझको आप्यायित करें । मैं सुरभि के द्वारा प्रवेश करके अर्धान् शङ्कर के आश्रम में शीघ्र ही प्रविष्ट होकर सर्व प्रथम दर्पण के द्वारा मन में विकार समुत्पन्न करके फिर सम्मोहन के द्वारा टटना से वृषध्वज को मोहित कर दूँगा ॥१३४—१३५॥ आप काल के प्राप्त होने पर मेरा स्मरण करो और मेरा पालन वा ध्यान रखो । हे वलमूदन ! वह कार्य करने के लिये मैं सहित जाता हूँ ॥१३६॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इतना कहकर वह कामदेव शङ्कर के आश्रम में गमन कर गया था । इन्द्र ने भी उस अवसर पर सब देवों से यह कहा था कि जहाँ पर काम देव जाना है वहाँ पर आप लोग इसकी सहायता करें । वहाँ-वहाँ पर अनुगमन करके समय पर मुझको बनाओ ॥१३७॥

यदा समोहनेनाथ समोहयति शकरम् ।
 तदामपि यास्यामि तत्र वोधत मा सुरा ॥१३४॥
 इत्युक्तास्तेन शङ्गेण देवा जग्मुर्मनोभवम् ।
 सोऽपि गत्वा यत्र हरो गगावतरणे गिरे ।
 हिमभाऽरभूत सानी सुराणि च न्ययोजयन् ॥१३५॥

ततस्तत्र गते सम्यक्सुरभौ तस्य लक्षणम् ।
 अभवन्नचिरादेव तत्पुष्पमलतासु च ॥१३६॥
 पुष्पिना किञ्चुकास्तत्र मञ्जुला वेतवास्तथा ।
 सरासि च पद्मानि मङ्गिकाराश्च जन्तवः ॥१३७॥
 ववौ वायुश्च गम्भीरो गन्धिल पुष्परेणुभिः ।
 शनं शनं मुखवर कर्पयन् स हि मानसम् ॥१३८॥
 पक्षिणश्च मृगाश्चैव ये चान्ये प्राणधारिणः ।
 मिद्धाश्च किन्नराश्चैव द्वन्द्वभाव वितेनिरे ॥१३९॥
 चूता कुन्मुमितान्त्र नवस्तवकभूपिताः ।
 अशोका पाटलाश्चैव नागकेशरकारुणाः ॥१४०॥

जिस समय मैं मम्मोहन के द्वारा यह कामदेव भगवान् शंकर का मम्मोदन करता है । हे मुरगणों ! उस समय मैं भी वहाँ पर जाऊँगा—ऐसा मुझको जान लो ॥१३४॥ इस प्रकार मैं इन्द्रदेव के द्वारा कहे गये देवगण मनोभूव अर्थात् कामदेव के पास चले गये थे । वह कामदेव भी गमन कर गया था जहाँ पर मम्मू गिरि के गङ्गावनरण स्थल में हिमालय के शिखर पर थे उसने मुरगों को नियोजित कर दिया था ॥ १३५ ॥ इसके अनन्तर सुरभि के वहाँ पर पहुँचने पर जिसका कि यह लक्षण था कि शीघ्र ही भली भानि तन्मलता और गुल्मों में पुष्प खिल गये थे । वहाँ पर किञ्चुक विवर्धित थे और मञ्जुल के- तक भी पुष्पित हो गये थे । सभी सरोवर खिने हुए पद्मों से शोभाय- मान हो गये थे तथा सभी जन्तुओं को विकार हो गया था ॥ १३६— १३७ ॥ उस समय मैं मुगन्धित वायु बहने लगी थी जिसमें पुष्पा के रेणु सम्मिलित थे । जो घीर घीर मुखवर होकर मन को वषित कर रहा था ॥१३८॥ सभी पक्षी गण—मृगवर्ग और जो भी प्राण धारी जीव थे और मिद्ध एवं किन्नरगण ने द्वन्द्व भाव को विभूत किया था अर्थात् सभी प्राणी अपनी प्रियाओं के साथ रहने लगे

ये ॥१३६॥ आम्नो म वीर आगये ये और वे नूतन वीरो के स्तवको (गुच्छो) से भूषित हो गये थे । अशोक पाटल और नाग केशर काष्ठ सभी विकार से समन्वित थे ॥१४०॥

सविकारा गणाश्रामन् शकरस्य तदा द्विजा ।
 प्रत्यक्षतो ययुस्तेऽपि विकार शम्भुसाध्वसात् ॥१४१॥
 भ्रमन्ति स्म तदा तत्र भ्रमरा कुसुमोदभवम् ।
 पिवन्तो बहुशश्च्युत गुञ्जन्न सह जायया ॥१४२॥
 एव प्रवृत्ते सुरभौ शृंगारोऽपि गणै सह ।
 हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम् ॥१४३॥
 मदन सगरास्तन निवसश्चिरमेव हि ।
 न दृष्टवास्तदा शम्भोश्छिद्र येन प्रवेक्ष्यति ॥१४४॥
 यदा च प्राप्तबिवरस्तदा भयविमोहित ।
 नाग्रेसरोऽभवत् तस्य मदनी रतिवारित ॥१४५॥
 एव यातस्नस्य काल प्रभृतो द्विजसत्तमा ।
 निरूपयन् न वा चाप छिद्र तस्य यतेस्तदा ॥१४६॥
 ज्वलत्कालाग्निसकाश भानुलक्षममप्रभम् ।
 दयानस्य शकर को वा ममासादयिषु क्षम ॥१४७॥

ह द्विजो ! भगवान् शम्भु के गण भी विकार मुक्त होकर प्रत्यक्ष में वे भी विकार व से हो गये थे किन्तु शम्भु के भय से इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे । उस अवसर वहाँ पर भ्रमर कुसुमो से उद्भूत रंग का गान करने हुए जो अत्यधिक च्युत हो रहा था अपनी जाया के साथ गुञ्जार करने लगे थे ॥१४१॥१४२॥ इस प्रकार से सुरभि व प्रवृत्त हो जान पर शृङ्गार भी अपने गणों के साथ हाथ-पाँवों से समुत्त होकर उगने भी हर व समीप में प्रवेश किया था ॥१४३॥ वहाँ पर कामदेव तो अपनी गणों के सहित चिरकाल तक निवास करने वाला हो गया था । उस समय में उगने कोई भी ऐसा छिद्र शम्भु में नहीं देखा

था जिसके द्वारा वह प्रवेश कर जावे ॥१४४॥ जिस समय म उसने छिद्र प्राप्त किया था उस समय मे वह भय से विमोहित हा गया था मदन आगे गमन करने वाला नही हुआ था क्योंकि उस पत्नी रति क द्वारा वह वारित कर दिया गया था ॥१४५॥ हे द्विज सत्तमो ! इस प्रकार से उसको बहुत—सा समय व्यतीत हो गया था । उस समय म उन मति शम्भु का छिद्र का देखते हुए भी उसने कोई भी छिद्र नही प्राप्त किया था ॥१४६॥ प्रज्वलित कालाग्नि सदृश और लाधा सूर्यो के समान प्रभा वाले ध्यान म स्थित भगवान् शङ्कर के पास पहुचन के लिय कौन समय था । अर्थात् किसी की भी ऐसी शक्ति नही थी ॥१४७॥

अर्थफदा गिरिसुता काली नस्याभवत्पुर ।

कृत्वा परीष्टि कर्तव्या सखिभ्या प्रणता स्थिता ॥१४८॥

शकरोऽपि तदा ध्यान त्यक्त्वा तत् अणमास्थित ।

योजयन् स्वगणान् कृत्ये ज्यातिश्चिन्तानिर्वर्जित ॥१४९॥

तच्छिद्र प्राप्य मदन प्रथम हपणेन तु ।

वाणेन हपयाभास पाश्वंस्थ चन्द्रशेखरम् ॥१५०॥

शृङ्गारश्च तदा भावहवैश्च सहितो हरम् ।

जगाम कामसाहाय्य कुर्वन् सुरभिणा सह ॥१५१॥

हर्षणेनातिहृषित शृङ्गाराद्यनिपेक्षित ।

शकरो वदन काल्या साकूत सव्यलोकयत् ॥१५२॥

तत् प्राप्य विवर काम पुष्प चापे न्ययोजयत् ।

समोहन पुष्पवृत्त पुष्पमालाविवर्धितम् ॥१५३॥

तदाभूद् दक्षिणे पाश्वे रति प्रीतिस्तु वामत ।

पृष्ठे वनन्ततूणीर पीप्पमादाय सुन्दर ॥१५४॥

इसके अनन्तर एक बार गिरि की पुत्री काली उनके सामने हुई थी जो करने के योग्य मेवा थी उस वरके वह सखियों के साथ प्रणत

होकर स्थित हो गई थी ॥१४८॥ भगवान् शङ्कर भी उस अवसर पर अपने ध्यान का त्याग करके उसी क्षण में समास्थित हुए थे । वृत्त्य में अपने गणों को योजित करते हुए वे ज्यातिस्वरूप चिन्ता से रहित थे ॥१४९॥ कामदेव ने वही छिद्र प्राप्त करके सबसे प्रथम हर्षण वाण के द्वारा पार्श्व में स्थित शम्भु को हर्षित किया था ॥१५०॥ और शृङ्गार भी हाव—भावों के सहित होकर वह शङ्कर के समीप गया था । वह शृङ्गार सुरभि के साथ में कामदेव की सहायता कर रहा था ॥१५१॥ हाण वाण के द्वारा वे अति हर्षित होते हुए शृङ्गार आदि के द्वारा निषण्णित हुए थे भगवान् शङ्कर ने विशेष अभिप्राय के सहित काली के मुख को अच्छी तरह से अवलोकित किया था ॥१५२॥ कामदेव उसी छिद्र को प्राप्त करके पुष्प को चाप में नियोजित किया था । पुष्प से धृत तथः पुष्प माला से रहित सम्मोहन को छोड़ा था । १५३ । उस समय में उसके दक्षिण पार्श्व में रति थी और वाम में प्रीति थी । पीछे की ओर सुन्दर वगन्त सूणीर और पीप्य का समादान करके स्थित था ॥१५४॥

आनणपूरित पुष्प चापमाकृष्य सयत ।

यदा मनोभयो वायुस्तदा त समुपेयिवान् ॥१५५॥

सहिते पुष्पवाण तु गिरिजा चन्द्रशेखर ।

जातेन्द्रियविभार सन् जिघृक्षु सगमेऽभयत् ॥१५६॥

अमरा शक्तसहिनास्तदा सर्वे वियद्गवता ।

सम्य मनोभव मेने मुरकृत्ने निवशितम् ॥१५७॥

अथ मस्मृत्य सयम्य निगृह्य विवृति तदा ।

इन्द्रियस्य महादेव सहस्रैव व्यचिन्नयत् ॥१५८॥

योनिजा गिरिजा काली तपोव्रतविचरिताम् ।

वय गगनवामोऽह धतुं मिच्छामि न हठार ॥१५९॥

तपोव्रतविद्वामी तपश्चरणसत्त्वताम् ।

म्वयमेव गृहीष्यामि गती दाक्षायणीमिव ॥१६०॥

कथं विकृतकामोऽहमनिच्छन्निव साम्प्रतम् ।

केनापि चाकृष्ट इव चिकीर्षुः सगमोद्भवम् ॥१६१॥

जिम समय में कामदेव ने मयत होकर पुण्य चाप को कानो तक छोड़ कर प्रभु तथा उसी समय में उसके समीप में वायु ममुपस्थित हो गया था । पुण्य चाप के सहित होने पर चन्द्र शेखर प्रभु ने गिरिजा का अवलोकन किया था और इन्द्रिय के विकार समुत्पन्न होने वाले होकर सगम के लिये ग्रहण करने की इच्छा बाल में हो गये थे । १५६ । इन्द्र के सहित सब देवगण उस अवसर पर आकाश में स्थित थे । उन्होंने कामदेव का परम सम्म माना था क्योंकि वह देवों के कृत्य में निर्वाणित हो रहा था । १५७ । इसके अनन्तर महादेव जी ने सस्मरण करके और उस अवसर पर मानसिक विचार को रोककर जो कि इन्द्रिय का हुआ था उन्होंने तुरन्त ही यह चिन्तन किया था । १५८ । गिरिजा यह काली योनिजा है और तपोवन से रहित मैं बल पूर्वक इसको पकड़ने की कैसे इच्छा कर रहा हूँ और क्यों मगम की कामना वाला होगया हूँ । १५९ । तप के वन में गवित्र जगो वाली और तप के समाचरण से संस्कृत सती को दाश्रायणी की ही भांति मैं स्वयं ही ग्रहण कर लूँगा । १६० । मैं इस समय में इच्छा न करने हुए भी विकार से मुक्त काम वासना वाला हो गया हूँ । मैं किसी के द्वारा मगमोद्भव की करण की इच्छा वाले से समाकृष्ट सा हो गया हूँ ॥१६१॥

एव विकारहेतु स निश्चिन्वन्निन्द्रियस्य तु ।

पुरोवलोकयामास सहितेषु मनोभवम् ॥१६२॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विज्ञातसमय मुरान् ।

दृष्ट्वा स्थानादाजगाम तत्प्रमाजमनुग्रहान् ॥१६३॥

तत स कुपितो दृष्ट्वा सन्धितेषु मनोभवम् ।

ज्ज्वाल ज्वलनप्रद्यम्त दिग्धक्षु प्रसह्य तु ॥१६४॥

कामोऽयं समय ज्ञात्वा मा मोहयितुमिच्छति ।

मनो मे खववश वतुं तन्नयामि यमक्षयम् ॥१६५॥
 एव विचिन्तमानस्य नेत्रोद्भाविततेजसा ।
 वर्धतो ज्वलनो भूत्वा क्रोध नेत्रान् समर्ज ह ॥१६६॥
 त क्रोधान्नि सरिप्यन्त जातवेद स्वरूपिणम् ।
 ज्ञात्वा कामस्य सान् धाणान् पीप्पचापनिपण्णयान् ॥१६७॥
 शक्ति प्राणास्तयात्मानमाकृप्यापालयद्विधि ।
 उत्सारयामास तदा वसन्त स पितामह ॥१६८॥

इस प्रकार मे इन्द्रिय के विकार क हतु की खोज करत हुए हुए उन्होंने अपने सामन धाण को सहित किये हुए कामदेव को देखा था ॥ १६२ ॥ इसी बीच मे ब्रह्माजी समय को विज्ञात करके सुरो को देखकर अनुग्रह से अपने स्थान से उस समान मे समागत हो गये थे ॥१६३॥ इसके अनन्तर कण का स ध्यान किये हुए कामदेव को देखकर वे शम्भु अधिक कुपित हो गये थे । वे अग्नि के समाज ही प्रज्वलित हो गये थे और उसको बल पूवक दग्ध कर देने की इच्छा वाले हो गये थे ॥१६४॥ यह काम समय का ज्ञान करने मुक्तो मोहित करने की इच्छा करता है—मेरे मनको अपने वश मे करना चाहता है इसलिय इसको यम अय को पहुँचाता हूँ ॥ १६५ ॥ इस प्रकार से चिन्तन करत हुए भगवान् शम्भु के नेत्र स उद्भावित तेज से जो कि बढ़ रहा था अग्नि होकर नेत्र से क्रोध की उत्पत्ति की थी ॥ १६६ ॥ क्रोध स निवृत्तने वाली जात वेदा के स्वरूप वाली का ज्ञान प्राप्त करके कामदेव पुरयो के भाव को निष्पण कामदेव के धाणो को जान करके शक्ति का, प्राणा को तथा आत्मा का आकषण करके विधाता ने पालन किया था और उन पितामह ने उम समय मे यम न को उत्साहित किया था ॥१६८॥

निजशक्त्या तदा शम्भुक्रोधाद्रक्षन्मनोभवम् ।

अथावाशगता देवा क्रुद्ध दृष्ट्वा महेश्वरम् ॥१६९॥

प्रसीद जगता नाथ कामे क्रोध परित्यज ।
 तदया पुरा सृष्ट शम्भुरूपेण कमया ॥१७०॥
 यन चायोजित कम तत्करोति मनोभव ।
 तस्मात् त्व मदन शम्भो क्रोधग्निमुपसहर ॥१७१॥
 प्रसीद भवभूतेश भक्त्या त्वा प्रणम्य वयम् ।
 इति स्म वदता तेषाममराणा तदानल ॥१७२॥
 लालटचक्षु सम्भूता भस्माकार्पीन्मनोभवम् ।
 दग्ध्वा काम तदा वह्निर्ज्वालामालातिदीपित ॥१७३॥
 सस्तम्भितोऽय विधिना हर गन्तु शशाक न ।
 महादेवाऽपि तदभस्म मनोभवशरीरजम् ॥१७४॥
 आदाय सवगानपु भूतिलप तदाकरोत् ।
 लेपशेषाणि भस्मानि समादाय तदा हर ॥१७५॥

उस समय मैं अपनी शक्ति के द्वारा कामदेव का शम्भु के क्रोध से रक्षित करत हुए महेश्वर का क्रोधन देखकर दक्कण जो आकाश में स्थित था उन्हीं प्रायना की थी कि हे जगता के नाथ ! प्रसन्न होइए और कामदेव पर क्रोध का त्याग कर दीजिए । जिस प्रकार मैं पहिले आपन शम्भु रूप कम के द्वारा स्नान किया था और जिसन कम का आयाजित किया था उसी को कामदेव कर रहा है । इस कारण मैं शम्भो ! कामदेव पर जो आपका क्रोधाग्नि है उसका उपसहार करिए ॥१७६—१७९॥ हे यमस्त भूतों के स्वामिन् ! आप पवन हो जाइय । हम लोग वडे ही भक्ति के भाव से आपके चरणा में प्रणत हुए हैं । इस भाँति वे दक्कण कह रहे थे कि उनका कहत हुआ के सामने ही शम्भु के ललाट की चक्षु से समुद्रभूत अनल ने कामदेव को भस्म कर दिया था । ॥१७२॥ ज्वालावा की मालावा से अत्यन्त दीप्त उस वह्नि ने काम देव को दग्ध कर दिया था और वह फिर हर के समीप नहीं जा सका था । महादेव जी ने भी कामदेव के शरीर से समुत्पन्न उस भस्म को लेकर अपने समस्त अङ्गा में उसी समय मैं भूति का लेप कर लिया था ।

॥१७३॥१७४॥ जो लेखन करने स बनी दृढ़ भस्म थी उसका हर न
आदान कर लिया था ॥१७५॥

सगणोऽन्तदधे काली विहाय विधिसम्मतै ।

ब्रह्मा क्रोधानल शम्भोदहन्त सकलान् सुरान् ॥१७६॥

बडवारूपिण चक्रे देवाना पुरतस्सदा ।

बडवा ता तदा देवा सौम्या ज्वालामुखी शुभाम् ॥१७७॥

दृष्ट्वा निर्विघ्नमनसो बभूवु पूर्वपीडिता ।

बडवा ता समादाय तदा ज्वालामुखी विधि ॥१७८॥

सागर प्रययौ लोक हिताय जगतापति ।

गत्वाथ सागर ब्रह्मा प्रोवाच परिपूजित ॥१७९॥

यथावत्तेन विप्रेन्द्रा समय च निवेदयन् ।

अथ क्रोधो महेशस्य बडवारूपधृक् त्वया ॥१८०॥

ज्वालामुख सदा धार्यो यावन्न विनयाम्यहम् ।

यदा त्वामहमागम्य वदामि सरिता पते ॥१८१॥

तदा त्वया परित्वाज्य क्रोधोऽय बडवामुख ।

भोजन भवतस्तोयमेतस्य तु भविष्यति ॥१८२॥

विधाता के द्वारा सम्मत होने पर शम्भु काली को त्याग कर
गणों के सहित अंतर्धान हो गये थे और ब्रह्माजी ने समस्त देवों को
दहन करने वाली शम्भु की क्रोध की अग्नि को बडवा का रूप वाली
देवी के आगे ही उग समय में कर दिया था । उस अवसर पर देवी ने
सौम्य—शुभ ज्वालामुखी बडवा की देखकर पूर्व पीडित देवगण निर्विघ्न
मन बाल हो गये थे । उसी समय में विधाता ने उस ज्वालामुखी बडवा
को ग्रहण करने जगता के स्वामी लोकों के हित के लिये सागर में चले
गये थे । ब्रह्माजी सागर पर गमन करके वहाँ परिपूजित हाते हुए बोले
थे ॥१७६—१७९॥ हे विप्रेन्द्रो ! यथा रीति उन्होंने समय का निवेदन
करते हुए कि यह महान का प्रिय बडवा का स्वरूप धारण करने वाला

होवे और तुमको जब तक मैं विनय न कहूँ तब तक ज्वालामुख होकर सदा कार्य करना चाहिए । हे सरिताओं के स्वामिन् । जिस समय में मैं समागत होकर कहूँ उस समय में इस बड़वा मुख क्रोध का आपको परित्याग करना चाहिए । आपका जन्म ही इसका भोजन होगा अर्थात् यह आपके जन्म को ही अपना आहार करेगा ॥ १८०—१८२ ॥

यत्नादेवं विधायोज्य यथा नो याति चान्तरम् ।
इत्युक्तो ग्रहणा सिन्धुरङ्गीचक्रे तदा ऋधम् ॥१८३॥
ग्रहीनुं वडवावक्रे शम्भोश्चाशक्यमप्यरम् ।
ततः प्रविष्टो जलघौ पावको वडवामुत्तः ॥१८४॥
वार्योधान्निदहन् सम्यग् ज्वालामालातिदोपितः ।
यदाभवच्छम्भुनेत्राद् ददाह् मदनं तदा ॥१८५॥
अभवत् सुमहाशब्दो येनाकाशः प्रपूरितः ।
तेन शब्देन महता कामदाहे क्षणेन च ॥१८६॥
सखीभ्यां सह भीताभूत् काली शोकयुता तदा ।
तेन शब्देन हिमवांश्चकितो विस्मितस्तदा ॥१८७॥
सुतामेव जगामाशु गता काली हराश्रमम् ।
ता तत्र काली तनया भयशोकाकुला शुभाम् ।
रुदन्ती शम्भुविरहादाससादाचलध्वरः ॥१८८॥

ब्रह्माजी ने कहा था कि इसको यत्नपूर्वक आपके द्वारा धारण करना चाहिए कि यह किसी अन्तर को प्राप्त न होवे । इस तरह से ब्रह्मा के द्वारा कहे हुए सिन्धु ने उस समय में उस क्रोध को अङ्गीकार कर लिया था ॥ १८३ ॥ भगवान् शम्भु का अशक्य भी क्रोध को बड़वा के मुख में ग्रहण करने के लिये बड़वा का मुख पात्रक जलघि में प्रविष्ट हो गया था ॥१८४॥ ज्वाला की मालाओं से अत्यन्त दीपित उस अग्नि ने जल के समूहों का भली भाँति दाह करते हुए जिस समय में वह शम्भु के नेत्र से उद्भूत हुआ था उसी समय में उसने कामदेव

कर दिया था ॥ १८५ ॥ उस महान् शब्द से वाम के दाह क्षण भर में करने वाले से समस्त आकाश पूरित हो गया था । वह ऐसा ही महान् शब्द उस समय में हुआ था ॥ १८६ ॥ उस समय में काली अपनी सखियों के सहित शोक से समुत होकर बहुत ही अधिक भय से भीन हो गई थी । उस शब्द से हिमवान् भी अतीव विस्मित और चकित हो गया था ॥ १८७ ॥ वह हिमवान् शीघ्र ही भगवान् शम्भु के आश्रम में गई हुई अपनी पुत्री काली के समीप में गया था । वहाँ पर पुत्री काली को भय और शोक से व्याकुल—रुदन करती हुई काली को अचलराज ने देखा था जो शुभा शम्भु के विरह से बहुत ही आकुल हो रही थी ॥ १८८ ॥

आसाद्य पाणिना तस्या मारजंनयनद्वयम् ।

या भैवीः कालि मा रोदीरित्वा ता तदाग्रहीत् ॥ १८९ ॥

क्रोडीकृत्य सुता ता तु हिमवानचलेश्वर ।

स्वमालयमथानिन्ये सान्त्वयामास चार्दिताम् ॥ १९० ॥

अन्तर्हिते हरे काला विरहात् तस्य सततम् ।

निव्रसन्ती पितुर्गहे शुशोच च मुमोह च ॥ १९१ ॥

शैलाधिराजोऽप्य मेनकापि मीनाकमुख्यापि सखीद्वय च ।

ता सान्त्वयाचक्रुरदीनसत्त्वा हर विसस्मार तथापि मोमा ॥ १९२ ॥

उस शोकाकुल दशा में अपनी पुत्री के समीप में पहुँच कर हिमाचल ने अपने हाथ से उसके दोनों नेत्रों का मारजंन करते हुए कहा था—हे कालि ! डरो मत और रुदन भी मत करो—यह कहकर उसका ग्रहण कर लिया था ॥ १८९ ॥ अचलो के राजा हिमवान् ने उस अपनी पुत्री को अपनी गोद में बिठाकर अपने आलप में उसको ले आये थे और उस पीड़ित हुई को सान्त्वना दी थी ॥ १९० ॥ भगवान् शम्भु के अन्तर्धान हो जाने पर उनके विरह से युक्त होती हुई निरन्तर पिता के घर में निवास करती हुई भी बहुत चिन्तित हुई और मोह को प्राप्त हो

गई थी ॥ १६१ ॥ शैल के राजा ने—मेनका ने—मैनाव ने और दोनों सखियों ने उस अदीनसख वाली को सान्त्वना दी थी तो भी उम उमा ने भगवान् शम्भु का विस्मरण नहीं किया था ॥१६२॥



॥ गौरी परीक्षा वर्णन ॥

अथ देवमुनिर्यातो हिमवन्मन्दिर तदा ।
 नियोजितो वलभिदा नारद कामग परम् ॥१॥
 स गत पूजिभितस्तेन घरेजेन महात्मना ।
 त समुत्सृज्य रहसि कानी तामामसाढ ह ॥२॥
 आसाद्य काली स मुनि सम्बोध्य ज्ञानशालिनीम् ।
 उवाचेद वचस्तथ्य सर्वपा जगता हितम् ॥३॥
 शृणु कालि वचो मह्य सत्य तदवधारय ।
 मेवित स महादेवस्त्वयेह तपसा विना ॥४॥
 अनुरक्तोऽपि तेन त्वा महादेवो विमृष्टवान् ।
 त्वामृते शकरो नान्या द्वितीया सग्रहीष्यति ॥५॥
 त्व चापि नान्य दयित ग्रहीष्यसि विनेश्वरम् ।
 तस्मात् त्व तपसा युक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ॥६॥
 तपसा सस्कृता त्वा तु स द्वितीया करिष्यति ।
 मन्त्रोऽय तस्य मुभगे शृणु त्व येन सोऽचिरात् ॥७॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर देवर्षि नारदजी जो अपनी इच्छा से ही परम गमन करने वाले थे इन्द्र के द्वारा नियोजित होने हुए उस अवसर पर हिमवान् के मन्दिर में समागत हुये थे ॥१॥ वे वहाँ पर अचतराज के द्वारा पूजित हुये थे जो हिमवान् महान् आत्मा वाले थे । उस हिमवान् को छोड़कर वे देवर्षि एकान्त में उस काली के समीप में प्राप्त हो गये थे ॥२॥ उस मुनिवर ने काली के समीप

पहुँचकर उस ज्ञान शालिनी को सम्बोधित करके समस्त जगतों का हित करने वाला यह परम तथ्य वचन कहा था ॥३॥ देवर्षि ने कहा—हे कालि ! मेरे इस वचन का श्रवण करो और उसको परम सत्य समझो । तुमने तपश्चर्या के बिना ही उन भगवान् शम्भु की सेवा की है ॥४॥ वे महादेव उससे अनुराग करने वाले भी हैं किन्तु ने उन महादेव ने तुमको त्याग दिया था । तुम्हारे बिना वे जित् दूसरी अन्य किसी को भी ग्रहण नहीं करेंगे ॥५॥ और तुम भी ईश्वर के बिना अथ किसी पति को ग्रहण नहीं करोगी । इस कारण मे अथ तपश्चर्या से सयुत होकर चिर काल पर्यन्त महादेवजी की आराधना करो ॥ ६ ॥ जब तुम तप से मस्कार वाली हो जाओगी तो वे तुमको अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करेंगे । हे सुभगे ! उसका यह मन्त्र है आप श्रवण करिये जिसके द्वारा वह शीघ्र ही प्राप्त होग ॥७॥

आराधितस्ते पश्यक्षो भविष्यति महेश्वर ।
 ॐ नम शिवायेति च सर्वदा शकरप्रिय ॥८॥
 चिन्तयन्ती तु तद्रूप नियमस्या पडक्षरम् ।
 मन्त्र अप त्व गिरिजे तेन तुष्टो भवेद्धर ॥९॥
 एवमुक्ता तदा काली नारदेन महात्मना ।
 यतंव्यमनुमेने सा हित तथ्यञ्च तद्वच ॥१०॥
 अनुमान्य तवस्तन्तु तदा कालीञ्च नारद ।
 स्वर्ग जगाम तस्याश्च निश्चिताभून्मतिर्घाते ॥११॥
 अथ याते देवमुनी काली सामाद्य येनवाम् ।
 तप थद्धा समाचर्ये चात्मनो हरसगमे ॥१२॥
 तपस्तप्नु गमिष्यामि मात प्राप्तु महेश्वरम् ।
 अनुजानीहि मा गन्तु तपसेऽथ तपोवनम् ॥१३॥
 तप वरणयत्न मे पितुरावेदय द्रुतम् ।
 यावन्न दक्षे जननि भूतेशविरहाग्निना ॥१४॥

इस प्रकार से आराधना किये हुए वे महेश्वर आपको प्रत्यक्ष होकर दर्शन देगे । 'ओ नम शिवाय' यह मन्त्र सर्वदा भगवान् शंकर का प्रिय है ॥८॥ आप उनके स्वरूप का चिन्तन करती हुई नियम में स्थित रहकर छै अक्षरो वाला मन्त्र का आप जप करिये । हे गिरिजे ! इससे शिव सन्तुष्ट हो जायेंगे । ६॥ महात्मा नारद जी के द्वारा इस रीति से कही गयी काली उस समय में उसने अपना कर्त्तव्य मान लिया था क्योंकि उनका वचन सर्वथा तथ्य और हितकर था ॥१०॥ उस समय में नारदजी काली को तपश्चर्या का तपन करने को समुद्यत हुई अनुमान करके वे स्वर्ग गमन कर गये थे । और उसकी बुद्धि प्रत करने में निश्चित हो गई थी ॥११॥ इसके अनन्तर देवर्षि के गमन करने पर काली मेनका के समीप में पहुँची थी और अपना हर के सङ्गम प्राप्त करने के विषय में मेनका से तप करने करने की श्रद्धा को बतलाया था ॥ १२ ॥ काली ने कहा—हे माता ! मैं महेश्वर प्रभु की प्राप्ति करने के लिये तपश्चर्या करने के लिये गमन करूँगी । आज तप करने के लिये तपोवन को गमन करने के लिये आप मुझे आज्ञा प्रदान करिये । ॥१३॥ मेरे तप करने का यत्न है इसे आप पिताजी से शीघ्र ही निवदन कर दीजिये । हे जननि ! जब तक मैं भूतेश्वर के विरह की अग्नि से दग्ध न होऊँ इसके पूर्व ही मैं तप करना चाहती हूँ ॥१४॥

इति तस्या वच श्रुत्वा मेनका शोककशिता ।
 आर्त्तित्वं स्वसुताभूत्तं मा तप कुरु बल्लभे ॥१५॥
 मृदुदेहामिपुत्रि त्व मा तपो याहि ककुशम् ।
 तप सोढु मुनेर्गात्र शक्त ते न कलेवरम् ॥१६॥
 वनवासश्च ते पुत्रि नैष्ट शत्रुगणैरपि ।
 तस्मात् त्व सम्परित्यज्य वनवासोद्भव तप ।
 आत्मनो ह्यनुरूपेण तपस्तत् कुरु यद्वितम् ॥१७॥
 मातु सा वचन श्रुत्वा गिरिजा दीनमानसा ।

इत्यूके च तदा वाक्य तपोयत्नपरा प्रसूम् ॥१८

मा निषेधय मा यास्ये तपसेऽद्य तपोवनम् ।

प्रच्यन्नमपि यास्यामि नानुज्ञाताप्यह त्वया ॥१९

गृहेषु देवा सतत ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

तस्माद् गृहे पुत्रि देवानचंय त्व यथेप्सितान ॥२०

स्त्रीणा तपोवनगतिनं श्र ता स्वामिना विना ।

तस्मान्न युज्यते पुत्रि नपोयात्रा वनं प्रति ॥२१

उस वाली के इस वचन का श्रवण करके मेनका शोक में बर्तित होगई थी । उसने अपनी पुत्री का आलिङ्गन करके उससे कहा था— हे बालभे ! तपस्या मत करो ॥१५॥ हे बेटो ! तुम्हारा शरीर बहुत ही कोमल है तपश्चर्या जैसे कठोर कर्म करने के लिये यमन मत करो । तपस्या के कष्ट को सहन करने के लिये मुनियों का शरीर ही समर्थ होता है तुम्हारा शरीर उस क्लेश को सहन करने में क्षमता नहीं रखता है ॥ १६ ॥ हे पुत्रि ! आपका वन में निवास करना तो शत्रुगणों को भी कभी अभीष्ट नहीं है । शत्रु वारण में तुम वन में निवास में होने वाले तप का विचार का परित्याग करदो । तुम्हारे अपने शरीर के जो अनुकूल हो वही तप करो जो जित के सम्पादन करो वांछा होवे ॥१७॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उम गिरिजा ने माता के वचन का श्रवण किया और वह दिन भर वाली होगई थी । और वह तपस्या के यत्न में परावर्ण होती हुई उस समय में उगते माता ने यह वचन कहा था ॥१८॥ मुझे निषेध मत करो । मैं आज तप के लिए तपोवन में गया करूँगी । यदि आपके द्वारा मुझे आज्ञा नहीं दी गयी तो मैं छिन्नकरागी जाऊँगी ॥१९॥ मेनका ने कहा—हे पुत्रि ! वृक्ष में वृक्षा—विष्णु और शिव आदि देवगण निरन्तर ही निवास किया करते हैं । इस कारण मैं तुम को भी देव अभीष्ट हो उरका पर में ही

अभ्यर्चन करो ॥२०॥ स्वामी के बिना अर्थात् अपने स्वामी से रहित होकर स्थियो की तपोवन में गति का होना कभी भी नहीं सुना गया है । इस कारण से हे पुत्रि ! वन की ओर गमन करके तपश्चर्या की यात्रा करना उचित नहीं प्रतीत होता है ॥२२॥

यतो निरस्ता तपसे वनं गन्तुं च मेनया ।
 उमेति तेन मोमेति नाम प्रप्य तदा सती ॥२२॥
 अवज्ञाय तदा मातुर्वचनं हिमवत्सुता ।
 सखीद्वयां जापयासाम पितरं तपसोद्यमम् ॥२३॥
 स तु ज्ञात्वा गिरिपतिस्तपसे चरितोद्यमम् ।
 दुहितुश्चानुमेने च नातिहृष्टमना इव ॥२४॥
 सानुज्ञाप्य तदा तातं यत्र दग्धो मनोभव ।
 शम्भना प्रययौ तत्र गंगावतरणं प्रति ॥२५॥
 गंगावतरणं नाम प्रस्थौ हिमवतः स च ।
 हरशन्योऽयं दृष्ट्वा काल्या तच्चिन्तया तदा ॥२६॥
 यत्र स्थित्वा पूरा शम्भुद्वयनिवानभवद् भृशम् ।
 तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहादिता ॥२७॥
 हा हरेति क्षणं तव रोदमाना गिरेः सुता ।
 विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकममन्विता ॥२८॥

वयोकि मेनका के द्वारा तपस्या के लिये वन में जाना निरस्त कर दिया था अर्थात् निषेध कर दिया गया था उस समय में सती उमा ने सोमा—यह नाम प्राप्त कर लिया था ॥२२॥ उस अवसर पर हिमाचल की पुत्री ने माता के वचन की अवज्ञा करके सखियों के द्वारा तप करने के उद्यम की पिता को ज्ञापित किया था ॥२३॥ उस गिरियों के स्वामी ने तप के लिये समाचरित उद्यम का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न मन वाला न होते हुए ही अपनी पुत्री को अनुमति दे दी थी । ॥२४॥ उसी समय में उस मनी ने पिता की अनुज्ञापित करके जहाँ

पर कामदेव शम्भु के द्वारा दग्ध किया गया था वही पर गङ्गावरण की ओर वह चली गयी थी ॥२५॥ गङ्गावतरण नाम वाला एव हिमालय का प्रस्थ है । उसको वाली ने भगवान् हर के रहित ही देखा था । उस समय में उसकी चिन्ता से मग्न हो गई थी । २६ । पहिले जहाँ पर स्थित होकर शम्भु बहुत ध्यान करते हुए थे । उस क्षण में वह वाली स्थित होकर वहाँ पर विरह से पीड़ित हो रही थी । २७ । गिरि की पुत्री वहाँ पर हाहर'—मह बहती हुई रुदन करने वाली हो-री हुई चिन्ता और शोक से समन्वित तथा अत्यन्त दुःख से पीड़ित होनी हुई विलाप करने लगी थी ॥ २८ ॥

क्षण विलप्य सा काली स्मृत्वा पूर्वोद्भवं तदा ।
 हार्दं हरस्य सा मोहमवाप कमनेक्षणा ॥२६॥
 ततश्चिरेण सा मोहं धीर्यान् सस्नम्य भामिनी ।
 नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्-मुता ॥३०॥
 प्रथमं नियमस्तस्या बभूव फलभोजनम् ।
 चर्या पञ्चातपा चिन्ता शाम्भवी शाम्भवो जप ॥३१॥
 यज्ञियैर्दारुभिः शुष्कैश्चतुर्दिक्षु चतुष्कृतम् ।
 वह्निस्तथापनं ग्रीष्मे तीव्राशुस्तत्र पचम् ॥३२॥
 हस्तान्तरे चतुर्वह्नीन् कृत्वा वैश्वानरेष्टिनम् ।
 तन्मध्यस्था सूर्यविम्बं वीक्षन्ती बलकलाशुक्ला ॥३३॥
 ग्रीष्मं निम्बे वह्निमध्ये शिशिरे तोयवामिनी ।
 प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं तोयभोजनम् ॥३४॥
 तृतीयं तु स्वयम्पाति-वृक्षपल्लव-भोजनम् ।
 त्रयणं तु तदा पूर्णं निरस्य हिमवन् मुता ॥३५॥

क्षण भर तक उस काली ने विलाप किया था फिर उसी समय में उसको पूर्व उद्भव का स्मरण हो गया था । वह कमलो के समान नेत्रों वाली उसने हरके हार्द को और मोह को प्राप्त किया था ॥२६॥

इसके पश्चात् चिरवान् मे उम भामिनी ने घीग्ता मे मोह का मंस्तम्भन किया था और वही पर नियम के लिये वह हो गई थी और हिमवान् की मुता नियम के लिये दीक्षित होबई थी । ३० । उमका प्रथम नियम फलों का ही भोजन करके रहना था । पञ्च अग्निगो की तपस्या ही उसकी प्रार्थना थी—सम्बन्धी अर्घान् शम्भु से सम्बन्ध रखने वाली चिन्ता थी तथा सम्बन्धन जप था । ३१ । यज्ञिय अर्घान् यज्ञ में काम आने वाले मूत्रे हुए काष्ठो से चारो दिशाओ मे चार जगह बहिन की स्थापना ग्रीष्म मे की थी और वहाँ पर पाचवा तीव्राशु सूर्य ये । ३२ । एक हाथ के अन्तर पर चारो बहिनयो का स्थापन करके जो कि वैश्वानर की दृष्टि के द्वारा की गयी थी । उनके मध्य मे स्थित होनी हुई बत्कनो के सम्प्रो वाली मूर्य के विश्व का वीक्षण करती थी । ३३ । ग्रीष्म ऋतु की अग्नि के मध्य मे मस्थित रह कर व्यतीत किया था और गिरि मे वह जल मे दास करने वाली हुई थी । प्रथम समय फलों के उपयोग के द्वारा और द्वितीय समय केवय जल के ही भोजन मे व्यतीत किया था । तीसरा समय सुनरा गिरे हुए वृक्षा के पत्तों का भोजन करके व्यतीत किया था । उम समय मे हिमवान् की पुत्री ने क्रम से पत्तों को भी निरम्न कर दिया था ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

निराहारयता भूत्वा तपश्चरणखिन्निका ।

आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्विवृतः मुता ॥३६

तेन देवैरपणैति कथिता पृथिवीतने ।

पंचातपव्रतेनैव तोयानाञ्च प्रवेशनः ॥३७

एकपादस्थिता सा तु वमन्ते हिमवत्मुता ।

पटक्षरं जपन्ती सा चिरं तपे तपो महन् ॥३८

चौरवत्त्वलमघोता जटासंधातधारिणी ।

वृक्षांगी चिन्तने शक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥३९

ता तपश्चरणे शक्ता ररक्ष शंकरः स्वयम् ।

आप्यायति स्म म नदा भयाद्रक्षति हृषित ॥४०

एव तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिन्तयन्त्या महेश्वरम् ।

त्रीणि वर्षसहस्राणि जम्भु वात्यास्तपोवने ॥४१

पटत्रिवर्षसहस्राणि सस्कृता वीक्षणात् स्वयम् ।

दैवेन विधिना देवी हरयोग्या तथाभवन् ॥४२

बिना ही आहार के यत बाली होकर वह तपश्चरण में गिरन हो गई थी क्योंकि हिमवान् की पुत्री ने आहार में पणों का भी त्याग कर दिया था । ३६ । इसी से देवों ने पृथिवी तम में उसको अपना कहा था । पाँच अग्नियों के ताप घन में और जल में प्रदेशों के द्वारा—उसने तप किया था । ३७ । वह हिमाचल की पुत्री बसन्त में एक ही पाद से स्थित हुई थी । छँ अश्वरो वाले मन्त्र का जप करती हुई उसने चिरकाल पर्यन्त महान् तप के तपन का समाचरण किया था । ३८ । वह क्षीरो और बल्कलों में शरीर को डालने वाली थी । वह जटा जूटों के समूह रखने वाली थी । उसके सब अङ्ग कृण हो गये थे और वह चिन्तन करने में शक्त थी उसने ऐसा तप किया था कि तप के द्वारा मुनियों को भी जीत लिया था । ३९ । उस तपस्या के समाचरण में उसकी रक्षा स्वयं भगवान् जम्भु ने की थी । वे भगवान् जम्भु उसको मदा ही आप्यायित करते थे और हृषित होकर उसकी भ्रम में भी रक्षा किया करते थे । ४० । इस प्रकार से बाली को जो वह तपस्या कर रही थी और महेश्वर का चिन्तन कर रही थी तपोवन में तीन महत्त्वपूर्ण व्यतीत हो गये थे । ४१ । तिर्य्यट दृष्ट वय हुए तब वह स्वयं वीक्षण से संस्कृत हो गई थी । दैव विधि के द्वारा वह देवी हर के योग्य हो गई थी ॥४३॥

पटत्रिवर्षसहस्रान्ते यत्र तेपे तपो हर ।

तत्र क्षणमर्थोपित्वा चिन्तयामास भामिनो ॥४३

नियमस्या महादेव मा किं जानाति नाधुना ।

येनाह मुचिर तेन नानुज्ञाना नपोरना ॥४४

लोके नास्त्यत्र गिरिश किं तत्र मुनिभिः स्तुतः ।
 सर्वज्ञः सर्वगो देवो हरो देवंनिगद्यते ॥४५॥
 स सर्वगस्तु सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वहृद्गतः ।
 सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावनभावनः ॥४६॥
 सती च मेनका माता यदि चाह वृषध्वज ।
 सानुरवता नचान्यस्मिन् स प्रसादतु शकरः ॥४७॥
 यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्राज्य स्यात्पडक्षरः ।
 यदि भक्त्या मया जप्त हरस्तन प्रसोदतु ॥४८॥
 सत्य यदि तपस्तप्त सत्य चाराधिता हरः ।
 सत्य भवेद् यदि तपो हरस्तेन प्रसोदतु ॥४९॥

तिरेपठ सहस्र वर्षों के अन्त में जहाँ पर भगवान् शम्भु ने तपस्या की थी । वहाँ पर क्षण भर स्थित होकर भावना में चिन्तन किया था ॥४३॥ महादेव क्या इस समय में नियमों में सांस्थित हुई मुझ को नहीं जानते हैं जिस कारण से बहुत अधिक काल पर्यन्त तप में रत हुई मुझ अनुज्ञान नहीं किया है ॥ ४४ ॥ क्या भुवि का द्वारा स्तवन किया गया । गिरिश लोक में यहाँ पर नहीं है । देवी के द्वारा तो हर सब कुछ के ज्ञान रखने वाले—सर्वत्र गमन करने वाले देव बहू आया करते हैं । ॥ ४५ ॥ वह सर्वत्र गामी—सर्वज्ञाता—सबकी आत्मा—सबके हृदय में रहने वाले—सबमें विभूति प्रदाता और सब भावों के भी भावन देव है—मैं सती और मेरी माता मेनका है यदि मैं वृषभध्वज में अनुराग से युक्त हूँ और अन्त में मेरा अनुराग नहीं है तो वे शङ्कर मुझ पर प्रसन्न हो जावें ॥ ४६—४७ ॥ यदि नारद के मुख से निकला हुआ छे अक्षरों वाला मन्त्र है यदि भक्तिभाव से मैंने इसका जप किया है तो इससे हर प्रभु मुझ पर प्रसन्न हो जावे ॥ ४८ ॥ यदि वास्तव में मैं सत्य तप किया है और सत्यतापूर्वक मैंने हर की आराधना की है । यदि तप सत्य है तो इससे भगवान् हर मुझ पर प्रसन्न हो जावे ॥४९॥

एव विचिन्तयन्ती सा यदातिष्ठद्वराश्रमे ।
 अधोमुखी दीनवेशा जटावल्गुलमण्डिता ॥५०॥
 तदैव ब्राह्मण कश्चिद् ब्रह्मचारी धृतव्रत ।
 कृष्णजिनोत्तरीयेण धृतदण्डकमण्डलु ॥५१॥
 ब्राह्मजा श्रिया दीप्यमान स्वगीश्च सुशोभन ।
 जटाभिः परिवीताभिरुद्रिक्वन्स्तनुदेहमृत् ॥५२॥
 उपस्थितस्तदा काली शम्भुर्ब्राह्मणरूपवृत् ।
 आसाद्य प्रथम काली समाभाष्य तदा द्विज ॥५३॥
 ज्ञातुं प्रत्यक्षतो रागं श्रोतुमिच्छश्च तद्वचः ।
 वाग्मी विणिन्नवाक्तेन पप्रच्छ गिरिजा तदा ॥५४॥
 का त्वं कस्यासि कल्याणि किमर्थं विजने वने ।
 तपश्चरसि दुर्धर्पं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ॥५५॥
 न बाला त्वं नापि वृद्धा तरुणी चातिशोभना ।
 वयं पतिं विनाभीक्ष्णं तपश्चरसि साम्प्रतम् ॥५६॥

माकण्डेव महर्षि ने कहा—वह काली इस प्रकार से विशेष
 चिन्तन करती हुई जब भगवान् के आश्रम में सस्थित हुई थी जिसका मुख
 नीच की ओर था—दीन वेश था और वह जटा तथा वल्गुलो से
 मण्डित थी ॥५०॥ उसी समय में व्रतधारी ब्रह्मचारी कोई ब्राह्मण कृष्ण
 मृग की छाया का उत्तरीय से शोभित—कमण्डलु और दण्ड धारण
 किये हुए जो ब्राह्मणी श्री से दीप्यमान था—वह स्वगी और परम शोभन
 था । वह परिवीत जटाओं से उद्रिक्त तनु को धारण करने वाला था ।
 वह ब्राह्मण के स्वरूप को धारण करने वाले शम्भु उसी समय में काली
 के समीप में उपस्थित हो गये थे । काली के पास पहुँच कर उस द्विज
 ने उससे सम्भाषण किया था ॥ ५१—५२ ॥ उस समय में प्रत्यक्ष रूप
 में अनुराग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये और उसके मुख से वचन का
 श्रवण करने के लिये इच्छा करत हुए उस वाग्मी ने विचित्र वाक्य के

द्वारा उस समय मे गिरिजा से पूछा था ॥ ५३—५४ ॥ ब्राह्मण न
बढ़ा—हे बल्याणि ! आप कौन हैं और किसकी पुत्री हैं ? इस विजन
वन में किस लिये प्रियनात्मा मुनियों के साथ यह दुर्यप तप कर रही
है ? ॥ ५५ ॥ आप न तो बान्ना हैं और न आप वृद्धा हो हैं । आप तो
अत्यन्त शोभन तरुणी हैं । जिना पनि के निरन्तर क्यों यह इस समय
में तपस्या कर रही हैं ? ॥ ५६ ॥

विंदा तपस्विनी भद्रे कस्यचित् सहचारिणी ।
तपस्विन म पुष्पादि समाहर्तुं गतोऽन्यतः ॥ ५७
एतन्मम समाचक्ष्व यदि गुह्य भवेन्न ते ।
यदि ते हृदये मन्युः कच्चिद्वसति सम्प्रति ।
तदाचक्ष्व समयोऽस्मि तमह चापि वारितुम् ॥ ५८
इत्युक्त्वा तेन विप्रेण गिरिजाय निजा सखीम् ।
तस्योत्तरप्रदानाय वटाक्षेण न्ययोजयन् ॥ ५९
सा सखी विजया तस्या वचनाद् ब्राह्मण तदा ।
प्रोवाचेद यथातथ्य वीक्षन्ती गिरिजामुद्यम् ॥ ६०
एतस्य गिरिराजस्य तनयस्य द्विजात्तम ।
एवासा च पार्वतीनाम्ना बालीति च गुणीभवा ॥ ६१
ऊचे यत्र च येनापि शक्र वृषभध्वजम् ।
वाञ्छन्ती दयित तौत्रं तपश्चरति वं पनिम् ॥ ६२
भ्रीणि वपंसहस्राणि तपन्तपन्ति भामिना ।
न शकरो गिरिगुतामद्यान्मन्त्रने ॥ ६३

निये समय हूँ ॥५७॥५८॥ उस विप्र के द्वारा इस रीति में वही हुई
गिरिजा ने अपनी सखी को उमकी उत्तर देने के लिए कटाक्ष के द्वारा
नियोजित कर दिया था ॥५६॥ उसकी विजया नाम वाली सखी उस
समय में उससे वचन में गिरिजा के मुख को देखती हुई ने यथा तथ्य
कहा था ॥६०॥ हे द्विजोत्तम ! यह इसी गिरिराज की पुत्री है और
यह पार्वती—इस नाम से प्रख्यात है और सुशोभना काली के नाम से
भी प्रसिद्ध है ॥६१॥ यह किसी भी द्वारा वही नहीं गयी है । यह वृषभ-
ध्वज शङ्कर को अपना दयित पति चाहती हुई तीव्र तप का समाचरण
कर रही है ॥६२॥ तीन सहस्र वर्ष हुए यह भामिनी तपस्या कर रही
है किन्तु भगवान् शकर इस गिरिराज की पुत्री को प्राप्त नहीं हो रहे
हैं ॥६३॥

शकरो गिरिशो देव सर्वंग परमेश्वर ।

इति स्म गच्छते देवमुनिभिश्च तपोधनं ॥६४॥

किमेना स न जानाति कि सानो नास्ति वा गिरे ।

इति चिन्ताविषण्णमद्य नो लभते सुखम् ॥६५॥

अप्रार्थितस्त्वमनया दयसे यदि वा सुखम् ।

तदेना शकरेणाद्य त्व सगमय सुव्रत ॥६६॥

इति तस्या वच श्रुत्वा ब्रह्मचारी तदा द्विज ।

स्मयमान इदं वाक्यं हेलयोवाच पार्वतीम् ॥६७॥

अमोघदर्शनश्चास्मि हर चानयितु क्षमः ।

किन्त्वेक निगदाम्यद्य निश्चित ममस्त शृणु ॥६८॥

जानाम्यहं महादेव तं वदामि शृणुष्व मे ।

धृपध्वजो महादेवो भूतिलेपी जटाधर ॥६९॥

व्याघ्रचर्माशुवश्चक्रः सवीतो गजकृतिना ।

कपालधारी सपौर्णं सर्वगात्रेषु वेष्टितः ॥७०॥

भगवान् शकर गिरिश देव सर्वत्र भग्न करने वाले परमेश्वर

यह देखो—मुनिगणों और तपस्वियों के द्वारा कहे जाया करते हैं ॥६४॥ क्या वे इसको नहीं जानते हैं क्या वे पर्वत के शिखर पर विद्यमान नहीं हैं ? यह आज इसी चिन्ता दुःखित है और इसको सुख प्राप्त नहीं हो रहा है ॥६५॥ इसमें आपसे प्रार्थना नहीं की है । यदि आप दया करते हैं अथवा इसको सुख देने की कृपा करते हैं हे मुषत ! आज भगवान् शङ्कर से इसका सङ्गम कर दीजिए ॥ ६६ ॥ उस समय में द्विज ब्राह्म-चारी ने उस समय में उसके इस वचन का श्रवण करके मुस्कराते हुए ही हेला से उस पार्वती को यह वचन बोला था ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण ने कहा—मैं अमोघ दर्शन वाला हूँ और मैं भगवान् हर को लाने के लिये भी समर्थ हूँ । किन्तु मैं आज एक बात कहता हूँ—मेरा निश्चित मत का श्रवण करिए ॥ ६८ ॥ मैं महादेवजी को जानता हूँ, मैं उनको बोल भी दूँगा किन्तु मुझमें सुनली वृषध्वज महादेव विभूति के वेप वाले हैं और जटाधारी हैं ॥ ६९ ॥ वे बाघम्बर के वस्त्र धारण करने वाले हैं वे एकाकी हैं और गज के चर्म से ढके हुए रहते हैं वे कपालों को धारण करने वाले हैं तथा सर्पों के समुदायो से वेष्टित रहा करते हैं ॥७०॥

विषदग्धगलस्त्र्यक्षो विस्पाक्षो विभीषणः ।

अव्यक्तजन्मा सततं गृहभोग्यविवर्जितः ॥७१॥

ज्ञातिभिर्वान्धर्वहो नो भक्ष्यभोग्यविवर्जितः ।

श्मशानवासी सततं तत्सगपरिवर्जितः ॥७२॥

गर्जन्दिभविकटेस्तोदणभूतोधिः परिवारितः ।

शृगाररसहीनश्च भार्यापुत्रविवर्जितः ॥७३॥

केन वा कारणेन त्वं भर्तारं त समीहसे ।

पूर्वं श्रुतं मया चैव तस्यापरमिदं कृतम् ॥७४॥

शृणु ते निगदाम्यथ यदि ते गृह्ण रोचते ।

दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् ॥७५॥

यत्रे पति गुरा दयात् सम्भोगपरिवर्जितम् ।

कपालिजायेति मतो दक्षेण परिवर्जिता ॥७६॥

यज्ञभागप्रदानाय शम्भुश्चापि विवर्जितः ।

साथ तेनापमानेन भृश शोकाकुला सती ॥७७॥

उन शम्भु का गला विष से दग्ध हो रहा है उनके तीन नेत्र हैं—वे निरुपाक्ष हैं और विभीषण है अर्थात् विशेष रूप से भयङ्कर हैं । उनका जन्म भी अव्यक्त है अर्थात् उनके जन्म के विषय में कुछ भी किसी को ज्ञान नहीं है व निरन्तर गृहस्थाश्रम के भोग्य से रहित हैं ॥ ७१ ॥ शङ्कर ज्ञानिजन तथा बन्धुजनो में हीन हैं और भक्ष्य भोग्य से भी वर्जित हैं । शम्भु निरन्तर श्मशान में निवास करने वाले हैं और सङ्ग से परिवर्जित रहा करते हैं ॥ ७२ ॥ गर्जन करने वाले—विकृत स्वरूपधारी और तीक्ष्ण भूत गणों से सदा घिरे हुए रहा करते हैं । शङ्कर शृङ्गार रस से रहित हैं तथा उनके न कोई भार्या है और न पुत्रादि ही हैं ॥ ७३ ॥ अथवा किस कारण से आप उनकी अपना भर्ता बनाना चाहती है । मैंने पूर्व में होने वाला भी उनका एक दूसरा कृत्य सुना है ॥ ७४ ॥ आप उसका श्रवण करिय मैं आज आपको बतलाता हूँ । यदि आपको अच्छा लगे तो ग्रहण कीजिए । प्रजापति दक्ष की पुत्री सती परम साध्वी थी उसने पहिले वृषभ बाहन को अपना पति वरण किया था । यह भाग्य की ही बात थी वह पति सम्भोग से रहित थे । यह तो कमाली की जाया है—इसी से वह सती दक्ष के द्वारा परिवर्जित करदी गयी थी ॥ ७५—७६ ॥ यज्ञ में भाग के प्रदान करने के लिये शम्भु को भी वर्जित कर दिया गया था । उसी अपमान के होने से सती अत्यधिक शोक से आकुल हो गई थी ॥७७॥

तत्प्राज स्वा प्रिया प्राणास्तया त्यक्त्वश्च शकर ।

त्व स्त्रीरत्न तव पिता राजा निखिलभूभृताम् ॥७८॥

तथाविध पति कस्मादुग्रेण तपसेहसे ।

देवेन्द्रो वा धनेशो वा पवनो वाप्यपापति ॥७६
 अग्निर्वाऽन्य सुरो वापि स्वर्वावश्विनावपि ।
 विद्याधरो वा बन्धवो नागो वा मानुषोऽथ वा ॥७७
 रूपयोवनसम्पन्न समस्तगुणसयुत ।
 स ते योग्य पति थोमानुदारकुलसम्भव ॥७८
 येन त्व बहुरत्नौघ-पूरितेऽनर्घविस्तृते ।
 माल्यप्रवरसयुक्ते धूपचूर्णे सुवासित ॥७९
 मृद्धास्तरणसयुक्ते विस्तृते सुमनोहरे ।
 चारुप्रासादगमस्थे जाम्बूनदविचित्रिते ॥८०
 शय्यान्तले समासाद्य स योग्यस्ते भवेत् पति ।
 एव ज्ञात्वाऽद्य मुभगे यदि वाञ्छसि शकरम् ।
 किं ते नपाभि सुनरामह त योजय त्वया ॥८१

उम सती ने अपन परम प्रिय प्राणो का परित्याग कर दिया था । भगवान् शङ्कर भी त्याग कर दिय गये थे । आप तो स्त्रियां में रत्न के ही समान अत्युत्तम हैं । आपका पिता हिमवान् सभी पर्वतों का राजा है ॥ ७६ ॥ फिर किस कारण से उस प्रकार के पति के प्राप्त करने की इस उद्यम तथा के द्वारा इच्छा कर रही है ? देवों का स्वामी—धनेश—पवन—वरण—आग्न अथवा कोई अन्य देव अथवा स्वर्वावश्विनीकुमार—विद्याधर—गन्धर्व—नाग अथवा मानुष जो भी रूप और यौवन ■ गुणसम्पन्न हैं और समस्त गुण गुण में समन्वित हो ऐसा ही उदार कुल में समुत्पन्न होने वाला श्री सम्पन्न आपका पति योग्य है ॥ ७६—८१ ॥ जिसके द्वारा आप बहुत रत्नों के समूह—स पूरित—बहुमूल्यों में विस्तृत—माल्य प्रवरा से सयुक्त—धूप के चूर्णों से सुवासित—गोमल आस्तरण से समन्वित—सुमनोहर सुविस्तृत—मुरम्य प्रासाद के मध्य में स्थित—सुवर्ण के द्वारा विशेष रूप से चित्रित शय्या के बल में समासादन करके संस्थित रहने वाला ही आपका योग्य पति

होगा । हे मुशगे ! इस भीति ज्ञान प्राप्त करने भी यदि आप शङ्कर को ही अपना पति बनाना चाहती हैं तो फिर आपको इन तपस्याओं से क्या प्रयोजन है मैं अपने आप ही उनके साथ योजित किये देता हूँ ॥८२—८४॥

इति श्रुत्वा तदा काली ब्राह्मणस्योत्तर तदा ।
 मित तस्य जगादेन ब्रह्मण कोपसमुक्ता ॥८५॥
 न जानासि हर देव त्व जानामीति भापसे ।
 वहिर्यद दृश्यते तत्तं कथित द्विजनन्दन ॥८६॥
 यस्य भाव न जानन्ति सेन्द्रा ब्रह्मादत सुराः ।
 तस्य त्व विप्रननय शिशुर्जास्यसि किं भवम् ॥८७॥
 यच्छ्रुत भवता नीचवदनाद् भाषित लघु ।
 इतस्ततस्तु श्रुत्वंव भापसे त्व न दृष्टवान् ॥८८॥
 तस्मात् त्वतो वर नाह पाञ्छये नापि वा पतिम् ।
 अन्यद् वद न च त्वतो वाञ्छये हरसगमम् ॥८९॥
 इत्युक्त्वा गिरिजा विप्रमवलोक्य सखीमुखम् ।
 इदमाह तदा काली सशमारूढचेतना ॥९०॥
 महता चिन्तनेनेह तपसाराधितो हर ।
 तन्ममाग्रे विप्रसुनो निन्दितु वाक्यमुक्तवान् ॥९१॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस अवसर यह सुनकर काली क्रोध से समुक्त होती हुई इस ब्राह्मण को उसने उत्तर के रूप में बहुत ही अल्प और तथ्य कहा था ॥ ८५ ॥ काली ने कहा—तुम देवेश्वर हर को नहीं जानते हो—व्यर्थ ही यह कहते हो कि मैं जानता हूँ । हे द्विजनन्दन ! जो कुछ बाहिर दिखलाई देता है वही आपने वह डाला है । ॥ ८६—८७ ॥ जिन प्रभु के शम्भु के भाव को इन्द्रादि और ब्रह्मा, प्रभृति गुरु भी नहीं जानते हैं । उनके भाव को तुम शिशु होते हुए हे विप्रमुन ! क्या जान सकोगे ॥ ८८ ॥ आपने जो भी नीचों के मुख से

भाषित कुछ मुना है वह बहुत तुच्छ है । आप इधर-उधर से मुनकर ही ऐसा भाषण कर रहे हैं । आपने उनका [कभी] की दर्शन नहीं किया है ॥ ८८ ॥ इस कारण से मैं आपसे वरदान नहीं चाहती हूँ और पति के विषय में जानना चाहती हूँ अब आप अन्य कुछ भी नहीं बोलिए । मैं आपके द्वारा हर का सङ्गम प्राप्त करना नहीं चाहती हूँ ॥ ८९ ॥ गिरिजा ने उस विप्र को इतना ही कहकर अपनी मखी का मुख देखकर उस अवसर पर संशय में समावृद्ध होकर यह कहा था कि बहुत अधिक चिन्तन के द्वारा तपश्चर्या करके भगवान् शम्भु की आराधना की है । यह विप्रमुक्त मेरे ही आगे उनकी निन्दा करने के लिये बाध बोला है ॥ ९०—९१ ॥

तदहं चापनेष्यामि स्तुतिवाक्येन साम्प्रतम् ।
 महात्मनां च यो निन्दां शृणोति कुस्तेऽयवा ॥९२॥
 तयोराग.समं पूर्वं मया तातमुत्ताच्छ्रुतम् ।
 तस्मात्तदपनेष्येऽहं तन्निषेधय विप्रकम् ॥९३॥
 इत्युक्त्वा सा सखी कालो शम्भुमंगतमानमा ।
 आगःसमार्जनाशु हरं स्तोतुमुपाक्रमत् ॥९४॥
 नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
 निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥९५॥
 विज्ञानसौभाग्यसुहृद्गताय ने
 प्रपञ्चहोनाय हिरण्यवाहवे ।
 नमोऽस्तु नारायणपद्ममम्भव
 प्रधानबीजाय त्रगदिनाय ते ॥९६॥
 इति स्तुवन्ती पुनरेव म द्विज-
 म्मदा वच. किञ्चिदुदोरितुं पुनः ।
 समीक्ष्य कालीमकगेन मयन्नरं
 नृद्विज्ज्वा शम्भुसह चक्रे निरे. स्तुति

अयं द्विज विचन वक्तुमिच्छ-

त्युग्र हर चापि न मविदान ।

निन्दन्निहि प्राणहरी हरस्य

निन्दामहं थोतुमिह क्षमामि ॥६८॥

इसलिये मैं इस समय में स्तुति वाक्य के द्वारा उसका अंग कहूँगी । जो भी कोई महान् आत्मा वाली की निन्दा वा श्रवण करता है अथवा बरसाई बिया करता है उन दोनों का अपराध समान ही होता है—ऐसा मैंने अपने पिताजी के मुख से पूर्व में श्रवण किया है । इसी कारण से मैं इसको दूर कहूँगी सो इस विप्र को निषेध कर दो अर्थात् रोक दो ॥६२॥६३॥ उस कामी ने यह मछी से कहकर शम्भु में सङ्गत मन वाली ने अपराध के सम्मार्जन करने के लिये भगवान् शम्भु का स्तवन करने का आरम्भ कर दिया था । ६४॥ वाली ने कहा—परम शिव—शान्त और कारण त्रय के हेतु अर्थात् सृष्टि—स्थिति और महार इन तीनों के कारण स्वरूप के लिये नमस्कार है । हे परमेश्वर ! मैं अपने आपको निवेदन करती हूँ और आप ही मेरी गति हैं ॥६५॥ विज्ञान—सौभाग्य और सुहृद् में गत—प्रपञ्च से रहित—हिरण्य बाहु—नारायण के नाभिस्थ पद्म से समुत्पन्न भी के प्रधान बीज—जगद् के हित रूप आपके लिये नमस्कार होवे ॥६६॥ इस भाँति स्तवन करती हुई उसको यह द्विज पुनः उस समय में कुछ वचन करने के लिये उद्यत होने वाला है—यह समीक्षण करके काली को सयत्न कर दिया था और गिरिराज की पुत्री ने समझ करके सखी में कहा था ॥ ६७॥ यह द्विज कुछ कहना चाहता है और उग्र हर को नहीं जानने वाला है । अतएव यह उनकी निन्दा कर रहा है । किन्तु मैं प्राणों के हरण करने वाली शिव की निन्दा वा श्रवण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ ॥६८॥

यावद् भूरिवचोऽस्याह न शृणोम्यधुना सखि ।

गच्छामि तावद् दूराय समुत्तिष्ठामि मत्प्रिये ॥६९॥

इत्युक्त्वा सा तया मध्या सहिता हिमवनमुता ।
 प्रतस्थेज्य समुत्थाय तमुत्सृज्य द्विज हठात् ॥१००॥
 अथ शम्भुनिज रूपमान्थाय हिमवत्मुताम् ।
 त समुत्सृज्य गच्छन्ती हर म्मेरमुखोज्ज्वयात् ॥१०१॥
 अहं हरो महादेवो मा सम्नोपि न चाधुना ।
 मन्मुखीभव हे कानि ममाश्रयिण्य शाकरि ॥१०२॥
 इत्युक्त्वा म महादेवो गच्छन्त्या पुरतो गत ।
 प्रनायं हन्तो कान्थान्तु गति तन्या विरोधयन् ॥१०३॥
 मा वीक्ष्य शम्भुवदन तनक्षणादभवद्वृथात् ।
 अधोमुखो तडिद्धातचकितेव गिरे मुता ॥१०४॥
 मन्दाक्ष प्रीतिनज्जाभि सा जडेव तदानवत् ।
 यक्नु च नाजकन् किञ्चिद्विवशुरपि भामिनी ॥१०५॥

हे मखि ! हम नमय में जब तक इनके बहुत वचनों का श्रवण नहीं करूँ तब तक मैं दूर देश को गमन करती हूँ हे मखिये ! वहाँ पर दूर देश में समुपस्थित रहूँ ॥६६॥ इतना कहकर वह काली हिमवान् की पुत्री उसी मखी के सहित प्रस्थान कर गयी थी और उस द्विज को हटाव छोड़कर उठकर चली गई थी ॥१००॥ इसके अनन्तर शम्भु निज रूप में ममाश्रित होकर हर मुक्तराहट से मुक्त मुख वाले होकर उस द्विज स्त्री का स्थाय कर गदन करती हुई हिमवान् की मुता के पीछे गमन किया था ॥१०१॥ गिब ने कहा—मैं ही महादेव हूँ और हर हूँ । अब आप मेरा स्तवन नहीं करती हैं । हे कानि ! हे शाकरि ! मेरे मन्मुख होकर मुझे समाश्रयित करो ॥१०२॥ इतना कहकर वे महादेव प्रभु कान्ती के आगे गमन कर उपस्थित होगये थे । उन्होंने दोनों हाथों को फैलाकर उन कान्ती की गति का विरोध किया था । ॥१०३॥ वह गिरिराज की बंटी शम्भु के मुख का वीक्षण करने उसी क्षण में हटाव अर्थात् बरबत नीचे की ओर मुख वाली होगई थी जिस

तरह से वायु में चकित लटित हो जाया करती है ॥१०४॥ प्रीति की लज्जा से मन्द नेत्रा वाली होने हुए उस समय में वह जड़ की ही भाँति हो गयी थी । वह भामिनी बोलने की इच्छा वाली होती हुई भी कुछ भी बोलने में समर्थ न हो सकी थी ॥१०५॥

मनोरथाना सिद्धया तु मुग्धाभिरिव परितम् ।

शरीरमभवत्तस्या मुदा पूर्णं द्विजोत्तमा ॥१०६॥

पटत्रिवर्षसहस्रं स्तु तप क्लेशमविन्दत ।

यत्ता क्षणात् समुत्सज्य सम्मोदमुदिताभवत् ॥१०७॥

ना च वीक्ष्य तयाभूना प्रणयाद वृषभध्वज ।

कामेन भस्मरूपेण गात्रस्येन च मोहित ॥१०८॥

अथ ता विरहोद्विक्ता समेत्य वृषभध्वज ।

सम्बोध्यग्निद चाटवचन प्रोक्तवान मुदा ॥१०९॥

न तु सुन्दरि मा वक्तु किञ्चनापि त्वमोहसे ।

तप क्लेश स्मरयन्ती किं मह्यं कुप्यसि साम्प्रतम् ॥११०॥

अहं च परितप्यामि त्वामृते सुभगे मम ।

समवाद्यत् समारब्ध तपस्तप्तु त्वया समम् ॥१११॥

सानुरक्तोऽथ साम्प्रत्य भविष्यामि त्वया प्रिये ।

अधुना समतीतो मे यं कृतं समयो मया ॥११२॥

हे द्विजोत्तमो ! मनोरथों की सिद्धि हो जाने से उसका शरीर मुग्धा से परित के समान हो गया था और आनन्द से परिपूर्ण हो रहा था ॥१०६॥ नौ सहस्र वर्ष तक उस काली ने तपश्चर्या का क्लेश प्राप्त किया था । किन्तु उसी क्षण में उस सम्पूर्ण क्लेश का त्याग करके वह आनन्द से मुदित अर्थात् हर्षित हो गई थी ॥१०७॥ उस प्रकार से आस्थित उसको प्रणय वाली देख कर वृषभध्वज भस्मी भूत कामदेव के द्वारा जो कि गात्र में विद्यमान था मोहित हो गये थे ॥१०८॥ इसके अनन्तर विरह से उद्विक्त होकर वृषभध्वज साथ में आकर सम्बोधन

करते हुए आनन्द में यह चाटु वचन कहने लगे थे ॥१०६॥ हे मुन्दरि ! क्या मुझसे कुछ भी कहना नहीं चाहती है ? तप का क्लेश का स्मरण करती हुई क्या इस समय में मुख पर कुपित हो रही हैं ॥११०॥ हे मुझे ! तुम्हारे बिना मैं परितप्त हो रहा हूँ । मेरे समय में जो आपने तपश्चर्या करने का समारम्भ किया था ॥१११॥ हे प्रिये ! मैं अनुराग में युक्त हूँ । मैं सम्कार करके तुम्हारे माथ होऊँगा । मैंने जो समय किया था अब व्यतीत हो गया है ॥११२॥

तपसे भवनो जापि तपसैव मुत्तस्कृता ।
 नाचिन्तनेन जप्येन तौघ्रेण तपसा तदा ।
 मूल्येन महता क्रीनो दामोऽहं मा नियोजय ॥११३॥
 त्वदगाना मस्करणे जटाना च प्रसाधने ।
 प्रमुच्य बल्कल गात्राच्चावर्णशुक्निवेशने ॥११४॥
 हारपुरयेयूरवाञ्छ्यादिपरिष्ठापने ।
 व्रत नियोजय शुभे यदि म्नेहोऽस्मि माहृणि ॥११५॥
 निर्दग्धो यो मया कामो भ्रम्हरूपेण मतनी ।
 म्रियतो मा प्रतिकृत्येव त्वदग्रे दग्धुमिच्छति ॥११६॥
 तन्मादृद्धं मा कामादग्नेरिव मनोहरे ।
 त्वदङ्गाभृतदानेन प्रसीद दयिते मम ॥११७॥

आप भी तप के लिये समुद्यत हुई थी और उस तप में ही आप अपनी भांति सम्पूत हो गई है । आपने भक्ती भांति विनम्र किया—सोय जप किया और सदा तप किया था । आपने यह मम करने बड़ी भारी कीमत के द्वारा मुझे खरीद लिया है । अब मैं आपका दास हो गया हूँ मुझे नियोजित कीजिए ॥११३॥ आप अपने अङ्गों सम्कार करने में—जटाओं के प्रसाधन में मेरा नियोजन करें । शरीर में बल्बल को हटा कर मुन्दर चक्षुओं का निवेशन करने में—हारानूपुर और वाञ्छी आदि के परिष्ठापन करने में हे शुभे ! भोग ही नियोजन करिए यदि

मुझ जैसे भ आपना स्नेह बिद्यमान है ॥११५॥ मैं जो कामदेव को
दाघ कर दिया था वह अस्म रूप से मेरे शरीर में स्थित है । मेरा प्रती-
कार करने ही मुझे तुम्हारे ही सामने दग्ध कर देना वह चाहता है ।
॥ ११६ ॥ हे मनोहरे ! अपने धनु के अमृत के दान के द्वारा
उस कामाग्नि से मेरा उद्धार करिये । हे दयिते ! मेरे ऊपर प्रसन्न
होइये ॥११७॥

— ॐ —

॥ काली हर समागम वर्णन ॥

अथ श्रुत्वा वच शम्भोगिरिजातीव हर्षिता ।
मेने प्राप्त तदा शम्भु मुन्दर दधित पतिम् ॥१
अथ प्राह तदा काली सखीवक्रेण शकरम् ।
यथा स शृणुते वाक्य श्रोतुमिच्छश्च शकर ॥२
न सन्धावतिभेदेन प्रवर्तन्तेऽत्र सज्जना ।
मर्यादया हरस्त मे पाणि गृह्णातु शकर ॥३
पितृदत्ता भवेत् वन्या तपोदत्ता भवेन्नहि ।
तपसा चेत् प्रदत्ताह मा तातश्च प्रदास्यति ॥४
तस्मात् सम्प्रार्थ्य पितर हिमवन्त नगेश्वरम् ।
वैवाहिकेन विधिना पाणि गृह्णातु मे हर ॥५
इत्युक्त्वा विरगभाथ काली लज्जासमन्विता ।
हरोऽपि तद्वच सत्त्व तथ्य योग्य तदाग्रहीत् ॥६
तत स सगण शम्भुस्तत्र वास तदाकरोत् ।
गङ्गावतरणे सानी यथापूर्वं तथाधुना ॥७

भारण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् शम्भु के
वचन या वचन करने गिरिजा अत्यन्त हर्षित हो गई थी और उसने

उम समय में दयित—मुन्दर शम्भु को अपना हास हुआ पति मान
 लिया था । १ । इसके उपरान्त काली ने मुखों के मुख से भगवान् गकर
 से कहा था जिस गीति ने शम्भु मुन्दर की इच्छा करते हुए बाहर का
 श्रवण कर रहे हैं । २ । यहाँ पर मन्त्र में अति भेद ने सम्बन्ध प्रकृत
 नहीं होने हैं । शम्भु हर ममागम ने मेरे उम पाणि का ग्रहण करे ।
 । ३ । कन्या पिता के द्वारा इन हुआ करती है नर ने दत्त (दी हुई)
 नहीं होने हैं । मैं यदि तप ने दी हुई हूँ । और मुक्तको पिता प्रदान
 करेगे । ४ । उसमें भगवान् हिमवान् पिता की भनी भक्ति शर्पणा
 करके भगवान् हर तैराहिक विधि ने ही मेरे पाणि का ग्रहण करे । ५ ।
 मार्कण्डेय मापि ने कहा—इसके अनन्तर काली भगवा ने समन्वित होने
 हुई विराम को प्राप्त हो गई थी । उन अवसर पर भगवान् शम्भु ने भी
 उसके वचन को सर्वथा मन्त्र और प्रथम एवं अनुचिन्तित ही ग्रहण किया
 था । ६ । इसके उपरान्त भगवान् शम्भु ने अपने यहाँ के सहित हो
 बड़ा निवाग करने लगे थे । जिस प्रकार से पहिले रहने से उमी भक्ति
 उम समय में भी उम भगवान् वरुण शिखर पर रहने थे ॥३॥

काली पितुर्गृहं याना सखीभिः परिवारिता ।
 नालोययन्ती मा दोना गुरुणां वदनं सती ॥८
 एतस्मिन्नन्तरे मत्त मरीचिप्रमुखान् मुनीन् ।
 चिन्तयामास शशिभृन् काली प्रार्थयितुं नदा ॥९
 चिन्तिता सप्त मुनयस्तत्क्षणान्मदनादिना ।
 श्राक्ष्टा इव केनापि तत्सकाशमुपागताः ॥१०
 तान् मुनीन् दृष्ट्वा शम्भुः सप्ताग्नीनिव दीपितान् ।
 अरुन्धतीं वमिष्ठस्य सखाशे दृष्ट्वा मनोम् ॥११
 अरुन्धती ततो दृष्ट्वा वसिष्ठस्य समीपतः ।
 मेने योपिद्ग्रहं धर्मं मुनिभिश्चाप्यवजितम् ॥१२
 तस्मै सुखं सर्वं सम्पूज्य दृष्ट्वा हृष्टम् ।

इदमूचु प्रपेहण स्मरणार्कषिता प्रियम् ॥१३॥

वह काली अपनी सखियों के साथ परिवारित अर्थात् घिरी हुई होकर अपने पिता के घर में चली गयी थी। वह सती हीन होती हुई गुरुजनों के मुख का अवलोकन नहीं कर रही थी। ८। इसी बीच में पात मरीचि जिनमें प्रधान थे उन मुनियों का चन्द्र शेखर प्रभु ने उस समय में काली की प्रार्थना करने के लिये चिन्तन किया था। ९। उसी क्षण में कामदेव के अरि शम्भु के द्वारा चिन्तित किये हुए मुनिगण सातों किसी के द्वारा आकृष्ट हुए की ही भाँति उनके समीप में समागत हो गये थे। १०। भगवान् शम्भु ने उन मुनियों को दीपित सात अग्निवों के ही समान देखा था और वसिष्ठ मुनि के समीप में सती अरुणती को भी देखा था। ११। इसके उपरान्त वसिष्ठ मुनि के समीप में अरुणती का विलोकन करने शम्भु ने मुनियों के द्वारा भी न वर्जित किया हुआ योपिन का ग्रहण करना धर्म मान लिया था। १२। फिर उन समस्त मुनिगणों ने वृषभ ध्वज की भस्मी भाँति पूजा करके स्मरण से समावर्तित हुए प्रहर्ष में वह उन्मत्त प्रिय बोला था। १३।

यन् प्रत्यक्ष दृश्यते शुद्धरूप

चन्द्रप्रद्य चन्द्राण्डोपशोभि।

अग्न प्रज्ञ भावित तन्मुनीना

भाग्य दृष्ट भागधेयेन मुक्तेन ॥१४॥

प्रज्ञातन्त्र ध्यानतन्त्र पुरस्ता-

नित्य ध्येय ध्यायिना स्वप्रकाशम्।

पृष्ठीभूत वास्तवत्वेन शब्द

योग्यप्राप्य धाम शम्भोरुदारम् ॥१५॥

दृष्ट्वा ययैवाग्रभाग स नेत्र

त्राणाय म्याद् दर्शनं गूर्यतु-यम्।

नर्धामेद स्वानगवंग्य नित्य

भक्त्या मृत्युय न मम शम्भुदेहम् ॥१६॥

प्रकाशते य प्रथमादिभागत

स्थित स वामे य इहैव नेता ।

सोऽम्मात्मक प्रथम स्वसिद्धर्थ

हरस्य शक्त्या विधृतो सलाटे ॥१७

य प्रधानात्मक सत्त्वरजोभ्या तमसान्वित ।

पुरुष सर्वजगता स हरो न प्रसीदतु ॥१८

इति सस्तुत्य देवेश मुनयो विनयानता ।

ऊचु किमर्थं भवता स्मृतास्तन्नो निगद्यताम् ॥१९

तेषा तद्वचन श्रुत्वा शकर प्रहसन्निव ।

जगाद तान्मुनीन् सर्वानाभाष्य च पृथक् पृथक् ॥२०

ऋषियो ने कहा—जो प्रत्यक्ष में शुद्ध रूप दिखलाई देता है वह चन्द्र से प्रसिद्ध और चन्द्र के छण्ड से उपशोभित है । अन्तर में प्रज्ञा मुनियों का वह भावित स्वरूप है । युक्तों के द्वारा भाग्य के उदय होने में भाग्य देखा गया है । १४ । प्रज्ञा के अधीन—आगे ध्यान तन्त्र—नित्य—ध्यान करने वालों का ध्यान करने के योग्य—नित्य और स्व-प्रकाश है अर्थात् अपने ही से प्रकाश वाता है । बाह्य तत्त्व से निरन्तर पुञ्जीभूत और समुचित प्राप्त करने के योग्य भगवान् शम्भु का उदार धाम है । १५ । नेत्र के सहित जिसके अग्रभाग को देख कर ही सूर्य के समान दर्शन ही परिप्राण के लिये होता है । यह स्थान सर्व का नित्य धाम है । स्तुति करने के योग्य शम्भु के उस देह को भक्ति से नमस्कार है । १६ । जो प्रथम आदि भाग में प्रकाश करता है—जो वाम भाग स्थित है वह यहाँ पर ही नेता है—भगवान् हरके सलाट में विशेष रूप से शक्ति से धारण किया हुआ वह हमारी अपनी सिद्धि के लिये प्रथम होवे । १७ । जो प्रधान के स्वरूप वाला सत्त्व—रज और तम से समन्वित है वह पुरुष समस्त जगत् को ही हर हमारे ऊपर प्रसन्न होवे । १८ । इस प्रकार से मुनिगण ने विनय में अवगत होत हुए देवशर की

हर गृहीत्वा मनमा नान्य सापीह वाञ्छति ।

इत्युक्त्वा मेनया सार्धं सुता दातुं च शम्भवे ॥३४॥

अगीकृत्य विसृष्टास्ते ह्यनुप्राप्तुमंहेश्वरम् ।

ते गत्वा मुनयः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजा ॥३५॥

तो हे गिरवर ! उन शम्भु प्रभु के लिये अपनी पुत्री कासी को दे दो उनके द्वारा इस भाँति कहे हुए अचलराज अपने हृदय में स्थित दुहिता के प्रिय को चिरकाल पर्यन्त समझ कर और सद्गुण से आनन्द प्राप्त करके फिर प्रकाश में यह कहा—समागत हुए आप लोगो ने जो मुनियो में शार्ङ्गल के ही समान हैं अर्थात् परमाधिक श्रेष्ठ हैं मुझे पवित्र कर दिया है और आपने मेरा मनोरथ भी परिपूर्ण कर दिया है । आप लोगो ने जब मुझे आदेश दिया है तो मैं अपनी पुत्री को भगवान् शम्भु के लिये जावश्यक ही समीप कर दूँगा ॥ २६-३१ ॥ इसके पूर्व ही तपस्या का समाचरण करके उसके द्वारा ईश्वर को अपना पति चाहा था । यह तो विधाता का ही नियोजन है । इसको अभ्यसा अर्थात् विपरीत करने में कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् इसके विरुद्ध करने की शक्ति किसी में भी नहीं है ॥ ३२ ॥ वना प्रभु शम्भु के अन्य कौन है जो मेरी पुत्री की प्रायना करन में समर्थ होव । जिसका अब ग्रहण हर ने कर लिया है उसका ग्रहण करन का अन्य कौन उत्साह करेगा । अर्थात् कोई भी उत्साहित नहीं होगा ॥ ३३ ॥ और वह कासी भी अपने मन से मन को ग्रहण करके अन्य किसी की इच्छा ही नहीं कर रहा है । इतना कह कर मेनका के साथ शम्भु के लिये अपनी पुत्री को देने के लिये अङ्गीकार करके उनको विदा किया गया था और फिर वे महेश्वर प्रभु के समीप में प्राप्त हुये थे । उन सब मुनियो ने जिनमें मरीचि प्रधान थे हे द्विजो ! वहाँ से गमन किया था ॥३४॥३५॥

शैलराजो यदाचष्ट तदूचुर्मन्दनारये ।

दिमवास्तनया दातुं तुभ्यमुत्सहते हर ॥३६॥

यदिदानीं त्वया कर्तुं युज्यते त्रियता तु तत् ।
 अस्माश्चाप्यनुजानीह हर गन्तु निजाम्पदम् ॥३७
 सिद्धं ज्ञात्वा हरः साध्यं मुदिस्तान् विसृष्टवान् ।
 यथायोग्यं समाभाष्य क्रमादककशा मुनीन् ॥३८
 कालीविवाहावसरं यूयमायात मा प्रति ।
 इति ते वं हरणाक्तं प्रतिश्रुत्यर्पया ययुः ॥३९
 अथान्योन्यद्रिययया कृत्वा कृत्वा गतागतम् ।
 समयं कारयामास विवाहाय हरो गिरिम् ॥४०
 माघवं भासि पञ्चम्या सितं पक्षं गुरादिने ।
 चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्या भरण्यादौ स्थिते रवौ ॥४१
 आगता मुनयस्तत्र मरौचिप्रमुखा मुहुः ।
 हरेण चिन्तिता सव तथा ब्रह्मादयः सुरा ॥४२

जा कुछ भी शैलराज ने कहा था उन्होंने भगवान् घाङ्कुर से
 कह दिया था । हे हर ! शैलराज तो अपनी बन्धा को आपके लिये
 प्रदान करने को समुत्साहित हो रहा है ॥३६॥ इस समय मैं जो कुछ
 आप करना समुचित समझत हूँ वही आपको करना चाहिए । हे हर !
 अब हम लोगो को अपने आश्रमो में गमन करने के लिये आज्ञा दीजिए ।
 ॥३७॥ भगवान् हर ने साधन करने के योग्य कार्य सिद्ध समझ करके
 उन सब मुनियों का विदाई दे दी थी । एक-एक मुनि से यथोचित रूप
 से सम्भाषण करके ही क्रम से विदा किया था । ३८ । काली के साथ
 जब विवाह हो उस अवसर पर आप लोग मेरे समीप में आइये । इस
 प्रकार से भगवान् हर के कहे हुए वचन की प्रतिज्ञा करके ऋषिगण वहाँ
 से अपने-अपने आश्रमो को चले गये थे । ३९ । इसके अनन्तर परस्पर
 में प्रेम के साथ गतागत कर कर के अर्थात् आपस में गमन और आगमन
 करके भगवान् शम्भु ने गिरिराज से विवाह के सम्पन्न होने के लिये
 समय किया था । ४० । माघव मास में—धुक्ल पक्ष में—पञ्चमी तिथि

और गुरुवार के दिन में—उत्तरा काल्गुनी नक्षत्र में—भरणी आदि म
रवि के स्थित होने पर वहाँ पर मुनिगण जिनमें मरीचि प्रधान थे वहाँ
पर समागत हुए और ब्रह्मा आदि देवगण भी आगये थे ॥४१॥४२॥

तथा च सर्वे दिक्पाला मुनयश्च तपोधना ।
शच्या सह तथा शक्रो ब्रह्माण्याद्यास्तु मातर ॥४३॥
नारदश्च गतस्तत्र देवपित्र ह्यण सुत ।
एतं परिचरै सार्धं गणैराप्यायिन स्वकं ॥४४॥
ववाहिकेन विधिना गिरिपुत्री हरोऽग्रहीत् ।
विवाहे गिरिजा शम्भो सर्पा येऽष्टौ तनौ स्थिता ॥४५॥
ते जाम्बुनदसनद्वा भलकारास्तदाभवन् ।
द्विभुजोऽभून्महादेवो जटा केशत्वमागता ॥४६॥
शिरस्थितश्चन्द्रखण्ड सोऽर्चिषा ज्वलितोऽभवत् ॥४७॥
विचित्रवसन व्याघ्रकृतिरासीत्तदा द्विजा ।
विभक्तिलपो ह्यस्याभूत् सुगन्धिमलयोद्भव ॥४८॥
गौररूपो हरस्तत्र बभूवादभुयदशन ।
ततो दत्वा मगन्धवा सिद्धविद्याधरारगा ॥४९॥

उसी भाँति सब दिक्पाल—तप क ही धन वाले मुनिगण—शची
क सहित इन्द्र देव—ब्रह्मानी आदि मातायें—ब्रह्माजी के पुत्र देवपि
नारदजी भी वहाँ पर गये थे । इन परिचरों के साथ में और अपने
गंगा व द्वारा आप्यायित हुए भगवान् शम्भु ने विवाह सम्बन्धी विधि
के साथ गिरिवर की पुत्री को ग्रहण किया था । गिरिजा और शम्भु के
विवाद में जा आठ तप शम्भु व शरीर में स्थित थे वे उस समय में
गुप्ता में स नद अन्दर हा गये थे । महादेव दो भूजाओं वाले हो गये
थ और जटायु गुदर वंशा व रूप में हावपी थी ॥४३—४६॥ शम्भु
व शिर में सस्थित चन्द्रमा का खण्ड जो था वह भी किरणों में प्रज्वलित
हा गया था । ४७ । ए द्विजा । उस अवसर पर व्याघ्र का जा चम था

वह भी विचित्र वस्त्र के रूप वाला हो गया था । इनका जो भस्म का विलेपन था वह उस समय मे परम सुगन्धित मलय चन्दन हो गया था । ४८ । उस समय मे भगवान् शम्भु गौर स्वरूप से समन्वित होकर अद्भुत दर्शन वाले बन गये थे । इसके अनन्तर समस्त देवगण—गन्धर्व—सिद्ध—विद्याधर और उरग वन सभी आश्चर्य से समुत हो गये थे ॥४९॥

विस्मयं परमं जामुहुरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
हिमवान् मुदितश्चासीत् सहपुत्रैश्च मेनया ॥५०॥
ज्ञातयश्चास्य मुमुहुरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
इदं ब्रह्मा तत्र जगौ हर दृष्ट्वा मनोहरम् ॥५१॥
सर्वं शिवकरं यस्मान् सुवेशमभवत्सुराः ।
तस्माच्छिवोऽय लोकेषु नाम्नाख्यातोऽधिकः शिवः ॥५२॥
महेश्वरमुमायुक्तमोहश यः स्मरेधृदा ।
सततं तस्य कल्याण वाञ्छित च भविष्यति ॥५३॥
एवं काली महामाया योगनिद्रा जगद्यगः ।
पूर्वं दाक्षायणी भूत्वा पश्चाद् गिगिगृणाच्छृणु ॥५४॥
स्वयं समर्थानि सती काली सम्मोहिनी शृणु ।
तथाप्युग्रं तपस्तेपे हिताय जगतां शृणु ।
एवं सम्मोहयामास कालिका शृणु ॥५५॥
इत्येतन् कथितं सर्वं त्यक्त्वा देहा शरीरं यथा ।

ही मनोहर थे गृही कहने लगे थे कि यह तो साक्षात् ब्रह्माजी ही हैं ।
 ॥ ५१ ॥ त्रयोविंशति सब ही वेश शिव अर्थात् कल्याण करने वाला मङ्गल
 मय है इसी कारण से यह लोको में यह अधिक शिव है इसलिये शिव—
 इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं । ५२ ॥ जो पुरुष महेश्वर को उमा से युक्त
 इस प्रकार वाले का हृदय से स्मरण किया मरता हैं उसका निरन्तर
 ही कल्याण होता है और जो भी कुछ मनोवाञ्छित होता है वह भी
 हो जायगा ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार से महामाया योग निद्रा जगत् को प्रभूत
 करने वाली काली पूर्व में दाक्षायणी अर्थात् दक्ष प्रजापति की पुत्री
 होकर पीछे गिरिराज हिमवान् की सुता हुई थी ॥ ५४ ॥ सती काली
 स्वयं हर को सम्मोहित करने में समर्थ होती हुई भी उसने तथापि
 जगतो के हित के लिये शिवा ने उग्र तपश्चर्या का समाचरण किया
 था । इसी रीति से कालिका ने चन्द्रशेखर प्रभु को सम्मोहित किया
 था ॥ ५५ ॥ यह सब कह दिया हैं जिस प्रकार से सती ने अपने देह का
 त्याग करके हिमवान् की पुत्री होकर पुनः महेश्वर प्रभु की प्राप्ति की
 थी ॥ ५६ ॥

इद यः कीर्तयत् पुण्य कालिकाचरितं द्विजाः ।

नाघयो व्याधयस्तस्य दीर्घायुः स च जायते ॥ ५७ ॥

इद पवित्र परममिदं कल्याणवर्धनम् ।

श्रुत्वापि सकृदेवेदं शिवलोकाय गच्छति ॥ ५८ ॥

यः श्राद्धे श्रावयद्विप्रान् कालिकाचारितं महत् ।

पितरस्तस्य क्वक्ष्यमाणुवन्ति न सशयः ॥ ५९ ॥

यः श्रावयेद् ब्राह्मणानां सन्निधौ वा समागतः ।

तत्र स्वयं हरो गत्वा शृणोति सह मायया ॥ ६० ॥

इति वः कथितं पुण्यं त्रयोपापप्रणाशनम् ।

मुष्मन्श्च रोचते चान्यद्यत्तत् पृच्छन्तु सत्तमाः ॥ ६१ ॥

हे द्विजो ! जो कोई हम परम पुण्यमय कालिका देवी के चरित

का कीर्तन किया करता है उसको आधियाँ (मानसिक बिन्ताएँ) और व्याधियाँ नहीं होती है और वह दीर्घायु हो जाता है ॥ ५७ ॥ यह परमाधिक पवित्र है और यह कल्याण का बढ़ाने वाला है। इसका एक बार भी श्रवण करके मनुष्य शिव लोक का गमन किया करता है ॥ ५८ ॥ जो श्राद्ध में आमन्त्रित विप्रों को इस महत् कालिका चरित का श्रवण कराना है उसके पुत्रगण वैकुण्ठ को प्राप्त किया करते हैं— इसमें तनिक भी मशय नहीं है ॥ ५९ ॥ जो ब्राह्मणों की सन्निधि में समागत होकर इसका श्रवण करता है वहाँ पर शंकर माया के सहित गमन करके इसका श्रवण किया करते हैं। अ.प. सोमो के मामले यह परम पुण्यमय और ममस्त पापों का विनाशक कह दिया है। हे सत्तमो! अब आप लोगो को जो भी रचता हो जो भी कुछ अन्य हो उसका श्रवण करिये ॥ ६०—६१ ॥



॥ गौरी शिव विहार वर्णन ॥

विचित्रतिदमाट्यात ब्रह्मन् कालीहरागमम् ।
 पुण्यं पापहरं नित्यं श्रुतिसौख्यप्रदं वरम् ॥१॥
 भूमय कथय शर्वस्य कालीतन्वर्धमुत्तमम् ।
 कथय जहार गौरी वा कथम्भूताय कालिका ॥२॥
 केन वा कारणेनाशु कृष्णा गौरीत्वमागता ।
 तन्न कथय तत्त्वेन मन्त्रिष्वेष्ट द्विर्जातम् ॥३॥
 इदं तु महदाद्यान कथयिष्यामि वोऽनुता ।
 महर्षयस्त्र्यम्बकं तत्त्वेन शुभदं परम् ॥४॥
 एतदीदं पुरा राजा मगर पृष्टवान्मुनिम् ।
 स त यथा समावष्ट तद्गोऽयं निगदाम्यहम् ॥५॥

पुराभूत सोमवशे च सगरो नाम पार्थिव ।

स श्रीमान् बलवान् दक्ष सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥६॥

सोऽभूदेवरथेनैव जित्वा सर्वान् महीभुजः ।

सार्वभौमो नरपति भवराजगुर्वर्युतः ॥७॥

ऋषियो ने कहा--हे ब्रह्मन् ! यह वाली और हरका ममागम अतीव विचित्र आपने वर्णन किया है जो परम पुण्यमय--पापों का हरण करने वाला--निश्च और श्रेष्ठ तथा श्रवण करने में सुग्न प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ अब आप पुनः शिव का उत्तम तनु का अर्ध भाग वाली अथवा गौरी ने कैसे हरण किया था । वह कालिका किम प्रकार की है ॥ २ ॥ हे मुनियो मे श्रेष्ठ । हे द्विजो मे उत्तम । किम कारण से शीघ्र ही काली गौरीत्व को प्राप्त हो गई थी । हमको यह सब तात्त्विक रूप से कहिए ॥ ३ ॥ मार्कण्डे मुनि ने कहा--इम महान् आख्यान को इम समय मे मैं आपके सामने कहूंगा । हे मर्द्दपि गणो ! इम परम शुभ देने वाले का आप लोग सब श्रवण कीजिए ॥ ४ ॥ यही बात पहिले समय मे राजा सगर ने औचं मुनि से पूछी थी । उनने उमने जिस प्रकार मे कहा था वही मैं आप लोगों को बतलाता हू ॥ ५ ॥ प्राचीन समय मे सोमवश मे एक नगर नाम वाला राजा हुआ था । वह बलशाली--श्रीमान--दक्ष और समस्त शास्त्रो के अर्थो का पारंगामी भी विद्वान् था ॥ ६ ॥ वह राजा अपने एक ही रथ के द्वारा समस्त नृपो को जीतकर सब राजा के उत्थित गुणो मे समन्वित नृपति सार्वभौम अर्थात् षड्वर्ती हो गया था ॥७॥

त प्राप्तराज्य राजान सगरं पार्थिवोत्तमम् ।

सभाजयितुमत्यर्थं मूनय समुपागता ॥८॥

प्राच्योदीच्या महात्मानो दाक्षिणात्यास्तथोत्तरा ।

मुनयो ब्राह्मणाश्चैव नृप द्रष्टु सभागमन् ॥९॥

आगतेष्वथ सर्वेषु महात्मा ज्वलनोपमः ।

और्वो नाम मुनिः श्रीमानागतो नन्दितुं नृपम् ॥१०॥
 तमागतं मुनिं दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ।
 सपर्यया महत्या नु मगरस्तमपूजयन् ॥११॥
 पाद्यमाचमनायं च दत्त्वंवाघंपुरोगमम् ।
 निवेदयामास च तं मुनिश्चेष्टं वरासने ॥१२॥
 उवाच च महात्मानमौर्वं स मगरो नृपः ।
 प्रणम्य च यथायोग्यं कुशलं त इति द्विजम् ॥१३॥
 स च ग्राह्यं मुनिश्चेष्टो नरराज सदा मम ।
 सर्वत्र कुशलं त्वां तु द्रष्टुं कुशलमृत्पहे ॥१४॥

उस राज्य प्राप्त करने वाले राजाओं में अत्युत्तम राजा मगर
 को अभिनन्दित करने के लिये मुनिगण समागन हुए थे ॥ ८ ॥ पूर्व
 दिशा के रहने वाले—उत्तर के निवासी—दक्षिण के वासी तथा उत्तर
 के मुनिगण और ब्राह्मण नृप के दर्शन करने के लिये समागत हुए थे
 ॥६॥ सबके समागन होने पर इसके उपरान्त अग्नि के समान महान आत्मा
 वाले और्व नाम वाले श्रीमान् और्व मुनि नृप का अभिनन्दन करने के
 लिये आये थे ॥१०॥ आगत उन मुनिवर का दर्शन करके जो जसते हुए
 अग्नि के महान थे राजा मगर ने महनी पजा के द्वारा उनका अभ्यर्चन
 किया था ॥ ११ ॥ अर्घ्यपूर्वक पाद्य और आचमनीय देकर उन मुनिश्चेष्ट
 को राजा ने श्रेष्ठ आसन पर निवेष्टित किया था ॥ १२ ॥ फिर उस
 मगर राजा ने महात्मा और्व से कहा था । उमने समुचित रीति से प्रणाम
 करके द्विज से पूछा था कि आपका कुशल तो है ॥१३॥ और मुनि श्रेष्ठ
 ने कहा था कि हे नरराज मेरा मदा ही सर्वत्र कुशल है । मैं आपका
 दर्शन करने के लिए कुशलता के साथ उत्साह करता हूँ ॥१४॥

त्वत्त कोऽन्योऽस्ति कुशलो पृथिव्या सर्वराजमु ।

य एकः सज्जिगायाशु भवान् सकलपार्थिवान् ॥१५॥

कुशलं वर्धतां नित्यं तव राजवरोत्तम ।

यथा नीत्या सदाचारं पृथिवी शाधि भूपते ॥१६॥
 तव वद्वौ जगदवद्विर्वद्वौ चेष्टा तत कुरु ।
 शुभ्राश्ववद्वौ सतत मागगस्येव वर्धनम् ॥१७॥
 प्रथम सदगणैरात्मा क्रियता नप योजनम् ।
 तत स्वभार्या महिषी क्रियता तद्गुणैर्युता ॥१८॥
 निन्या सयोजिता चेन स्याद्वनिता स्वयमेव हि ।
 स्वगणेन प्रवेक्ष्यन्ती महत्यपि घृतघृता ॥१९॥
 श्रूयते हिमवत्पुत्री शम्भुसगतमानसा ।
 क्रियाभ्युपायैर्वह्नि शम्भुना सा प्रयोजिता ॥२०॥
 ततोऽतिमहता प्रेम्णा शकरस्याथ पार्वती ।
 शरीरमर्धमहरत्तस्यैवानुमते सती ॥२१॥

आपमे अधिक पृथिवी मे समस्त राजाओं मे कुशली है जिस
 एक ने ही आपने बहुत कीमती ही समस्त राजाओं को जीत लिया था
 ॥१५॥ हे राज नरोत्तम ! आपका कुशल नित्य ही बढ़े । हे भूपते !
 नीति के अनुसार सद आचरणों के द्वारा पृथिवी का शासन करिये ।
 ॥ १६ ॥ आपकी समृद्धि के होने पर जगत् की वृद्धि है अतएव उसी
 भाँति आप वृद्धि के लिये ही चेष्टा करिए । जैसे चन्द्र की वृद्धि होने
 पर सागर का निरन्तर वृद्धि हुआ करनी है । १७ । हे नृप ! सबसे
 प्रथम सदगुणों से अपनी आत्मा को अर्थात् अपने आपको योजित करिए ।
 इसके उपरान्त उसके गुणों से समन्वित भार्या को महिषी बनाइये । १८ ।
 यदि वनिता को नित्य ही मयोजित किया जावे तो वह स्वयं ही अपने
 गुणों के विषय में प्रवेक्षण करने वाली होती हुई महती और व्रतधारण
 करने वाली हो जाती है ॥ १९ ॥ ऐसा गुना जाता है कि शम्भु
 में सङ्गत मन वाली होती हुई हिमवान की पुत्री बहुत सी क्रिया
 और अभ्युपायों के द्वारा वह शम्भु के द्वारा प्रयोजित की गई थी
 ॥ २० ॥ इसके अनन्तर शम्भु के अत्यधिक प्रेम से सती पार्वती ने

उनकी ही अनुमति से उनका आगे शरीर का हरण कर लिया
था ॥२१॥

अर्धनारीश्वरस्तेन तदा प्रभृति शकर ।
अवभन नृपज्ञादूर्ल नाभ्या भार्या गृहीनवान् ॥२२॥
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र म्वजायाभात्मनोत्तरे ।
गुणं सयोजय लघु सयोजय तत् सुतम् ॥२३॥
इत्योवभाषित श्रुत्वा सगरोऽपि मुदान्वित ।
इदं मुनिः पच्छन् स नृपति स्मितसन्तत ॥२४॥
कथं ता गिरिजा देवी कायाधर्महरन् सती ।
शकरस्य द्विजश्रेष्ठ तदहं श्रोतुमुत्सहे ॥२५॥
नीत्या यथा वा योवतया स्यात्मा भार्या सुतोऽथवा ।
ता नीतिं च मवाचारराहिता श्रोतुमुत्सहे ॥२६॥
राजनीतिं सना नीतिमन्येषां च कृतात्मनाम् ।
पथक पथक श्रोतुमिच्छुरहं त्वा नायये द्विज ॥२७॥
यदि गृह्यमिदं यद्वा न तदा श्रोतुमुत्सहे ।
तथा नाजापयामि त्वा श्रोतुमिच्छुश्च तत्समम् ॥
श्रपया कथनीय चेत्तदा कथय तन्मुने ॥२८॥

तभी मे लेकर भगवान् गङ्गूर उमी कारण मे अर्धनारीश्वर हो
गये थे । हे नृप ज्ञादूर्ल । उन्होंने फिर अग भार्या का ग्रहण नहीं
किया था । २२ । इस कारण मे हे राजेन्द्र । आप भी अपनी आया को
उत्तर मे आत्मा से गुणों के द्वारा मशोजित कीजिये उसके उपरान्त सपु
मुन को मयोजित करे । २३ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—राजा सगर
भी इस ओर्व के द्वारा भाषित का श्रवण करने हर्ष से समर्पित हो
गया था और मन्द मुष्कान से सयुक्त होकर उगरी मुनि मे पर प्राप्त
था । २४ । सगर ने कहा—उस सभी गिरिजा देवी ने गङ्गूर भगवान्
के शरीर का आधा भाग हरण किया था ? हे द्विज श्रेष्ठ ।

श्रवण करना चाहता हूँ । २५ । इस नीति से अपनी आत्मा का अर्थात् अपने आपका भार्या का अथवा सुत का योजन करना चाहिए उस नीति का और सदाचार संहिता का भी मैं श्रवण करना चाहता हूँ । २६ । हे द्विज ! राजनीति—सत्पुरुषों की नीति और अन्य कृतात्माओं की नीति का मैं पृथक्-पृथक् श्रवण करने का इच्छा वाला हूँ मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ । २७ । हे ब्रह्मन् ! यदि यह परम गोपनीय हो तो मैं नहीं सुनना चाहता हूँ । मैं उस भानि से आपको कोई आज्ञा नहीं दे रहा हूँ और उसके ही समान मैं श्रवण करने का इच्छुव हूँ । कृपा करके आपको मुझे बतलाना चाहिए यदि यह बतलाने के योग्य हो तो हे मुनिवर ! आप कन्ये ॥२८॥

इत्येवं सगरेणोक्तमर्वाञ्जपि द्विजसत्तम ।

प्रत्युवाच महात्मान कृपालुस्तत्र भूपती ॥२९॥

शृणु राजन प्रवक्ष्यामि यद् यन् पण्डमिह स्वया ।

यथा हरस्य तवर्धं भूभृत्पुत्री पुराहरत् ॥३०॥

यथा नीतिस्त्वया कार्या यत्र यत्र नृपोत्तम ।

सर्वेषां च सदाचार क्रमाद वक्ष्यामि तच्छृणु ॥३१॥

यदोढा हिमवत्पुत्री शक्रेण महात्मना ।

कियन्त स तदा काल तत्र निन्ये सहोमया ॥३२॥

रममाणस्तथा सार्धं सानौ कुञ्जे दरीपु च ।

विजहार चिर तत्र पार्वती मोदयन् हर ॥३३॥

अथ काले तु सम्प्राप्ते शम्भु वंलासपर्वतम् ।

सगणो भार्यया सार्धमगच्छत्त्रिदिवोपमम् ॥३४॥

स त्वया क्रीडमानश्च त्यक्तध्यानात्मचिन्तन ।

तद्वक्त्रचन्द्रे नेत्राणि चकोरानिव चावरोन् ॥३५॥

हुये उस महान् आत्मा वाले के प्रति कहा । २६ । अर्चन ने कहा—हे राजन् ! आप श्रवण कीजिए । आपने यहाँ पर जो-जो भी पूछा है उसे मैं आपको बतलाऊँगा । पहले पुराने समय में हिमवान् की पुत्री ने जिस रीति से भगवान् हर के शरीर का आधा भाग का हरण किया था । ३० । हे जृणोत्तम ! जहाँ-जहाँ पर आपको जैसी नीति करना चाहिये उसे और सबका सदाचार जो भी होना चाहिये इसे क्रम से ही मैं बतलाऊँगा—यह आप श्रवण कीजिए । ३१ । जिस समय में महारत्ना शङ्कर ने हिमवान् की पुत्री के साथ विवाह किया था । वह उस समय में कितने बाल पर्यन्त वहाँ पर उमा के साथ रहे थे अर्थात् कितना समय व्यतीत किया था । ६२ । भगवान् शम्भु शिखर पर—कुञ्ज में और पर्वत की दरियों में उसके साथ रमण करते हुये भगवान् हर ने पार्वती को प्रसन्न करते हुये वहाँ पर चिरकाल तक विहार किया था ॥३३॥ इसके अनन्तर काल के सम्प्राप्त होने पर भगवान् शम्भु अपने गणों के सहित और अपनी भार्या के साथ स्वर्ग के समान कैलास पर्वत पर चले गये न । ३४ । वे उस उमा के साथ क्रीडा करते हुये ध्यान और आत्मा का विमल उज्ज्वल सव कुछ त्याग दिया था और उनमें उस उमा के मुख चन्द्र पर ही अपने नेत्रों को चकोर के ही भाँति बना लिया था अर्थात् वे सर्वशः उसके ही मुख का अवलोकन किया करते थे ॥३५॥

पुष्पाणि ववचिदाहृत्य गिरिजां प्रति शकर ।

सर्वाङ्गसङ्गिनी माला विदधेऽतिमनोहराम् ॥३६॥

कदाचिदादर्शनले युगपच्चात्मनी मुलम् ।

मुख तथैवापर्णाया धीलाञ्जले वृषध्वजः ॥३७॥

कदाचिन्मृगनाशना विलेपैर्गन्धपत्रकम् ।

तस्या घनस्तनयुगे विलिलेख स्मरान्तक ॥३८॥

गन्धसारविलेपेन तिलान्यध्विकातनो ।

तत्ताटे चाकरोच्चारु चन्द्रवद्वनसन्धिषु ॥३९॥

उमानिर्भाससक्तकेशपाशेषु चित्रकम् ।
 चन्दनागुरुकस्तूरीकु कुमस्य विलेपनं ॥४०॥
 चकार येन तस्यास्त्वं केशपाशो व्यराजत ।
 नतनायावतीर्णस्य शिखितुच्छस्त साम्यधृक् ॥४१॥
 जाम्बूनदमयाञ्ज शृङ्गान् कुण्डलाद्यान् मनोहरान् ।
 अलङ्कारानुमा देहे समारार्षीद वृषध्वज ॥४२॥

किसी समय में गिरिजा के लिये पुष्पो का समाहरण करके भगवान् शङ्कर अत्यन्त सुन्दर उमके लिये माला बनाया करते थे जो कि उसके मर्ब अङ्गो में नीचे तक लटकने वाली होवे । ३६ । किसी समय में दर्पण में एक ही साथ अपना मुख और उमी भाँति अपर्णा का अर्धात् उमा देवी का मुख वृषभ ध्वज देखा करते थे । ३७ । किसी अवसर पर कस्तूरिकाओं के द्वारा गन्धपत्रों के विलेपनों से उस उमा के धन दोनों स्तनों पर भगवान् शङ्कर मिलेखन किया करते थे । ३८ । भगवान् शम्भु अम्बिका के शरीर पर रन्ध्रसार का विलेपन करते थे और मलाट पर लगाकर उसे सुन्दर किया करते थे । चन्द्र के समान धनी मन्धियों वाले उमा देवी के नियमों से संसक्त केश पाशों में चित्रक लिखा करते थे । चन्दन—अगुरु (गूगल)—कस्तूरी और कुङ्कुम के विलेपनों के द्वारा विचित्र कर दिया करते थे जिससे उम देवी का केश पाश अर्धात् मस्तक के केशों का जुट विशेष रूप से शोभायमान हो जाता था । जो केशपाश नृत्य करने के लिये अवतीर्ण मयूर के पुच्छ की समता का धारण करने वाला हो जाया करता था ॥३९—४१॥ वृषभ ध्वज गुर्वर्ण से परिपूर्ण—शुद्ध—मनोहर कुण्डल आदि अलङ्कारों को उमादेवी के देह में समारार्षित किया करते थे ॥४२॥

तर्जाम्बूनदसम्भूतैर्योजितैर्गिरिजातनु ।
 विभाति जलदापूर्ण कालिके च तडिद्गणै ॥४३॥
 मर्वेदिव्यं रत्नकारं नानारत्नैः सदशुक्लं ।

संपूर्णमण्डिता काली सादृश्य प्रकृतेर्दंघी ॥४४
 एव सदा सानुरागस्तस्या शम्भुर्जगत्पतिः ।
 जगद्धिताय चिक्रीड काल्या दयितया सह ॥४५
 काली च जगता माता महामाया जगन्मयी ।
 योगनिद्रा जगदबुद्धिविद्याविद्यात्मिकाखिला ॥४६
 प्रकृतिः परमा भूतिः सर्गान्तस्थितिकारिणी ।
 सम्मोह्य शकर यत्नाज्जगता च हितैषिणी ।
 रेमे तेन सम देवी चन्द्रिकेव सुधागुना ॥४७

उन सुवर्ण से विनिर्मित योजित अलङ्कारों से गिरिजा देवी का शरीर जलदो से आपूर्ण में तडित गणों से कालिका की ही भाँति शोभित हो रहा था । ४३ । सम्पूर्ण दिव्य अलङ्कारों के द्वारा—अनेक प्रकार के रत्नों से तथा सुन्दर वस्त्रों से पूर्ण रूप से मण्डित हुई काली ने प्रकृति देवी को सदृशना को धारण किया था । ४४ । इस प्रकार से जगत् के पति भगवान् शम्भु सर्वदा उन काली में अनुदाय से युक्त होगये थे । उन्होंने जगत् के हित के लिये दयिता काली के साथ क्रीड़ा की थी । ४५ । जगती की माता—महामाया—जगन्मयी काली योग निद्रा, जगत् की बुद्धि—विद्या और अखिना विद्या के स्वरूप वाली थी । वह परमा भूति—प्रकृति और सर्ग—स्थिति और सहार के करने वाली थी । वह जगती की हित की इच्छा करने वाली इसी कारण से भगवान् शङ्कर का सम्मोहन करके सुधागु के साथ चन्द्रिका ही ही भाँति उनके साथ उन देवी ने रमण किया था । ४७ ।

॥ वेताल भरव उत्पत्ति ॥

अथ कालक्रमेणैव प्रवृद्धास्ते महावलाः ।
 शस्त्रास्त्रज्ञानकुशलाः शास्त्रायं परिनिष्ठिताः ॥१॥
 सम्प्राप्तयोवना दीप्ता दुर्धर्षाः परिपन्थिभिः ।
 धर्मार्थज्ञानकुशला ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥२॥
 सदा सहचरो तत्र प्रीत्या वेतालभरवौ ।
 अलर्को दमनशकं च तयोपरिचरस्त्रयः ।
 सदा सहचरा नित्यं भ्रातरश्चान्द्रशेखराः ॥३॥
 त्रिष्वात्मजेषु नृपतेः सदोपरिचरादिषु ।
 ममत्वमधिकं नित्यं प्रीतिस्नेहौ तथाधिकौ ॥४॥
 वेताले भरवे चापि चन्द्रशेखरभूभृत ।
 नास्त्येव तादृशी प्रीतिर्यादृशी तेषु जायते ॥५॥
 न तो दृष्ट्वा स नृपति कदाचिच्चन्द्रशेखरः ।
 आत्मात्मादतेऽजस्रं पुत्रनुदधे प्यतेऽप्यवा ॥६॥
 तो वीरौ धर्मकुशली महावसपराक्रमौ ।
 त्रैलोक्यविजये दक्षौ शस्त्रास्त्रग्रामपारगौ ॥७॥

और्व मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वे काल क्रम से ही वे महान् बल वाले प्रवृद्ध होगये थे । वे शास्त्रो और अस्त्रो के ज्ञान में कुशल थे और शास्त्रो के अर्थों में परिनिष्ठित थे । १ । वे यौवन के सम्प्राप्त करने वाले थे तथा परम दीप्त एवं परिपन्थियों के द्वारा दुर्धर्ष थे अर्थात् शत्रु गण उनके तेज को सहन नहीं कर सकते थे । वे धर्म और अर्थ के ज्ञान में परम प्रवीण थे तथा ब्रह्मण्य एवं सत्यवादी थे । २ । वहाँ पर प्रीति से वेताल और भरव सर्वदा सहचर थे । अलर्को—दमन और उपरिचर ये तीन थे । चन्द्रशेखर भाई सदा नित्य साथ में चरण करने वाले थे । ३ । राजा के तीन पुत्रों में जो उपचर प्रभृति थे उनमें

दोनों पुत्रों को भली भाँति प्रणत भी देखा करता था । ६ । इनके अनन्तर राजा ने उपरिचर को यौवराज्य पद पर अभिषिक्त कर दिया था । वह सबसे बड़ा और समस्त राजा के गुणों से समुत्त औरत पुत्र था । १० । जो पीछे नीतियों के द्वारा समस्त राजाओं को योजित करेगा । उपरिचर नाम वाला समस्त शास्त्रों के अर्थों में पारङ्गत था । ११ । राजा ने दमन के लिये तथा अलर्क के लिये दाय दिया था जिसमें बहुत घण रत्न थे तथा अधिव आमन और रथ थे । १२ । भाग के द्वारा उत्तम घन रत्न आदि दाय के वित्त उन दोनों के लिये नहीं दिये थे जो कि वेताल औरत थे इसके अनन्तर उन दोनों में क्रोध ने प्रवेश कर लिया था । वे दोनों ही क्रोध से अश्विपरीति हो गये थे और वे दोनों इधर-उधर विचरण करने लग गये थे । उन दोनों वीरों ने भोगों के उपयोग करने की इच्छा ही नहीं की थी और वे तपश्चर्या का समाचरण करने के लिये उद्यत हो बये थे । उन दोनों के किसी भार्या से विवाह नहीं किया था अर्थात् वे दोनों अविवाहित थे तथा निरन्तर सदा ही निर्जन वन में वास किया करते थे ॥१४॥

तथाभूतौ तदा पुत्री देवी वेनालभरवौ ।

तुमुधे चिन्तयाकान्ता देवी तारावती तदा ॥१५॥

राजोपरिचराद् भीता पत्युश्च चन्द्रशेखरात् ।

नोवाच किञ्चित् मुक्षीच्छन्न तौ बोधयत्यपि ॥१६॥

एतस्मिन्नन्तरे विद्वान् कपोतो मुनिसत्तम ।

चित्रागदासगमोगी सन्तुष्टः सुरतोत्सवं ॥१७॥

चित्रागदा परित्यज्य सपुत्रा सहचारिणौम् ।

इयेष गन्तु स प्रोचे तदा चित्रागदा वचः ॥१८॥

चित्रागदे तपस्ततु गमिष्यामि तपोवनम् ।

किं ते प्रिय करोमीह त मे वद मतोहरे ॥१९॥

तुमुधश्च मुवर्चाश्च तनयौ तव सुव्रत ।

एतयोस्त्व मुनिथेष्ठ प्रिय कुरु यथोचितम् ॥२०॥

मा च'पि भगिनीगेहे सस्थाप्य द्विजसजयम् ।

तदा तपोवन गच्छ यदि ते रोचतेऽनघ ॥२१॥

उस काल में देव वेतास और भैरव पुत्रों को उस प्रकार से रहने वाले हैं—ऐसा ज्ञान किया तो उस समय मैं देवी तारावती बिना से समाक्रान्त हो गई थी अर्थात् उसे बहुत अधिक चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी ॥१५॥ वह उपरिचर राजा से और अपने पति चन्द्रगखर से भयभीत हो गई थी । वह मुन्दती गुप्त रूप से उन दोनों का ज्ञान रखती हुई भी कुछ भी नहीं बोली थी ॥१६॥ इसी बीच में मुनियों में परम श्रेष्ठ और विद्वान् वसिष्ठ चित्राङ्गदा के साथ सम्मेलन करने वाला और सुरलोकियों के द्वारा परम सन्तुष्ट होकर उस सहचारिणी एक पुत्रों से कुछ चित्राङ्गदा का परिचय करके उसने वहाँ से गमन करने की इच्छा की थी और उस अवसर उसने चित्राङ्गदा से यह वचन कहा था ॥१७—१८॥ मुनि ने कहा—हे चित्राङ्गद ! मैं तपस्या का समा-चरण करने के लिये अब तपावन में गमन करूँगा । यहाँ पर मैं तेरा क्या प्रिय कार्य करूँ ? हे मनोहर ! तूनी का मुनं तूम वज्रनाथी ॥१९॥ चित्राङ्गदा ने कहा—हे मुन्ध ! तुन्वर और मुन्धर्ची ये दो आपके पुत्र हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! आप इन दोनों का जो भी उचित हो वह प्रिय करो ॥२०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मुन्धकी भी मेरी भगिनी के घर में स्थापित करके हे अनघ आपकी यदि स्वप्ना है तो जहाँ आप स्थापित करें गमन करिए ॥२१॥

इति श्रुत्वा वचन्तस्या वसिष्ठो मुनिमनघः ।

हिरन्यार्थं समानोच्य कृवेग्यदन दत्तो ॥२२॥

श्राद्धंयित्वा कुबेरं तु मुन्धर्चानां जनानि यत् ।

निष्काशा तु सहस्राणि स श्रेष्ठे मुनिमनघः ॥२३॥

ततः भारुश्च गन्तानामानीत श्व सर्वावधे ।

पुत्राभ्या प्रददी विप्रो भार्यायै च विशेषतः ॥२४॥

ततस्ता सहपुत्राभ्या तर्धनैररि भूरिभिः ।

चित्रागदामतेनाथ पुत्रयोरपि सम्मते ॥२५॥

सुवर्चसं तुम्बुरु च तथा चित्रागदामपि ।

आमन्त्र्य मुनिशार्दूलं करवीरपुरं गयो ॥२६॥

तत्र गत्वा स कपोतो राजानं चन्द्रशेखरम् ।

राजोपरिचरं चैव वाक्यमेतदुवाच ह ॥२७॥

इयं ककुत्स्थजा भूपतवैव विदिता पुरा ।

सद्योजातौ तवैवास्यामेतौ मे तनयौ शुचौ ॥२८॥

मुनिश्रेष्ठ कपोत यह उसके बचन का श्रवण करके भली भाँति विचार करके हिरण्य (सुवर्ण) के लिये कुवेर के भवन में गये थे ॥२२॥ उसने कुवेर से छँ सी सहस्र सुवर्ण के निष्ठा की प्रायना की थी और उसने प्राप्त कर लिया था ॥ २३ ॥ श्रीविद्या के सहित सौभार रत्नो के लाकर विप्र ने पुत्रों को दे दिया था और विशेष रूप से भार्या को दिया था ॥२४॥ इसके उपरांत पुत्रों के सहित तथा बहुत से धनो के भी साथ चित्राङ्गदा के तथा पुत्रों के भी मत से सुवर्चा और तुम्बर तथा चित्राङ्गदा को भी आमन्त्रित करके वह मुनि शार्दूल करवीरपुर में चला गया था ॥२६॥ वहाँ जाकर वह कपोत राजा चन्द्रशेखर से तथा राजा उपरिचर यह वाक्य बोला था ॥ २७ ॥ हे नृप । यह ककुत्स्थ की पुत्री है और यह पहिले आपकी भी जानी हुई है । उसी भाँति मे परम शुचि—सद्योजात ये दोनों इसके रुदर से समुद्भूत मेरे पुत्र हैं ॥ २८ ॥

एभिर्वित्तं समं पुत्रौ मम त्वं प्रतिपालय ।

राजोपरिचरश्चापि पालयत्विह मे सुतो ॥२९॥

अपुत्रस्य नृप पुत्री निर्धनस्य धनं नृप ।

अमातुर्जननी राजा ह्युतातस्य पिता नृप ॥३०॥

अनाथरमं नृपो नाथो ह्यभर्तुं पाषियं पतिः ।

अमृत्यस्य नृपो भृत्यो नृप एव नृणां सखा ।

सर्वदेवमयो राजा तस्मात् त्वामर्थये नृप ॥३१॥

ततः स राजा प्राह मुनिमेव द्विजोत्तमम् ।

करिष्ये त्वद्वचश्चाह राजोपरिचरश्च सः ॥३२॥

अथ चित्रामदा राजा क्षत्राह मुनिसम्भवे ।

सुतो च तस्य सधनो ज्यायसे सूनवे ददा ॥३३॥

स चोपरिचर प्रादाद्राज्यमर्घ्यं सुवचसे ।

तथैव सचिवाध्यक्षमकरोत्तुम्बुरुं तदा ॥३४॥

कपोतश्चापि सुप्रोक्तं पुत्रार्घ्यं समवेक्ष्य च ।

जगामामन्त्र्य नृपतिं तपसे च तपोवनम् ॥३५॥

इन घना के साथ आप मेरे दानों पुत्रों का प्रातःपालन करें । राजा परिचर भी यहाँ पर मेरे पुत्रों का पारपालन करें । ३६। जो पुत्र हीन होता है उसका पुत्र नृप ही होता है और जो धन हीन होता है उसका धन भी नृप ही हुआ करता है । बिना माता वाले की जननी नृप है और तात से रहित का पिता भी नृप ही हुआ करता है । ३७। अनाय का नृप नाथ है और बिना भर्ता वाले का पति नृप है । जिससे कोई मृत्यु न होवे वे उसका मृत्यु राजा ही है और नृप ही मनुष्य का सखा है । राजा सभी देवों से परिपूर्ण हुआ करता है इसीसिधे हे नृप ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । ३८। श्रीव ने कहा—इसके अनन्तर उस राजा ने द्विजोत्तम उस मुनि से इस प्रकार से कहा था—मैं आपका वचन पूर्ण करूँगा और राजा परिचर भी करेगा ॥ ३९॥ इसके उपरान्त उस राजा ने मुनि की सम्मति से चित्राङ्गदा को ग्रहण कर लिया था । और उसने दोनों सुतों को जो धन ने साहित्य से बड़े पुत्र के लिये उसने दे दिया था । ४०। उस उपरिचर ने सुवर्धा को राज्य का आधा भाग दे दिया था । और उसी भाँति उस अवसर पर तुम्बुरु को उसने सचिवों का अध्यक्ष बना दिया था । ४१। और कपोत भी पुत्र का अर्घ्य भाग देखकर परम

प्रसन्न हुआ और राजा का आमन्त्रण करके वह तप के लिए तपोवन को चला गया था ॥३५॥

पथि गच्छन् स कपोतः शम्भुपुत्री मनोहरौ ।
 एकाकिनी चरतन्तौ तु सूर्याचन्द्रमसाविव ॥३६॥
 तयोर्दंदर्शं च तदा वदने वानराकृती ।
 स्मृत्वा पूर्वकथां दृष्ट्वा तावपृच्छत् तपोधनः ॥३७॥
 कीं युवा देवगर्भां चरन्तीं विजने पथि ।
 एकाकिनीं नरश्रेष्ठो तन्मे वदतमीरितम् ॥३८॥
 अथ तौ प्रणिपत्यैनं सम्भाष्य च समञ्जसम् ।
 कपोताख्य मुनिश्रेष्ठमचतुः शंकरात्मजौ ॥३९॥
 चन्द्रशेखरपुत्री नो तारावत्या समुदगतौ ।
 विद्धि त्वं मुनिशादूलं प्रणमावः पदं तव ॥४०॥
 अवज्ञां वीक्ष्य नृपतेरावयोः सततं मुने ।
 एकाकिनीं निर्जनेषु भ्रभावो मम्युना सदा ॥४१॥
 किमर्थात्मात्मजौ पुत्रीं प्रणतो सततं नृपः ।
 अवज्ञाय महाभाग दायमात्रं न दत्तसति ॥४२॥

मार्ग में गमन करते हुए उस कपोत ने अकेले विचरण करते हुए—परम मनोहर और चन्द्र के ही समान हो भगवान् शम्भु के पुत्री को देखा था । और उन दोनों के मुख में चन्द्र की सी—आकृति देखी थी । पूर्व में घटित कथा का स्मरण करके और उन दोनों को देखकर उस तपोधन ने उन से पूछा था । ३६ । ३७ । आप दोनों कौन हैं जो कि देव गर्भ से समान आभा वाले हैं और मार्ग में उस विषयान में एकाकी विचरण कर रहे हैं । हे नर श्रेष्ठो ! यह मेरे कथित का आप उत्तर प्रदान करें । ३८ । इससे अनन्तर उन दोनों इनकी प्रणिपात किया या और समञ्जस सम्भाषण किया या अर्थात् समुचित बातचीत की थी । उन शङ्कर के दोनों पुत्री ने कपोत नाम वाले मुनि श्रेष्ठ से कहा

था । ३६ । हे मुनि शार्दूल ! हम दोनों चन्द्र शैखर के पुत्र हैं और तारावती के उदर में समुत्पन्न हुए हैं । आप हमको जान लीजिए । हम आपके पदों में प्रणाम करते हैं । ४० । हम दोनों की राजा से निरन्तर अवज्ञा देखकर हे मुने ! क्रोध से संयुक्त होते हुए हम सदा ही अवेते ही निर्जन वनों में भ्रमण किया करते हैं । ४१ । सर्वदा प्रणत रहने वाले आत्मज पुत्रों को अब ज्ञात करके नृप किस लिये हे महाभाग ! दान माग को भी देने की इच्छा नहीं करता है । ४२ ॥

तस्मादाद्यां तपस्तप्तुमिच्छावो द्विसप्तम ।
उपदेशप्रदानेन चानुगृह्णाति चेद्भवान् ॥४३॥
ततस्तयोर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसप्तमः ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानस्ताविदं मुनिरग्रवीत् ॥४४॥
न युवां तनयौ तस्य चन्द्रशेखरभूपतेः ।
तारावत्यां समुत्पन्नो भवन्तो शंकरात्मजौ ॥४५॥
सद्यो जातौ महावीर्यौ वेतालत्वे च सम्मतौ ।
भृङ्गिमहाकालसंज्ञी शापाद् धरणिमागतौ ॥४६॥
युवयोरत्र तेनैव न दायं दित्सति त्रियम् ।
गच्छतं शरणं तार्तं शंकरं वृषभध्वजम् ॥४७॥
स एव युवयोः सर्वं करिष्यति महेश्वरः ।
किं वात्यग्नेण तपसा चिरकालफलेन वै ॥४८॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कपोतः परमात्मधृक् ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानान्ताभ्यां सर्वमथोचिवान् ॥४९॥

हे द्विज श्रेष्ठ ! इसी कारण से हम दोनों तप का समाचरण करने के लिये इच्छा कर रहे हैं यदि शाप उपदेश के प्रदान के द्वारा हमारे ऊपर अनुग्रह करते हैं । ४३ । इसके अनन्तर उन दोनों के वपन का श्रवण करके मुनि श्रेष्ठ हँस कर उन दोनों से मुनि यह बोले थे जो कि भूत—भव्य और भवत् के ज्ञान से समन्वित थे । ४४ । मुनि ने

कहा—आप दोनों उस चन्द्रशेखर भूपति के पुत्र नहीं हैं । आप तो तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए शङ्कर के ही पुत्र हैं । ४५ । आप दोनों महावीर्य सद्योदात हैं और वेतालत्व मे सम्मत हैं । आप भृङ्गि और महाकाल नाम वाले हैं । आप के कारण से ही आप दोनों इस धरणी तल मे समागत हुए हैं । ४६ । तुम दोनों को यहां पर उमी कारण से वह प्रिय दाय नहीं देना चाहता है । आप अपने पिता वृषभध्वज भगवान् शङ्कर की शरणा गति मे गमन कीजिए । ४७ । वे ही शम्भु तुम दोनों का सभी कुछ कर देंगे । इस उद्य तप मे क्या लाभ है जिसका फल बहुत ही लम्बे समय में प्राप्त होता है । ८ । परम आत्मा को धारण करने वाले भुनि शाङ्ख्य वपोत इतना कहकर जिनको अतीव वत्तमान और भविष्य का पूर्ण ज्ञान था । उन दोनों से उन ने सब कहा । ॥४६॥

यथा भृङ्गिमहाकाली शप्तावबनिमागती ।
 यथा हरश्च गौरी च पृथिवीमागती नृप ॥४७॥
 तारावती यथा शप्ता तेनेव भुनिता पुरा ।
 यथा तो च समुत्पन्नी तारावत्युदरे पुरा ॥४८॥
 यथा वा नारदेनेव सज्जयच्छेदन नृपे ।
 तत्सर्वं वचयामास पुत्रान्या गिरिशम्य तु ॥४९॥
 तच्छ्रुत्वा तो महात्मानो तदा वेतालगैरवो ।
 मुदा परमया युक्ती यन्नूवतुरनिन्दितो ॥५०॥
 गोदपूणी तदा भूत्वा सिक्ताविव सुधारसं ।
 पुनः प्रच्छ वपान् वेतालो भैरवोऽपि च ॥५१॥
 पितावयोर्महादेवस्त्वया मत्प्रमितीरितम् ।
 सोऽर्चनीयो यथावाग्या सिद्धये भुनिसत्तम ॥५२॥
 आवाग्या च यथाराध्यो यत्र वाराधितो हरः ।
 प्रमादमेव्यत्यचिन् तन्नो वद महामते ॥५३॥

धन्यावननुगृहीतो नो यन् त्वया मुनिमतम ।

विज्ञापितं मितं सर्वं हृच्छ्रयं चादृतं च नो ॥१३॥

पुनरन्वा गच्छन् त्वं कृपां मय मुनीश्वर ।

शान्त्या न चिराद् भवं यथा वद नमोऽव नो ॥१४॥

जिस प्रकार मैं भूँझ और महाकान को आप प्राप्त हुआ था और वे घरों पर समागत हुए थे, हे नृप ! जैसे भगवान् शम्भु और गौरी पृथिवी पर आगत हुए थे । १३ । पहिले उसी मुनि के द्वारा तारा बती को शाप दिया गया था । और पुराने समय में जिस तरह से वे दोनों ताराबती के उदर से समुत्पन्न हुए थे । १४ । अबका जिस प्रकार मे नादजी के द्वारा नृप के मंत्र का उदन हुआ था । वह अभी कुछ निरिण के घुर्मा में बद्ध दिया था । १५ । उस समय में उन दोनों महारमा वेदान्त और शीख ने यह अवलोकन कर के परम हर्ष में लपुन हुए थे । १६ । उस अवसर पर मोह में भूनी होकर मुखा रस में चित्त के ही भाँति वे हो गये थे । फिर वेदान्त और शीख ने कपोत मुनि से पूछा था । १७ । हम दोनों के बिना महादेव हैं—यह आप ने स्वयं ही कहा है । हे भुनि श्रेष्ठ ! वे जिस रीति से हम दोनों के द्वारा आराधना करने योग्य होवे अपना जिस स्थान पर उनकी आराधना की जावे जिससे हम दोनों की मिट्टि होवे । जिससे द्वारा वे शीघ्र ही प्रसन्नता को प्राप्त हो जावें हे महामन ! वह ही हमका आप बताने की कृपा करे ॥१८॥१९॥ हम दोनों परम धन्य हैं कि आपने हम दोनों पर परम अनुग्रह किया है । हे मुनि श्रेष्ठ ! आपने यह सब विज्ञापित कर दिया है और हम दोनों के हृदय का ग्रहण आपने उद्भूत कर दिया है । मर्णां हमारे हृदय में धन्य की ही भाँति जो दुःख या वह दूर कर दिया है । २० । हे मुनीश्वर ! आप तो कृपा में परिपूर्ण हैं । पुनः हमारे ऊपर दया कीजिये । जिस रीति से हम शीघ्र ही भर्त्तों की प्राप्ति कर लेंगे उसी भाँति आप हमको बतनादिये ॥२१॥

शृणु त्व कथयाम्यद्य यत्र चाराधितो हर ।
 नचिरादेव भवतोरायास्यति समक्षताम् ॥५६
 नित्य यत्र महादेवो वमन् भवति तुष्टये ।
 युवा तन् सप्रवक्ष्यामि स्थानं गुह्यं प्रकाशितम् ॥६०
 वाराणसी नाम पुरी गंगातीरे मनोहरे ।
 वरणायास्तथा चासेमंध्ये चापाकृति सदा ॥६१
 स्वय वृषध्वजस्तत्र नित्य वसति योगिनाम् ।
 सदा प्रीतिकरो योगी स्वय चाप्यात्मचिन्तकः ॥६२
 द्विवत्स्था सा पुरी नित्यं भग्नयोगवलाद् धृता ।
 दिव्यज्ञान ददात्येषा तत्र यो म्रियते नर ॥६३

मुनि ने कहा—आप सुनिये, मैं आज बतलाता हूँ कि जहाँ पर
 आराधना किये हुए भगवान् हर शीघ्र ही आपके ममक्ष में समागत
 हो जायेंगे । ५६ । जहाँ पर नित्य ही महादेव निवास करते हुये तुष्टि के
 लिये होते हैं आप दोनों को उस स्थान का बतला दूँगा । वह स्थान
 गोपनीय प्रकाशित है । ६० । वाराणसी नाम बाची पुरी है जो परम
 सुन्दर भागीरथी गङ्गा के तट पर बसी हुई है तथा वारणा के दाम
 में मध्य में मदा चाप की आकृति के समान आकृति वाली है । ६१ ।
 वहाँ पर ही वृषध्वज स्वय नित्य ही निवास किया करते हैं । वे योगी
 सदा ही योगियों की प्रीति के करने वाले हैं । वे स्वय योगी हैं और
 अध्यात्म चिन्तन करने वाले हैं । ६१ । वह पुरी आनाम में सत्पिता
 है और नित्य ही भगवान् भग्न के योग बल से धारण की हुई है । वहाँ
 पर जो भी अपने प्राणों का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त हुआ करता है तो
 यह पुरी उमको दिव्य ज्ञान का प्रदान किया करती है ॥६३॥

तस्मै स्वय महादेव मसार-ग्रन्थिमुक्तये ।
 स भूत्वा परमो योगी मृतस्तत्र भवान्तरे ॥६४
 मुलभेनैव निर्वाणमप्नोति हरसम्मत ।

योगयन्त्रो महादेवः पार्वत्या सहितः सदा ॥६५॥
देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषाणां च नित्यशः ।
ज्ञेयो हरः प्रकाशश्च क्षेत्रं तच्च प्रकाशितम् ॥६६॥
न तत्र कामदो देवो नचिराच्च प्रसीदति ।
आराधितश्चिर प्रीत्या निर्वाणाय प्रसीदति ॥६७॥
गौर्यां विवजिता सा तु पुरी तत्र न गच्छति ।
योगस्थान महाक्षेत्रं कदाचिदपि शांकरी ॥६८॥
आसन्नं युवयोः क्षेत्रमिदं वाराणसी तु यत् ।
कथितं नातिदूरे च वर्तते नरसत्तमौ ॥६९॥
अपरं तु प्रवक्ष्यामि गुह्यं पीठं सदाशितम् ।
हरगौरीसमायुक्त परं धर्मार्थकामदम् ॥७०॥

उस पुरुष को जो भी वाराणसी पुरी में प्राण त्याग किया करता है महादेव स्वयं ही सत्सार के आवागमन की ग्रन्थि के बन्धन का छुट-
कारा पाने के लिये कृपा किया करते हैं। वहाँ पर मृत होकर पुन्य
दूसरे जन्म में उत्पन्न होकर परम योगी हो जाता है। ६४। भगवान्
हर के द्वारा सम्मत होता हुआ वह सुलभ उपाय के द्वारा ही वह पुरुष
निर्वाण पद को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेता है। योग
से युक्त महादेव सदा पार्वती के सहित निवास किया करते हैं। ६५।
देव—गन्धर्व—यक्षों को और मनुष्यों को नित्य ही हर ज्ञेय (जानने
के योग्य) और प्रकाश हैं और वह क्षेत्र प्रकाशित है। ६६। वहाँ पर
देव कामनाओं का प्रदान करने वाले नहीं हैं और शीघ्र ही प्रसन्न नहीं
होते हैं। चिरकाल पर्यन्त प्रीति में आराधना किये हुए ही निर्वाण के
लिये ही प्रसन्न हुआ करते हैं। ६७। वह पुरी गौरी के द्वारा विवर्जित
है। वह योग का स्थान महाक्षेत्र है वहाँ किसी समय में शाङ्करी देवी
गमन नहीं किया करती है। ६८। जो यह वाराणसी है वह आप दोनों
का आसन्न क्षेत्र है ऐसा कहा गया है और वाराणसी हे नर श्रेष्ठो !

समीप म ही विद्यमात है । ६८ । दूमरा गोपनीय और मदा ही अर्चित
पीठ को मैं बतलाऊँगा जो हर और गौरी ने समायुक्त है और
परम धर्म—अर्थ तथा काम के प्रदान करने वाला है ॥७०॥

तपसा चाति तीव्रेण चिराद् भवति मोक्षदम् ।
नचिरात् कामदं पुण्य क्षेत्र पीठ निगद्यते ॥७१॥
चिरात् तु कामदो देवो न चिराद् यत्र ज्ञानद ।
तत्क्षेत्रमिति लोकेषु गद्यते पूर्ववन्दिभिः ॥७२॥
कामरूप महापीठ गुह्याद् गुह्यातम परम् ।
सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शकर ॥७३॥
न चिरात् पूजितो देवस्तस्मिन् पीठे प्रसीदति ।
पार्वती चानुगृह्णाति भग्नभक्त तु तत्र वै ॥७४॥
ददाति नचिरात् काम भक्ताय परमेश्वर ।
तत् तु पीठ प्रवक्ष्यामि शृणुत साम्प्रत मुवाम् ॥७५॥
कर्तोया नदी पूर्व यावद् दिक्करवासिनीम् ।
त्रिषाद् योजनविस्तीर्ण योजनैकशतायतम् ॥७६॥
त्रिकोण कृष्णवर्णं च प्रभूताचलपूरितम् ।
नदीशतसमायुक्त कालहृष प्रकीर्तितम् ॥७७॥

करती है । ७४ । परमेश्वर अपने भक्त के लिये शीघ्र ही कामना को दिया करते हैं उस पीठ के विषय में मैं बतलाऊँगा । अब आप दोनों श्रवण कीजिए । ७५ । पूर्व जहाँ तब दिक्कर नासिनी है वर तोया नहीं है । वह तीस योजन विस्तार वाली है और एक शतयोजन आयत है । ७६ । वह त्रिकोण—कृष्ण वर्ण में युक्ता तथा बहुत से पर्वतों से पूरित है । सौ नदियों में समायुक्त है और काल रूप कीर्तित किया गया है ॥ ७७ ॥

शम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्रहात् ।
तत्र रूपं यतः प्राप कामरूपं ततोऽभवत् ॥७८॥
तस्य पीठस्य वायव्यां नैऋत्यां मध्यभागे ।
ऐशान्यां च तथाग्नेय्यां मध्ये पार्श्वे च शंकरः ॥७९॥
स्वमाश्रमपदं कृत्वा पट्सु स्थानेषु शोभनम् ।
नित्यं वसति तत्रापि पार्वत्या सह नर्मभिः ॥८०॥
मध्ये देवीगृहं तत्र तदधीनं तु शंकरः ।
नीलाख्ये पर्वनश्रेष्ठे पार्वती तत्र तिष्ठति ॥८१॥
ऐशान्या नाटके शैले शंकरस्य महाश्रमः ।
नित्यं वसति तत्रेशस्तदधीना च पार्वती ॥८२॥
अपरे चाश्रमाः सन्ति हरगीर्णोः सदातनाः ।
नैनयोः सहशः कोऽपि विद्यते शंकराश्रमः ॥८३॥
यत्पाराध्यो महादेवो भवद्भक्षां नरसत्तमो ।
तत्स्थानं मनसादाय प्रसादय वृषध्वजम् ॥८४॥

भगवान् शम्भु के नेत्र से भस्मी मूत हुए काम देव ने भगवान् शम्भु के अनुग्रह से वहाँ पर रूप को प्राप्त किया था इसी लिये तभी से वह कामरूप हो गया था । ७८ । उस पीठ के मध्य भाग से वायव्य में—नैऋत्य में—ऐशानी में और आग्नेयी में मध्य में और पार्श्व में शङ्कर हैं । ७९ । इन छह स्थानों में परम शोभन अपना आश्रम का स्थान बना

कर वहाँ पर भी पार्वती के गाय नर्त वायों को करने हुए नित्य ही शंकर निवास किया करते हैं । ८० । मध्य में देवी का गृह है । वहाँ पर उमी के अधीन शंकर हैं । वहाँ पर नील नाभक श्रेष्ठ पर्वत में पार्वती विराजमान रहती हैं । ८१ । ऐशानी दिशा में नाट्य भवन पर भगवान् शङ्कर का महान् आश्रम है । वहाँ पर नित्य ही ईश्वर निवास किया करते हैं और उनके अधीन पार्वती रहती हैं । ८२ । और दूमरे हर तथा गोरी के सनातन आश्रम हैं किन्तु इन दोनों के सहज कोई भी शंकर का आश्रम नहीं है । हे नरश्रेष्ठो ! जहाँ पर आप दोनों के द्वारा महादेव आराधना करने के योग्य है । उमी स्थान को मन से ग्रहण करने वृषभध्वज को प्रमन्न करिए ॥८३॥८४॥

कामरूप गमिष्यावो रहस्य नाटकाचलम् ।
 गौरीहरौ स्थितौ यत्र नित्य सन्निहितौ मुने ॥८५॥
 आराधनीयो भूतेशो ह्यवश्यमिह चावयो ।
 यथैवाराधयिष्यावस्तथाचक्ष्व द्विजोत्तम ॥८६॥
 येन मन्त्रेण वा देवो नचिरात् तु प्रसोदति ।
 तत् त्व वद महाभागानुग्रहोऽस्त्यावयोर्यदि ॥८७॥
 नाटक पर्वतश्रेष्ठ गच्छत नरसत्तमो ।
 तन्न नित्य महादेवो रमतेऽपणया सह ॥८८॥
 सन्ध्याचले तत्र मुनिराराधयति शंकरम् ।
 वशिष्ठो ब्रह्मण पुत्रस्त युवामनुगच्छतम् ॥८९॥
 स च मन्त्र सतन्त्र च हराराधनकर्मणि ।
 ज्ञापयिष्यति वा पृष्ट किल वेतालभैरवो ॥९०॥
 तपसे गन्तुमिच्छामि नेदानी कालयापना ।
 युज्यते मम तस्मान्मा त्यजत वीरसत्तमो ॥९१॥

वेनाल और भैरव ने कहा—हे मुनिवर ! हम कामरूप को गमन करेगे जो रहस्य नाटक पर्वत है । जहाँ पर गोरी और हर नित्य ही

सर्वे हरं चानुजमुरनुगच्छन्तमात्मजौ ।
 थय तो तु नदी प्राप्य कृष्णाजिनधरौ तदा ॥१००॥
 आदाय तापसं भावं गंगानुल्यां दृष्टवतीम् ।
 तपस्विनौ तु देवेन त्र्यम्बकेणाय पालितौ ॥१०१॥
 देवः सह तदायातौ कामरूपाद्वयाश्रमम् ।
 आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ॥१०२॥
 उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्ड नृपोत्तम ।
 तत्र स्नात्वाप्युपस्पृश्य नदी गत्वा जठोद्भवाम् ॥१०३॥
 उपस्पृश्य च तौ तत्र नन्दिनं तपसा घृतम् ।
 प्रणम्य जल्पितं देवं जग्मतुर्नाटिकाचलम् ॥१०४॥
 नाटिकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
 आराधनोपदेशाय कपोतकवचस्मरौ ॥१०५॥

इसके अनन्तर उन दोनों वैताल और भीरव ने जो उस समय मे
 कृष्ण हिरन के चर्म को धारण करने वाले थे । एक नदी को प्राप्त
 किया था अर्थात् उनको आगे एक नदी मिली थी ॥१००॥ वे दोनों ही
 तापस के भाव को प्राप्त हुए थे । वह नदी दृष्टवती थी जो कि गङ्गा
 के ही समान परम पवित्र थी । भगवान् त्र्यम्बक देव के द्वारा वे दोनों
 तपस्वी पालिता हुए थे ॥ १०१ ॥ उस समय मे देवगणों के सहित वे
 दोनों कामरूप नाम वाले आश्रम मे समापति हुए थे । कामरूप मे
 पहुँच कर कर तोया नदी का जल भिन्ना था ॥ १०२ ॥ हे नृपोत्तम !
 उन दोनों ने नदी के जल मे आचमन किया । फिर नन्दिकुण्ड पर पहुँचे
 थे । वहाँ पर आचमन तथा स्नान करके फिर जठोद्भवा नदी पर
 गमन किया था ॥१०३॥ वहाँ पर दोनों ने उपस्पर्शन किया था और
 वहाँ पर तप के द्वारा घृत नन्दि कुण्ड को प्रणाम किया तथा जल्पित
 देव को प्रणिपात किया था और फिर नाटक नामक पर्वत पर गमन
 किया था ॥ १०४ ॥ नाटक नामक पर्वत पर पहुँच कर वृषभध्वज को

तपसा तु तयो वायो भाव त्यक्त्वा तु मानुषम् ॥६०॥
 यथाप्नुत सौरभाव विधास्यामि ह्यह तथा ।
 इत्युक्त्वा वामदेवोऽपि पार्वत्या सह पुत्रकौ ॥
 गच्छन्तौ वियता स्नेहात् पश्चादनययो शिव ॥६८॥
 शक्राद्यास्त्रिंशः सर्वे दिक्पालाश्च तथापरे ॥६६॥

इतना इस प्रकार से कहकर वह मुनि श्रेष्ठ कपोत वन में चला गया था । उन दोनों ने उस मुनि को प्रणाम किया था और फिर वे दोनों अपने भवन की चले गये थे ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर उस समय में वे दोनों समय करके तपश्चर्या के लिये दीक्षित हुए थे । माता पिता से अनुज्ञा प्राप्त करके भाइयों को और अन्य बान्धवों को भी शापित करके उन दोनों महा मति वालों ने कामरूप के लिय प्रस्थान कर गये थे । ॥ ६३ ॥ उमा देवी के सहित भगवान् शङ्कर भी उन दोनों को गमन किये हुये जानकर इन्द्र के सहित समस्त देवों को सान्त्वता देते हुए कीर्त्तित यह बोले थे ॥ ६४ ॥ ईश्वर ने कहा—हे सुरेश्वरों ! मेरे पुत्र दोनों तप करने के लिए गये हैं । वे दोनों मेरी आराधन में चित्त आते हैं । हे सुर श्रेष्ठो ! उन पर दया करो ॥ ६५ ॥ इन दोनों पुत्रों का जो कि वे तास और भैरव नाम वाले हैं तपस्या से सत्कार करके मैं इनको गाणपत्य में नियोजित करूँगा । हे निजरो ! आप लोग उन दोनों का सत्कार कर दो ॥ ६६ ॥ तप से उन दोनों के शरीर मानुष भाव की त्याग करके वे दोनों इसी शरीर से गणेशत्व को प्राप्त हो जायेंगे ॥ ६७ ॥ जिस रीति से दोनों सौर भाव को प्राप्त हो जावें मैं वैसा ही करूँगा । इतना कहकर वामदेव भी पार्वती के साथ ही आकाश भाग से गमन करते हुए पुत्रों के पीछे स्नेह से शिव भी गये थे ॥ ६८ ॥ अपने पुत्रों के पीछे अनुगमन करते हुए भगवान् हर पीछे पीछे इन्द्र आदि सब देवगण—दिक्पाल और दूसरे लोग सब पीछे पीछे अनुगमन करने लग गये थे ॥ ६९ ॥

सर्वे हरं चानुजग्मुरनुगच्छन्तमात्मजो ।
 अथ तौ तु नदीं प्राप्य कृष्णाजिनधरो तदा ॥१००॥
 आदाय तापसं भावं गंगातुल्यां दृषद्वतीम् ।
 तपस्विनो तु देवेन अम्बकेनाथ पालितौ ॥१०१॥
 देवः सह तदायातौ कामरूपाह्वयाश्रमम् ।
 आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ॥१०२॥
 उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्डं नृपोत्तम ।
 तत्र स्नात्वाणुपस्पृश्य नदीं गत्वा जठोद्भवाम् ॥१०३॥
 उपस्पृश्य च तौ तत्र नन्दिनं तपसा घृतम् ।
 प्रणम्य जल्पितं देवं जग्मतुर्नाटिकाचलम् ॥१०४॥
 नाटिकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
 आराधनोपदेशाय कपोतकवचस्मरौ ॥१०५॥

इसके अनन्तर उन दोनों वेताल और भैरव ने जो उस समय में कृष्ण हिरन के चर्म को धारण करने वाले थे । एक नदी को प्राप्त किया था अर्थात् उनको आने एक नदी मिली थी ॥१००॥ वे दोनों ही तापस के भाव को प्राप्त हुए थे । वह नदी दृषद्वती थी जो कि गङ्गा के ही समान परम पावन थी । भगवान् अम्बक देव के द्वारा वे दोनों तपस्वी पालिता हुए थे ॥ १०१ ॥ उस समय में देवगणों के सहित वे दोनों कामरूप नाम वाले आश्रम में समापति हुए थे । कामरूप में पहुँच कर कर तोया नदी का जल मिला था ॥ १०२ ॥ हे नृपोत्तम ! उन दोनों ने नदी के जल में आचमन किया । फिर नन्दिकुण्ड पर पहुँचे थे । वहाँ पर आचमन तथा स्नान करके फिर जठोद्भवा नदी पर गमन किया था ॥१०३॥ वहाँ पर दोनों ने उपस्पृशंन किया था और वहाँ पर तप के द्वारा घृत नन्दि कुण्ड को प्रणाम किया तथा जल्पित देव को प्रणिपात किया था और फिर नाटक नामक पर्वत पर गमन किया था ॥ १०४ ॥ नाटक नामक पर्वत पर पहुँच कर वृषभध्वज को

प्रणाम किया और आराधन के उपदेश के लिये वषोत के वचन का स्मरण किया था ॥१०५॥

जम्भतुदक्षिणा काण्टा यत्र सन्ध्याचल स्थितः ।

कान्ता नाम नदी तत्र वशिष्टेनादतारिता ॥१०६॥

तस्यास्तीरे महार्शल. स्निग्धच्छायलतातरः ।

सन्ध्या वशिष्ठः कृतवास्तत्र यस्माद् विधेः सुत ॥१०७॥

अतः सन्ध्याचल नाम तस्य गायन्ति देवताः ।

तत्रासाद्य वशिष्ठ तु साक्षादिव हुताशनम् ॥१०८॥

आराधयन्त गिरिश ध्यानसयुतमानसम् ।

तप श्रिया दीप्यमान द्वितीयामिव भास्करम् ॥१०९॥

प्रणम्य पुरतस्तस्य तदा वेतालभैरवी ।

प्राजली तस्यतुभूष विनयानतकन्धरी ॥११०॥

इदं चाप्युचतुस्तौ तु प्रणमन्तौ विधेः सुतम् ।

तारावत्या समुत्पन्नी चन्द्रशेखरभूभृत ॥१११॥

क्षेत्रे भग्नस्य तनयावावा जानीहि मानुषी ।

आराधयितुमिच्छावो हर कार्यस्य सिद्धये ॥११२॥

फिर दोनों दक्षिण दिशा की ओर गमन कर गये थे जहाँ पर सन्ध्याचल स्थित था । वहाँ पर कान्ता नाम की नदी थी जो वशिष्ठ मुनि ने अवतारित की थी ॥ १०६ ॥ उस नदी के तट पर एक महान् शैल था जिस पर धनी छाया वाले वृक्ष और सताएँ थीं । क्योंकि ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजी ने वहाँ पर सन्ध्या वन्दना की थी ॥१०७॥ इसीलिये देवगण उस पर्वत का नाम सन्ध्याचल गाया करते हैं । वहाँ पर पढ़ाव कर वशिष्ठ मुनि का दर्शन किया था जो साक्षात् अग्नि के ही तुल्य थे ॥१०८॥ वे वशिष्ठ मुनि भगवान् गिरिश की आराधना कर रहे थे और उनका मन ध्यान में संयुक्त था । वे तपस्या की श्री से दीप्यमान थे और दूसरे सूर्य के ही समान प्रतीत हो रहे थे । १०९ ।

उस अवसर पर उनके आगे वेनाल और भीरव ने प्रणाम किया था । हे भूप ! वे दोनों विनय से अवनत होते हुए हाथों को जोड़े हुए स्थित हो गये थे । ११० । उन दोनों ने यह प्रणाम करते हुए विधाता के पुत्र से कहा था कि चन्द्र शेखर भूभृत् मे हम दोनों तारावती से उत्पन्न हुए हैं ॥१११॥ इस क्षेत्र में भग्न के पुत्र हम दोनों को मनुष्य ही जानिए । हम कार्य की सिद्धि की लिये भगवान् शम्भु की आराधना करने की इच्छा रखते हैं ॥११२॥

वाञ्छितस्य यदि त्व नावनुगृह्णासि सुव्रत ।
तयोस्तद् वचन श्रुत्वा वशिष्ठो मुनिसत्तमः ॥११३॥
उवाचेति युवा ज्ञातौ मया सत्यं हरात्मजौ ।
हरस्याराधनं कार्यं युवयोर्नरसत्तमौ ॥११४॥
नत्रास्ति मम कृत्यं किं तद्भाषतमनिन्दितौ ।
पृषध्वजाराधनाय युवयोस्तु प्रयोजनम् ।
विद्यते तन्निमित्तं यत् तत् सिद्धमिति चिन्तयत्यताम् ॥११५॥
येन मन्त्रेण नचिरान् मस्म्यगाराधितो हरः ।
प्रसादमेध्यत्यवनौ तन्नो वद महामुने ॥११६॥
यया चाराधयिष्यावस्तन्त्रं यद् यादृशं क्रमः ।
तत्सर्वं मुनिशार्दूलं वक्तुमर्हसि चोत्तरम् ॥११७॥
यया त्वदुपदेशेन प्राप्स्यावो नचिराद् हरम् ।
यया वाचा मुनिश्रेष्ठ ह्यनुशाधि न तौ त्वयि ॥११८॥

हे सुव्रत ! यदि आप हम दोनों के अभीष्ट के विषय में अनुग्रह करते हैं । उन दोनों के उस वचन का मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने श्रवण किया और उन्होंने कहा था कि मैंने आप दोनों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और सत्य में आप दोनों ही भगवान् शम्भु के आत्मज हैं । हे नरश्रेष्ठ ! आप दोनों को भगवान् शम्भु की आराधना करनी चाहिए ॥ ११२—११४ ॥ परम श्रेष्ठ आप दोनों वहाँ पर मेरा क्या

वृत्त है यह बोलिय । वृषभध्वज की आराधना के लिये आप दानो का प्रयोजन है । जो उसका निमित्त है वह सिद्ध हो गया है यही चिन्तन कीजिय ॥ ११५ ॥ वेताल और भैरव न ब्रह्मा—जिस मन्त्र के द्वारा अविलम्ब ही भक्ति भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की गई है । हे महामुने ! वह हमारे ऊपर अवनी (पृथ्वी) में प्रसन्नता को प्राप्त होगे—यही हमको आप यत्साधए ॥ ११६ ॥ हे मुनि शार्ङ्ग ! जिस रीति से हम आराधना करें—जो तन्त्र है और जैसा भी क्रम है—वह सभी आप उत्तर रूप में बताने के लिये योग्य होते हैं ॥ ११७ ॥ जिस रीति से आपके उपदेश से शीघ्र ही हर को प्राप्त कर लेवे । हे मुनिश्रेष्ठ ! आप अनुशासन कीजिए । हम दोनों आपके प्रति प्रणम है ॥ ११८ ॥

प्रसन्न एव भक्तोर्द्विपकेतु सहोमया ।

नचिरात् स्वयमेवात्र प्रसाद च समेष्यति ॥११९॥

सर्वेदेवगणै साधं सभार्यो वृषभध्वज ।

आकाशमार्गेणायात पालयन स्वसुतो गृहात् । १२०

किन्तु मानुपदेहो वामधिवास्य तपोव्रतं ।

स्वयन्नेष्यति कलास गाणपत्ये नियोज्य वाम् ॥१२१॥

अह चाप्युपदेक्षामि यथा भर्गो युवा द्रुतम् ।

प्राप्स्यथ पार्वतीपुत्रावेकाग्र शृणुत तु तत् ॥१२२॥

चिरात् प्रसीदति ध्यानघचिराद् ध्यानापूजनात् ।

तस्माद् ध्यान पूजन च कथयाम्यद्य सत्त्वत ॥१२३॥

तेजोमय सदा शुद्धो ज्ञानामृतविवर्धित ।

जगन्मयश्चिदानन्द शौरिब्रह्मास्वरूपधृक् ॥१२४॥

महादेवो महाभूतिर्महायोगयुत सदा ।

जगन्ति तस्य रूपाणि तानि को गदितु क्षम ॥१२५॥

किन्तु यैरिह रूपस्तु विचरत्येष शबर ।

तेषा यन्मे ज्ञानमस्य तथेष्ट निगदामि वाम् ॥१२६॥

वसिष्ठजी ने कहा—आप दोनों के ऊपर भगवान् वृषभेनु उमा-
देवी के सहित प्रसन्न ही हैं । यहाँ पर स्वयं ही श्रीघ्न ही प्रसाद की
प्राप्त हो जायेंगे ॥११६॥ समस्त देवगणों के साथ अपनी भार्या के
साथ वृषध्वज यह से अपने पुत्रों का पासन करते हुए आकाश के
मार्ग के द्वारा समाप्त हैं ॥१२०॥ किन्तु आपके मनुष्य के वह
का अधिवासन करके अर्थात् तपो पत्नी से सत्कार करके स्वयं ही
बैलास पर से जायेंगे । और भाग्यवत् पराश्रय दोनों का नियोजन
करेंगे ॥ १२१ ॥ और मैं भी उपदेश कर दूँगा । जिससे आप दोनों ही
श्रीघ्न ही भय की प्राप्ति कर लेंगे । हे पार्वती पुत्री ! उसे एकाग्र मन से
ध्यान कीजिए ॥१२२॥ ध्यान से चिरकाल में प्रसन्न होत हैं और श्रीघ्न
ध्यान पूजन से प्रसन्न होते हैं । इस कारण से आज तात्त्विक रूप से
ध्यान और पूजन बतलाता हूँ ॥ १२३ ॥ वे तेज से परिपूर्ण हैं—सदा
शुद्ध स्वरूप हैं—ज्ञानामृत से विविध हैं—जगत् से परिपूर्ण हैं—चिन्
(ज्ञान) और आनन्द रूप हैं—शौरि और ब्रह्मा के स्वरूप को धारण
करने वाले हैं ॥ १२४ ॥ महादेव—महामूर्ति और सदा महान् योग से
समुत्त हैं—ये सम्पूर्ण जगत् उनके ही स्वरूप हैं उनका कथन करने में
कौन समर्थ है ॥१२५॥ किन्तु जिन रूपों से य भगवान् शङ्कर विचरण
किया करते हैं उनमें से जो मेरे ज्ञान के द्वारा गम्य है उसमें जो भी
अभीष्ट है आप दोनों को मैं कहता हूँ ॥१२६॥

प्रथम शृणुत मन्त्र ततोऽनुध्यानमोचरम् ।

ततः क्रमं तु पूजाया क्रमाद् वृत्ता नख्यंभो ॥१२७॥

समस्तानां स्वराणां तु दीर्घां शेषाः सविन्दुकाः ।

श्रुत्वा शून्या साध्वंचन्द्रा उपान्तेनाभिसहिता ॥१२८॥

एभिः पञ्चाक्षरैर्मन्त्र पञ्चवक्त्रस्य कीर्तितम् ।

क्रमात् सम्मदसन्दोह-नादगौरव-सज्जवाः ॥१२९॥

प्रासादस्तु भवेच्छेयः पंचमन्त्राः प्रवीतिताः ।
 एकैकेन तथैकैकं वक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ॥१३०॥
 एकं समुदितं कृत्वा पञ्चभिर्वा प्रपूजयेत् ।
 प्रसादेनाथ वा पञ्चवक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ॥१३१॥
 सम्मदादिषु मन्त्रेषु प्रासादस्तु प्रशस्यते ।
 शम्भो. प्रसादनेनैव यस्माद् वृत्तस्तु मन्त्रकः ॥१३२॥
 तेन प्रासादसंज्ञोऽयं कथ्यते मुनिसत्तमैः ।
 तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु प्रासादः प्रीतिदः परः ॥१३३॥

हे नरश्रेष्ठो ! सबसे प्रथम मन्त्र का ध्वनि करो उसके पश्चात्
 अनुष्ठान से साक्षात्कार को सुनिए । इसके पश्चात् पूजा का क्रम सुना-
 दिये—क्रम से वृत्त को सुनिये ॥१२७॥ समस्त स्वरों में दीर्घ शेष बिन्दु
 से युक्त होवे । श्रुति से शून्य हो तथा अर्ध चन्द्र से समुत्पन्न होवें । अमान्त
 से अभिसहित होवें ॥१२८॥ इन पाँच अक्षरों के द्वारा पञ्च वक्त्र का
 मन्त्र कहा गया है । क्रम से सम्मद—सन्दोह—नाद—गौरव सज्ञा वाले
 हैं । प्रासाद शेष होता है—इस रीति में पाँच मन्त्र कीर्तित किये गये
 हैं । एक-एक से वहाँ पर एक-एक वक्त्र को देव का पूजन करना
 चाहिए ॥ १२९—१३० ॥ अथवा एक को समुदित करके पाँचों से
 पूजन करे । इसके अनन्तर प्रसाद के द्वारा पञ्च 'वक्त्र' देव का यजन
 करना चाहिये । १३१ । सम्पद प्रभृति मन्त्रों में प्रसाद परम प्रशस्त
 कहा गया है । क्योंकि शम्भु के प्रसादन से ही वृत्त मन्त्र होता है
 । १३२ । इसी कारण ने मुनियों ने श्रेष्ठों के द्वारा यह प्रासाद सज्ञा
 वाला कहा जाया करता है । इस कारण से समस्त मन्त्रों में प्रासाद परम
 प्रीति के प्रदान करने वाला है । १३३ ।

आमोदकारक शम्भोर्मन्त्रः सम्पद उच्यते ।
 मनःप्रपूरणाच्चापि सन्दोहः परिकीर्तितः ॥१३४॥
 आवर्पको भवेन्नादो गुरुत्वाद् गौरवाद्देवयः ।

एनदव्यस्त समस्त च मन्त्र शम्भो प्रकीर्तितम् ॥१३५॥
 पञ्चाक्षर तु यन्मन्त्र पञ्चवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
 युवा तेनैव मन्त्रेण आराध्यतमोच्चरम् ॥१३६॥
 ध्यान वक्ष्यामि शृणुत सम्यग वेतालभैरवो ।
 पञ्चवक्त्र महाकाय जटाजूटविभूषितम् ॥१३७॥
 चारचन्द्रकलायुक्ता मूर्ध्नि बालोद्यभूषितम् ।
 बाहुभिर्दशभिर्युक्ता व्याघ्रचर्मामराम्बरम् ॥१३८॥
 कालकूटधर कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
 किरोटवन्धन बाहुभूषण च भुजगमान् ॥१३९॥
 विभ्रत सवंगाश्रेष्ठा ज्योत्स्नापितसुरोचिपम् ।
 भूतिसलिप्तसर्वांगमेकैकत्र त्रिभिस्त्रिभिः ॥१४०॥
 नैत्रैस्तु पञ्चदशभिर्ज्योतिष्मद्भिर्विराजितम् ।
 वृषभोपरि सस्य तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ॥१४१॥

शम्भु मन्त्र भगवान् शम्भु के आमोद के करने वाला कहा जाता है । मन की प्रपूर्ति करने ही मे सन्दोह कहा गया है ॥ १३४ ॥ नात्र आकर्षण करने वाला नाद होता है । गुह्यत्व होने से गौरव नाम वाला है । यह व्यस्त और समस्त अर्थात् अलग-अलग और सब पितावर भगवान् शम्भु के मन्त्र कीर्तित किये गये हैं ॥ १३५ ॥ पञ्चाक्षर अर्थात् पाँच अक्षरों वाला जो मन्त्र है वह पञ्च वक्त्र का कहा गया है । आप दीना उस ही मन्त्र के द्वारा ईश्वर का समाराधन करिए । १३६ । हे वेताल भैरव । मैं उनका ध्यान बत-साऊँगा उसका भली भाँति आप ध्यान करिए । अब शम्भु के स्वरूप का ध्यान बतलाया जाता है—शम्भु के पाँच मुख हैं—महान् उनका शरीर है—वे जटा जूटों से समलवृत हैं । १३७ । सुन्दर चन्द्रमा की कला से समन्वित हैं—मस्तक मे बालों के समूह मे विभूषित हैं—दश शम्भु की बाहुएँ हैं और व्याघ्र चर्म ही उनका वस्त्र है । १३८ । कण्ठ मे भगवान् शम्भु ने हालाहल कालकूट विष को धारण किये हुए हैं

तथा नागों के द्वार से उनका वक्षस्थल विभूषित है । भुजङ्ग ही उनके
 किरीट का वन्धन है तथा नाग ही बाहुओं के भूषण बने हुए हैं ॥१३६॥
 सम्पूर्ण अङ्गों में चाँदनी से अर्पित सुन्दर कान्ति के धारण करने वाले
 हैं । भस्म से सम्पूर्ण अङ्ग सलिल हैं । एक एक मुख में तीन तीन नेत्र
 हैं । इस प्रकार से पन्द्रह ज्योतियों वाले नेत्रों से मनुष्योन्मत्त हैं ।
 वृषभ के ऊपर विराजमान हैं और हाथी के चर्म के परिच्छद वाले हैं ।
 ॥ १४०—१४१ ॥

सद्योजात वामदेवमधोर च तन परम् ।
 तत् पुरुष दयेशान पञ्चवक्त्र प्रकीर्तितम् ॥१४२॥
 सद्योजात भवेच्छुक्ल शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
 पीतवर्ण तथा सौम्य वामदेव मनोहरम् ॥१४३॥
 नीलवर्णमधोर तु दष्ट्र भीतिविवर्धनम् ।
 रक्त तत्पुरुष देव दिव्यमूर्तिं मनोहरम् ॥१४४॥
 दयामल च तयेशान सर्वदं व शिवात्मकम् ।
 चिन्तयेत् पश्चिमे त्वाद्य द्वितीय तु तयोत्तरे ॥१४५॥
 अधोर दक्षिणे देव पूर्वे तत्पुरुष तथा ।
 ईशान मध्यतो ज्ञेय चिन्तयेद् भक्तितत्पर ॥१४६॥
 शक्तित्रिशूलखटवागवरदाभयद शिवम् ।
 दक्षिणेऽप्य हस्तेषु वामेऽपि तत शुभम् ॥१४७॥
 अष्टमूत्र धोजपूर भुजग डमरूपलम् ।
 अष्टशिर्यसमायुवन ध्यायेत् तु हृदगत शिवम् ॥१४८॥

अथ शम्भु के पाँचों मृदा के नाम बतलाये जाते हैं—सद्योजात -
 वामदेव—अधोर—तत्पुरुष—ईशान ये पाँच मुख प्रकीर्तित किये गये हैं ।
 ॥१४२॥ सद्योजात का वर्ण शुक्ल है और वह शुद्ध स्फटिक के तुरप
 है । वामदेव पीत वर्ण वाला—सौम्य एवं मनोहर है ॥१४३॥ अधोर
 नीले वर्ण का है और उग्र दाय है जो भय के बढ़ाने वाला है ।

तत्पुरुष देव रक्त वर्ण से युक्त है जिसकी मूर्ति परम दिव्य है और वे मनोहर हैं ॥१४४॥ ईशान शिवमस्त हैं और सर्वदा ही शिव स्वरूप हैं । आद्य स्वरूप का पश्चिम दिशा में चिन्तन करना चाहिये । उत्तर दिशा में द्वितीय स्वरूप का चिन्तन करे ॥१४५॥ अधोर देव का दक्षिण में तथा पूर्व दिशा में तत्पुरुष का चिन्तन करना चाहिए । मध्यभाग में ईशान का भक्ति भाव में तत्पर होकर चिन्तन करना चाहिए ॥१४६॥ दक्षिण भाग के हाथों में शक्ति—त्रिशूल—खट्वाङ्ग—धरदान—अभय दान के दाता शिव का चिन्तन करना चाहिए उसी भाँति वाम भाग के हस्तों में अक्षतून—बीजपर—भुजङ्ग—डमरू और शुभ उत्पत्ति का ध्यान करे । आठ ऐश्वर्यों से समायुक्त हृदय में विराजमान शिव का ध्यान करना चाहिए ॥१४८॥

एव विचिन्तयेद् ध्याने महादेव जगत्पतिम् ।
 चिन्तयित्वा द्वारपालान् गणेशादीन् प्रपूजयेत् ॥१४६॥
 विष्णुं पञ्चभूतानां चिन्तयित्वा ततो मुहुः ।
 अष्टमूर्तीन्मृतं पश्चात् पूजयेदष्टनपथि ॥१४७॥
 आसनानि च तस्याय पूजयेत् सकलानि तु ।
 भावादीन्यष्टगुण्याणि हृदैव विनियोजयेत् ॥१४८॥
 ताराचमद्रमा तस्य ताडनं परिकीर्तितम् ।
 विमर्जनं धेनुमुद्रां दक्षयित्वा विधातुम् ॥१४९॥
 निर्माल्यधारणं कुर्यात् सदा चण्डेश्वरं धिया ।
 प्रत्येकं पञ्चभिर्मन्त्रैरङ्गादीनि प्रमार्जयेत् ॥१५०॥
 सम्मदादिभिरेतस्य पूर्वोक्तैर्नरसत्तमी ।
 वालां ज्येष्ठां तथा रौद्रीं कालीं च तदनन्तरम् ॥१५१॥
 कलविवरिणीं देवीं बलप्रमथिनीं तथा ।
 दमनीं सर्वभूतानां मनोन्मथिनीं तथैव च ॥१५२॥
 इत्येव प्रकार से ध्यान में जगत् क स्वामी महादेवजी का विचिन्तन

करना चाहिए । और द्वारपालों का चिन्तन करके गणेश आदि का पूजन करे ॥१४६॥ इसके अनन्तर पुनः पाँचो भूतो की विगुडि का चिन्तन करे । इसके उपरान्त आठ नामों के द्वारा आठ भूतियो का अभ्यर्चन करे ॥१५०॥ भावादि आठ पुष्पो का हृदय के द्वारा ही विनियोजन करना चाहिए और जो ममस्त आसन्न हो उनका भी पूजन करे । ॥१५१॥ नाराच मुद्रा से उसका ताडन परिकीर्तित किया गया है । और वैनु मुद्रा दिखलाकर विधान से विसर्जन करे ॥१५२॥ सदा ही वृद्धि से षण्डेश्वर प्रभु को निर्मात्य धारण करना चाहिए । प्रत्येक का पाँच मन्त्रों के द्वारा अङ्गादि का प्रमार्जन करे ॥१५३॥ हे नर श्रेष्ठो ! इन पूर्व में वर्णित सम्मद आदि के द्वारा इसका प्रमर्जन करना चाहिए । फिर आठ देवियों का पूजन करे । उनके नाम हैं—बाला—ज्येष्ठा—रोद्री—काली—बलविकरणी—देवी—बल प्रमथिनी—सब भक्तों की दमनी—मनोन्मथिनी ॥१५४॥१५५॥

अष्टौ ता. पूजयेद् देवी. क्रमाच्छम्भोश्च प्रीतये ।

एव शिव पूजयित्वा ध्यानतत्परमानसः ॥१५६॥

जपेन्माला समादाय मन्त्रं ध्यात्वा तथा गरुम् ।

एक पचाक्षर मन्त्रमेक प्रामादमेव वा ॥१५७॥

तत्सक्तमनसो जप्त्वा शीघ्रं सिद्धिमवाप्स्यथ ।

इति वां कथित मन्त्रं ध्यानपञ्चाक्रमं तथा ।

गच्छतं नाटकं शैलं तत्राराधयतं हरम् ॥१५८॥

पञ्चाक्षरस्तु मन्त्रोऽयं धृतस्त्वत्सम्पत्ते मुने ।

अनेनैव हरं देव पूजयिष्यावहे मुदा ॥१५९॥

इत्युक्त्वा तन्मन्त्रं तदा वेतातभैरवी ।

जम्भुतुर्नाटकं शैलं वशिष्ठानुमते नृप ॥१६०॥

तत्रान्ति सरसो रम्या मुसम्पूर्णमनोहरा ।

मयंदा श्वच्छमलिला प्रफुल्लकमलोत्पला ॥१६१॥

इन आठ देवियों का यजन क्रम से भगवान् शम्भु की प्रीति के लिये करना चाहिए। इस रीति में शम्भु का पूजन करके ध्यान में परायण भन वाला हो जावे ॥१५६॥ फिर अपने श्री गुरुदेव का और मन्त्र का ध्यान करके माता का आदान कर जप करना चाहिए। एक ही पाँच अक्षरो वाला मन्त्र अथवा एक प्रसाद होवे ॥१५७॥ उसी में समासक्त मन वाले होते हुये जप करके शीघ्र ही मिट्टि की प्राप्ति कर लीगे। यह आप दोनों को मन्त्र बतला दिया है तथा इनका ध्यान और पूजा का क्रम भी कह दिया गया है। अब आप लोग नाटक पर्वत पर जाइये और वहाँ पर भगवान् हर की आराधना करिए ॥१५८॥ वेताल और भीरव इन दोनों ने कहा—हे मुनिवर। यह पाँच अक्षरो वाला मन्त्र आपकी सम्मति से धारण कर लिया है और इसी मन्त्र के द्वारा देवश्वर शम्भु का आनन्द के साथ हम यजन करेंगे ॥१५९॥ हे नृप। इतना ही यह कहकर तथा वेताल और भीरव दोनों ने प्रणाम किया था और फिर वसिष्ठ मुनि की अनुमति से नाटक पर्वत पर वे दोनों चले गये थे ॥१६०॥ वहाँ पर एक परम सुन्दर सरोवर था जो पूर्ण सुन्दरता से बहुत ही मनको हरण करने वाली थी। उसमें सर्वदा बहुत ही स्वच्छ जल रहा करता था और सदा विक्सित कमल रहते थे ॥१६१॥

तस्पास्तीरे तु विपुल सुमनोज्ञो हराश्रमः ।

सर्वदा दानवदंवं किन्नरं त्रमथेस्तथा ॥१६२॥

रक्ष्यते नृपसाधूँल नृत्यवादनतत्परं ।

यस्मिन्नटति तत्रेशो नित्यं कौतुकयत्परः ॥१६३॥

तस्मान्नाटकनाम्नासौ जलराजः प्रगीयते ।

उन्नाकारं तु तर्शनं मनोज्ञं शक्यप्रियम् ॥१६४॥

आसाद्य यत्र सरसीं तत्र गत्वा तु तौ तदा ।

न चैवापश्यतां तत्र हराश्रममनुत्तमम् ॥१६५॥

गन्तुं चैवाश्रमस्थानं तौ नैवाशक्ता नृपः ।

तनो हर प्रणम्याशु तस्यैव सरसस्तटे ॥१६६॥
 निर्माय स्थण्डिल चारु वशिष्ठोक्तममेण तु ।
 हरमाराद्धुमारेभे वेतालो भैरवोऽपि च ॥१६७॥
 आराधयन्तौ भूतेश तो तदा शकरामत्जी ।
 दृष्ट्वा हरो देवगणैः सार्धं तस्मिन्तु पर्वते ।
 अधित्यकाया न्यवसत् स्वाश्रमेऽपर्णया सह ॥१६८॥

उसी सरोवर के तट पर परम विशाल और अत्यधिक सुंदर भगवान् शम्भु का आश्रम था । वह आश्रम सर्वदा दानवी—देवी—विष्णु तथा प्रमथो के द्वारा हे नृप शार्ङ्गल ! रक्षा किया जाता है वे रक्षा करने वाले सदा ही नृत्य और वादन में परायण रहा करते हैं । जिस कारण से वहाँ पर ईश कीतुक म तत्पर होकर नित्य नटित हुआ करते हैं ॥१६२॥१६३॥ इसी कारण से यह पर्वत साटक—इस नाम से प्रगीत किया जाता है । वह शैल छत्र के आकार के तुल्य आकार वाला था—परम मनोज्ञ था और भगवान् शङ्कर का अतीव प्रिय था ॥१६४॥ जहाँ पर सरोवर की प्राप्ति की थी । उस समय में उन दोनों ने वहाँ पर गमन किया था और उन्होंने परमोत्तम भगवान् हर का आश्रम नहीं देखा था ॥१६५॥ हे नृप ! वे दोनों आश्रम के स्थान पर गमन करने में अनमर्ष हो गये थे । इसके अनन्तर उन्होंने भगवान् शम्भु को प्रणाम किया था और उसी सरोवर के तट पर स्थित हो गये थे ॥१६६॥ वहाँ पर वशिष्ठ मुनि के द्वारा वक्षित क्रम में एक सुन्दर स्थण्डिल का निर्माण करके वेताल और भैरव दोनों ने भगवान् हर की आराधना करना आरम्भ कर दिया था ॥१६७॥ उस समय में शङ्कर के आश्रम के दोनों वंशजों की आराधना कर रहे थे भगवान् शङ्कर ने उस पर्वत पर देवगणों के साथ देखकर उस पर्वत की अधिपत्या में अपनी के ही साथ म अपने आश्रम में निवास किया था । पर्वत के नीचे की भूमि को अधिपत्या कहा जाता है । उनी अधिपत्या में भगवान् ने निवास करना शुरू कर दिया ॥१६८॥

अधोभागे सरस्तीरे तपस्यन्ती हरात्मजी ।
 स्थितो दृष्ट्वा देवगणै सहितः शंकरः स्थितः ॥१६६॥
 नृत्यमर्दलपान्दो यो हरस्य सतत भवेत् ।
 शृणुतस्तौ तदा शब्दं गन्तुं द्रष्टुं न लभ्यते ॥१७०॥
 हरेणाधिष्ठितः शैलः सर्वदेवगणै सह ।
 राजते स्म तदा भूप सुधर्मा वारायी यथा ॥१७१॥
 ध्यायतोस्तु तदा तत्र भगवान् वृषभध्वज ।
 नचिरादेव तस्याभूद् ध्यानमार्गेषु निश्चलः ॥१७२॥
 तौ पूजयन्तौ गच्छन्ती स्थितौ वा चन्द्रशेखरम् ।
 नैव तत्पूजयन्तुश्चित्तैः कदाचिदपि भूमिप ॥१७३॥
 पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पूजयन्तौ वषट्पञ्चमम् ।
 व्यतिचक्रमतुस्तौ त सहस्रं परिवत्सरान् ॥१७४॥
 निराहारौ यताहारौ हरससक्तमानसौ ।
 तपसा निग्न्यनुवर्पान सहस्रं चौकवर्षवत् ॥१७५॥

सरोवर के तट पर नीचे के भाग में शङ्कर के पुत्र वे दोनों
 तपश्चर्य कर रहे थे । वहाँ पर उन दोनों को स्थित हुए देखकर देवगणों
 के महित भगवान् शङ्कर भी वही पर मन्थित हो गये थे ॥१६६॥ वहाँ
 पर निरन्तर भगवान् हर का जो नृत्य और मर्दल का शब्द हुआ करता
 था । वे दोनों उस समय में उनका श्रवण किया करते हैं किन्तु वहाँ पर
 गमन करना और देखना प्राप्त नहीं होता था ॥१७०॥ हे भूप ! वह
 पर्वत देवगणों के सहित भगवान् हर के द्वारा अधिष्ठित था । उस
 समय में वे वासजी सुधर्मा की भाँति शोभित हो रहे थे ॥१७१॥ उस
 समय में वहाँ पर भगवान् वृषभ ध्वज ध्यान करने वाले उनके ध्यान
 मार्गों में अविलम्ब ही निश्चल हो गये थे ॥१७२॥ हे भूमिप ! वे दोनों
 ही पूजा करते हुए—गमन करते हुए अथवा स्थित होते हुए भगवान्
 शम्भु का ही ध्यान किया करते थे और किसी समय में भी चित्ता से

भगवान् चन्द्र शेखर वा त्याग नहीं किया था ॥१७३॥ पाँच मधुरों वाले मन्त्र के द्वारा वृषभध्वज वा पूजन करते हुए उन दोनों ने सहस्र वर्षों का व्यतिक्रम कर दिया था ॥१७४॥ बिना आहार वाले—तपस्व आहार वाले और भगवान् हर में ससक्त मन वाले उन दोनों ने तपश्चर्मों के द्वारा महत्त वर्षों को एवं ही वर्षों की गति विताया था ॥१७५॥

गते वर्षसहस्रे तु स्वमेव वृषध्वज ।
 प्रमङ्गस्तु तथोभूत्वा प्रत्यक्षत्वमुपागत ॥१७६॥
 त तु प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा तदा वेतालभैरवी ।
 वृषध्वज तुष्टुवतुर्ध्यानगम्य पुर स्थितम् ॥१७७॥
 हररूप यथाध्यात हृदगत तेजसोज्ज्वलम् ।
 तथा दृष्ट्वा ततस्ताभ्या वशिष्ठस्यानुमानत ॥१७८॥
 पञ्चवक्त्र महाकाय सर्वज्ञानमय परम् ।
 ससारसागरत्राण प्रणमावो वृषध्वजम् ॥१७९॥
 त्व पर परमात्मा च परेश पुरुषोत्तम ।
 त्व कूटस्थो जगदध्यापी प्रधान परमेश्वर ॥१८०॥
 रूपात्मा त्व महातत्त्व तत्त्वज्ञानालय प्रभु ।
 साख्ययोगालय शुद्धो गुणत्रयविभागवित् ॥१८१॥
 त्व नित्यस्त्वमनित्यश्च जगत्कर्ता तय स्मृत ।
 एकोऽनेकस्वरूपश्च शान्तचेष्टो जगन्मय ॥१८२॥

एक सहस्र वर्षों के व्यतीत हो जाने पर वृषभध्वज स्वयं ही उन दोनों के प्रमङ्ग म होकर प्रत्यक्ष रूप में उपागत हो गये थे ॥१७६॥ उस अवसर पर वेताल और भैरव दोनों ने भगवान् शम्भु को प्रत्यक्ष में समागत हुए देखकर जो ध्यान ॥ जानने के योग्य थे उनका रागस में विराजमान हुए पाकर उन्हीने वृषभध्वज वा स्तवन किया था ॥१७७॥ जिस प्रकार स हम्के स्वरूप वा ध्यान किया था और जो तेज के द्वारा उज्ज्वल हृदय में स्थित थे फिर उन दोनों ने उसी भाँति नमिष्ठ मुनि के

अनुमान से उनका दर्शन किया था ॥१७८॥ वेताल और औरव ने कहा—
पाँच मुखों वाले—महान् विशाल शरीर से समन्वित—सम्पूर्ण ज्ञान से
परिपूर्ण—परम—संसार रूपी सागर से परित्राण करने वाले भगवान्
वृषभध्वज को हम दोनों प्रणाम करते हैं ॥१७९॥ आप पर परमात्मा
हैं और आप परेश पुष्टोत्तम हैं—आप कूटस्थ—जगत् में व्याप्त रहने
वाले प्रधान परमेश्वर हैं ॥१८०॥ आप रूपात्मा हैं—आप महातत्त्व
हैं—तत्त्व ज्ञान के आलय हैं प्रभु हैं—आप सांख्य योग के आलय हैं—
शुद्ध और तीन गुणों (सत्त्व-रज-तम) के विभाग के ज्ञाता हैं ॥१८१॥
आप नित्य और अनित्य हैं—आप जगत् के कर्त्ता और सय कहे गये हैं ।
आप एक और अनेक रूप वाले हैं—शान्त चेष्टा से समुत्त और जगन्मय
हैं ॥१८२॥

निर्विकारो निराधारो नित्यानन्द. सनातन ।

त्व विष्णुस्त्व महेन्द्रस्त्व ब्रह्मा त्व जगता पति ॥१८३॥

यो रूपरूपेश्वररत्नमाल

सम्भूतिभूतो निरवग्रहश्च ।

कादयावतीर्णाविगतप्रमाथी

योगेश्वरो ज्ञानगतिस्त्वगम्यः ॥१८४॥

प्रमेयरूपात्मधराधराभो

भोगीन्द्रबद्धामृतभोगतन्त्रः ।

मूढमाक्षरस्तत्त्वविदप्रमाथी

त्वं देवदेव. शरण सुराणाम् ॥१८५॥

विवर्त्तमानापरिहोनदेह

शुद्धान्तघामानुगतैकविद्य ।

वर्धिष्णुरग्र. पुरुष परात्मा

त्वमिन्द्रियोपस्य विचारबुद्धि ॥१८६॥

त्व नाथनाथ प्रभवः परेषा

गनिमुंनोना परयोगिगम्य ।

त्व भूधरो भागधरो ह्यनन्तो

विश्वात्मनस्ते बहव प्रपन्वा ॥१८०॥

ज्ञानामृतस्यन्दकपूर्णचन्द्रो

मोहान्धकारस्य पर प्रदीप ।

भक्तात्मजाना परम पिता त्व

कामे च पचाननरूपधरो ॥१८१॥

शास्ताखिलाना प्रथमो विवस्वा-

स्तनूनपान् त्व तनुपे गुणोद्यान् ।

त्व ब्रह्मरूपेण करोषि सृष्टिं

विष्णुभवरूपं सतत स्मरति च ॥१८२॥

आप विचारों से रहित—निराधार— नित्य ही आनन्द स्वरूप है तथा सनातन है । आप विष्णु हैं—आप महेश्वर हैं और आप ब्रह्मा तथा जगत् के स्वामी हैं ॥१८३॥ जो रूप और रूपेश्वर रत्नों की माता हैं—सम्भूति से भूत और निरवग्रह हैं—जो काव्यावलीर्ण अद्वय प्रमा भी हैं—योगेश्वर—ज्ञान की गति वाले और अगम्य अर्थात् न जानने के योग्य हैं ॥१८४॥ आप प्रमेय रूप आत्मा के पराधराम हैं—आप भोगीन्द्रा से बढ अमृत भोग तन्त्र वाले हैं । आप सूक्ष्म और अक्षर हैं—तत्त्वों के वेत्ता और अमुमायो हैं । आप देवों के भी देव और गुरगणों के रक्षक हैं ॥१८५॥ आप विवरूप और भाव से परिहीन देह वाले हैं—आप शुद्ध अन्तर्ग्राम और अनुगतों की एक विद्या रूप हैं । आप वसिष्ठ, उग्र पुरुष और परात्मा हैं—आप इन्द्रियों के समूह की विचार बुद्धि हैं ॥१८६॥ आप नाथों के भी नाथ हैं—परो के प्रभव अर्थात् उत्पत्ति स्थान हैं—आप मुनिगणों की गति हैं तथा पर योगियों के द्वारा जानने के योग्य हैं । आप भूधर हैं, भागधर और अनन्त हैं । विश्वात्म आपने सृष्ट—मे प्रपन्व हैं ॥१८७॥ आप ज्ञान रूपी अमृत के स्पन्दन करन वाले पूज्य पदमा हैं और मोह रूपी अन्धकार के परम प्रदीप हैं ।

आप भक्तों के पुत्रों के लिये परम पिता हैं और काम मे पञ्चानन के रूप को धारण करने वाले हैं ॥१८८॥ आप समस्तों के शास्ता हैं—आप प्रथम विवखान् है—आप तनूनपात् है—आप गुणों के समुदायो का विस्तार किया करते है । आप ब्रह्म के रूप से सृष्टि किया करते हैं । और आप ही भगवान् विष्णु के रूप के द्वारा स्थिति अर्थात् परिपालन निरन्तर किया करते हैं ॥१८९॥

त्व रुद्ररूपी कुरुषे तथान्त

त्वत्तो न चान्याज्जगतीह वस्तु ।

त्व रात्रिनाथो दिवसेश्वरश्च

त्वमग्निराप पवनो धरित्री ॥१९०॥

नभस्तथा त्व ऋतुतन्त्रहोता

त्वमष्टमूर्तिर्भवतो न चान्यत् ।

अनन्तमूर्तिस्त्वह मुख्यभावा-

न्निगद्यते चाष्टामयी त्रिमूर्ति ॥१९१॥

अनन्तमूर्ते कथमन्यथा ते

संख्यास्ति रूपस्य यदष्टमूर्ति ।

त्वं त्र्यम्बकस्त्व त्रिपुरान्तकश्च

त्व शम्भुरीश शमनो विघाता ॥१९२॥

सहस्रबाहुश्च हिरण्यबाहु

सहस्रमूर्तिस्त्वह पञ्चवक्त्र. ।

प्रभूतनेत्रस्तु पदार्धनेत्र

प्रभूतबाहुदंशबाहुरीश. ॥१९३॥

प्रभूतभोगी मितभोगयुक्तो

भोग्यानुसारो निरवग्रहश्च ॥१९४॥

नित्यानित्यस्वरूपाय नित्यधामस्वरूपिणे ।

परतत्त्वस्वरूपाय नमस्तुभ्य शिवात्मने ॥१९५॥

नान्तं लिङ्गस्य यस्याप्तं विष्णुना ग्रहणा तव ।

तस्यावा किं विधास्यावः स्तुतिवाक्यं वृषध्वज ॥१६६॥

आप ही सद्देव के रूप से इस जगत् का अन्त किया करते हैं । इस जगत् में आपसे अन्य कुछ भी वस्तु नहीं है । आप रात्रिनाथ अर्थात् चन्द्रमा हैं और आप ही दिनमेश्वर हैं अर्थात् सूर्य हैं । आप ही अग्नि हैं—जल हैं, पवन हैं और आप ही धरित्री हैं ॥१६०॥ आप ही नभ हैं और आप ही कर्तुके तन्त्र होता है । आप ही अष्ट मूर्ति हैं और आपसे अन्य नहीं हैं । यहाँ पर मुख्यभाव से अनन्त मूर्ति हैं और अष्ट-मूर्ति के हो जाया करते हैं ॥ ११६ ॥ हे अनन्त मूर्तियों वाले ! आपके रूप की अन्य प्रकार से संख्या कैसे हो सकती है क्योंकि आप अष्ट मूर्ति हैं । आप शम्भु हैं और आप त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं । आप शम्भु हैं, ईश हैं, शमन हैं और विधाता हैं ॥१६२॥ आप सहस्रबाहु हैं—हिरण्य बाहु हैं—आप सहस्र मूर्ति हैं और यह पञ्च दक्कन अर्थात् पाँच मुखों वाले हैं । आप बहुत नेत्रों वाले हैं और तीन नेत्रों से समुत्पन्न हैं । आप प्रभूत (बहुत) बाहुओं से युक्त हैं और इस दश बाहुओं वाले हैं । ॥ १६३ ॥ आप बहुत अधिक भोगों के उपभोग करने वाले हैं और सीमित भोगों वाले हैं । भोग्यों के अनुसार हैं और अवग्रह से रहित हैं ॥ १६४ ॥ नित्य और अनित्य स्वरूपों वाले के लिये—नित्य धाम स्वरूपों के लिये—परतत्त्व स्वरूपों वाले शिवात्मा आपके लिये नमस्कार है ॥ १६५ ॥ जिन आपके लिङ्ग का अन्त ग्रहण और विष्णु ने भी प्राप्त नहीं किया था । हे वृषध्वज ! उन आपका हम दोनों क्या स्तुति वाक्य करेंगे ॥१६६॥

स्वरूप यस्य जानन्ति न देवा नापि दानवा ।

वातावाधा कथन्तु त्वा स्तोप्यावः परमेश्वर ॥१६७॥

भक्तिमात्रेण देवेश तवावा वृषभध्वज ।

कुर्वं प्रणाम गीरीश भूयस्तुभ्य नमो नमः ॥१६८॥

इति स्तुतो महादेवो वेतालेन महात्मना ।
 भैरवेणापि राजेन्द्र प्रसन्नः प्राह तौ तदा ॥१६६॥
 तुष्टोऽस्मि युवयोः पुत्रौ वृणुत वाञ्छित वरम् ।
 दास्यामि युवयोरिष्ट प्रसन्नोऽहं तपोव्रत ॥२००॥
 स्तुतिभिस्तु दर्मश्चापि तर्षकान्तानुचिन्तनः ।
 मुहुमुहुः सुप्रसन्न इष्ट दास्यामि वा सुतौ ॥२०१॥
 तुष्टोऽसि यदि सत्य नो सत्यमात्रां सुतौ यदि ।
 वृषध्वज तवैव तदेष्ट देहि नौ वरम् ॥२०२॥
 सुतभावेन पितर भवन्त जगतां पतिम् ।
 नित्य यथावगच्छावस्तथा देहि वर तु नौ ॥२०३॥

जिनके स्वरूप को देवगण और दानवगण भी नहीं जानते हैं ।
 हे परमेश्वर ! हम दोनों बालक किस प्रकार से आपका स्तवन करेंगे ।
 ॥१६७॥ हे वृषध्वज ! हे देवेश ! हम दोनों केवल भक्ति से ही हे
 गौरीश ! प्रणाम करते हैं । पुनः आपको बारम्बार नमस्कार है ॥१६८॥
 भौर्व ने कहा है—इस प्रकार स महान् आत्मा वाले वेताल ने द्वारा
 महादेवजी की स्तुति की मयी थी । हे राजेन्द्र ! भैरव ने भी स्तवन
 किया था । उस समय भैरव प्रसन्न होकर उन दोनों से बोले ॥१६६॥
 भगवान् ने कहा—हे पुत्रौ ! मैं आप दोनों पर परम प्रसन्न हूँ अब
 अपना वाञ्छित वरदान मांगिये मैं तपोव्रतों से परम प्रसन्न हूँ तुम
 दोनों का अभीष्ट दे दूँगा ॥१००॥ हे सुतौ ! आपकी स्तुतियों से—
 मदी से तथा एकान्त चिन्तनों से बार २ जो विये गए थे मैं बहुत
 ही प्रसन्न हो गया हूँ—आप दोनों का जो भी अभीष्ट होगा
 उस मैं दे दूँगा ॥२०१॥ वेताल—भैरव—दोनों ने कहा—यदि
 सचमुच ही आप हम दोनों के ऊपर प्रसन्न हैं यदि हम दोनों
 सचमुच ही आपके सुत हैं । हे वृषध्वज ! यहाँ पर आपका ही जो
 इष्ट हो वही हम दोनों को वरदान देने की कृपा करो ॥२०२॥ सुतभाव

से जगतो वे पति पिता आपको नित्य ही जैसे हम अवगत कर सेवा
ही वरदान हम दोनों को प्रदान कीजिए ॥२०३॥

न राज्यमभिकाक्षावो न धन नान्यदेव वा ।
स्वद्भक्त्या सेवनं कर्तुं तवेच्छावो वृषध्वज ॥२०४॥
स्वत्पादपकजद्वन्द्वे नित्यं मधुकरात्मताम् ।
त्वयि प्रसन्ने नेत्राणां युगले प्राप्नुता सदा ॥२०५॥
इतोऽन्यथा त्वच्चिन्ताभिस्त्वद्ध्यानंस्त्वत्प्रपूजनं ।
कल्पकोटिसहस्राणि यान्तु सम्यक्तथावयो ॥२०६॥
ततस्तद् वचनं श्रुत्वा महादेवो हसन्निव ।
सर्वदेवगणं साधं देवत्वमकरोत्तयो ॥२०७॥
देवेन्द्रसम्मतोऽनं सुधामानीय नाकत ।
वेतालभैरवो तान्तु पाययामास शकर ॥२०८॥
पीतेऽमृते ततस्तौ तु मर्त्यतां नरसत्तमौ ।
अमत्यता परियज्यं प्रापतु शिवशक्तित ॥२०९॥
तस्मिन्काले स्वपन्ती तु दिव्यज्ञानवलान्वितौ ।
दिव्यरूपोपसम्पन्तौ बभूवतुररिन्दमौ ॥२१०॥

हम लोग राज्य की इच्छा नहीं रखने है — न धन ही चाहते हैं
और अन्य भी कुछ की इच्छा है । हे वृषध्वज । आपकी भक्ति की
भावना से आपकी भावना से आपकी सेवा करना चाहते हैं ॥२०४॥
आपके चरण कमल के युग्म में नित्य ही मधुकर की स्वरूपता को प्राप्त
होंगे । आपके प्रसन्न होने पर नेत्रों का जोड़ा सदा ही सफलता को
प्राप्त होगा ॥२०५॥ यहाँ से आगे अन्य प्रकार से आपके चिन्तनों से—
आपके ध्यानों से और आपके पूजनो से हम दोनों के करोड़ों सहस्र
वर्ष भी शांति व्यतीत होंगे ॥२०६॥ इसके अनन्तर महादेवजी ने
हँसते हुए की भांति ही सब देवगणों के साथ उन दोनों को देवत्व कर
दिया था ॥२०७॥ भगवान् शकर ने देवेन्द्र की सम्मति से ही स्वर्ग से

अमृत को लाकर उसको वेताल और भीरव को मिला दिया था ॥२०८॥
हे नरस्येष्ठो ! भगवान् शिव की शक्ति से अमृत के पी लेने पर उन
दोनों ने मरत्यभाव का परित्याग करके अर्थात् मृत्यु के मुँह में जाने के
भाव का त्याग करके वे दोनों ही अमर्यता को प्राप्त हो गये थे ॥१०६॥
उस अवसर में स्वप्न करते हुये वे दोनों दिव्य ज्ञान और बल से सम-
न्वित हो गये थे । वे दिव्य रूप से सम्पन्न अरिषो के दमन करने वाले
हो गए ॥२१०॥

अभिन्नेनैव देहेन देवत्व गतयोस्तयो ।

ग्राह शम्भुस्तदा तौ तु सुतो परमहर्षितौ ॥२११॥

अहं तुष्टस्तु युवयो पार्वती दयिता मम ।

मद्दत्त काममिच्छन्तावाराधयतमीश्वरीम् ॥२१२॥

तामृते तु न शक्नोमि दातुमिष्ट सनातनम् ।

सेवितुं च सुतो नित्यं शरणं व्रजत शिवाम् ॥२१३॥

अचिराद् येन भावेन प्रीतिं देवी गमिष्यति ।

अतः वा तत्र वा गत्वा तेन भावेन शाय्यताम् ॥२१४॥

इसी अभिन्न देह के द्वारा देवत्व को प्राप्त हुये उन दोनों स
भगवान् शम्भु बोले । उस समय मैं वे दोनों सुत परम हर्षित हुए थे ।
॥२११॥ भगवान् ने कहा—मैं तो आप दोनों पर परम प्रसन्न हूँ ।
मेरे दिये हुए काम की इच्छा करते हुए आप दोनों मेरी दयिता पार्वती
ईश्वरी की समाराधना करो ॥२१२॥ उनके बिना मैं सनातन अभीष्ट
नहीं दे सकता हूँ । उनकी नित्य ही सेवा करने के लिये शिवा पार्वती
देवी की शरणावृत्ति में गमन कीजिए । जिस भाव से शीघ्र ही वह देवी
प्रीति को प्राप्त हो जावे वहाँ पर अथवा यहाँ पर गमन करके उसी भाव
से उन का समर्चन करिये ॥२१३॥



॥ महामाया कल्पे अष्टावश पटल ॥

एव वदति भूतेशे तदा वेतालभैरवी ।
 प्राह तु व्योमवेश तौ हर्षोऽफुल्लविलोचनौ ॥१॥
 पार्वत्या न हि जानीवो ध्यान मन्त्र विधि तथा ।
 कथमाराधयिष्यो भगवन् सम्यगुच्यताम् ॥२॥
 महामायाविधि मन्त्र कल्प च भवतो सुतौ ।
 उपदेक्ष्यामि तत्त्वेन येन सर्वं भविष्यति ॥३॥
 इत्युक्त्वा स महामायाध्यान मन्त्र विधि तथा ।
 कथयामास गिरिशस्तयो सम्यङ् नृपोत्तम ॥४॥
 यदष्टादशभि पञ्चात्पटलैश्च स भैरव ।
 स निर्णयविधि कल्प निवबन्ध शिवामृते ॥५॥
 कीदृङ् मन्त्र पुरा शम्भुरवोचदुभयोस्तयो ।
 येनाराध्य महामाया तौ गजेशत्वमातु ॥६॥
 सकल्प सरहस्य च साङ्ग तच्छ्रोतुमुत्सहे ।
 दशाष्टपटलयत् तु निवबन्ध सभैरव ॥७॥

श्रीवै मुनि ने कहा—इस प्रकार से भूतेश्वर प्रभु के कथन करने पर उस समय में वेताल—भैरव दोनों ही वे हृष से उत्फुल्ल लोचनो वाले व्योम केश भगवान् से बोले ॥१॥ वेताल—भैरव दोनों ने कहा—हे भगवन् ! हम दोनों देवी पार्वती का ध्यान—मन्त्र और विधि नहीं जानते हैं । हम उनकी किस प्रकार से आराधना करेंगे—यह आप भली भाँति हमको बतलाइए ॥२॥ श्री भगवान् ने कहा—हे सुतो ! मैं महा माया का मन्त्र—और कल्प आप दोनों के उद्देश करूँगा और तात्त्विक रूप से बतला दूँगा जिस से यह सब हो जायगा ॥३॥ श्रीवै ने कहा—हे नृपोत्तम ! उन देवेश्वर ने इस प्रकार से बहकर फिर माया माया का ध्यान— मन्त्र और विधि गिरिश प्रभु ने उन दोनों को भली

को सुनिये ॥६॥ श्री भगवान् ने कहा—आप ध्वज कीजिए मैं शुद्ध मे
भी परम गोपनीय को बतलाऊंगा। वंजवी का महामाया महोत्सव
आप अक्षरो वाला है ॥१०॥ इस श्री वंजवी के मन्त्र का नारद ऋषि
हैं और मन्त्र देवता हैं। इसका अनुष्ठान छन्द हैं और इसका सब श्रुति
के शत धन में विनियोग होता है ॥११॥ हान्तान्त पूर्व और रान्त उत्ती
भाति नान्त और पान्त है। एका दशाष्टक आदि वाल छटवा पान्त है
जिसमें त्रिणु आगे हैं ॥१२॥ इन आठ अक्षरो से मन्त्र होता है जो
शोण वक्त्र की अम्मा के समान होता है। अकार पूर्व में लगाकर समस्त
साधना करने वालो के द्वारा जप करना चाहिए ॥१३॥ यह महा मन्त्र
परम गोपनीय है और वंजवी मन्त्र की मन्त्रा वाला है। मन्त्र वाले वर
गत है इसी कारण से अङ्ग कीर्तित किया गया है ॥१४॥

महादेवस्योर्ध्वमुख वीजमेतत् प्रकीर्तितम् ।

अक्षराक्षरबीज च यकार शक्तिरुच्यते ॥१५॥

सबीज कथित मन्त्र कल्प च शृणु भैरव ।

तीर्थे नद्या देवखाते गर्तप्रसवणादिके ॥१६॥

परवीयेतरे तोये स्नान पूर्व समाचरेत् ।

आचान् शुचिता प्राप्त कृतात्मनपरिग्रह ॥१७॥

उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थण्डिल मार्जयेत् तत ।

वरेणानेन मन्त्रेण य स क्षित्या इति स्वयम् ॥१८॥

ॐ ह्रीं स इति मन्त्रेण आश्रापूरणनेन च ।

तोयैरभ्युक्षयेत् स्थान भूतानामपसारणे ॥१९॥

तत सव्येन हस्तेन गृहीत्वा स्थण्डिल शुचि ।

मन्त्र लिखेत् गुवर्णेन याज्ञिकेन कुशेन वा ॥२०॥

ॐ वंजव्यं नम इति मन्त्रराजमथापि वा ।

ततस्त्रिमण्डल मुर्यात् तेनैव समरेक्षया ॥२१॥

महादेवजी का ऊर्ध्वं मुग है। यह बीज कहा गया है। अक्षर

अक्षर बीज है और यकार शक्ति कही जाती है । १५ । हे भैरव ! बीज के सहित मन्त्र कह दिया गया है और वत्स का खवण करो । किमी तीर्थ में—नदी में—देवह्वात में—गर्त प्रसवय आदि में—परकीय से द्द्वार जल में पूर्ण व स्नान करे । आनमन करके शुचिता को प्राप्त हुआ होकर आसव का परिग्रह करे ॥ १६—१७ ॥ उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर फिर स्पण्डिल का मार्जन करना चाहिए । जिसको वह स्वयं क्षति से इस मन्त्र के द्वारा कर में करे । १८ । “ॐ ह्रीं स्र” इस मन्त्र के द्वारा और ब्रह्मा पूरक में जलो के द्वारा भूतों के अपमार्जन करने में अभ्युक्षण करे ॥ १९ ॥ फिर मध्य हाथ से भृषि होकर स्पण्डिल का ग्रहण करके मुखर्ग की लेखनी से अथवा याज्ञिक कुशा में मन्त्र को लिखना चाहिए ॥ २० ॥ अथवा “ॐ वैश्वरूप्यं नमः” इस यन्त्रराज की निम्ने फिर उसी में समरेखा में त्रिमण्डल करे ॥ २१ ॥

नित्यासु न हि पूजानु रजोभिर्गण्डल लियेत् ।
 पुरश्चरणकार्येषु तत्त्वाम्येषु प्रयोजयेत् ॥ २२
 रेखामुदीच्या प्रथम पश्चिमे तदनन्तरम् ।
 दक्षिते तु ततः पश्चात् पूर्वभागे तु शेषतः ॥ २३
 वर्णानां च सहद्वारं रेवमेव क्रमो भवेत् ।
 ॐ ह्रीं श्रीं स्र इति मन्त्रेण मण्डलं पूजयेत् ततः ॥ २४
 हस्तेन मण्डलं कृत्वा कुर्याद् दिग्बन्धनं ततः ।
 आशावन्धनमन्त्रेण पूर्वोक्तेन यथाक्रमम् ॥ २५
 फडन्तेनात्मनाप्तत्र करेणैव निबन्धयेत् ।
 गतानां मण्डलं रेवमङ्गुलं चाष्टमिर्भवेत् ॥ २६
 अदीर्घयोजितं हस्तैश्चतुर्विंशतिरङ्गुलं ।
 तत्प्रमाणेन हस्तेन हस्तैकं तस्य मण्डलम् ॥ २७
 पद्मं वितन्निमात्रं म्यात् कर्णिकारं तदधकम् ।
 दत्तान्यन्योन्यसक्तानि ह्यायतानि नियोजयेत् ॥ २८

न न्यूनाधिकभागानि सवहिवैष्टितानि च ।
मध्यभागे न्यसेद् द्वारघ्न न्यूने नाधिके तथा ।
मुबद्धं मण्डल तच्च रक्तवर्णं विचिन्तयेत् ॥२८॥

इतोऽन्यथा मण्डलमुग्रमस्याः

करोति यो लक्षणभागहीनम् ।

फल न चाप्नोति न काममिष्टं

तस्मादिदं मण्डलमत्र लेख्यम् ॥३०॥

नित्य होने वाली पूजाओं में रक्त से मण्डल को नहीं लिखना चाहिए । पुरस्करण कायों में और काम्यों में और इसके अनन्तर पश्चिम में फिर इसके पीछे दक्षिण में पीछे शेष में पूर्वाभागे में करे । २३ । इसी प्रकार से वनों के द्वारों के द्वारों के सहित क्रम होता है "ॐ ह्रीं स" इस मन्त्र के द्वारा फिर मण्डल का पूजन करना चाहिए । २४ । हाथ में मण्डल बनाकर फिर दिग्बन्धन करे । यथा क्रम से पूर्व में कथित आशाबन्धन में ही करे ॥ २५ ॥ यहाँ पर भी फट् जिसके अन्त में है अपने करने ही निबन्धन करे । यवों के मण्डलों से और आटी में एक अगुल होवे । २६ । अक्षीर्ष योजित हाथों से चौबीस अगुलों से उस भ्रमण वाले हाथ से एक हाथ उसका मण्डल होता है । २७ । एक वितस्न (कालिस्न) मात्र पदम होता है और उससे आधा कर्जिकार है । उसके दल परस्पर में सक्त होते हैं और आयत हो—ऐसे ही नियोजित करे । २८ । न्यूनाधिक भाग वाले न हो और बाहिर वैष्टित के सहित है । ठीक मध्य भाग में द्वार का न्यास करे न्यून तथा अधिक में न करे । और मुबद्ध मण्डल रक्त वर्ण वाला विचिन्तन करे । २९ । हमने अग्रया इसका उग्र मण्डल जो लक्षण और भाग रहित किया करता है उसका वह फल नहीं प्राप्त किया करता है और न अभीष्ट काम हो जाता है । हमने यह मण्डल यहाँ पर लिखना चाहिए । ३० ।

॥ महामाया कल्प वर्णन ॥(१)

ततो लमिति मन्त्रेण जर्घपात्रस्य मण्डलम् ।
 चतुष्कोण विधायाश्च द्वारपद्मत्रिवर्जितम् ॥१॥
 ओ ह्री श्रीमिति मन्त्रेण अर्घपात्रं तु मण्डले ।
 विन्यसेत् प्रथमं तत्र पूजयित्वा समिध्यति ॥२॥
 ओ ह्री ह्रीमिति मन्त्रेण गन्धपुष्पे तथा जलम् ।
 अर्घपात्रे क्षिपेत् तत्र मण्डलं विन्यसेत् ततः ॥३॥
 पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा अर्घपात्रे ततो जले ।
 त्रिभागे पूरयेत् पात्रं पुष्पं तत्र विनि क्षिपेत् ॥४॥
 ततो ह्रीमिति मन्त्रेण आसनं पूजयेत् स्वकम् ।
 ततः क्षीमिति मन्त्रेण आत्मानं पूजयेत् शुभं ॥५॥
 गन्धं पुष्पं शिरोदेगे ततः पूजां समाचरेत् ।
 ओ ह्रीं स इति मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम् ॥६॥
 समुज्य सव्यहस्तं घ्रात्वा वामकरेण तु ।
 ऐशान्या निक्षिपेदेतन् पूर्वमन्त्रेण कोविदः ॥७॥

श्री भगवान् न कहे—इसके उपरान्त तम्' इस मन्त्र से अर्घ-
 पात्र का चतुष्कोण मण्डल शीघ्र ही बनाकर जो कि द्वार पद्म न
 वर्जित है ॥ १ ॥ फिर "ॐ ह्री श्री" इस मन्त्र से मण्डल में अर्घ
 पात्र का विन्यास करना चाहिए । प्रथम वहाँ पूजा करके समिध्य करे
 । २ । 'ॐ ह्री, ह्रीं' इस मन्त्र से गन्ध और पुष्प तथा जल अर्घ पात्र
 में क्षिप्त करे फिर वहाँ पर मण्डल का विन्यास करना चाहिए । ३ ।
 पूर्व की ही भाँति मण्डल करके अर्घ पात्र तीन भागों वाले जलों से
 पात्र को पूरित कर और उसमें पुष्प का निक्षेप कर । ४ । फिर 'ह्रीं'
 इस मन्त्र से आसन का जो कि अपना हो यजन कर । फिर बुध
 को चाहिए कि "क्षीं"—इस मन्त्र से आत्मा का पूजन करे ।

मन्त्र—पुष्पो से शिरो देश में पूजा का समाचरण करना चाहिए ।
 “ॐ ह्रीं स” —इम मन्त्र के द्वारा हस्त तल में स्थित पुष्प का समाचर्न
 करके मध्य वर से आघ्राण करके वाम करके द्वारा कोविद पुरपरो
 ऐशानी दिशा में इसका पूर्व मन्त्र से ही विनिक्षेप करना चाहिये ।
 ॥ ४—७ ॥

रक्तं पुष्पं गृहीत्वा तु कराभ्यां पाणिकच्छकम् ।
 वद्ध्वा कुर्यात् ततः पश्चाद् दहनप्लवनादिकम् ॥८॥
 वामहस्तस्य तर्जन्या दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् ।
 तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठं नियोजयेत् ॥९॥
 उन्नत दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ।
 अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥१०॥
 वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
 अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ॥११॥
 कूर्मपृष्ठसमं पृष्ठं कुर्याद् दक्षिणहस्ततः ।
 एव वद्ध सर्वसिद्धिं ददाति पाणिकच्छपः ॥१२॥
 कुर्यात् तद्गृह्णामासन्नं निमीत्य नयनद्वयम् ।
 मम वायशिरोग्रीव कृत्वा स्थिरमना बुधः ॥१३॥
 ध्यानं समाभेद् देव्या दाहप्लवतपूर्वकम् ।
 अग्निं वामो विनिक्षिप्य वायुं तोये जलं हृदि ॥१४॥

रक्त वर्ण के पुष्प का ग्रहण करके दोनों हाथों से पाणि कच्छप
 बाँध कर इनके पीछे दहन प्लवम आदि करे ॥ ८ ॥ बाँधे हाथ की
 कनिष्ठिका की तथा दक्षिण हाथ की तर्जनी में वाम अंगुष्ठ को नियोजित
 करे । ९ । दाहिने उन्नत अंगुष्ठ को वाम कर की मध्यमादिक अंगुलियों
 को पृष्ठ में योजित करे जो कि दक्षिण करके पृष्ठ में करना चाहिए
 । १० । वाम करके पितृ तीर्थ में मध्यमा और अनामिका को अधोमुख

करे और दाहिने कर को दक्षिण हस्त में घूम के पृष्ठ के समान करे । इस प्रकार से बेंघा हुआ पाणि कच्छप सभी मिट्टियों को दे दिया करता है ॥ ११—१० ॥ स्थिर मन वाले बुध पुरुष का चाहिए कि उसको अपने हृदय के समीप में करे और दोनों नेत्रों को मूँद लेवे । अपनी बाया—गिर और घोवा को समान रखे ॥ १३ ॥ फिर दाह पवन पूर्वक देवों के ध्यान का समारम्भ करना चाहिये । अग्नि को वायु में निक्षिप्त करके वायु को जल में और जल को हृदय में निक्षिप्त करे ॥ १४ ॥

हृदयं निश्चले दत्त्वा आकाशे निक्षिपेत्स्वनम् ।
 ॐ ह्रँ फडिति मन्त्रेण भित्त्वा रन्ध्रं तु मस्तके ॥१५
 शब्देन सहित जीवमाकाशे स्थापयेत् तत ।
 वाय्वग्नियममक्राणा बीजेन बरुणस्य च ॥१६
 परास्थानपराश्चैतं साधकश्चैत्रं सविन्दुकं ।
 शोष दाह तयोच्छाद पीयूषासेवन परम् ॥१७
 यथाक्रमेण कर्तव्यं चिन्तामात्रं विमुक्तये ।
 ततस्तु देवीबीजेन अणु जावूनदाकृतिम् ॥१८
 तत्रासाद्य द्विधा कुर्यात् इमं ह्रीं श्रोमिति मन्त्रका ।
 तद्बुध्वं मागेपु हृदलोच म्वर्गा च ख तथा ॥१९
 निष्पाद्य शेषभागेन भुव पातालवारिणि ।
 चिन्तयेत्तत्र सर्वाणि सप्तद्वीपा च भेदिनीम् ॥२०
 तत्तत्पु सागरास्तास्तु म्वर्णद्वीप विचिन्तयेत् ।
 तन्मध्ये रत्नययंक रत्नमण्डपसंस्थितम् ॥२१

हृदय को निश्चल आकाश में देकर स्वन का निशेप करे ।
 "ॐ ह्रँ फट्"—इस मन्त्र के द्वारा मस्तक में रन्ध्र का भेदन करके शब्द के सहित जीव को आकाश में स्थापित करे । वायु—अग्नि—यम इन्द्रों का और बरुण का बीज के द्वारा शोषादि करे ॥ १५—१९ ॥

विभ्रती वग्महस्ताभ्यामभोति वरदायिनीम् ॥२६

निम्नताभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।

आनमन्नागपाशोरुं गुप्तगुल्फां सुपार्ष्णििकाम् ॥३०

वद्धपर्यङ्कसंकल्पा निवीरासनराजिताम् ।

गात्रेण रत्नसंस्तम्भं मम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥३१

आकाश गङ्गा के जल की राशि से सदा ही सेवित वह शोभा है । उस पर्यङ्क पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है ॥२२॥ उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मानाङ्क है—सप्त पातालो का ताल वाला है—ग्रह लोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णावल के कणिका वाला है ॥२३॥ वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्र मन वाला होकर ध्यान करे । वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुये रहकर सटके हुए हैं ॥२४॥ वह चलत्काजिमा पर समारूढ है तथा उज्ज्वल कुण्डलो की शोभा वाली है । सुवर्ण और रत्नो में सम्पन्न दो किरीटो के धारण करने वाली हैं । ॥२५॥ गुल्ल—कृष्ण और अरण वर्णों वाले तीन नेत्रों के द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है । सन्ध्या वालीन चन्द्र के तुल्य कपोलो से संयुत हैं और उन के लोचन चबल हैं ॥२६॥ पङ्कुर हित दाडिम के बीजों के समान दातों के रखने वाली—सुन्दर भौंहों में योग से उज्ज्वल—बन्धूक दन्त के बसनो वाली—शिरीष की प्रभा से युक्त नासिका से संयुत—कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली—विशाल नेत्रों से युक्त—करोड़ो मूर्तियों की प्रभा में समन्वित—चार भुजाओं वाली—विवसना और बीन तथा उन्नत पयोधरो से शोभित—निस्त्रिशत्पर ऊर्ध्व दक्षिण कर के द्वारा सिद्ध मूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथों से अन्नयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात् गम्भीर नाभि क्रम से आयात—क्षीण मध्यभाग वाली—मनोहर—आनमित नाग पाशों के सदृश ऊरुओं से युक्त—गुप्त गुल्फों वाली—सुन्दर पार्ष्णियों से संयुत—वद्ध पर्यङ्क सङ्कल्प

ये परा स्थान पर हैं विन्दु और अर्ध चन्द्र के सहित इनसे ज्ञेय—दाह तथा उच्छेद—पर पीयूष का आसेवन मयाक्रम से करना चाहिये । विशुद्धि के लिये चिन्तन मात्र ही है । इसके अनन्तर देवी के बीज के द्वारा जाम्बवन्त की आकृति वाले अण्ड का करे ॥१७॥१८॥ वहाँ पर पहुँचकर ॐ ह्रीं श्रीं मन्त्रों से द्विधा करना चाहिये । उनके ऊर्ध्व भागों में हृद्—लोक स्वर्ग को भूमि तथा आकाश का निष्पादन करके शेष भाग से भू को पालाश के जल में चिन्तन करे । वहाँ पर सबका चिन्तन करना चाहिए । सातों द्वीपों का और मेदिनी का चिन्तन करे । उनमें उन सागरों का और रत्नों द्वीप का चिन्तन करना चाहिए । उसके मध्य में रत्नों से निमित्त मण्डप में स्तुतियुक्त रत्न पर्यङ्क का चिन्तन करे ॥१९— २१॥

आकाशगङ्गानोयोधै सदैव सेवित शुभम् ।
 तत्पर्यंके रक्तपदम प्रसन्न सर्वदाशिवम् ॥२२
 चिन्तयेत् स्वर्णमानाक सप्तपातालनालकम् ।
 शायद्वाभुवनस्पर्शि सुवर्णाक्षितवर्णिकम् ॥२३
 तत्रस्थिता महामाया ध्यायेदेकाग्रमानस ।
 शोणपद्मप्रतीकाशा मुक्तमूर्धजलम्बिनी ॥२४
 चलत्वाञ्चनामरुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ।
 सुवर्णरत्नसम्पन्न किरीटद्वयधारिणीम् ॥२५
 शुक्लवृष्णारुणैर्नैस्त्रिभिश्चाखविभूषिताम् ।
 मन्द्याचन्द्रसमप्रख्य-वपोला लोललोचनाम् ॥२६
 विपद्गुदादिभीबीजदान्तात् सुभ्रूयोगोज्ज्वलाम् ।
 वन्धूवदन्तवसना शिरीषप्रभनासिकाम् ॥२७
 चन्द्रुषोवा विशालाक्षी सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
 पद्मभुजा विवर्णना पोतोन्नपयोधराम् ॥२८
 दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशत्परेण सिद्धमूत्रवम् ।

विभ्रती वामहस्ताभ्यामभीतिं वरदायिनोम् ॥२६

निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।

आनमन्नागपाशोरु-गुप्तगुल्फा सुपाष्णिकाम् ॥२७

वद्धपर्यङ्कसंकल्पा निबोरासनराजिताम् ।

गात्रेण रत्नसस्तम्भं सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥२८

आकाश गङ्गा के जल की राशि में सदा ही सेवित वह शम है । उस पर्यङ्क पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है ॥२२॥ उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मानाङ्क है—सप्त पाताली का नाल वाला है—ब्रह्म लोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णाचल के कर्णिका वाला है ॥२३॥ वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्र मन वाला होकर ध्यान करे । वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुये रहकर सटके हुए हैं ॥२४॥ वह चलत्कान्तिमा पर समाकृष्ट है तथा उज्ज्वल कुण्डलों की शोभा वाली है । सुवर्ण और रत्नों से सम्पन्न दो किरीटों के धारण करने वाली हैं ॥२५॥ शुक्ल—वृष्ण और अरुण वर्णों वाले तीन नेत्रों के द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है । सध्या वालीन चन्द्र के तुल्य कपोलों से संयुत हैं और उन के लोचन चंचल हैं ॥२६॥ पङ्कुर हित दाढ़िम के बीजों के समान दातों के रखने वाली—सुन्दर भौंहों में योग से उज्ज्वल—बन्धूक दन्त के बसनों वाली—शिरीष की प्रभा से युक्त नासिका से संयुत—कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली—विशाल नेत्रों से युक्त—करोड़ों सूर्यों की प्रभा से समन्वित—चार भुजाओं वाली—विवसना और वीन तथा उन्नत पयोधरो से शोभित—निस्त्रिशत्पर ऊर्ध्व दक्षिण कर के द्वारा सिद्ध मूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथों से अभयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात् गम्भीर नाभि क्रम से आयात—क्षीण मध्यभाग वाली—मनोहर—आनमित नाग पाशों के सदृश ऊरुओं से युक्त—गुप्त गुल्फों वाली—सुन्दर पाष्णियों से संयुत—वद्ध पर्यङ्क सङ्कल्प

ये परा स्थान पर हैं बिन्दु और अर्ध चन्द्र के महित इनसे शेष—दाह तथा उच्छेद—पर धीयूष का आसेवन यथाक्रम से करना चाहिये । विशुद्धि के लिये चिन्तन मात्र ही है । इसके अनन्तर देवी के बीज के द्वारा जाम्बूनद की आकृति वाले अण्ड का करे ॥१७॥१८॥ वहाँ पर पहुँचकर ॐ ह्रीं श्रीं मन्त्रों से द्विधा करना चाहिये । उनके ऊर्ध्व भागों में हृद्—लोक स्वर्ग को भूमि तथा आकाश का निष्पादन करके शेष भाग से भू को पाताल के जल में चिन्तन करे । वहाँ पर सयका चिन्तन करना चाहिए । सातों द्वीपों का और मेदिनी का चिन्तन करे । उनमें उन सागरो का और स्वर्ण द्वीप का चिन्तन करना चाहिए । उसके मध्य में रत्नों से निमित्त मण्डप में सस्थित रत्न पर्यङ्कु का चिन्तन करे ॥१९—२१॥

आकाशगङ्गानोयोधै सदैव सेवित शुभम् ।
 तत्पर्यंके रवतपदम प्रसन्नं सर्वदाशिवम् ॥२२॥
 चिन्तयेन् स्वर्णमानाकं सप्तपातालनालकम् ।
 शत्रुह्यभुवनस्पर्शि सुवर्णचितवर्णिकम् ॥२३॥
 तत्रस्थिता महामाया ध्यायेदेकाग्रमानस ।
 शोणपद्मप्रतीकाशा मुक्तमूर्धजलम्बिनी ॥२४॥
 चलत्काञ्चनामरुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ।
 सुवर्णरत्नसम्पन्न किरीटद्वयधारिणीम् ॥२५॥
 शुक्लकृष्णारुणैर्नैत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् ।
 मन्द्याचन्द्रसमप्रख्य-कपोला लोललोचनाम् ॥२६॥
 विपङ्कदाडिमीबीजदान्तात् सुभ्रूयोगोज्ज्वलाम् ।
 वन्धूकदन्तवसना शिरीषप्रभनासिकाम् ॥२७॥
 कम्बुग्रीवा विशालाक्षी सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
 चतुर्भुजां विवसना पोनोन्नतपयोधराम् ॥२८॥
 दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिशत्परेण सिद्धसूत्रकम् ।

विभ्रती वामहस्ताभ्यामभीति वरदायिनीम् ॥२६

निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।

आनमन्नागपाशोरु-गुप्तगुल्फा सुपाष्णिकाम् ॥२७

वद्धपयङ्गुसंकल्पा निवोरासनराजिताम् ।

गात्रेण रत्नसंस्तम्भं मय्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥२८

आकाश गङ्गा के जल की राशि से सदा ही सेवित वह शम है । उस पयङ्गु पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है ॥२२॥ उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मानाङ्क है—सप्त पातालो का नाल वाला है—ब्रह्म लोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णाक्षर के कणिका वाला है ॥२३॥ वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्र मन वाला होकर ध्यान करे । वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुये रहकर लटके हुए हैं ॥२४॥ वह चलत्काजमा पर समासुद्ध है तथा उज्ज्वल कुण्डलो की शोभा वाली है । सुवर्ण और रत्नों से सम्पन्न दो किरीटों के धारण करने वाली हैं । ॥२५॥ शुक्ल—वृष्ण और अरुण वर्णों वाले तीन नेत्रों के द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है । सन्ध्या कालीन चन्द्र के तुल्य कपोलो से संयुत हैं और उन के लोचन चञ्चल हैं ॥२६॥ पङ्कुर हित दाडिम के बीजों के समान दातों के रखने वाली—सुन्दर भौंहों से योग से उज्ज्वल—बन्धूक दन्त के वसनों वाली—शिरीष की प्रभा से युक्त नासिका से संयुत—कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली—विशाल नेत्रों से युक्त—करोड़ों मूर्तियों की प्रभा से समन्वित—चार भुजाओं वाली—विवसना और बीन तथा उन्नत पयोधरो से शोभित—निस्त्रिशत्पर ऊर्ध्व दक्षिण कर के द्वारा सिद्ध मूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथों से अमयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात् गम्भीर नाभि क्रम से आयात—क्षीण मध्यभाग वाली—मनोहर—आनमिति नाग पाशों के सदृश ऊर्ध्वों से युक्त—गुप्त गुल्फों वाली—सुन्दर पाष्णियों से संयुत—वद्ध पयङ्गु सङ्कल्प

वाली—नीवीरासन से राजित—मात्र से रत्न सस्तम्भ को भली भाँति
आलम्बन करके मस्थिता ॥३७—३९॥

किमिच्छस्योति वचनं व्याहरन्ती मुहुर्मुहुः ।

पञ्चाननां पुरःसंस्थं निरीक्षन्ती सुवाहनाम् ॥३८

मुक्तावली - स्वर्णरत्नहारकङ्कुणादिभिः ।

सर्वैरलङ्कारगणैरुज्ज्वला सस्मिता ननाम् ॥३९

सूर्यकोटिप्रतीकाशां सर्वलक्षणसंयुताम् ।

नवयौवनसम्पन्नां तथा सर्वाङ्गमुन्दरीम् ॥४०

ईदृशीमम्बिका ध्यात्वा नमः फडिति मस्तके ।

स्वकीये प्रथमं दद्यात् सोऽहमेव विचिन्त्य च ॥४१

बारम्बार क्या चाहते हो—इस तरह से बोलती हुई—पाँच
आननो वाली—पुरः संस्थ का निरीक्षण करती हुई—सुन्दर बाह्य
वाली—मुक्ता वली, स्वर्ण, रत्न हार और किङ्कुणी आदि से समस्त
आभूषणों के समूहों से उज्ज्वल—स्मित सहित मुख वाली—करोड़ों
सूर्यों के सदृश—समस्त सुलक्षणों से समन्वित—नूतन यौवन से सम्पन्न—
तथा सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों से सुन्दरी—ऐसी अम्बिका देवी का ध्यान
करके “नम फट्”—इस मन्त्र से स्वकीय मस्तक में मैं बही हूँ—ऐसा
चिन्तन करके प्रथम देवे ॥३८—४१॥

अङ्गन्यासकन्यासौ ततः कुर्यात् क्रमेण च ।

एभिर्मन्त्रैः स्वरैः सह सुभीसूमी क्रमान्वितैः ॥४२

ओम् क्षौम् चंते सप्रशवा रत्नवर्णा मनोहराम् ।

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमग्नसवेष्टन फट् ॥४३

प्रान्तेन कुर्याद् विन्यासं पूर्व करतलद्वये ।

हृन्छिदरशिखाकवचनेत्रेषु क्रमतो न्यसेत् ॥४४

ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे ।

वाह्वोगुह्ये पादयोश्च जंघयोर्जघने क्रमात् ॥४५

धिन्यसेदक्षराप्यष्टौ ओकारं च तथा स्मरन् ।

एभिः प्रकारैरतिशुद्धदेहः पूजा सदैवाहंति नान्यथा हि ।

शरीरशुद्धि मनसो निवेश भूतप्रसारं कुरुते नृणा तत् ॥४०

इसके अनन्तर अङ्गों का न्यास और करो का न्यास क्रम से करना चाहिए । और वह मूमी मूम क्रियान्वितों के स्वरो के सहित इन मन्त्रों से करना चाहिये । ओम् क्षौम् ये मन्त्र हैं । प्रणव के सहित—रक्स वर्ण से सयुत—मनोहर को अगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठिका के अन्त तक मन्त्र सवेष्टन फट् प्रान्त से पूर्व में दोनों करतलो में विन्यास करना चाहिये । फिर हृदय—शिर—शिखा—कवच—नेत्र—इनमें क्रम से न्यास करे ॥३६—३८॥ इसके अनन्तर मूल मन्त्र का मुख में—गुष्ठ में—उदर में—दोनों बाहुओं में—गुह्य में—दोनों पादों में—दोनों जाँघों में क्रम से आठ अक्षरों का विन्यास करे । तथा ओङ्कार का स्मरण करता रहे । इन्हीं पुकारों से अत्यन्त शुद्ध देह वाला होकर पूजा सदा ही उचित होती है । अन्य प्रकार से उचित नहीं होती है । यह शरीर की शुद्धि—मनका निवेश—भूतों का प्रसार मनुष्यों का किया करती हैं ॥३६॥४०॥



॥ महामाया कल्प वर्णन(२) ॥

ततोऽर्घपात्रे सन्मन्त्रमष्टधाकृत्य सजपेत् ।

तेन तोयानि पुष्पाणि स्वं मंडलमयासनम् ॥१

आशोषयेत् ततः पश्चात् पूजोपकरण समम् ।

ॐ ऐं ह्रीं ह्रौमिति मन्त्रेण शब्दप्रांशुविर्जितम् ॥२

द्वारपालं ततो देव्या आसनानि च पूजयेत् ।

नन्दिभृङ्गिमहाकालगणेशा द्वारपालकाः ।

उत्तरादिक्रमात् पूज्या आसनानि च मध्यतः ॥३॥
 आधारशक्तिप्रभृति हेमादृन्तान् प्रपूजयेत् ।
 प्रसिद्धान् सर्वतन्त्रेषु पूजाकल्पेषु भैरव ॥४॥
 दशदिक्पालसहितान् धर्माधर्मादिकांस्तथा ।
 मण्डलाभ्यादिकोणेषु पूजयेत् पार्श्वं देशतः ॥५॥
 सूर्याग्निसोममरुता मण्डलानि च पद्मकम् ।
 रजस्तथा तमः सत्तः सत्त्वं योगपीठ गुरोः परम् ॥६॥
 सारादीन् भद्रपीठान्तान् सांगोपांगान् प्रपूजयेत् ।
 ब्रह्माण्ड स्वर्णडिम्ब च ब्रह्माविष्णुमहेश्वरान् ॥७॥

भगवान् ने कहा—इसके उपरान्त अर्धपात्र में उस मन्त्र को
 आठ भागों में विभक्त करके भली भाँति जप करे । उससे जलको—
 पुष्पों को—अपने मण्डल को—आसन को आशीर्वाद करे इसके पीछे
 पूजा के उपकरणों का सम करे । ओं ऐं ह्रीं ह्रीम्—इस मन्त्र के द्वारा
 शन्द प्राणु विवर्जित द्वारपाल को और फिर देवी के आसनो का पूजन
 करना चाहिये । नन्दि—भृङ्गि—मय कास गवेश—द्वारपाल का उत्तर
 आदि क्रम से पूजन करने के योग्य है और मध्य में आसन प्रभू के
 योग्य हैं ॥ १—३ ॥ आधार शक्ति आदि हे भैरव ! पूजा कल्पों में
 समस्त तन्त्रों में प्रसिद्ध हेमाद्र यन्त्रों का पूजन करे ॥४॥ दश दिक्पालों
 के सहित धर्मा धर्मादिकों को मण्डल के अक्षि आदि कोणों में पार्श्वदेश
 से यजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ सूर्य—अग्नि—सोम—मरु—इनके
 मण्डलों को—पद्मक को—रज—सत्त्व—तम को—योग पीठ को—
 गुप्तेव के चरणों को नार से आदि लेकर भद्र पीठ के अन्त तक साङ्गो-
 पाङ्गों को पूजित करे—ब्रह्माण्ड—स्वर्ण डिम्ब और ब्रह्मा, विष्णु, महेश्व-
 रों का पूजन करे ॥६—७॥

संसागरान् सप्तद्वीपान् स्वर्णद्वीपं समण्डपम् ।

रत्नपद्मं सपर्यङ्कं रत्नस्तम्भं तथैव च ॥८॥

पञ्चानन मण्डलस्य मध्यंऽवश्य प्रपूजयेत् ।
 ही मन्त्रेण तत कूर्मपृष्ठ पाण्योनिवध्य च ॥६
 ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीमासाद्यासनमुत्तमम् ।
 हन्यध्ये चिन्तयेन् स्वर्णद्वीपं पर्यङ्कसमृतम् ॥१०
 पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा स्मरेत् ।
 प्रत्यक्षीकृत्य हृदये मानसैरुपचारकैः ॥११
 षोडशाना प्रकारंस्तु हृदिस्था पूजयेच्छिवाय ।
 तनस्तु वायुबीजेन दक्षिणे च पुटेन च ॥१२
 नासिकाया विनि सार्यं भी मन्त्रेण च भैरव ।
 स्थापयेत् पद्ममध्ये तु तद्वस्तु न वियोजयेत् ॥१३
 कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्माच्च भैरव ।
 गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकं नाप्यते फलम् ॥१४

सागरो के सहित सातो द्वीपों का—मण्डल के सहित स्वर्ण द्वीप का—रत्नमय—पर्यङ्क के सहित रत्न स्तम्भ मण्डप के पञ्चानन का मध्य में अवश्य पूजन करे । “ह्रीं” मन्त्र से पाणियों को निवद्ध करके कूर्मपृष्ठ का यजन करे और पूर्व की ही भाँति उत्तम आसन को प्राप्त करके देवी का ध्यान करना चाहिए । हृदय के मध्य में पर्यङ्क से समृत स्वर्ण द्वीप का चिन्तन करे ॥ ६—१० ॥ इसके अनन्तर देखते हुए भी भाँति एकाग्र मन से देवी का स्मरण करे । हृदय में प्रत्यक्ष करके मानस उपचारों से अर्थात् मन में कल्पित उपचारों के द्वारा सोलह प्रकारों से हृदय में विराजमान देवी शिवा का यजन करना चाहिए । इसके अनन्तर हे भैरव ! वायु बीज के द्वारा दक्षिण पुट से क्ली मन्त्र के द्वारा नासिका से विनि सारण करके पद्म के मध्य में स्थापित करे और हाथ को नियोजित न करे ॥ ११—१३ ॥ हे भैरव ! हाथ के वियोग करने पर उस पुष्प से गन्धर्वों के द्वारा देवी का पूजन किया जाता है और पूजकों के द्वारा फल की प्राप्ति नहीं की जाती है ॥१४॥

आवाहन ततः कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह ।
 महामायायै विदमहे त्वा चण्डिकाख्या धीमहि ॥१५॥
 एतदुक्त्वा ततः पश्चाद् धियो यो नः प्रचोदयात् ।
 स्नानीय देवि ते तुभ्य ॐ ह्री श्री नम इत्यतः ॥१६॥
 स्नानीय च ततो देव्यै दद्यादल्लक्षणलक्षितम् ।
 ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धपुष्प सदीपकम् ॥१७॥
 धूपदिकं प्रदद्यात्तु मोदकं पायसं तथा ।
 सिता गुड दधि-क्षीर सर्पिर्नानाविधं ॥१८॥
 रक्तपुष्प पुष्पमाला सुवर्णरत्नादिकम् ।
 नैवेद्यमुत्तमं देव्या लाङ्गलं मोदकं सिताम् ॥१९॥
 श्राण्डिल्यकरताम्राढ्य-कूष्माण्डानां फलानि च ।
 हरीतकीफलं चापि नागरङ्गकमेलकाम् ॥२०॥
 बालप्रियं च यद् द्रव्यं कसेरुकविसादिकम् ।
 तोयं च नारिकेलस्य देव्यै देयं प्रयत्नतः ॥२१॥

हमने उपरान्त गिर के साथ गायत्री मन्त्र के द्वारा आवाहन करना चाहिए । हम महामाया का ज्ञान रखते हैं और चण्डिका नाम वाली का ध्यान करते हैं ॥ १५ ॥ इतना कहकर फिर जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करे । हे देवि ! आपके लिये “ ॐ ह्री श्री नमः ” इस मन्त्र से देवी के लिये स्नानीय का नमर्पण करे जो लक्षण लक्षित होवे । इसके अनन्तर मूल मन्त्र में दीपक के सहित गन्ध—पुष्प—धूप आदि को अर्पण करे तथा मोदक तथा पायस देवे । मिथो—भुज—दधि—क्षीर घृत और अनेक फलों में यजन करना चाहिए । अर्थात् इनको अर्पित करना चाहिए ॥ १६—१८ ॥ रक्त पुष्प—पुष्पों की माला—सुवर्ण और रत्न (चाँदी) आदिक—उत्तम नैवेद्य—देवी का लाङ्गल—मोदक—सिता (मिथी) श्राण्डिल्य कर ताम्र नामक और कूष्माण्ड के फल—हरीत की फल—नागरङ्गी—एमका

(इलायची) और जो द्रव्य बाल प्रिय है—वसेरु कविसादिक—
नारियल फल का जल—य सब देवी के लिए प्रयत्नपूर्वक समर्पित कर
॥ १६—२१ ॥

रक्त कौशेयवस्त्र च देय नील कदापि न ।
देव्या प्रियाणि पुष्पाणि वकुल केशर तथा ॥२२
माध्य कल्लारवज्राणि करवीरकुरुष्टकान् ।
अर्कपुष्प शाल्मलक दूर्वाङ्कुर सुकोमलम् ॥२३
कुशञ्जरिका दर्भा बन्धूककमले तथा ।
मालूरपत्र पुष्प च त्रिसन्ध्यारक्तपणके ॥२४
सुमनासि प्रियाण्येतान्यम्बिकयाश्च भैरव ।
बन्धूक वकुल माध्य विल्वपत्राणि सन्ध्यकम् ॥२५
उत्तम सबपुष्पेषु द्रव्य पायसमोदकौ ।
माल्य बन्धूकपुष्पस्य शिवार्यं वकुलम्य वा ॥२६
करवीरस्य माध्यस्य सहस्राणां ददाति य ।
स कामान् प्राप्य चाभीष्टान् मम लोके प्रमोदते ॥२७
चन्दन शीतल चैव कालीयकसमन्वितम् ।
अनुलेपनमुख्य तु देव्यै दद्यान् प्रयत्नतः ॥२८

लाल वस्त्र का कौशेय वस्त्र अर्थात् रेशमी वस्त्र समर्पित करे
और नीला वस्त्र कभी भी नहीं देव । देवी के परम प्रिय पुष्प
देव । जैसे वकुल पुष्प और केशर देव । माध्य—कल्लार—
वज्र— करवीर—कुटकुव—आक के पुष्प—शाल्मलक—सुकोमल
दूर्वा के अकुर कुश भञ्जरिका—दर्भा—बन्धूक—कमल—मालूर
पत्र और पुष्प—त्रिसन्ध्या—रक्त पणक हे भैरव ! अम्बिका देवी
के ये पुष्प परम प्रिय होते हैं । बन्धूक—वकुल—माध्य—विल्व पत्र
और सन्ध्यक ॥ सभी पुष्पा में उत्तम हैं और पायस तथा मोदक द्रव्य
हैं । बन्धूक के पुष्पा की अथवा वकुल के पुष्पा की माला—करवीर

और माध्य पुष्पा की एक महत्स सख्या जो देवी को अर्पित किया करता है । देवी का उच्यन है कि वह अपने अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति करके मेरे लोक में आनन्द प्राप्त किया करता है ॥२२—२७॥ शीतल चन्दन जो कालीयक से समुत्त होके मुख्य अनुलेपन प्रयत्नपूर्वक देवी के लिये देना चाहिए ॥ २८ ॥

कपूर कुङ्कुम कूर्च मृगनाभि मुगन्धिकम् ।
 कालीयक मुगन्धेषु देव्या प्रीतिकर परम् ॥२६
 यक्षधूप प्रतीवाह पिण्डधूप सगोलक ।
 अगुरु सिन्धुवारश्च घृषा प्रीतिकरा मता ॥३०
 अगुरागेषु सिन्दूर देव्या प्रीतिकर परम् ।
 सुगन्धि शालिर्ज चान्न मधुमाससमन्वितम् ॥३१
 अपूप पायस क्षीरमन्न देव्या प्रशस्यते ।
 रत्नोदक मकपूर पिण्डीतकुमारकौ ॥३२
 रोचन पुष्पक देव्या स्नानीय परिकीर्तितम् ।
 घृतप्रदीपो दीपेषु प्रशस्त परिकीर्तित ॥३३
 पुष्पाञ्जलित्रय दद्याद मूलमन्त्रेण शोभनम् ।
 दत्त्वोपचारानखिलान्जघ्ये चैता प्रपूजयेत् ॥३४
 कामेश्वरी गुप्तदुर्गा विन्ध्यकन्दरवासिनीम् ।
 कोटेश्वरी दीर्घिकाद्या प्रकटी भुवनेश्वरीम् ॥३५

कपूर—कुङ्कुम—कूर्च—मृगनाभि अर्थात् वस्तूरी—मुगन्धिक
 कालीयक म मुगन्धों में देवी को परम प्रीति के करने वाले होते हैं ।
 ॥ २६ ॥ यक्षधूप—प्रतीवाह—पिण्डधूप—सगोलक—अगुरु—और सिन्धु-
 वार में घष देवी की प्रीति करने वाले माने गये हैं । ३० । अगुराग
 जितने भी हैं उनमें देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला सिन्दूर है ।
 मधु और मास से संयुक्त मुगन्धित शाली से समुत्पन्न अन्न—अपूप—
 पायस—क्षीर ये पदार्थ देवी के लिये प्रशस्त हुआ करते हैं । कपूर के

सहिन रत्नोदक—पिण्डीतक—कुमारक रोचन—पुष्पक—ये ही देवी के स्तानीय बहे गये हैं । दीपो म घृत का दीपक प्रशस्त कहा गया है ॥ ३१—३३ ॥ मूल मन्त्र के द्वारा तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए—यही शोभन है । गव उपचारो को देखर मध्य म इनका पूजन करना चाहिए । ३४। अब उन देविया के नाम बतलाये जाते हैं—कामेश्वरी—गुप्त दुर्गा—विन्द्याचल की कन्दरा म निवास करने वाली—कोटेश्वरी दीपिका नाम वाली—प्रकटी—भुवनेश्वरी । ३५।

आकाशगगा कामाख्या यदा दिक्करवासिनीम् ।

मातङ्गी ललिता दुर्गा भैरवी सिद्धिदा तथा ॥३६

वलप्रमथिनी चण्डी चण्डोग्रा चण्डनायिकाम् ।

उग्रा भीमा शिवा शान्ता जयन्ती कालिका तथा ॥३७

मङ्गला भद्रकाली च शिवा धात्री कपालिनीम् ।

स्वाहा स्वधामपर्णा च पञ्चपुष्करिणी तथा ॥३८

दमनी सर्वभूताना मन प्रोत्साहकारिणीम् ।

दमनी सर्वभूताना चतुर्पष्टि च योगिनी ॥३९

एता सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणागानि पूजयेत् ।

हृच्छिस्तु शिखावर्मनेत्रवाहुपदानि च ॥४०

मूलमन्त्राद्यक्षरंस्तु त्रिभिराद्यङ्गपूजनम् ।

एकैक वदयेत् पञ्चान्मन्त्राण्यगौघपूजने ॥४१

आकाश गङ्गा—कामाख्या—दिक्कदवासिनी मातङ्गी—ललिता दुर्गा—भैरवी—सिद्धिदा—वल प्रमथनी—चण्डी—चण्डोग्रा—चण्डनायिका—उग्रा—भीमा—शिवा—शान्ता—जयन्ती—कालिका—मङ्गला—भद्रकाली—शिवा—धात्री—कपालिनी—स्वाहा—स्वधामपर्णा—पञ्चपुष्करिणी—सब भूतो की दमनी—मन के प्रोत्साह के करने वाली—सर्वभूताना दमनी—ये चौंसठ योगिनी हैं ॥ ३६—३९ ॥ इन सबका

मध्य में भली भाँति अभ्यर्चन करके मन के द्वारा अङ्गों का यजन करना चाहिए । हृदय—शिर—शिखा—वर्म—नेत्र—बाहु—पद—इन अंगों का यजन करे । तीन मूल मन्त्र के अक्षरों से आदि अंग का पूजन करे । पीछे एक-एक का वर्धन करना चाहिए । अंगों के समूह के पूजन में मन्त्रों का प्रयोग करे ॥४०--४१॥

सिद्धसूत्रं च खड्गं च खड्गमन्त्रेण पूजयेत् ।
 ततोऽष्टपत्रमध्ये तु पूजयेदष्टयोगिनी ॥४२॥
 शैलपुत्री चण्डघण्टा स्कन्दमातरमेव च ।
 कालरात्रि च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ॥४३॥
 चण्डिका मथ कूष्माण्डी तथा कात्यायनी शुभाम् ।
 महागौरी चाग्निकोणे नैऋत्योदिषु पूजयेत् ॥४४॥
 महामाया क्षमस्वेति मूलमन्त्रेण चाष्टधा ।
 पूजयेत् पद्ममध्ये तु वलिदानं ततः परम् ॥४५॥
 एव यदा कल्पविधानमानं
 सम्पूज्यते भैरवं कामदेवी ।
 तदा स्वयं मण्डलमेत्य देयं
 गृह्णाति कामं च ददानि सम्यक् ॥४६॥

सिद्ध मन्त्र और खड्ग का मूल मन्त्र के द्वारा यजन करे । इसके अनन्तर अष्ट पत्र के मध्य में आठ योगिनियों का पूजन करना चाहिए ॥ ४२ ॥ पूर्व आदि चारों दिशाओं में शैल पुत्री—खण्ड घण्टा—स्कन्द माता और काल रात्रि का पूजन करना चाहिए ॥४२—४३॥ चण्डिका—कूष्माण्डी—कात्यायनी—शुभा—महागौरी इनका अग्निकोण में और नैऋत्यादिक में पूजन करे ॥४४॥ महामाया—क्षमस्व—इस मूल मन्त्र में आठ प्रकार के पद्म के मध्य में पूजन करे । उसके आगे वलिदान करना चाहिए ॥४५॥ हे भैरव ! इस प्रकार में जब कल्प के विधान के मानों में कामदेवी की पूजा की जाती है उस समय में स्वयं मण्डल

में नमामन करके जो भी कुछ देय होता है उसका ग्रहण किया करती है और कामना को भली भाँति प्रदत्त किया करती है ॥४६॥



॥ महामाया कल्प वर्णन ॥(३)

जप समारभेत् पश्चात् पर्ववद्ध्यानमास्थितः ।
 हृत्तेन स्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।
 चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णादिकं भवेत् ॥१॥
 मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा सितवर्णं हिरण्यम् ।
 महामाया च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः ॥२॥
 आचक्षेत ततः पश्चाद् गुरोर्मेन्त्रम्य चात्मनः ।
 देव्याश्चाप्येक्ता ध्यात्वा सुषुम्नाचर्त्तनां ततः ॥३॥
 सत्त्वस्वरूपमेकं तु पदचक्रं प्रति लम्बयेत् ।
 पदचक्रेऽपि महामाया क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ॥४॥
 लम्बयेन्मूलमात्रेण वादिषोडशचक्रकम् ।
 आदिषोडशचक्रस्यां साधकानन्दकारिणीम् ॥५॥
 चिन्तयन् साधको देवी जपकर्म समारभेत् ।
 ध्रुवोत्परि नाडीनां लयाणां प्रान्त उच्यते ॥६॥

इसके अनन्तर पूर्व की ही भाँति ध्यान में समास्थित होकर जप का समारम्भ करना चाहिए । हाथ में माला का ग्रहण करके मन के द्वारा शिव का चिन्तन करे । गुरुदेव का चिन्तन करके मूर्ध्नि में जैसा भी वर्ण आदि होवे मन्त्र को कण्ठ से ध्यान करके जो चित वर्ण हिरण्य है । और हृदय में महामाया को और आत्मा को गुरुदेव के चरणों में देखे । इसके अनन्तर गुरु के मन्त्र का—आत्मा का और देवी की एकता का ध्यान करना चाहिये । फिर सुषुम्ना के मार्ग के द्वारा

एक तत्त्व स्वरूप को पट् चक्र की ओर सम्बित करे । उस पट्चक्र में भी एक क्षण के लिये प्रयत्न पूर्वक महामाया का ध्यान करे ॥१—४॥
 आदि मौलह चक्रों में स्थित—साधकों के आनन्द को करने वाली देवी का चिन्तन करता हुआ साधक अपने कर्म का आरम्भ कर । मोहो के ऊपर तीनो नाटियों का प्रान्त बहा जाता है ॥५—६॥

तत्प्रान्त त्रिपयस्थान पटकोण चतुरङ्गलम् ।
 रक्त्तवर्णं तु योगजैराज्ञाचक्रमितिरीर्यते ॥७॥
 कण्ठे त्रयाणा नाडीना वेष्टन विद्यते नृणाम् ।
 मुपुम्नेडापिङ्गाना पटकोण तत्पङ्गलम् ॥८॥
 तत् पट्चक्रमिति प्रोक्त शुक्ल कण्ठस्य मध्यगम् ।
 त्रयाणामथ नाडीना हृदये चकता भवेत् ॥९॥
 तत्स्थान षोडशार स्यात् सप्तांगुलप्रमाणतः ।
 तत्प्रयुक्तं तु योगजैरादिषोडशचक्रकम् ॥१०॥
 ध्यानानामथ मन्त्राणां विस्तनस्य जपस्य च ।
 यस्मादाद्य तु हृदये तस्मादादीति गद्यते ॥११॥
 जपादौ पञ्चयेन्माला तोयैरभ्युषय यत्नतः ।
 निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगता च वा ॥१२॥
 ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिम्बरूपिणि ॥१३॥
 चतुर्वर्गंस्त्वयि न्यस्तंस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥१४॥

वह प्रान्त विषय का स्थान है वह पट् कोण और चार अंगुल प्रमाण वाला है । उसका वर्ण रक्त है और योग के ज्ञाताओं के द्वारा वह आज्ञा चक्र—इस नाम से कहा जाता है ॥७॥ मनुष्यों के कण्ठ में तीन नाटियों का वेष्टन विद्यमान हुआ करता है । मुपुम्ना—इडा और पिङ्गयाओं का पट्कोण है वह छे अङ्गुल का होता है ॥८॥ वह कण्ठ में मध्य में स्थित शुक्ल वर्ण वाला पट् चक्र—इस नाम से बताया गया है । मोना नाटियों की हृदय में एका ही जाती है ॥९॥ वही स्थान

सोलह आरो वाला होना है जिसका प्रमाण सात अंगुल है । उसको योग के जानन वालो के द्वारा आदि पोटन-चक्र के नाम से प्रयोग किया गया है ॥१०॥ मन्त्रों के ध्यानो का चिन्तन का और जप का क्योंकि आद्य हृदय होना है इसी कारण से वह आदि इस नाम से कहा जाता है ॥११॥ जप के आदि म यत्न म जल से अभ्युत्थन कर्के माला का पूजन करना चाहिए मण्डन के अन्दर रखकर अथवा सध्य हस्त म रखकर करे ॥१२॥ ओ माल ! ह माल ! आप महामाया है और सब शक्तियों के स्वरूप वाली हैं । धर्मार्थ काम मोक्ष य चारो का वर्ग आप म ही न्यस्त रहता है । इस कारण स मेरी सिद्धि की प्रदान करन वाली हो जाया ॥१३—१४॥

पजयित्वा ततो माला गृह्णीयाद् दक्षिणे करे ।

मध्यमाया मध्यभागे वज्रयित्वाय तर्जनीम् ॥१५॥

अनामिकाकनिष्ठाभ्या युताया नम्रभागत ।

स्थापयित्वा तत्र मालामगुष्ठाग्रेण तदगतम् ॥१६॥

प्रत्येक बीजमादाय जप्यादर्घ्येन भैरव ।

प्रतिवार पठेन्मन्त्रं शनरोष्ठ च चालयेत् ॥१७॥

मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्नहि परस्परम् ।

पूर्वजापप्रयुक्तेन नवागुष्ठेन भैरव ॥१८॥

पूर्वबीजं जपन् यस्तु परबीजं च सस्पृशेत् ।

अगुष्ठेन भवेत् तस्य निष्फलस्तस्य तज्जप ॥१९॥

माला स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ।

देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद् वामेन न स्पृशेत् ॥२०॥

स्फटिकेन्द्राक्षरद्राक्षं पुत्रञ्जीवसमुद्वं ।

मुवर्णमणिभिः सम्यक् प्रवालैरथवाट्जज ॥२१॥

अक्षमाला तु वर्तव्या देवीप्रोतिकरी परा ।

जपेदुपाशु सततं कुशग्रन्थ्याथ पाणिना ॥२२॥

इसके अनन्तर माला का अभ्यर्चन करके अपने दाहिने हाथ में उसका ग्रहण करना चाहिए । मध्यमा अंगुलि के मध्य भाग में उसको रखे और तजनी अंगुलि को वर्जित कर देना चाहिये । जब काल में तजनी अंगुलि को सर्वथा दूर ही रखे । अनामिका और धनिष्ठिका अंगुलियों से युक्त के अग्र भाग से वहाँ पर स्थापित करके अंगुष्ठ के अग्र भाग के द्वारा माला को रखे और उसमें स्थित प्रत्येक बीज (मनिया) को लेकर हे भैरव ! अर्थ से जप करना चाहिए । प्रत्येक बार में मन्त्र को पढ़े और धीरे २ आष्ठ को चालित करे ॥१५—१७॥ माली के बीज (मनिया) पर जप करना चाहिए । ये मनिया परस्पर में स्पर्श नहीं करे --- ऐसा ध्यान रखे । हे भैरव ! पूर्व के जाप में प्रयुक्त अंगुष्ठ से स्पर्श नहीं होना चाहिए ॥१८॥ जो पूर्व बीज का जप करता हुआ पर बीज का सम्पर्श करता है और अंगुष्ठ से उसका स्पर्श होता है उसका वह जप सर्वथा निष्फल हो जाया करता है ॥१९॥ दाहिने हाथ से माला को धारण करके अपने हृदय के समीप में रखे । देवी का चिन्तन करत हुए ही जप करना चाहिये और बाये हाथ से उसका कभी भी स्पर्श नहीं करे ॥२०॥ माता की रचना स्फटिक इन्द्राक्ष-रद्राक्ष पुत्रञ्जीव से समुत्पन्न सुवर्ण और माणसा के तथा प्रवाल के अथवा कमल गहो के द्वारा भली भाँति अक्षा की माला की रचना करे । यह देवी की परम प्रीति की करने वाली हुआ करती है । कुछ ग्रन्थि से हाथ के द्वारा निरन्तर उपाशु जाप करना चाहिए ॥२१--२२॥

मालाबीजेषु सर्वेषु रद्राक्षो मत्प्रियाप्रिय ।

रद्रप्रीतिवरी यस्मात् तेन रद्राक्षरोचनी ॥२३

प्रवालैरथवा कुर्यादिष्टाविंशतिबीजवै ।

पचपचाशना वापि न न्यूनरधिकं वा । २४

रद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षं स्फटिकं स्यात् ।

नान्य मध्ये प्रयोक्तव्य पुत्रञ्जीवादिव च यत् ॥२५

यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालाया जपकर्मणि ।
तस्य काम च मोक्ष च ददानि न प्रियतरा ॥२६॥
मिथ्रीभाव ततो यानि चाण्डालं पापकर्मभि ।
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारगा ॥२७॥
एवो मेरुस्तत्र देय सर्वेभ्य स्थूलसम्भव ।
अथ स्थूला ततस्तस्माद् न्यून न्यूनतर तथा ॥२८॥

माला के समस्त बीजों में रक्षाक्ष मेरी प्रिया का अप्रिय क्योंकि वह
रुद्र देव की प्रीति के करने वाली है इसी में रक्षाक्ष रोचनी है ॥२३॥ अथवा
प्रवातों में माला की रचना करे जिसमें बटुठाईम मनिषा हारें । अथवा
पाँच पाँच मी में करे । अथवा इससे न्यून हो अथवा अधिक होवें ऐसा
नहीं करे ॥२४॥ यदि रक्षाक्षों के द्वारा—इन्द्राक्षों से तथा स्फटिकों में
जाप करे किन्तु मध्यम म पुत्र जीव आदि अन्य का प्रयोग नहीं करना
चाहिए ॥२५॥ यदि जप के कर्म में माला में अन्य का प्रयोग करे
उसको काम और मोक्ष को प्रियद्वारों नहीं दिया करती है ॥२६॥ फिर
पाप कर्मों के करने वाले चाण्डालों में मिथ्री भाव को प्राप्त हो जाया
पड़ती है । वह वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों का पारगामी अन्य जन्म
में होता है ॥२७॥ सब मणियों के स्थूल बना हुआ एक मेरु माला में
देना चाहिए । सबसे आदि में होने वाला मनिषा स्थूल होना चाहिए
और क्रम से न्यून तथा उसमें भी न्यून होना चाहिए ॥२८॥

विन्यसेत् क्रमस्तस्मात् सर्वाङ्गारा हि मा यत ।
ब्रह्मग्रन्थियुत कुर्यात् प्रतिक्रिय यथाम्बितम् ॥२९॥
अथवा ग्रन्थिरहित दृढरज्जुगमन्वितम् ।
द्विरावृत्त्याथ मध्येन चार्धवृत्त्यान्वितम् ॥३०॥
ग्रन्थि प्रदक्षिणावर्तनं म ब्रह्मग्रन्थिमज्जक ।
आत्मना योजयेन्माना नामन्त्रो योजनेधर ॥३१॥

इसके अनन्तर माला का अभ्यर्चन करने अपने दाहिने हाथ में उसका ग्रहण करना चाहिए । मध्यमा अंगुलि के मध्य भाग में उसको रखे और तर्जनी अंगुलि को वर्जित कर देना चाहिये । जब काल में तर्जनी अंगुलि को सबधा दूर ही रखे । अनामिका और वनिष्ठिका अंगुलियों से युक्त के अग्र भाग से वहाँ पर स्थापित करके अंगुष्ठ के अग्र भाग के द्वारा माला को रखे और उसमें स्थित प्रत्येक बीज (मनिया) को लेकर हे धीरे । अर्घ से जप करना चाहिए । प्रत्येक बार में मान को पढ़े और धीरे २ ओष्ठ को चासित करे ॥१५—१७॥ माली के बीज (मनिया) पर जप करना चाहिए । ये मनिया परस्पर में स्पर्श नहीं करे—ऐसा ध्यान रखे । हे धीरे । पूर्व के जाप में प्रयुक्त अंगुष्ठ से स्पर्श नहीं होना चाहिए ॥१८॥ जो पूर्व बीज का जप करता हुआ पर बीज का मस्पर्श करता है और अंगुष्ठ में उसका स्पर्श होता है उसका वह जप सबधा निष्फल हो जाया करता है ॥१६॥ दाहिने हाथ से माला का धारण करने अपने हृदय के समीप में रखे । देवी का चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिये और यदि हाथ में उसका बन्धो भी स्पर्श नहीं कर ॥२०॥ माना की रचना स्वटिक द्वादश-द्वादश-पुत्रञ्जीव से समुत्पन्न सुवर्ण और मानया के तथा प्रवाल के अवयव समस्त गहने के द्वारा भली भँति अक्षा की माला की रचना करे । यह देवी की परम प्रीति की वरन वाली हुआ करती है । कृणु प्रिय स हाथ व द्वारा निरन्तर उपाशु जाप करना चाहिए ॥२१--२२॥

मालावीजेषु सर्वेषु रद्राक्षो मतिप्रियाप्रिय ।

रद्रप्रीतिकरो यस्मात् तेन रद्राक्षरोचनी ॥२३

प्रवालैर्गन्धवा बुर्यादिष्टाविंशतियोजवै ।

पञ्चपचाशता वापि न न्यूनरधिवञ्च वा । २४

रद्राक्षयंदि जप्येन द्वादशै स्फटिकैसाया ।

नान्य मध्यं प्रयोक्तव्यं पुत्रञ्जीवादिव च यत् ॥२५

यद्यन्यत् तु प्रयुज्येन मालाया जपकर्मणि ।

तस्य काम च मोक्ष च दशानि न प्रियतर ॥२६॥

मिथीभाव ततो यानि चाण्डालं पापकर्मणि ।

जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारग ॥२७॥

एको मेरुस्तत्र देय सर्वेभ्य न्यूलसम्भव ।

अथ न्यूल ततस्तस्माद् न्यून न्यूनतर तथा ॥२८॥

माना के समस्त बीजा म रक्षा मेरी प्रिया का अप्रिय क्योंकि वह
रद्र देव की प्रीति के करन वाली है इसी म रक्षा रोचनी है ॥२३॥ जयवा
प्रवाता मे माना की रचना करे निमम अर्थाईम मनिया हावे । अथवा
पाँच पाँच भी मे करे । अथवा इमने न्यून हो अथवा अधिक होवे मैना
नहीं करे ॥२४॥ यदि रक्षाओं के द्वारा--इन्द्राओं मे सदा प्रष्टिका म
जाप करे किन्तु मध्य म पुत्र जीव आदि अग्न का प्रपात नहीं करना
चाहिए ॥२५॥ यदि जप के कर्म म माला में अग्न का प्रयोग करे
उमको काम और मोक्ष को प्रियकरो नहीं दिया करती है ॥२६॥ फिर
पाप कर्मों के करन वाले चाण्डालों मे मिथी भाव ओप्राप्त हो जाया
करती है । वह वेदा और वदों के अङ्ग भास्त्रों का पागामी अग्न जन्म
म होता है ॥२७॥ सब मनियों के स्यून बना हुआ एक मेरु माना म
देना चाहिए । सबसे आदि म हान वाला मनिया स्यून होना चाहिए
और क्रम स न्यून तथा उमम भी न्यून होना चाहिए ॥२८॥

विन्यसेन् क्रमस्तस्मात् नर्पानारा हि मा यत ।

ब्रह्मग्रन्थियुत कुर्यान् प्रनिबीज यथास्थितम् ॥२९॥

अथवा ग्रन्थिरहित इडरज्जुममन्वितम् ।

द्विरावृत्याय मध्येन चाघंवृयान्नदेशत ॥३०॥

ग्रन्थि प्रदक्षिणावर्त स ब्रह्मग्रन्थिमज्जक ।

आत्मना योजयेन्माला नामन्त्रो योजनेतर ॥३१॥

दृढ सूत्र नियुञ्जीत जपे ऋट्यति नो यथा ।

यथा हस्तान्न च्यवेत जपत. सक् तमाचरेत् ॥३२॥

हस्तच्युताया विघ्न स्याच्छिन्नाया मरण भवेत् ।

एव य कुरुते मालां जप च जपकोविद ॥३३॥

म प्राप्नोतीप्सित काम हीने स्यात् तु विपर्यय ।

अन्यथापि जपेन्माला जप्य देवमनोहरम् ॥३४॥

तादृश साधक कुर्यान्नान्यथा तु कदाचन ।

यथाशक्ति जप कुर्यात् सद्यर्यव प्रयत्नत ॥३५॥

कम से विन्यास करे इसमें वह सर्प के आकार वाली हो जावे ।

प्रत्येक बीज अथवा मनिया की ग्रह ग्रन्थि से युक्त करे और यथा स्थित रखे ॥३६॥ अथवा ग्रन्थ से रहित रखे और दृढ डारे से समन्वित बनावे । मध्य से दो आवृत्तियों के द्वारा और अन्य देश से अर्ध वृत्ति से करे ॥३७॥ प्रदक्षिणा वर्त्त ग्रन्थि होवे । वह ग्रह ग्रन्थि की मला

याना हुआ करता है । आत्मा से माला को योजित करना चाहिए । मनुष्य को बिना मन्त्र के कभी योजित नहीं करना चाहिए ॥३८॥ सूत

मजबूत ही लगावे जिसमें जप करने में धुटित न हो जावे । हाथ से जिस तरह वह गिर न जावे अर्थात् छूट न जावे जाप करने में माला को उसी भाँति रखना चाहिए ॥३९॥ जप के करने के समय में माला के हाथ

में गिर जाने या छूट जाने पर महान् विघ्न हुआ करता है और उसके टूट जाने पर मो मरण ही हो जाता है । इस प्रकार से जो जप करने का पण्डित जाप किया करता है ॥४०॥ वह जाप का अपनी अभीष्ट

कामना की प्राप्ति किया करता है और हीन होने पर दगडा उलटा ही होता है । देव का मन हरण करने वाला जप अन्यत्र भी माला या जप

करे ॥४१॥ रिंगा ही माघना करने वाला करे अन्यथा कभी भी नहीं करना चाहिए । अपनी शक्ति के ही अनुसार जप करे और प्रहर के

माप गदगा से ही जप करना चाहिए ॥४२॥

असख्यात च यज्जप्त तस्य तन्निष्फल भवेत् ।
 जप्त्वा माला शिरोदेशे प्राणुस्थानेऽथ वा न्यसेत् ॥३६॥
 स्तुतिपाठ तत कुर्यादिष्ट काम निवेद्य च ।
 स्तुतिश्चापि महामन्त्र साधन सर्वकर्मणाम् ॥३७॥
 वक्ष्ये युवा महाभागो सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
 सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥३८॥
 शरण्ये अथर्वक गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।
 सप्तधावर्तन कृत्वा स्तुतिमेना च साधक ॥३९॥
 पञ्चप्रणामान् कृत्वा ए ह्रीं श्रीमितिमन्त्रकं ।
 अन्येषां पुरतश्चैव अधिक वा त्रयेच्छया ॥४०॥
 योनिमुद्रा तत पश्चाद दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।
 द्वौ पाणी प्रसूतीकृत्य कृत्वा चोत्तानमञ्जलिम् ॥४१॥
 अगुष्ठाग्रद्वय न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वयास्तत ।
 अनामिकाया वामस्य तत्कनिष्ठा पुरो न्यसेत् ॥४२॥

इदानीं सख्या स चा भी जप किया जाता है उसका वह किया हुआ जप निष्फल ही होता है । माला स जप करके फिर उस माला का शिरोदेश म अर्पान् मस्तक म अथवा प्राणु स्थान म विन्यस्त करना चाहिए ॥३६॥ इसके अनन्तर स्तुति का पाठ कर और जो भी कामना हो उसका निवेदन करे । स्तुति भी एक महा मन्त्र की ही भांति है जो कि समस्त कर्मों का साधन होता है ॥३७॥ ह महाभागो ! आप दोनों को मैं बतलाऊंगा जो कि सब सिद्धियों का प्रदायक हीना है । समस्त मङ्गला की मङ्गल करने वाली या मङ्गल स्वरूपा है । ह शिवे ! आप सभी अर्थों की साधिका हैं । हे शरण्ये ! अर्थात् शरणागति में आ जाने वाले की रक्षा करने वाली । ह जामवे ! हे गौरि ! आपकी सेवा में नमस्कार है । सात बार आवृत्ति करके साग्रक इस स्तुति को कर । 'ॐ ह्रीं श्रीम्' इस मन्त्र के द्वारा पाँच प्रणाम करे । अ या

अन्यो के आगे अधिक बार भी अपनी इच्छा के अनुसार कर । इसके पीछे योनि मुद्रा को दिखा कर विसर्जन करना चाहिए । दोनों हाथों को प्रसृत करके अर्थात् फैलाकर और उत्तान अञ्जलिकरक दोनों अंगुष्ठों के अग्रभाग को दोनों कनिष्ठिकाओं के अग्रभाग को दोनों कनिष्ठिकाओं के अग्रभाग को वाम हाथ की अनामिका में उसकी व नष्टता का न्यास आगे करे ॥३८—४२॥

दक्षिणस्थानामिकाया कनिष्ठा दक्षिणस्य च ।
 अनामिकाया पृष्ठे तु मध्यमे द्वे निवेशयेत् ॥४३॥
 द्वे तर्जन्यो कनिष्ठान्ने तदग्रेणैव योजयेत् ।
 योनिमुद्रा समाप्यात्ता देव्या प्रीतिकरी मता ॥४४॥
 शिवार दशयेत् ता तु मूलमन्त्रेण साधक ।
 ता मुद्रा शिरसि न्यस्य मण्डल विन्यसेत् ततः ॥४५॥
 ऐशान्यामग्रहस्तेन द्वारपद्मविवर्जितम् ।
 तत्र नत्वा रक्तचण्डा ह्री श्री मन्त्रेण साधक ॥४६॥
 रक्तचण्डाय नम इति निर्मात्य तत्र निक्षिपेत् ।
 उदके तरुमूले वा विर्मात्य तत्र सत्ययेत् ॥४७॥
 एव त पूजयेद् देवी निधानेन शिवा नर ।
 सोऽचिरेण लभेत्कामान् सर्वानेव मनोगतान् ॥४८॥
 अर्धलक्षजप जप्त्वा प्रथम चैव साधक ।
 पुरश्चरेद् विशेषेण नानानवेद्यवेदनै ॥४९॥

बाहिने हाथ की अनामिका में दक्षिण कर कनिष्ठिका को और अनामिका के पृष्ठ भाग में दोनों मध्यमाओं का निवेश करना चाहिए ॥४३॥ दोनों तर्जनियों को कनिष्ठा के अग्र भाग में उसके अग्रभाग से ही योजित करना चाहिये । यह योनि मुद्रा कही गयी है जो कि देवी की प्रीति के करने वाली मानी गयी है ॥४४॥ साधक को तीन बार उस मुद्रा को दिखाना चाहिये और मूल मन्त्र को पढ़कर ही दिखावे । उस मुद्रा का

शिर मे न्यास करके फिर मण्डल मे विन्यास करना चाहिए ॥४५॥
 ऐशानी दिशा में अ० हस्त से जो द्वार पद्म मे निवर्जित होवे । वहाँ पर
 साधक को 'ह्रीं श्रीं' इस मन्त्र से रक्त चंडा को नमस्कार करना चाहिए ।
 ॥४६॥ "रक्त चण्डा ये नमः" इस मन्त्र से वहाँ पर निर्मात्य का क्षेपण
 करे । जल मे अथवा किसी वृक्ष के मूल में निर्मात्य का भली भाँति
 स्थापन करना चाहिए ॥४७॥ इस रीति से विद्यान के साथ जो मनुष्य
 शिवा देवी का अभ्यर्चन किया करता है वह अविलम्ब ही अपनी काम-
 नाओं की प्राप्ति कर लिया करता है जो भी कुछ सब उसके मन मे
 विद्यमान होवें ॥४८॥ सबसे प्रथम साधक आधा साख जप करके विशेष
 रूप से पुण्यकरण करे जिसमे अनेक प्रकार के नैवेद्य आदि होवें ॥४९॥

कुण्ड मण्डलवत् कृत्वा चाष्टम्यां समुपोषितः ।
 नवम्या शुक्लपक्षस्य रजोभिः पञ्चभिर्नरः ॥५०॥
 पूर्ववन्मण्डल कृत्वा गुरुपितृश्च सन्निधौ ।
 अनेनैव विद्यानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ॥५१॥
 सहितैर्विल्वपत्रैश्च अष्टोत्तरशतत्रयम् ।
 तिलहोम चरेत् तस्या सहस्रत्रितयं जपेत् ॥५२॥
 नैवेद्यं गन्धपुष्पे च वस्त्रं दद्याच्च यत्प्रियम् ।
 पूर्वोक्तं चान्यदप्यस्यै प्रदद्यात् पायस तथा ॥५३॥
 पूजावसाने देय स्यान् तज्जातीय वलित्रयम् ।
 सिन्दूरं स्वर्णरत्नानि यदयन् स्त्रीणा विभूषणम् ॥५४॥
 निवेदयेद् यथाशक्त्या पुष्पमाल्य च भूरिशः ।
 महाशक्तुं सशाल्यन्नं गव्यव्यञ्जनसयुतम् ॥५५॥
 देव्यं नवम्या सम्पूर्णं वलिं दद्याद् धृतादिभिः ।
 दक्षिणां गुरवे दद्यात् सुवर्णं वा तथा तिलम् ॥५६॥

एक कुण्ड की मण्डल की भाँति ही रचना करे और अष्टमी तिथि
 मे उपवास करना चाहिए । नवमी तिथि मे जो कि शुक्ल पक्ष की होवे

मनुष्य पाँच रजो के द्वारा गुरु और पिता की सन्निधि में पूर्व की ही मडल की रचना करे । इसी विधान से चण्डिका देवी का यजन करना चाहिए । तीन सौ आठ वेन पत्रों के सहित तिलो से उसमें होम का समाचरण करे और तीन सहस्र जप करे ॥५०-५२॥ नैवेद्य-पुष्प-गन्ध-वस्त्र अर्पित करे जो भी उनको प्रिय हों । पूर्व में वज्रित तथा अन्य भी पायस आदि इसको समर्पित करे ॥५३॥ पूजा के अन्त में उसके जातीय तीन बलि देनी चाहिए । सिन्दूर स्वर्ण-रत्न और जो-जो स्त्रियों के भूषण हों वे अपनी शक्ति के अनुसार निवेदन करे और पुष्प तथा मालायें अधिक निवेदित करना चाहिये । महा शक्तु शाली के अन्न के सहित और गाय के अङ्गुलि से समन्वित धूनादि के द्वारा नवमी तिथि में देवी के लिये सम्पूर्ण बलि देनी चाहिए । गुरुदेव को दक्षिणा देवे उसमें स्वर्ण-गौ और तिल देवे ॥५४-५६॥

अभिज्ञप्तमपुत्रं च सावद्यं कितवं तथा ।

क्रियाहोममकल्पज्ञं वामनं गुरुनिन्दकम् ॥५७॥

सदा मत्सरसयुक्तं गुरु मन्त्रेषु वज्रयेत् ।

गुरुर्मन्त्रस्य मूला स्यान्मूलशुद्धौ तदुद्गतम् ॥५८॥

सफटा जायते यस्मान्मन्त्र यत्नात्परीक्षयेत् ।

शाठ्यात् क्रोधात् मोहाद्वा नासन्मत्या गुरोर्मुखात् ॥५९॥

कल्पेषु दृष्ट्वा वा मन्त्रं गृह्णीयान्छद्मनाऽथ वा ।

मन्त्रस्तेषां पापेन तामिस्रे नरके नर ॥६०॥

मन्वन्तरथ स्थित्वा पापयोनिषु जायते ।

शटे क्रूरे च मूर्खे च छद्मकारिण्यभक्तिके ॥६१॥

मन्त्रं न दूषिते दद्यात् सुवीजं विपिने तथा ।

लक्ष्णेण साधयेत् कामं पुरश्चरणपूर्वकम् ॥६२॥

पापक्षयो भवेद् यस्मात् पुरश्चरणकर्मणा ।

तेशद्वयेन मन्त्रस्य जपेन नरसत्तमो ॥६३॥

अभिशाप प्राप्त किये हुए—पुत्र रहित—अवस्था में युवन-वितन-क्रिया से हीन—अकल्पज्ञ—वामन (वीना)—गुरुनिन्दक—सदा मन्सरता में मग्न—ऐसे गुरु का मन्त्रों में वज्रित कर देना चाहिए । गुरु ही मन्त्र का मूल है और मूल के शुद्ध होने पर ही उससे जो भी उद्भूत है वह सफल होता है । इसी कारण से मन्त्र की यत्न पूर्वक परीक्षा करनी चाहिए । शठता से—क्रोध से—मोह से—असन्मति से—गुरु के मुख से अथवा कल्पों में मन्त्र को देखकर अथवा छल से मन्त्र का ग्रहण करे वह मनुष्य मन्त्र की चोरी के पाप से तामिस्र नामक नरक में जाया करता है ॥५७—६०॥ तीन मन्वन्तर तक वह नरक में रहकर फिर पाप योनियों में समुत्पन्न हुआ करता है । शठ—क्रूर—भूख—छद्म (छल) करने वाले और भक्ति से हीन में तथा दोषों से युक्त पुरुष को कभी भी मन्त्र नहीं देना चाहिए जैसे सुन्दर बीज को जङ्गल में गाल दिया जाता है वैसे ही उपर्युक्त मनुष्यों को मन्त्र देना भी निष्फल ही होना है । एक लाख में पुरश्चरण पूर्वक कामना की साधना करनी चाहिए ॥६१—६२॥ क्योंकि पुरश्चरण के कर्म के द्वारा पापों का क्षय हुआ करता है । हे श्रेष्ठ नरों ! दो लाख मन्त्र जप के द्वारा करे ॥६३॥

त्रिसन्ध्यासु प्रतिदिनं वैजसंघातकेन च ।

कविर्वागीभी पण्डिश्च यशस्वी च प्रजायते ॥६४॥

साधकः साधकश्रेष्ठ पूजास्था न ततः शृणु ।

यत्र यत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते च यः ॥६५॥

नभ्यादस्ते स्वयं देवी पत्र पुष्पं फलं जलम् ।

शिला प्रशस्ता पूजायां स्यण्डिल निर्जन तथा ॥६६॥

जपश्चोपाशु सर्वेषामुत्तमः परिकीर्तितः ।

अशुचिर्न महामाया पूजयेत् तु कदाचन ॥६७॥

अवश्य तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो नरः ।

दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणचन विघ्नते ॥६८
 सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्तरक व्रजेत् ।
 जानूध्वं क्षतजे जाते नित्यं कर्म न चाचरेत् ॥६९
 नैमित्तिकं च तदघ्नं स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ।
 सूतके च समुत्पन्ने क्षुरकर्मणि मयुने ॥७०
 धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्मणि सत्यजेत् ।
 द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च न वै भुक्त्वा च किञ्चन ॥७१
 कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ।
 पत्र पुष्पं च ताम्बूला भेषजत्वेन कल्पितम् ॥७२

प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में और बीज सघात के द्वारा करने से साधक मनुष्य कवि--वाग्मी--पण्डित--और यशस्वी हो जाया करता है ॥६॥ हे साधको मे श्रेष्ठ । इसके उपरांत पूजा के स्थान का श्रवण करो । जहाँ--जहाँ पर भी निर्जन मे जो मनुष्य पूजा किया करता है । उसको देवी स्वयं ही पत्र--पुष्प और कल का तथा जल का आदान किया करती है । पूजा मे शिला प्रशस्त होती है तथा स्पण्डिल और निर्जन होना चाहिए ॥६५--६६॥ उपांशु जप सभी जपो मे उत्तम कहा गया है । अशुचि की दशा मे कभी भी महा-माया का पूजन नहीं करना चाहिए । ६७॥ जो अत्यन्त भक्ति से मुक्त नर हो उसे मन्त्र का स्मरण अवश्य ही करना चाहिये । दांतो मे रक्त किसी भी कारण से समुत्पन्न हो जाने पर स्मरण भी नहीं कहा जाता है ॥६८॥ मन्त्रो के स्मरण से मनुष्य नरक मे गमन किया करता है । जानु के ऊर्ध्व भाग मे क्षतज उत्पन्न हो जाने पर नित्य कर्म का भी समाचरण नहीं करना चाहिये ॥६९॥ उसके नीचे के भाग मे यदि रक्त का स्नान हो जावे तो नैमित्तिक कर्म न करे । सूतक मे समुत्पन्न होने पर--क्षुर कर्म मे--मयुन मे--धूमोद्गार में--वान्ति हो जाने पर नित्य कर्मों का त्याग कर देना चाहिए । द्रव्य के मुक्त होने

पर—अजीर्ण में और कुछ भी न खाकर मनुष्य मृतक में तथा मृतक में नित्य नमं करे । पत्र—गुप्प—फल और जन—ताम्बूल भोजन के ही रूप में माना गया है ॥७०—७२॥

कणादिपिप्पत्यन्तं च फलं भुक्त्वा न चाचरेत् ।

जलस्यापि नरथेष्ठ भोजनाद् भेषजाहते ॥७३

नित्यक्रिया निवर्तते सह नैमित्तिकः सदा ।

जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम् ॥७४

कामाद्वस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत् ।

विशेषतः शिवापूजां प्रमीतपितृको नरः ॥७५

यावद् वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ।

महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् ॥७६

आत्विज्यं ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धं देवयज्ञं च यत् ।

गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना ॥७७

न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरव ।

आसन चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्नतु ॥७८

कण में आदि लेकर पिप्पती के अन्त पर्यन्त हे नर थेष्ठ ! भेषज के बिना जल के भी भोजन से और फलक खाकर नहीं समाचरण करे । ॥७३॥ सदा नैमित्तिक कर्मों के साथ नित्य क्रिया को निवर्तित करे । जलो का—गूढ पाद—कृमि—मण्ड के पदादिक को काम से हाथ के द्वारा संस्पर्श करके नित्य कर्मों का त्याग कर देना चाहिए । विशेष कर के प्रमीत पितृक मनुष्य को शिवा की पूजा का त्याग कर देना चाहिए । ॥७४—७५॥ जब तक एक वर्ष हो उसके अन्त तक मन से भी आचरण न करे । महा गुरु के निपात हो जाने पर कुछ भी काम्य कर्म का समाचरण नहीं करना चाहिए ॥७६॥ आत्विज्य—ब्रह्म यज्ञ—श्राद्ध—देव यज्ञ गुरु का और विप्र का आशेष करके और हाथ से प्रहृत करके हे भैरव ! रेत के पात हो जाने पर नित्य कर्मों का नहीं करना

चाहिए । आसन और अर्घ्य पात्र को भग्न हो जाने पर आसादित नहीं करना चाहिए ॥७७—७८॥

ऊपर कृमिसंयुक्ते स्थाने मृष्टेऽपि नार्चयेत् ।
 नीचैरासनमासाद्य शुचिं प्रयतमानसः ॥७६
 अर्चयेच्चण्डिका देवी देवमन्य च भैरव ।
 दिग्विभागे तु कौबेरीदिक्छिवा प्रीतिदायिनी ॥७७
 तस्मात् सन्मुख आसीनः पूजयेच्चण्डिका सदा ।
 पुष्प च कृमिसमिथ विशीर्णं भग्नमृद्गते ॥७८
 सकेश भूपिकोद्धूत यत्नेन परिवर्जयेत् ।
 याचित परकीय च तथा पर्युषित च यत् ।
 अन्त्यस्पृष्टं पदा स्पृष्टं यत्नेन परिवर्जयेत् ॥७९
 इदं शिवायाः परम मनोहरं
 करोति योजनेन तदीयपूजनम् ।
 स चाच्छितार्थं समवाप्य चण्डिका-
 गृहं प्रयाता नचिरेण भैरव ॥८०॥

ऊपर में कृमियों से संयुक्त होने पर उसको भ्रष्ट करके भी वहाँ पर अर्चन नहीं करना चाहिए । नीचे स्थान पर आसन को समासाहित करके शुचि और प्रयत मान वाला होकर ही हे भैरव ! चण्डिका देवी का तथा अन्य देव का अर्चन करना चाहिए । दिशाओं के विभाग में कौबेरी दिशा शिवा की प्रीति के देने वाली हुआ करती है ॥ ७६—७७ ॥ इस कारण से उस देवी के सम्मुख में ही स्थित होकर सदा ही चण्डिका का अभ्यर्चन करना चाहिए । पुष्प भी ऐसा होना चाहिए जो कृमियों से संमिश्रित न होवे—विशीर्ण, भग्न और मिट्टी में पड़ा हुआ नहीं होवे । जो पुष्प चूहों से उद्धूत हो और केशों से युक्त हो उसका परिवर्जन यत्न पूर्वक कर देना चाहिए । पाचना किया हुआ—दूसरे का तथा पर्युषित (बासी)—अन्त्य मृष्ट—पैर से स्पर्श किया हुआ हो ऐसे

पुष्प को वर्जित कर देना चाहिए । अर्थात् पूजा के कर्म में कभी ग्रहण नहीं करे ॥८१—८२॥ यह शिवा का परमाधिक मनोहर विधान है । हमको जो भी साधक उसके पूजन में किया करता है वह अपना अभीष्ट प्राप्त करके हे भैरव ! शीघ्र ही चण्डिका देवी के गृह में प्रयाण करने वाला होता है ॥८३॥



॥ महामाया मंत्र का कवच ॥

अस्य मन्त्रस्य कवचं शृणु वेतालभैरव ।
 वंष्णवोन्नतसंज्ञस्य वंष्णव्याश्च विशेषत ॥१॥
 तत्र मन्त्राक्षरं तु वासुदेवम्बन्धुपृक् ।
 वर्णो द्वितीयो ब्रह्मं व तृतीयश्चन्द्रशेखरः ॥२॥
 चतुर्थो गजवक्त्रश्च पञ्चमस्नु दिवाकरः ।
 शक्ति. स्वयं पकारश्च महामाया जगन्मयी ॥३॥
 यकारस्तु महालक्ष्मीः शेषवर्णः सगन्वती ।
 योगिनीपूर्ववर्णस्य शीलपुत्री प्रकीर्तिता ॥४॥
 द्वितीयस्य तु वर्णस्य चण्डिका योगिनी मता ।
 चन्द्रघण्टा तृतीयस्य कुम्भाण्डी तत् परस्य च ॥५॥
 स्कन्दमाता तकारस्य पश्य कात्यायनी स्वयम् ।
 कालरात्रि. सप्तमस्य महादेवोति सस्मिता ॥६॥
 प्रथमं वर्णकवचं योगिनीकवचं तथा ।
 देवीपकवचं पश्चाद् देवीदिक्कवचं तथा ॥७॥

श्री भगवान् ने कहा—हे वेताल भैरव ! अब इस मन्त्र का कवच का धारण करो जो कि वीष्णवी तन्त्र सज्ञा वाले का है और विशेष रूप से वीष्णवी देवी का है ॥१॥ वहाँ पर मन्त्रादि अक्षर वासुदेव के स्वरूप का धारण करने वाला है । दूसरा वर्ण ब्रह्मा ही है—तीसरा

चन्द्र शेखर है ॥२॥ चतुर्थ गजन वक्त्र है—पाँचवाँ दिवाकर है—स्वयं
शक्ति और पवार है जो जगन्मयी महा माया है ॥३॥ यकार महातट्मी
है और जेप वर्ण मरस्वती है । पूर्व वर्ण की योगिनी शैल पुत्री बही
गयी है ॥४॥ द्वितीय वर्ण की योगिनी चण्डिका मानी गयी है । तीसरे
की चन्द्र धष्टा है और चौथे की वृष्माण्डी मानी गयी है । ५॥ तकार
की स्कन्द माता है । देखो कात्यायनी स्वयं है । मत्तम की काल रात्रि
है जो महा देवी—यह मस्थिता है ॥ ६ ॥ प्रथम वर्ण कवच है
तथा योगिनी कवच है । पीछे देवीय कवच है तथा देवी दिक् कवच
है ॥ ७ ॥

ततस्तु पाश्चवंकच द्वितीयान्ताव्ययस्य च ।

कवच तु तत पश्चान् पडवर्ण कवच तथा ॥८॥

अभेद्यकवच चेति सर्वत्राणपरायणम् ।

इमानि कवचान्यष्टौ यो जानाति नरोत्तम ॥९॥

मोऽहमेव महादेवी देवीरूपश्च शक्तिमान् ।

अस्य वैष्णवीतन्त्रकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्द ॥१०॥

कात्यायनी देवता सर्वकामार्थसाधने विनियोग ।

अ पातु पूर्वकाष्ठायामाग्नेय्या पातु क सदा ॥११॥

पातु चो यमकाष्ठायामा दो नश्चत्या च सर्वदा ।

मा पातु तोऽसौ पाश्चात्ये शक्तिर्वायव्यदिग्गता ॥१२॥

य पातु मा चोत्तरस्यामंशान्या यस्तथावतु ।

मूर्ध्नि रक्षतु मा सोऽसौ बाहौ मा दक्षिणे तु क ॥१३॥

मा वामबाहौ च पातु हृदि टो मा सदावतु ।

त पातु कण्ठदे माशौ कट्यौ शक्तिस्तथावतु ॥१४॥

इसके अनन्तर पाश्चं कवच है और द्वितीयान्ता व्यय का कवच
है । इसके पश्चात् पड वर्ण कवच है ॥८॥ अभेद्य कवच है जो सर्वत्राण
परायण है । ये आठ कवच हैं इनकी जो नरो मे उत्तम है जानता है ।

॥६॥ वह मैं ही महादेवी हूँ और शक्तिमान् देवी के रूप वाला है ।
 इस वैष्णवी तन्त्र कवच का नापद ऋषि हैं और अनुष्टुप छन्द है ।
 ॥१०॥ कात्यायनी इसका देवता है । इसका सब कामों के अर्थों के
 साधन में विनियोग होता है । 'अ' पूर्व दिशा में रक्षा करे और 'का'
 सदा आग्नेयी में रक्षा करे ॥११॥ 'य' यम दिशा में रक्षा करे—और
 'द' नैऋति दिशा में सर्वदा मेरी रक्षा करे । पाश्चात्य दिशा में 'त'
 रक्षा करे तथा वायव्य दिशा में शक्ति रक्षा करे ॥१२॥ 'य' मुक्तको
 उत्तर दिशा में रक्षित करे तथा "य" ऐशानी दिशा में रक्षा करे ।
 'त' मेरी मस्तक में रक्षा करे और 'क' मेरी दाहिने बाहु में रक्षा करे ।
 ॥१३॥ 'च' मेरी बाईं बाहु में रक्षा करे और 'ट' सदा मेरे हृदय
 में रक्षा करे । कठ देश में तो रक्षा करे और मेरी करि में शक्ति रक्षा
 करे ॥१४॥

य पातु दक्षिणे पादे पौ मां वामपादे तथा ।
 शैलपुत्री तु पूर्वस्यामाग्नेय्यां पातु चण्डिका ॥१५॥
 चन्द्रघटा पातु याम्यां यमभीतिविवर्धिनी ।
 नैऋत्ये त्वय कूष्माण्डी पातु मा जगता प्रसूः ॥१६॥
 स्कन्दमाता पश्चिमायां मां रक्षतु सदैव हि ।
 कात्यायनी मां वायव्ये पातु लोकेश्वरी सदा ॥१७॥
 कालरात्री तु कौबेर्यां सदा रक्षतु मा स्वयम् ।
 महागौरी तथैशान्या सततं पातु पावनी ॥१८॥
 नेत्रयोर्वासुदेवो मा पातु नित्यं सनातनः ।
 ब्रह्मा मा पातु वदने पद्मयोनिरयोनिजः ॥१९॥
 नासाभागे रक्षतु मां सर्वदा चन्द्रशेखरः ।
 गजवक्त्रः स्तनयुग्मे पातु नित्यं हरात्मजः ॥२०॥
 वामदक्षिणपाण्योर्मां नित्यं पातु दिवाकरः ।
 महामाया स्वयं नाभौ मां पातु परमेश्वरी ॥२१॥

“य” दाहिने पाद में रक्षा करे तथा ‘प’ धाम् पाद में रक्षा करे । शैल पुत्री पूर्व में और चट्टिका आग्नेयी दिशा में मेरी रक्षा करे ॥१५॥ याम्य चन्द्र घटा रक्षा करे जो भय की भीति की विवर्धिनी है । जगतो की जननी कूष्माण्डी मेरे नैऋत्य में रक्षा करे । १६। पश्चिम दिशा में स्कन्द माता मेरी मदरा ही रक्षा करे । वायव्यदिशा में मेरी वात्यायनी रक्षा करे जो सदा लोकेश्वरी है । १७। काल रात्रि कौबेरी दिशामें स्वयं सदा मेरी रक्षा करे । तथा ऐशानी दिशा में निरन्तर पावनी मेरी रक्षा करे । १८। मेरे दोनों नेत्रों को भगवान् वासुदेव रक्षा करें जो नित्य ही सनातन प्रभु हैं । वदन में मेरी ब्रह्मा रक्षा करें जो पद्म योनि और अयोनिज हैं अर्थात् किसी योनि सेस मुत्पन्न नहीं होकर केवल पद्म से ही समुत्पन्न हुए हैं ॥१९॥ मेरे नासिका के भाग में मेरी सर्वदा चन्द्र शेखर प्रभु रक्षा करें । भगवान् शम्भु के पुत्र गज वक्त्र (गणेश) मेरे दोनों स्तनों की नित्य रक्षा करें ॥२०॥ मेरे नाँव और दाहिने हाथों की नित्य ही दिवाकर रक्षा करें । परमेश्वरी माहामाया स्वयं मेरी नाभि में रक्षा करे ॥२१॥

महालक्ष्मीः पातु गृह्ये जानुनोश्च सरस्वती ।
 महामाया पर्वण्ये नित्यं रक्षतु मां शुभा ॥२२॥
 अग्निज्वाला तथाग्नेय्यां पायाग्नित्यं वरासिनी ।
 द्वाणी पातु मां याम्यो नैऋत्या चन्द्रनायिका ॥२३॥
 उग्रचण्डा पश्चिमायां पातु नित्यं महेश्वरी ।
 प्रचण्डा पातु वायव्ये कौबेर्यां घोररूपिणी ॥२४॥
 ईश्वरी च तर्धशान्यां पातु नित्यं सनातनी ।
 ऊर्ध्वे पातु महामाया पात्यघः परमेश्वरी ॥२५॥
 अग्रतः पातु मामुग्रा पृष्ठतो वैष्णवी तथा ।
 प्रह्लाणो दक्षिणे पाश्वर्के नित्यं रक्षतु शोभना ॥२६॥
 माहेश्वरी यामपाश्वर्के नित्यं पायाद् वृषध्वजा ।

कौमारी पवंते पातु वाराही सलिले च माम् ॥२७॥

नारामिही दष्टिभये पातु मा विपिनेषु च ।

ऐन्द्री मा पातु चाकाशे तथा सर्वजले स्थले ॥२८॥

महा लक्ष्मी गुह्य की रक्षा करे—जानुओं की रक्षा सरस्वती करे । शुभा महामाया पूर्व भाग में मेरी नित्य ही रक्षा करे ॥२२॥ धरामिनी अग्नि ज्वाला आग्नेयी दिशा में नित्य ही रक्षा करे । श्रद्धाणी मेरी दाय्य दिशा में रक्षा करे और चण्ड नायिका नैऋत्य में रक्षा करे । ॥२३॥ महेश्वरी उग्र चण्डा पश्चिम में नित्य ही रक्षा करे । वायव्य में प्रचण्डा और कौबेरी दिशा में घोर रूपिणी रक्षा करे ॥२४॥ ऐशानी दिशा में ईश्वरी सनातनी नित्य ही मेरी रक्षा करे । महामाया ऊपर की ओर और नीचे की ओर परमेश्वरी रक्षा करे ॥२५॥ उग्रा मुक्तको आगे की ओर रक्षा करे तथा पृष्ठ भाग में वैष्णवी रक्षा करे । दक्षिण पार्श्व में ब्रह्माणी शोभना नित्य मेरी रक्षा करे । वृषध्वजा माहेश्वरी वाम पार्श्व में नित्य रक्षा करे । पर्वत में कौमारी और जल में वाराही मेरी रक्षा करे ॥२६॥ दाढ़ वालों के भय में नारामिही रक्षा करे जो कि विपिनो में किया करे । आकाश में ऐन्द्री तथा सर्वत्र जल में और स्थल में मेरी रक्षा करे ॥२८॥

सेतुः सर्वांगुली पातु देवादि पानु कर्णयो ।

देवान्तश्चिबुके पातु पार्श्वयो शक्विपञ्चम ॥२९॥

हा पातु मा तथैवोर्वोर्माया रक्षतु जघयो. ।

सर्वेन्द्रियाणि य. पातु रोमकूपेषु सर्वदा ॥३०॥

त्वचि मा वै सदा पातु मा शम्भु पातु सर्वदा ।

नखदन्तकरोष्ठादौ रां मा पातु सदैव हि ॥३१॥

देवादि पातु मा वस्तौ देवान्त स्तनकक्षयो. ।

एतदादी तु य सेतुर्वाह्ये मा पातु देहत ॥३२॥

आज्ञाचक्रे सुषुम्नायाः पट्चक्रे हृदि सन्धिषु ।

आदिषोडशचक्रे च ललाटाकाश एव च ॥३३॥
 वैष्णवी तन्त्रमन्त्रो मा नित्य रक्षतु तिष्ठतु ।
 कणनाडीषु सर्वासु पार्श्ववक्षशिखासु च ॥३४॥
 रुधिरस्नायुमज्जासु मस्तिष्केषु च पर्वसु ।
 द्वितीयाष्टाक्षरो मन्त्र कवच पातु सर्वत ॥३५॥

समस्त अंगुलियों की रक्षा हेतु करे तथा देवादि वर्णों की रक्षा करे । देवान्त चिबुक में रक्षा करे और दोनों पाश्वर्यों में शक्ति पञ्चग रक्षा करे ॥३३॥ उसी भाँति ही मेरे ऊरुओं की रक्षा करे और माया मेरी दोनों जाँघों की रक्षा करे 'य' सर्वदा समस्त इन्द्रियों की और रोमों के कूपों में रक्षा करे ॥३४॥ मेरी त्वचा में मुझको सर्वदा भगवान् शम्भु रक्षा करे । नाभून—दाँत—कर—और ओष्ठ आदि में सदैव ही 'री' मेरी रक्षा करे ॥ ३५ ॥ मेरी वस्ती में देवादि रक्षा करे और स्तनो तथा कर्शों में देवान्त रक्षा करे । 'य' हेतु एतदादि में और देह के बाह्य भाग में मेरी रक्षा करे ॥३६॥ आज्ञा चक्र में—सुषुम्ना में—पट् चक्र में—हृदय में सन्धियों में और आठ षोडश चक्र में तथा ललाटा कारा में वैष्णवी तन्त्र-मन्त्र मेरी निय ही रक्षा करती हुई स्थित रहे । समस्त कानों की नाडियों में और पार्श्व वक्ष शिखाओं में—रुधिर, स्नायु, मज्जाओं में—मस्तिष्कों में और पर्वों में द्वितीयाष्टाक्षर मन्त्र कवच सभी ओर रक्षा करे ॥३५॥३५॥

रेतो वायी नाभिरन्ध्रे पृष्ठसन्धिषु सर्वत ।
 षडक्षरस्तृतीयोऽयं मन्त्रो मा पातु सर्वदा ॥३६॥
 नासारन्ध्रे महामाया कण्ठरन्ध्रे तु वैष्णवी ।
 सर्वसन्धिषु मा पातु दुर्गा दुर्गातिहारिणी ॥३७॥
 श्रोत्रयोर्हृदयैश्च नित्य रक्षतु कालिका ।
 नेत्रवोजत्रय नेत्रे सदा तिष्ठतु रक्षितुम् ॥३८॥
 ॐ ऐ ह्रीं हौं नासिकाया रक्षन्ती चास्तु चण्डिका ।

ॐ ह्रीं ह्रीं मां सदा नारा जिह्वामूले त् तिष्ठतु ॥३६॥
हृदि तिष्ठन् मे सेतुर्ज्ञान रक्षिणमुत्तमम् ।

ॐ क्षीं फट् च महामाया पातु मां सर्वतः मदा ॥४०॥

ॐ धुं स. प्राणान् कौशिकी मा प्राणान् रक्षतु रक्षिका ।

ह्रीं ह्रीं मां भगदयिता देहशून्येषु पातु माम् ॥४१॥

ॐ नमः मदा शैलपुत्री वर्सान् रोगान् प्रमृजयताम् ।

ॐ ह्रीं स. स्फे क्षः षडस्त्राय सिंहव्याघ्रभयाद्रणान् ॥४२॥

शिवदूती पातु नित्यं ह्रीं सर्वास्त्रेषु तिष्ठतु ।

ॐ हां ह्रीं सञ्चण्डघण्टा कर्णच्छिद्रेषु पातु माम् ॥४३॥

रेत (वीर्यं)—वायु में—नाभि के रन्ध्र में—पृष्ठ मण्डियो में

सभी ओर षडक्षर यह तीमरा मन्त्र सर्वदा मेरी रक्षा करे ॥३६॥ नासा

के रन्ध्र में महामाया और कंठ के रन्ध्र में वैष्णवी रक्षा करे तथा

समस्त मण्डियो में दुर्गारिणि हारिणी दुर्गा मेरी रक्षा करे ॥३७॥ श्रोत्रों

में ह्रीं फट् यह चानिका नित्य रक्षा करे । नेत्र में नेत्र त्रय बीज रक्षा

करने के लिये सदा स्थित रहे ॥३८॥ ॐ ऐं ह्रीं ह्रीं नासिका में रक्षा

करती हुई चण्डिका रहे । ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं तारा सदा मेरे जिह्वा मूल में

स्थित रहे ॥३९॥ मेरे हृदय में उत्तम ज्ञान की रक्षा करने के लिये

सेतु स्थित रहे ॐ क्षीं फट् महामाया सभी ओर मेरी रक्षा करे ॥४०॥

ॐ धुं स. प्राणान् कौशिकी मेरे प्राणों की रक्षिका रक्षा करे । ह्रीं ह्रीं

मां भगं की दयिता देह शून्यों में मेरी रक्षा करे । ॥४१॥ ॐ नमः

शैल पुत्री सदा सब रोगों का प्रमार्जन करे ॐ ह्रीं सः स्फे सः अस्त्राय

फट् शिव दूती सिंह—व्याघ्र के भय से और रण से नित्य रक्षा करे

ह्रीं सब असुरों से स्थित रहे । ॐ ह्रीं ह्रीं सः चन्द्र घण्टा कर्णों

के छिद्रों में मेरी रक्षा करे ॥४२—४३॥

ॐ श्रीं सः कमेश्वरी कामानभितिष्ठतु रक्षतु ।

ॐ आं ह्रीं फट् चण्डा रिपून् विघ्नान् विमर्दताम् ॥४४॥

ॐ अं पातु नित्यं वैष्ण शूलात्वी जगदीश्वरी ।

ॐ क ब्रह्माणी पातु चक्रात् च रुद्राणी तु शक्तित ॥४५॥

ॐ ट कौमारी पातु वज्रात् त वाराही तु काण्डत ।

ॐ प नारसिंही मा क्रत्यादेभ्यस्तथास्वत ॥४६॥

शस्त्रास्त्रेभ्य समस्तेभ्यो यन्त्रेभ्योऽनिष्टमन्त्रत ।

चण्डिका मा सदा पातु य स देव्यं नमो नम ।

विश्वामघातकेभ्यो मामेन्द्री रक्षतु मन्मन ॥४७॥

ॐ नमो महामायाय ओ वैष्णव्यं नमो नम ।

रक्ष मा सर्वभूतेभ्य सर्वत्र परमेश्वरि ॥४८॥

आधारे वायुमार्गे हृदि कमलदले चन्द्रवत् स्मेरसूर्ये,

वस्ती वह्नौ समिद्धे विशतु वरदया मन्त्रमष्टाक्षरन्तु ।

यद्ब्रह्मा भूध्न घत्ते हरिरवति गले चन्द्रचूडो हृदिस्व,

त मा पातु प्रधान निखिलमतिशय पद्मभूमिवीजम् ॥४९॥

ॐ श्री स कामेश्वरी कामो मे अभिस्थित होवें और रक्षा करे ।

ॐ आ हूँ षट् प्रचण्डा शत्रुओं को और विघ्नो को निमज्जित करे ॥४४॥

ॐ अ शूल से वैष्णवी जगदीश्वरी नित्य ही रक्षा करे । ॐ व्र ब्रह्माणी

चक्र मे रक्षा करे और रुद्राणी शक्ति से रक्षा करे ॥४५॥ ॐ टं कौमारी

यज्ञ से रक्षा करे और त वाराही काण्ड मे रक्षा करे । ॐ प नारसिंही

क्रत्यादो से और अस्त्र मे मेरी रक्षा करे ॥ ४६ ॥ शस्त्रों से समस्त

अस्त्रों से—मन्त्रों से और अनिष्ट मन्त्र से चण्डिका मेरी रक्षा करे ।

यं स देवी के लिये बारम्बार नमस्कार है । ऐन्द्री विश्वास का घात

करने वालों मे मेरे मन की रक्षा करे ॥ ४७ ॥ ॐ महामाया के लिये

नमस्कार है—ॐ वैष्णवी के लिये बारम्बार नमस्कार है । हे परमेश्वरि!

ममस्त भूतो मे सर्वत्र मेरी रक्षा करो ॥ ४८ ॥ आधार मे—वायु मार्ग

मे—हृदय मे—कमल दल मे—चन्द्र की भाँति स्मेर मूर्ध मे—वस्ती

मे—समिद्ध वह्नि मे वरदा के द्वारा वह आठ अक्षरों वाला मन्त्र प्रवेग

करे । जो ब्रह्मा मस्तन में धारण करते हैं गले मे हरि रक्षा करते हैं—

हृदय में स्थित को चन्द्र बूड रक्षा करते हैं पद्मगर्भाय बीज निखिल
निरनिशय प्रधान त्व मेरी रक्षा करे ॥४६॥

आद्या शेषा स्वरोर्धममयवलवरंस्वरेणापि युक्ते.
सानुस्वाराविसर्गेहरिहरविदित यत्सहस्र च साष्टम् ।
मन्त्राणां सेतुबन्ध निवसति सततं वैष्णवीतन्त्रमन्त्रे
तन्मा पायात्पवित्र परमपरमज भूतलव्योमभागे ॥५०॥
अङ्गान्यष्टौ तथाष्टौ वसव इह तथैवाष्टमूर्तिदलानि
प्रोक्तान्यष्टौ तथाष्टौ मधुमतिरचिता. सिद्धयोऽष्टौ तथैव ।
अष्टावष्टाष्टसख्या जगति रतिकला क्षिप्रकाष्ठागयोगा
मय्यष्टावक्षराणि भरतु न हि गणो यद्घृदो यस्त्वमूपात् ॥५१॥
इयि तत्कवचं प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।
इदं रहस्यं परममिदं सर्वार्थसाधकम् ॥५२॥
यः सृष्ट्वाष्टुयादेतत् कवचं मयवोदितम् ।
स सर्वान्लिभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ॥५३॥
मकृद् यस्तु पठेदेतत् कवचं मयकोदितम् ।
स सर्वयज्ञस्य फलं लभते नाना सशय ॥५४॥
सग्रामेषु जयेच्छत्रु मातङ्गानिव केशरी ।
दहेत् तृणं यथा वह्निस्तथा शत्रुं दहेत् सदा ॥५५॥
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रविशन्ति वं ।
न तस्य जायते व्याधिर्न च दुःखं कदाचन ॥५६॥

आद्य शेष स्वरो के समुदायो से मम पवतवरो से बिना स्वर से
भी युक्ता से—अनुस्वार के सहित बिना विसर्गों वालो से—हरि हर
विदित जा एक सहस्र आठ हैं । वैष्णवी तन्त्र मन्त्रों का सेतुबन्ध निर-
न्तर निवास करना है वही परम पवित्र पर और अपरज भूतल और
व्योम के भाग में मेरी रक्षा करे ॥५०॥ आठ अङ्ग तथा आठ वसुगण
तथा अष्टमूर्ति दल यहां पर बह गये हैं तथा आठ मधुमती रचित तथा

आठ सिद्धियाँ आठ आठ को सकृप जगत् मे रतिवत्ता और क्षिप्रकाङ्क्षा
योग मुझमे आठ अक्षर धारण करे—और इनका जो यह घृद गण है
वह नही करे ॥ ५१ ॥ यह उसका कवच बतला दिया गया है जो कि
धर्म—अर्थ और काम का साधन करने वाला है । यह परम रहस्य है
और सभी अर्थों का साधक है ॥ ५२ ॥ मेरे द्वारा कथित इस कवच को
जो कोई भी एक बार भी ध्वषण कर लेता है वह सभी कामनाओं की
प्राप्ति कर लिया करता है और परलोक मे शिव के स्वरूप का लाभ
किया करता है ॥ ५३ ॥ मेरे द्वारा कथित इस कवच को जो एक बार
भी पढ़ता है वह सभी यज्ञों के फलों का लाभ किया करता है—इसमे
कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५४ ॥ जैसे सिंह हाथियों को परास्त कर देता
है उसी भाँति वह साग्रामो मे शत्रुओं पर विजयी हो जाता है । जैसे
अग्नि तृण को दग्ध कर देता है वैसे ही वह पुरुष सदा ही शत्रु का
दाह कर देता है ॥ ५५ ॥ उसके शरीर न शस्त्र और अस्त्र प्रवेश नही
किया करते हैं । उसको न कभी रोग होता है और न कभी दुःख
ही होता है ॥ ५६ ॥

गुटिकाञ्जनपातालपादलेपरञ्जनम् ।

उच्चाटनाद्यास्ता सर्वा प्रसीदन्ति च सिद्धय ॥ ५७

वायोऽरिच मतिस्तस्य भवेदन्यैरवारिता ।

दीर्घायु कामभोगी च धनवानभिजायते ॥ ५८

अष्टम्या सयतो भूत्वा नवम्या विधिवच्छिवाम् ।

पूजयित्वा विधानेन विचिन्त्य मनसा शिवाम् ॥ ५९

यो न्यसेत् कवचा देहे तस्य पुण्यफलं शृणु ।

जितव्याधिं शतायुश्च रूपवान् गुणवान् सदा ॥ ६०

घनरत्नौघसम्पूर्णो विद्यावान् स च जायते ।

नाग्निर्दहति तत्कायं नाप सक्लेदयन्ति च ॥ ६१

न शोषयति तं वायुः क्रव्यात् तं न हिनस्ति च ।

धर्मार्थकाममोक्षाश्च तस्य नित्यं करे स्थिताः ॥६५॥

अन्धस्य वरदः सोऽर्थनित्यं भवति पण्डितः ।

कवित्वं सत्यवादित्वं सततं तस्य जायते ॥६६॥

वदेच्छलोकसहस्राणि भवेच्छ्रुतिघरस्तथा ।

लिखितं यस्य गेहे तु कवचं भैरव स्थितम् ॥६७॥

न तस्य दुर्गतिः कदापि जायते तस्य दूषणम् ।

ग्रहाश्च सर्वे तुष्यन्ति वशं गच्छन्ति भूमिपाः ॥६८॥

यद्वाज्ये कवचज्ञोऽस्ति जायन्ते तत्र नेत्रयः ।

सेतुर्देवः शक्तिबीजं पञ्चमोहाय ते नमः ॥६९॥

वायुर्बलेन चैतायै द्वितीयाष्टाश्वर त्विदम् ।

सेतुर्देवोऽयं यैष्णव्यं पञ्चसरमिदं स्मृतम् ॥७०॥

चारो प्रकार के भूतो के सबूत सभी उसके वश में हो जाया करते हैं । ओ, मनुष्य नित्य ही भक्ति की भावना से भगवान् हर का बनाया हुआ कवच का पाठ किया करता है ॥६५॥ वह मैं ही महादेव हूँ और मातृका महामाया हूँ । उस पुरुष के धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष उसके कर में ही नित्य स्थित रहा करते हैं ॥६५॥ बहुअर्थों के द्वारा अन्ध के लिये वरदान वाला होता है । तथा बड़ा पण्डित हो जाता है । कविता करने की शक्ति और सत्य भाषण करना उसको निरन्तर हो जाया करता है ॥६६॥ वह सहस्री श्लोको को बोला करता है । और वह श्रुति घर हो जाता है । हे भैरवी जिसके घर में यह कवच लिखा हुआ स्थित रहा करता है ॥६७॥ उसकी कही पर भी दुर्गति नहीं हुआ करती है और उसको कोई भी दोष नहीं लगता है । उस पुरुष के सभी ग्रह सन्तुष्ट हो जाया करते हैं और उसके वश में राजा हो जाते हैं ॥६८॥ जिस राजा के राज्य में इस कवच का जाता रहता है वहाँ पर ईतिया कभी नहीं हुआ करती है । टिण्डी आदि की वृद्धि वाली छँ ईतिया होती है । सेतु देव है—शक्ति बीज है—पञ्चमोह तुम्हारे लिये

नमस्कार है ॥६६॥ वायु बल से इस के लिये वह द्वितीय अष्टाक्षर है
सेतुदेव है वैष्णवी के लिए यह पदक्षर है ऐसा कहा गया है ॥७०॥

एतद् द्वयं तु जिह्वा ग्रेसतत यस्य वर्तते ।

तस्य देवी महामाया काये तिष्ठति वं सदा ॥७१

मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत्सेतुः प्रणवः स्मृतः ।

क्षरत्यनोद्धृतः पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥७२

नमस्कारो महामन्त्रो देव इत्युच्यते सुरैः ।

द्विजातीनामयं मन्त्रः शूद्राणां सर्वकर्मणि ॥७३

अकार चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ।

वेदत्रायात्ममुद्धृत्य प्रणव निर्ममे पुरा ॥७४

स उदात्तो द्विजातीनां राज्ञां स्यादनुदात्तकः ।

प्रचितश्चोर्जानां मनमापि तथा स्मरेत् ॥७५

चतुदंशस्वरो योऽसौ शेष ओकारसज्ञकः ।

स चानुस्वारचन्द्राभ्या शूद्राणां सेतुरुच्यते ॥७६

नि सेतु च यथा तोय क्षणाद्भिन्न प्रसर्पति ।

मन्त्रस्तथैव नि.सेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ॥७७

ये दोनों जिस पुरुष की जिह्वा के अग्रभाग में होते हैं उसके
शरीर में महामाया देवी निश्चय हो सदा स्थित रहा करती हैं ॥७१॥

मन्त्रों का प्रणव सेतु होता है और उसका सेतु प्रणव कहा गया है ।

पूर्व में अनोद्धृत क्षरित होता है और परस्तात् विशीर्ण हो जाया करता
है ॥७२॥ नमस्कार महामन्त्र देव हैं—यह सुरों के द्वारा कहा जाता

है । द्विजातियों का यही मन्त्र है और शूद्रों के सब कर्म में होता है
। ७३ । अकार—उकार और मकार को प्रजापति ने 'तीनों वेदों से

उद्धृत करके पहिले प्रणव का निर्माण किया था । ७४ । वह द्विजा
तियों का उदात्त है और राजाओं का अनुदात्त है । ऊर्जातो का वैश्यो

का प्रचित है । इसका मन से भी स्मरण नहीं करना चाहिए । ७५ ।
जो यह चौदह स्वरों वाला है शेष ओकार सज्ञा वाला है । और वह

अनुस्वार—चन्द्रो से शब्दों का सेतु कहा जाता है । ७६ । जिस तरह से बिना सेतु वाला जल क्षण भर में ही निम्न स्थल में प्रसरित हो जाया करता है ठीक उसी भाँति बिना सेतु वाला मन्त्र यज्वामो का क्षरित हो जाया करता है ॥७७॥

तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातयः ।

पाश्वर्योः सेतुमादाय जपकर्मसमारभेत् ॥७८

शूद्राणामादिसेतुर्वा द्विसेतुर्वा यथेच्छतः ।

द्विसेतवः समाख्याता सर्वदेव द्विजातयः ॥७९

एतत् ते सर्वमाख्यात क्वच न्यम्बकोदितम् ।

अभेद्य क्वच तत् तु क्वचाष्टकमुत्तमम् ॥८०

महामायामन्त्रकल्प क्वच न्य मन्त्रसयुतम् ।

पडक्षरसमायुक्त त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥८१

एतत् त्व नृपशार्दूल नित्यभक्तियुतं पठन् ।

जपन् मन्त्रं च वैष्णव्याः सर्वसिद्धिमवाप्स्यसि ॥८२

इस कारण से सर्वत्र मन्त्रों में द्विजातिगण चार वर्गों वाले होते हैं । दोनों पाश्वों में सेतु का आदान करके जप के कर्म का समारम्भ करे । ७८ । शूद्रों का आदि सेतु अथवा द्विसेतु यथेच्छता से दो सेतु समाख्यात हैं द्विजाति सर्वदा ही हैं । ७९ । ओम् ने कहा—यह आपको मैंने न्यम्बक के द्वारा कहा हुआ क्वच सब कह दिया है । यह क्वच अभेद्य है और क्वचों के अष्टक में उत्तम है । ८० । महामाया मन्त्र कल्प क्वच मन्त्र से सयुत है । यह पडक्षर समायुक्त है और तीनों लोकों में महान् दुर्लभ है । ८१ । हे नृपशार्दूल ! इसको आप नित्य ही भक्ति से युक्त होकर पढ़ते हुए और वैष्णवी के मन्त्र का जप करते हुए सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति कर लेता है ॥८२॥

॥ मन्त्र-साधना के अङ्ग ॥

श्रुत्वेम सगरो राजा सवाद भैरवेण वै ।
 वेतालेनापि भर्गस्य पुनरीर्ध्वमपृच्छत ॥१
 मन्त्र कलेवरगत साङ्ग प्रोक्त त्वया द्विज ।
 अङ्गमन्त्राणि मे देव्या वक्ष्यन्ता भो द्विजोत्तम ॥२
 तथा मन्त्राणि सर्वाणि पूजास्थानानि सर्वश ।
 तथैवोत्तरमन्त्राणि कवचानि पृथक् पृथक् ॥३
 कामाख्यायाश्च माहात्म्य सरहस्य समन्त्रकम् ।
 यथा शशस भगवान् महादेव उमापति ॥४
 वेतालभैरवाभ्या तत् समाचक्ष्व सविस्तरात् ।
 शृण्वतो न हि मे तृप्तिर्जायते महददभुतम् ॥५
 भवता वक्ष्यमान हि पर कौतूहल मम ।
 शृणु त्व राजशार्दूल यत्पुत्राभ्यामुमापति ॥६
 उवाच महदाख्यान तन्मे निगदतोऽधुना ।
 एतद्रहस्य परम पवित्र पापनाशनम् ॥७

माकण्डेय महर्षि ने कहा—भैरव के द्वारा इस सम्वाद को राजा सगर ने श्रवण करके और भग का वताल के द्वारा भी सुनकर पुन और्ध्व से पूछा था । १ । सगर ने कहा—हे द्विज ! आपने कलेवर गत मन्त्र अङ्गों के सहित बतला दिया है । हे द्विजोत्तम ! अब देवी के अङ्ग मन्त्र मुझसे कहिए । २ । तथा समस्त मन्त्र और सभी ओर पूजा के स्थान है । ठीक उसी भाँति उत्तर मन्त्र और पृथक् २ कवचों को और कामाख्या के माहात्म्य को जो रहस्य और मन्त्रों के सहित होवे । जैसा भगवान् उमापति महादेव ने कहा था और वेताल—भैरव दोनों को बतलाया था उसे विस्तार के सहित आप कहने की कृपा करे । यह महान् अदभुत है इसका श्रवण करते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है ।

जबकि आपको इसे कहते हुए मैं देखता हूँ तो मुझे बहुत ही अधिक कौतूहल होता है । ३—५ । ओवं ने कहा—हे राज शार्दूल ! जो भी उमापति ने अपने पुत्रों से कहा था और जो एक महान् आख्यान है मैं अब आपको कहता हूँ भूतसे आप श्रवण कीजिए । यह परमाधिक रहस्य है—बहुत ही पवित्र है और पापों के नाश करने वाला है ॥६॥७॥

पर स्वस्त्ययन पु सा गर्भे पु सवन स्मृतम् ।
 कल्याणकारक भद्र चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥८
 शठाय चनचित्ताय नास्तिकाय जितात्मने ।
 देवद्विजगुरुणा च मिथ्यानिवन्धकारिणे ॥९
 न पापायामिश्रस्ताय खञ्जकाणादिरोगिणे ।
 न कथ्य न च वा देय श्रद्धाविरहिताय च ॥१०
 महामायामन्त्रवल्प प्रोक्त्वा ताभ्यामुमापति ।
 वैतालभरवाध्या तु पुनरेवाभ्यभाषत ॥११
 अङ्गमन्त्र प्रवक्ष्यामि प्रोक्तवांस्तन्त्रमुत्तमम् ।
 तदेव प्रथमं विद्धि सर्वपूजासु सङ्गतम् ॥१२
 आचान्त शुचिता प्राप्त सुस्नातो देवपूजने ।
 पूजावेद्या वहि स्थित्वा चतुर्हस्तालरे धिया ॥१३
 गृहे वा द्वारदेशस्थ प्रणम्य शिरसा गुरुम् ।
 प्रणमेदिष्टदेव स्व दिक्पालानपि चेतसा ॥१४

यह पुराणों का परम स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याण का आलय है और इसकी गर्भ में पु सवन कहा गया है—यह कल्याण करने वाला—परम भद्र और चारों वर्गों के फल का प्रदान करने वाला है ॥८॥ इसकी ऐसी व्यक्ति को कभी भी भूलकर भी नहीं देना चाहिए जो शठ होवे—चपल चित्त वाला हो—जो आसिद्ध हो—जो अजित आत्मा वाला हो—जो देव, द्विज और गुरुवर्ग का मिथ्या निवन्ध कारी होवे ॥९॥ जो पापी हो तथा अभिशप्त हो—खञ्ज हो—बाना हो और रोगी हो इस पुराण से यह

नही कहना चाहिए और न देना भी चाहिए । जिसमें धृष्टा का अभाव हो उसे भी यह न देवे । १० । उमा के पति ने उन दोनों बेनाल—भैरवों से कहकर अर्थात् इस महामाया के मन्त्र कल्प का उपदेश देकर ये पुनः यह बोले थे । ११ । भगवान् ने कहा—उत्तम तन्त्र तो मैंने कह दिया है किन्तु अब मूल मन्त्र को बनताऊँया वह ही सर्व प्रथम जान लो । यह मन्त्र पूजाओं में सङ्गत है । १२ । आचान्त होकर अर्थात् आचमन करके—शुचिना की प्राप्त हुआ—सुन्दर रीति से स्नान किया हुआ देव पूजन में स्थित होवे । पूजा की वेदी स बाहिर स्थित होकर बुद्धि से चार हाथों के अन्तर में स्थित रहे । घर में अथवा द्वार देश में स्थित होना हुआ शिर से गुरु को प्रणाम करे । अपन इष्टदेव की इसी भाँति प्रणाम करना चाहिए तथा चित्त के ही द्वारा दिक्पालों की प्रणाम करना चाहिए ॥१३॥१४॥

यत् पूर्वमर्जित पाप तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा ।
 प्रायश्चित्तं नानुत्तमं तच्च पाप स्मरेद्विना ॥१५॥
 तत्पापस्यापनोदाय मन्त्रद्वयमुदीरयेत् ।
 देवि त्वं प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभूमम ॥१६॥
 तस्मिन् सारय चित्तान्मे पाप हूँ फट् च ते नमः ।
 सूर्य सोमो यम कालो महाभूतानि पञ्च वै ॥१७॥
 एते शुभाशुभम्येह कर्मणो नय माक्षिणः ।
 ततः पुनर्हूँ फडिति पाश्वर्ध्वं मधस्तथा ॥१८॥
 आत्मानं क्रोधदृष्ट्याय निरीक्ष्य सुमना भवेत् ।
 एव कृते प्रथमतः पापोत्सारणवर्मणि ॥१९॥
 यत् स्याद् दृढतरं पापं तद् दूरे चावतिष्ठते ।
 अतीते पूजयेत् स्थानं स्व प्रयाति पुनश्च यत् ॥२०॥
 यत् स्यादल्पतरं पापं तन्नाशमुपमच्छति ।
 ॐ अ फडिति मन्त्रेण पूजावेदी ततो विधेत् ॥२१॥

जो पाप पूर्व जन्म में अथवा पूर्व काल में अज्ञित किया है उस दिन में अथवा अन्य किसी दिन में प्रायश्चित्तों के द्वारा अपनुन्न नहीं किया गया है उस पापका बुद्धि के द्वारा स्मरण करना चाहिए । १५ । उस पाप के अपनोदन करने के लिये दो मन्त्रों का उच्चारण करे—हे देवि ! जो कि एक प्राकृत चित्त है पाप से आक्रान्त हो गया था आप मेरे चित्त में उसको उस पाप को निकाल दो—हू फट् आपके लिये नमस्कार है । पाप—पुण्य के कुछ देव प्रत्यक्ष देखने वाले हैं उनमें सूर्य—सोम—यम—बाल और पाँच महा भूत ये भी हैं ॥१६॥१७॥ ये शुभ और अशुभ कर्म के भी देव साक्षी होते हैं । इसके अनन्तर 'हू फट्'—इसके पार्श्व में—उध्व में और अर्धो भाग में आत्मा को क्रोध की दृष्टि से निरीक्षण करके सुनना हो जाना चाहिए । ऐसा करने पर प्रथम ॥ पापों के उत्सारण कर्म के किये जाने पर जो भी दृढ़ तर पाप होता है वह दूर में ही अवस्थित रहा करता है । पूजन के अतीत होने पर जो अपने स्थान को पुनः प्रमाण करता है । जो भी अल्प तर पाप हो वह नाश को प्राप्त हो जाया करता है । ॐ अ फट्—इस मन्त्र के द्वारा मजा की वेदी से वह प्रवेश करे ॥१८—२१॥

पूजने त्यक्त्वापापस्य कामविष्ट क्षणाद् भवेत् ।
 नाराचमुद्रया दृष्ट्वा समया स प्रलोकयेत् ॥२२॥
 पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रीं हूँ फडिति मन्त्रकं ।
 वदात्मनानवज्ञात सम्यक् पुष्पादिदूषणम् ॥२३॥
 अस्पृश्यस्पर्शनं वापि वदन्यायाजितं च वा ।
 तथा निर्माल्यससृष्टं कीटाचारोहणं च यत् ॥२४॥
 तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ।
 ततो रमितिमन्त्रेण शिखा दीपस्य सस्पृशेत् ॥२५॥
 स तस्य सुमगो क्षीपो भवेत् स्यशंनमात्रनः ।
 पतङ्गकीटवैशादि-दाहात् अव्यादसहत् ॥२६॥

वसामज्जास्त्रिसम्पूनीयंजादावुपयोजनम् ।
 रज्जातरुपं तत्सर्वं दीपं स्पर्शाद् विनाशयेत् ॥२७॥
 नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन मस्पृशेत् ।
 पानीयं घटमध्यम्य वीक्षन्मृक्ष्य याजक ॥२८॥

पूजन में पापों के त्याग कर देने वाले का जो अभीष्ट कामना है वह क्षण भर में ही हो जाया करता है । नाराज की मुद्रा से देखकर वह समीप में ही प्रलोकन करे ॥ २२ ॥ पुष्प—नैवेद्य—गन्ध प्रभृति "ह्रीं ह्रीं कट्" मन्त्र से जो अपने द्वारा अवज्ञान न होवे भली भाँति से पुष्प आदि का दूषण—स्पर्श न करने के योग्य का स्पर्शन—जो अन्याय से अजिन होत्र तथा निर्मान्य में सृष्ट जो कीट आदि का आरोहण हो वह सभी नाश की प्राप्ति हो जाता है नैवेद्य आदि के अवलोकन से फिर 'म्'—इस मन्त्र से दीप की शिखा का सस्पर्श करना चाहिए ॥ २३—२५ ॥ उमारा वह दीप स्पर्शन मात्र में ही मुप्त हो जाता है । पत्रङ्ग—कीट—वेग आदि के दाह में—कन्याद में सह—धमा—मज्जा—अस्थि सम्पूति जो यज्ञादि में उपयोग है ऐसे अज्ञात रूप वाला सभी दीप स्पर्श में ही विनाश की प्राप्ति हो जाया करता है ॥ २६—२७ ॥ नारसिंह मन्त्र के द्वारा देवतीर्थ में मस्पर्श करे । याजक को चाहिए कि घट के मध्य में स्थित जन को देखने हुए अम्बुशय करे ॥ २८ ॥

वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वे स्थित तदा ।
 पात्रमाधारमन्त्रेण सम्बुर्वन् मस्पृशेज्जलम् ॥२९॥
 मज्जदानादपेयादि संस्पृष्टिगिह मङ्गता ।
 यदन्यद् दूषण पात्रे तोये वा ज्ञानतो भवेत् ॥३०॥
 जलाशय श्वस्पर्शाज्जलं स्नानाच्च मङ्गनम् ।
 दूषणानि विनश्यन्ति तानि च देवपूजने ॥३१॥

प्रजापतिसुतो हान्तप्रान्त. स्वरसमन्वित ।
 चन्द्रार्धविन्दुसहितो मन्त्रोऽय नारसिंहक ॥३२
 स्वसज्ञाद्यक्षर विन्दुचन्द्रार्धपरियोजितम् ।
 आधारमन्त्र जानीयात् साधक कायसिद्धये ॥३३
 तत आधारमन्त्रेण पाणिभ्यामासन स्वकम् ।
 आदाय विनिधायानु पुन सस्पृश्य पाणिना ॥३४
 आत्ममन्त्रेणोपविशेत् तदा तस्मिन् वरासने ।
 दु शिल्पिपरचितत्वादि यदवान्यासनभूषणम् ॥३५

बाँये हाथ से पकड़ कर उस समय में वाम पाश्वर्ग में स्थित पात्र
 को आधार मन्त्र के द्वारा सस्कार करता हुआ जल का सस्पर्श करना
 चाहिए ॥३६॥ यही पर यज्ञ दान से अपेय आदि की ससृष्टि सङ्गता
 है । जो भी अन्य दूषण पात्र में अथवा जल में ज्ञान पूर्वक होवे । शब
 के स्पर्श से जलाशय और स्नान से सङ्गत जल से दूषण सब देवपूजन में
 विनाश हो जाया करने हैं ॥३७—३९॥ हान्त प्रान्त प्रजापति मुन जो
 स्वर से समन्वित होवे—चन्द्रार्ध विन्दु से सहित यह नारसिंहक मन्त्र है
 ॥ ३२ ॥ अपनी सज्ञादि का अक्षर जो विन्दु और चन्द्रार्ध से परियोजित
 होवे । इसको कार्य की सिद्धि के लिये आधार मन्त्र साधक जान लेवे
 ॥ ३३ ॥ फिर आधार मन्त्र के द्वारा अपने आसन को हाथों से साबर
 और रखकर शीघ्र ही पाणि से सस्पर्श करे । उस समय में उस ध्येष्ठ
 आसन पर आत्म मन्त्र के द्वारा उपवेशन करे । बुरे शिल्पी के द्वारा
 निमित्त आदि का जो अन्य आसन वेपण होते हैं । वे जना जाने हुए ही
 विमय को प्राप्त हो जाता है मन्त्र के सहित उपवेशन से ही विनीत
 होते हैं ॥३४॥३५॥

अज्ञात विलयं याति उपवेशात् समन्त्रवान् ।
 आह्वय स्वाक्षर पूर्वं सोमसामिगमन्वितम् ॥३६
 सविन्दुष विजानीयादात्ममन्त्र तु साधक ।

ततस्तु मातृकान्यास नादविन्दुसमन्वितम् ॥३७
 कुर्यात् तु मातृकान्मन्त्रैः स्वशरीरे विचक्षण ।
 बन्धेषु च यदज्ञान मन्त्रोच्चारणकर्मणि ॥३८
 यद् दुष्टं वा तथा स्पृष्टं मात्राभ्रष्टादिदूषणम् ।
 तन्न्यस्ता मातृकामन्त्रा नाशयन्ति सदैव हि ॥३९
 व्यञ्जनानि च सर्वाणि तथा त्रिणवादय स्वरा ।
 सर्वे ते मातृकामन्त्राश्चन्द्रविन्दुविभूषणा ॥४०
 सर्वे युगान्तबन्धेषु न्यस्तेषु न्यूनपूरणम् ।
 मन्त्रे कल्पे च कुर्वन्ति विन्यस्ता मातृका स्वयम् ॥४१
 एकमात्रो भवेद्घन्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
 प्लुतस्त्रिमात्रो विज्ञेयो वर्णा एते व्यवस्थिताः ॥४२

पूर्व में मौम मामि मे समन्वित स्वाक्षर के समझूत करके साधक को विन्दु के सहित आत्म मन्त्र जानना चाहिए। इसके अनन्तर नाद विन्दु में समन्वित मातृका न्यास कर। विचक्षण पुरुष को अपने शरीर में मातृका के मन्त्रों के द्वारा न्यास करना चाहिए। मन्त्रों के उच्चारण कर्म में बन्धों में जो अज्ञान होवे। जो भी ृष्ट हो गया स्पृष्ट हो और मात्राओं के भ्रष्ट आदि का दाप होवे न्यास किया हुए मातृका के मन्त्र मदा ही उनका नाश कर दिया करते हैं ॥३६—३९॥ समस्त व्यञ्जन तथा त्रिणु आदि स्वर के सभी मातृका के मन्त्र हैं जो कि चन्द्र विन्दु के विभूषण बाने हैं। ४०। सब युगान्त बन्धों के न्यस्त होने पर न्यूनता की पूर्ति है। विन्यास की हुई मातृका स्वय ही मन्त्र में और बन्ध में न्यूनता की पूर्ति कर देती है। ४१। जिसमें एक मात्रा हो वह ह्रस्व होना है मात्रा का अर्थ कम से कम समय होता है। दो मात्राओं वाला स्वर दीर्घ कहा जाता है। तीन मात्राओं वाला या दा में अधिक मात्राओं वाला स्वर प्लुत जानना चाहिए बंधों इसी प्रकार में व्यवस्थित होते हैं ॥४२॥

सर्वेषामेव वर्णानां मात्रादेव्यस्तु मातृका ।
 शिवदत्तोप्रभृतयस्तन्न्यासास्तत्तनुस्थिता ॥४३॥
 पूरयन्ति च तान् न्यूनाश्चतुर्वर्गं तथाचिरात् ।
 ददत्येव सदा रक्षां कुर्वन्नि सुरपूजने ॥४४॥
 चतुर्वर्गप्रदश्चायं सर्वकामफलप्रदः ।
 सर्वदामातृकान्यासस्तत्पुष्टिप्रदायकः ॥४५॥
 यः कुर्याद् मातृकान्यासं विनापि सुरपूजनात् ।
 तस्माद् विभेति सततं भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥४६॥
 तं द्रष्टुमपि देवाश्च स्पृहयन्ति महौजसम् ।
 न सर्वं च वशं कुर्याद् न च याति पराभवम् ॥४७॥

सभी वर्णों की मात्रा देवियाँ ही मातृका हैं । वे शिवदूर्ता प्रभृ-
 तियाँ हैं । उनमें तनु में स्थित उससे न्यास है । ४३ । ये उन न्यूनताओं
 की पूर्ति किया करती हैं तथा शीघ्र ही चतुर्वर्ग को देती हैं और सुरों के
 पूजन में सदा ही रक्षा किया करती हैं । ४४ । सबदा मातृका का
 न्यास करना धर्माधिकार मोक्ष के चार वर्गों का प्रदान करने वाला होता
 है और सभी कामनाओं को देने वाला है । तथा यह पुष्टि और पुष्टि का
 भी दान वाला होता है । ४५ । जो मनुष्य सुरों के पूजन के बिना भी
 मातृका का न्यास किया करता है । उसका चारों प्रकार का भूतों का
 समूह निरन्तर भयभीत रहा करता है । ४६ । उस महात्मा आज्ञा वाले
 पुरुष के दर्शन करने के लिये देवगण भी स्मृता किया करते हैं । उसमें
 सभी विलक्षण जगत् मनुष्य हो जाती है कि वह सबको अपने वश
 में कर लिया करता है और स्वयं कभी भी पराभव को प्राप्त नहीं होता
 है । ४७ ।

कुमुदं विष्णुमन्त्रेण अंगुरयस्त्रेण साधकः ।
 विमदं तार्क्ष्यं शृङ्गोयान् करशोधनकर्मणि ॥४८॥
 उपागन्तं मामिदं चन्द्रेण रजितं जगन्मयम् ।

रुद्रान्तोपरिसंसृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवो मन्तः ॥४८
 प्रासादेन तु मन्त्रेण अंगुल्यग्रेण साधकः ।
 ग्रहीत्वा च ततः कुर्यात् कराम्यां पुष्पमर्दनम् ॥४९
 निमंयेत् कामबीजेन जिघ्रेद् ब्राह्मणे तत् पुनः ।
 प्रासादेन परित्यागो दिश्यंशान्यां विशेषतः ॥५०
 एव कृते तु करयोर्विशुद्धिस्तुला भवेत् ।
 जल्लोकागूढपादादिस्पर्शाच्छुद्धिविशोधनात् ॥५१
 दुर्गन्ध्युच्छिष्टसंस्पर्शाद् दूषणं करयोस्तु यत् ।
 अज्ञानरूपं तत्सर्वं नाशयेत् मुविधानतः ॥५२
 अंगुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणाद् भवेत् ।
 तलद्वयं मर्दनान् तु विशुद्धमभिजायते ॥५३
 निमंञ्छनान् पाणिपृष्ठं घ्राणान्नामाग्रमुत्तमम् ।
 तौषाणि च समायाग्निं नासिकाया करं प्रति ॥५४
 तस्माद् यत्नेन कार्याणि कर्माण्येतानि शैरव ।
 भ्रान्तादिर्वामुदेवेन वर्णनापि च न हितः ॥५५

एवं उच्छिष्ट के संस्पर्श से दूषण होता है । वह सब अज्ञात रूप वाता है उसका सुन्दर विद्यान से विनाश कर देता है । ५३ । पुष्पों के ग्रहण करने से अंगुलियों के अग्र भाग शुद्ध हो जाते हैं और करों के दोनों तले पुष्पों के मर्दन से विशुद्धि को प्राप्त होने हैं । ५४ । निर्मज्जन करने से करों के पृष्ठ भाग और घ्राण करने से नासिका का अग्र भाग उत्तम होता है । सभी तीर्थ नासिका में और करों के प्रति समापात होते हैं । ५५ । हे भैरव ! इस कारण से ये कार्य यन्त्रों के साथ करने चाहिए । प्राग्तादि वासुदेव के द्वारा और वर्ण से भी संहित होवे ॥५६॥

शम्भुचूडाविन्दुयुक्तः प्रासादश्च स उच्यते ।

कामबीजं तु विज्ञेयं वासुदेवेन्दुविन्दुभिः ॥५७

व्यञ्जनं चाद्यदन्तं च त्रान्तदन्त्या तु पूर्वकम् ।

आद्यदन्त्यद्वयं पश्चाद् व्यञ्जनं प्रणवीतरम् ॥५८

ग्रहाबीजमिदं प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ।

प्रणवं दीर्घमुच्चार्य प्रथमं मुखशुद्धये ॥५९

वासुदेवस्य बीजेन प्राणायाम समाचरेत् ।

यस्य देवस्य यद्रूपं तथा भूषणवाहनम् ॥६०

तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् पूरकादिभिः ।

वर्णवीजमन्त्रमन्त्रस्य कण्ठाद्य यत्पुनःसरम् ॥६१

तद् बीजं वासुदेवस्य पूर्णबद्धनिभं सदा ।

मन्त्रावतारबीजेन प्रथमं धेनुमुद्रया ॥६२

अमृतीकरणं कुर्यादधोपात्राहिते जले ।

शशिपण्डितः कण्ठघः पञ्चमीवलबीजकः ॥६३

शम्भु चूडा और बिन्दु से जो युक्त हो वह प्रसाद कहा जाता है । वासुदेव इन्दु बिन्दुओं से बनी बीज जानना चाहिये । ५७ । व्यञ्जन और आद्य दन्त्य और आद्य दन्त्य पूर्वक तथा पीछे आद्य दन्त्यद्वय व्यञ्जन होते विगट उलट में प्रणव हो—यह शम्भुबीज कहा गया है जो सब

पापों का विनाश करने वाला है। मुख की शुद्धि के लिये प्रथम दीर्घ प्रणव का उच्चारण करे। वासुदेव के बीज के द्वारा प्राणायाम का समाचरण करे। जिस देव का जो भी रूप हो वैसे ही भूषण और वाहन होना चाहिए ॥ १८—६० ॥ उसके पूजन में वह ही पूरक आदि के द्वारा चिन्तन करना चाहिए। विष्णुबीज मन्त्र का वायु पुरःसर कण्ठाद्य वह वासुदेव का बीज है जो सदा पूर्ण चन्द्र के सदृश है। प्रथम गङ्गावतार बीज से धेनु मुद्रा के द्वारा अर्घपात्र के अहित जल में अमृतीकरण करना चाहिए। चन्द्र के खण्ड से युत कण्ठ्य पञ्चमी बल बीजक है ॥ ६१—६३ ॥

गङ्गावतारमन्त्रोऽयं सर्वपापप्रणाशकः ।
मात्राद्वययुतो विष्णुबलबीजमुदाहृतम् ॥६४॥
अमृतीकरणं कृत्ते तोयं यद् दीयतेऽमृतम् ।
भूत्वा प्रयाति देवस्य प्रीतये सुरपूजने ॥६५॥
गङ्गापि स्वयमायाति पूजापात्रजलं प्रति ।
अमृतीकरणं कुर्याद् धर्मकामार्थमिद्वये ॥६६॥
स्वस्तिकं गोमुखं पद्मघंस्वस्तिकमेव च ।
पर्यङ्कमासन शस्तमभीष्टसुरपूजने ॥६७॥
पादयन्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
तद् गृह्णीयाद् वराहस्य बीजेन प्रथमं युधः ॥६८॥
मायादिरग्निबीजस्य चतुर्यः समव्याप्तिकः ।
पृष्ठस्वरोपरिचरो वाराह बीजमुच्यते ॥६९॥
वाराहबीजसंयुद्धं मन्त्रपादद्वये कृतम् ।
पश्यन्नभीष्टदेवं तु पाददोषं न पश्यति ॥७०॥

यह गङ्गावतार बीज है जो सब पापों के प्रणाश करने वाला है। दो मात्राओं से युत विष्णु बल बीज उदाहृत किया गया है ॥६४॥ अमृतीकरण के होने पर जो जल दिया जाता है—वह अमृत होकर सुख

ये पूजन म देवता की प्रीति के लिये जाया करता है । ६५ । पूजा के मात्र के जल की ओर गङ्गा भी स्वयं आ जाया करती है । धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिये अमृतीकरण करना चाहिए ॥ ६६ ॥ अभोष्ट सुर पूजन में स्वस्तिक—गोमुख—पद्म—अर्धस्वस्तिक—पर्यङ्क—आसन प्रशस्त होते हैं । ६७ । यह पाद मन्त्र कहा गया है जो सब मन्त्रों से स्वत्युत्तम है । दुध पुरण की उसे प्रथम वराह के बीज के साथ प्रथम ग्रहण करना चाहिए । ६८ । अग्नि बीज काया यदि समाम्पातिक चतुर्थ छठवें स्वरोपरिचर वराह बीज कहा जाता है । ६९ । मन्त्र के दो पादों में बिया हुआ वाराह बीज संशुद्ध है । अभोष्ट देव का दर्शन करत हुए पाद रोप को नहीं देखा करता है । ७० ।

न युक्क्यमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने ।
 मन्त्रेण लभतेऽभीष्टास्तस्मान्मन्त्रपरो भवेत् ॥७१॥
 पाणिकच्छपिका कुर्यात् कूर्ममन्त्रेण साधकः ।
 तत्र सस्कृतपुष्पेण पूजयेदात्मनो वप् ॥७२॥
 पूजिते तेन पुष्पेण देवत्व स्वस्य जायते ।
 द्वितीय वैष्णवीतन्त्र बीजं विन्दिन्दुसयुतम् ॥७३॥
 पष्ठस्वरोपरिचर कूर्मबीजं प्रकीर्तितम् ।
 दहनप्लवनस्यादौ रन्ध्रस्य दशमस्य तु ॥७४॥
 भेदनं साधकं कुर्यान्मन्त्रेण प्रणधेन तु ।
 बीजेन वासेदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ॥७५॥
 प्राणेन सहित बीजं तत्तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
 अज्ञाता प्रयतानां तु मण्डलस्थानमार्जेनात् ॥७६॥
 द्रव्याणां विप्रकारं स्यान् ससर्गाणां तथैव च ।
 मधुकैटभयोर्मैदं साधार्तं दृढता गता ॥७७॥

१. अन्य प्रकार से सुरों के पूजन में पाद दर्शन युक्त नहीं होता है । मन्त्र के द्वारा ही अभीष्टों का लाभ किया जाता है । इस कारण से मन्त्र

में ही उत्तर होना चाहिए । ७१ । साधना करने वाले पुण्य को कर्म मन्त्र के द्वारा कर की वस्तुनिका बनावे । वही पर मन्त्रार क्रिये हुए पुण्य से बनने गरीर का पूजन करे । ७२ । उस पुण्य के द्वारा पूजित होने पर बनने आत्मा को देवत्व हो जाता है । दूसरा वैष्णवी मन्त्र बीज है ओ दिन्दु-इन्दु मे मयुद है । ७३ । पञ्च स्वर के उग्रिचर कूर्म बीज कीर्णित दिया गया है । इह्न और पवन के आदि में इह्न रन्तु का भेदन साधक को प्रणव मन्त्र के द्वारा भेदन करना चाहिए । वामुदेव के बीज के द्वारा आकाश में विनिष्कान्त करे । ७४ । ७५ । प्रणव के सहित बीज है वह मन्त्र प्रतिपादित कर दिया है । प्रयत्नों का अज्ञाता मण्डल के स्थान के मार्गन से इन्नों का तथा संयत्नों का विप्रकार होता है । मधु करम का भेद मन्त्राओं को प्राप्त हुई ॥७६॥७७॥

मेदिनी सर्वदा शुद्धा मुरपूजामु सर्वतः ।

अद्यापि सर्वे त्रिदशा न स्मृन्ति पदा क्षितिम् ॥७८॥

न च स्वीयतनुल्यायां योगयन्ति च भूतले ।

तस्य शेषस्य मोक्षार्थं मन्त्रराजं निवेन् क्षिती ॥७९॥

प्रोक्षणाद् बीजरागाद् वापि शुद्धा भवन्ति मेदिना ।

बीक्षणं धर्मबीजेन स्थण्डिलस्य समाचरेत् ॥८०॥

दान्तां वलेन तायुक्तञ्चटाविन्दुसमन्वितः ।

धर्मबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ॥८१॥

आदानं धारणं चैव तथा सत्स्थानपूजने ।

पूरणं मलिनैर्नव निक्षेपो गन्धपुष्पयोः ॥८२॥

मण्डलम्याय विन्द्यासुः पुनः पुष्पस्य सुश्रयः ।

अमृताकरणं पात्रप्रतिपत्तिरियं नरः ॥८३॥

आनिरुद्धेन चादाय अन्त्रमन्त्रेन धारणम् ।

पात्रे तु मण्डलन्यासं वागीजाग्रेण योजयेत् ॥८४॥

मृगों की वृक्षाओं में सब ओर सर्वदा मेदिनी शुद्ध होती है ।

के पूजन में देवता की प्रीति के लिये जाया करता है । ६५ । पूजा के साथ के जल की ओर गङ्गा भी स्वयं आ जाया करती है । धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिये अमृतीकरण करना चाहिए ॥ ६६ ॥ अभीष्ट सुर पूजन में स्वस्तिक—गोमुख—पद्म—अर्धस्वस्तिक—पर्यङ्क—आसन प्रशस्त होते हैं । ६७ । यह पाद मन्त्र कहा गया है जो सब मन्त्रों से स्वत्युत्तम है । दुध पुरुष को उसे प्रथम वराह के बीज के साथ प्रथम ग्रहण करना चाहिए । ६८ । अग्नि बीज काया यदि समव्याप्तिक चतुर्षु छठवें स्वरोपरिचर वराह बीज कहा जाता है । ६९ । मन्त्र के दो पादों में किया हुआ वाराह बीज संशुद्ध है । अभीष्ट देव का दर्शन करत हुए पाद रोप को नहीं देखा करता है । ७० ।

न युक्त्यमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने ।
मन्त्रेण सभतेऽभीष्टास्तस्मान्मन्त्रपरो भवेत् ॥७१॥
पाणिकच्छमिका कुर्यात् कूर्ममन्त्रेण साधकः ।
तत्र सस्कृतपुष्पेण पूजयेदात्मनो वपुः ॥७२॥
पूजिते तेन पुष्पेण देवत्वं स्वस्य जायते ।
द्वितीयं वैष्णवीतन्त्रं बीजं विन्दिन्दुसंयुतम् ॥७३॥
पठन्वरोपरिचरं कूर्मबीजं प्रकीर्तितम् ।
दहनप्लवनस्यादौ रन्ध्रस्य दशमस्य तु ॥७४॥
भेदनं साधकं कुर्यान्मन्त्रेण प्रणधेन तु ।
बीजेन वासेदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ॥७५॥
प्राणेन सहितं बीजं ततपूर्वं प्रतिपादितम् ।
अज्ञाता प्रयतानां तु मण्डलस्थानमार्जनात् ॥७६॥
द्रव्याणां विप्रवारं स्यान् ससर्गाणां तथैव च ।
मधुकटभयोर्मदसाघातं हृदता गता ॥७७॥

अन्य प्रकार से सुरों के पूजन में पाद दर्शन युक्त नहीं होता है । मन्त्र के द्वारा ही अभीष्टों का लाभ किया करता है । इस कारण से मन्त्र

मेही तत्पर होना चाहिए । ७१ । साधना करने वाले पुष्प को कर्म मन्त्र के द्वारा कर की कच्छपिका बनावे । वहाँ पर सस्कार किये हुए पुष्प में अपने शरीर का पूजन करे । ७२ । उस पुष्प के द्वारा पूजित होने पर अपने आपको देवत्व ही जाता है । दूसरा वैष्णवी मन्त्र बीज है जो बिन्दु-इन्दु से समुत्त है । ७३ । पष्ठ स्वर के उपरिचर कूर्म बीज कीर्तित किया गया है । दहन और प्लवन के आदि में दशम रन्ध्र का भेदन साधक को प्रणव मन्त्र के द्वारा भेदन करना चाहिए । वासुदेव के बीज के द्वारा आकाश में विनिघापित करे । ७४ । ७५ । प्रणव के सहित बीज है वह सब प्रतिपादित कर दिया है । प्रयतो का अज्ञाता मण्डल के स्थान के मार्जन से द्रव्यो का तथा, ससर्गों का विप्रकार होता है । मधु कैरव को भेद साधतो को प्राप्त हुई ॥७६॥७७॥ -

मेदिनी सर्वदा शुद्धा सुरपूजामु सर्वतः ।

अद्यापि सर्वे त्रिदशा न स्पृशन्ति पदा क्षितिम् ॥७८॥

न च स्वीयतनुच्छायां योजयन्ति च भूतले ।

तस्य दोषस्य मोक्षार्थं मन्त्रराजं लिखेत् क्षितौ ॥७९॥

प्रोक्षणाद् वीक्षणाद् वापि शुद्धा भवति मेदिनी ।

वीक्षणं धर्मबीजेन स्थण्डिलस्य समाचरेत् ॥८०॥

दान्तो घलेन संयुक्तश्चडाबिन्दुसमन्वितः ।

धर्मबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ॥८१॥

आदानं धारणं चैव तथा सस्थानपूजने ।

पूरणं सलिलेनैव निक्षेपो गन्धपुष्पयोः ॥८२॥

मण्डलस्याथ विन्यासः पुनः पुष्पस्य सश्रयः ।

अमृतीकरणं मात्रप्रतिपत्तिरियं नरः ॥८३॥

आनिरुद्धेन चादाय अस्त्रमन्त्रेण धारणम् ।

पात्रे तु मण्डलन्यासं वाऽबीजाग्रेण योजयेत् ॥८४॥

सुरो की पूजाओ में सब ओर सर्वदा मेदिनी शुद्धा होती है ।

आज भी समस्त देवगण दिति को पद से स्पर्श नहीं किया करते हैं । ७८ । और अपने शरीर की छाया को भूतल में योजित नहीं किया करते हैं । उस दोष के मोल के लिये दिति पर मन्त्र राज को लिखना चाहिए । ७९ । प्रोक्षण करने से अथवा बोक्षण से भी भेदिनी—शुद्ध हो जाया करती है । स्थण्डिल का बोक्षण धर्म बीज के द्वारा समाचरण करना चाहिए । ८० । दान्त बल से संयुक्त और चूड़ा विन्दु से समन्वित धर्म बीज कहा गया है जो धर्म—काम और अर्थ का साधन होता है । ८१ । आदान—धारण तथा संस्थान—पूजन सलिल से ही पूष—गन्ध और पुष्प का नि.धोष—मण्डल का विन्यास और पुनः पुष्प का संध्य-अमृतीकरण यह पात्र प्रति पति है । मनुष्य आति रुद्ध के द्वारा आदान करके अस्त्र मन्त्र से धारण करे और पात्र में वाग्बीजाग्र से मंडल ध्यास योजित करे ॥८२—८४॥

आनिरुद्धं भवेद्बीजमाद्यं विन्दुद्वयोत्तरम् ।
 फडन्तेनानिरुद्धं तु अस्त्रमन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥८५॥
 शम्भुराद्यवलः प्रान्तः सम्पूर्णा सहिता इमे ।
 परतः परतः पूर्वं समाप्त्यन्ताः सविन्दुकाः ॥८६॥
 तृतीयं वाग्भवं बीजं सकलं निष्कलरह्यम् ।
 स्वरश्चतुर्थः सकलः संस्पृष्टौ विन्दुनेन्दुना ॥८७॥
 वर्गाद्यादिद्वितीयं तु वाग्भवं बीजमुच्यते ।
 कामराजाह्वयं चैतद् धर्मकामार्थसाधनम् ॥८८॥
 मनोभवस्य बीजं तु कुण्डलोष्णकिसंयुतम् ।
 वासुदेवेन सम्पूजनमाद्यं वाग्भवमुच्यते ॥८९॥
 इदं सारस्वतं नाम यदाद्यं वाग्भवं स्मृतम् ।
 एकैकं कामबीजादि त्रिभिस्तु त्रिपुरामहः ॥९०॥
 आद्यं तृतीयं सामीन्दुविन्दुभ्यः समलकृतम् ।
 मदनस्य तु मन्त्रोऽयं कामभोगफलप्रदः ॥९१॥

आद्य बिन्दु दो के उत्तर अनिरुद्ध बीज होता है । वह आनिरुद्ध जब फट् अन्त में होता है तो अस्त्र मन्त्र कहा गया है ॥८५॥ शम्भु आद्यबल प्रान्त, सपूर्व ये सहिना है । पर से पर में पूव समाप्ति के अन्त वाले बिन्दु के सहित तीसरा वाग्भव बीज है यह सकल निष्कल नाम वाला है । चतुर्थ स्वर सकल्प ससृष्टि में बिन्दु से और इन्दु से वर्गादि का शादि द्वितीय तो वाग्भव बीज कहा जाता है । और यह कामराज नाम वाला है जो धर्म—आर्च और काम का साधन होता है ॥८६॥ ॥८७॥८८॥ मनाभव का बीज कुण्डली शक्ति से सयुक्त होता है । वह वासुदेव से सम्पृक्त होता है । आद्य वाग्भव कहा जाया करता है ॥८९॥ यह सारस्वत नाम का है जो आद्य वाग्भव कहा गया है । एक एक काम बीज आदि तीनों से ता त्रिपुरामद है । आद्य—तृतीय सामीन्दु बिन्दुओं से समलंकृत है—यह मदन का मन्त्र है जो काम के भोग का फल प्रदान करने वाला है ॥९०॥९१॥

औदेतोरूपविन्यस्त यन्न भास्करसन्निभम् ।
तद् वक्ष्ये कुण्डलीशक्तिमभेदात् तु निगद्यते ॥९२॥
भूतापसारण कुर्यान्मन्त्रेणानेन याजक ।
यस्मिन् कृते स्यान्भूता दूर यान्ति सुरार्चने ॥९३॥
स्थितेषु तत्र भूतेषु नवेद्यमण्डल तथा ।
विलुम्पन्ति सदा लुब्धा न गृह्णन्ति च देवता ॥९४॥
तस्माद् यत्नेन क्तव्य भूतानामपसारणम् ।
अस्त्रमन्त्रेण सहित तस्य मन्त्रमिद स्मृतम् ॥९५॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालका ।
भूतानामविरोधेन पूजाकर्म करोम्यहम् ॥९६॥
अनेन स्थण्डिलाद् भूतानपसार्याथ साधक ।
ततो दिग्बन्धन कृत्वा दिग्भ्यस्तानपसारयेत् ॥९७॥
विष्णुबीज फडन्त तु मन्त्र दिग्बन्धने स्थितम् ।

करेण छोटिकापूर्व वष्टन चन्धन टिण ॥६८

ओम्—ऐत के रूप स विन्यस्त यन्त्र भास्कार के सदृश है। उसको मैं बतलाऊँगा जो कि कुण्डली की शक्ति है। अभेद से बही जाती है ॥६२॥ भाङ्गव इम मन्त्र के द्वारा भूतों का अपसारण करे। इसके करने पर स्थान भूत जो हैं वे सुगर्भन के समय में दूर चले जाया करते हैं। ६३। भूतों के वहाँ पर स्थित रहने पर सदा ही वे लुब्धक नैवेद्य मण्डल को विशेष रूप से लुप्त कर दिया करते हैं और देवता उस का ग्रहण नहीं किया करते हैं। ६४। इस कारण से यत्न पूर्वक भूतों का अपसारण करना ही चाहिये। वह अपसारण अस्त्र मन्त्र के सहित ही करे। उसका मन्त्र यह कहा गया है ॥६५॥ वे भूत इस भूमि के पालक होंगे। मैं भूतों के अविरोध के द्वारा ही पूजा कर्म कर रहा हूँ। ६६। साधक इसके द्वारा स्पर्ण्डल से भूता को अपसारित करके इसके पश्चात् दिग्बन्धन करके उनको दिशाओं भी अवसारित कर देवे। ६७। जिसके अन्त में फट् हो ऐसा विष्णु बीज दिग्बन्धन में मन्त्र स्थित होता है। करके द्वारा स्फोटिका युक्त ही है ॥६८॥

आत्मन पूजनेनाथ कर्मारम्भाधिकारिता ।

पूजित चासन योगपीठस्य सदृश भवेत् ॥६९

स्वभावतः सदा शुद्ध पञ्चभूतात्मक धपु ।

मलपूतिसमायुक्त इलेष्मविष्णुभूतपिच्छिलम् ॥७०

रैतोनिष्ठीयलालाभि स्रवद्भरपरिष्कृतम् ।

बीजभूतानि चैतस्य महाभूतानि पञ्च वै ॥७०१

तेषां तु सर्वभूतानां बीजानां देहसङ्गिनाम् ।

वायुतेजःपृथिव्यम्भोदियता शुद्धये क्रमात् ॥७०२

शोषणं दहनं भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम् ।

आप्लावनं च कर्तव्यं चिन्तामात्रविशुद्धये ॥७०३

अण्डस्य चिन्तनाद् भेदात्तन्मध्ये देवचिन्तनात् ।

स्वकीयस्येष्टदेवस्य चिन्ता सर्वात्मना भवेत् ॥१०४

सोऽहमित्यस्य मन्त्र चिन्तनाद् देवरूपता ।

आत्मनो जायते सम्यक् सस्कृति पुष्पदानत ॥१०५

अपनी आत्मा के पूजन के द्वारा ही कर्म के आरम्भ करने की अधिकारिता प्राप्त हुआ करती है । और पूजित आसन योग पीठ के सदृश हो जाया करता है । ६६ । यह पाँचों भूतों के स्वरूप वाल वपु स्वामाविव वाल वपु स्वामाविव रूप से सदा ही अशुद्ध होता है । यह मन की पूर्ति से समायुक्त है और श्लेष्मा—विट्—मूत्र—इनसे पिच्छल रहा करता है । १०० । वीर्य—घूक—सार जो स्राव करती रहा करनी है यह शरीर अपरिष्कृत रहा करता है । इस शरीर के बीज भूत ये पाँच महा भूत होते हैं । १०१ । उन समस्त भूतों का जो देह की सज्जी हैं और बीज हैं । जो वायु—तेज—पृथ्वी—जल और आकाश है इनकी शुद्धि के लिए क्रम से शोषण—दहन—भस्म—प्रोत्साद—अमृत वर्षण और आप्लवन करना चाहिए जा कि चि ता मोन की विशुद्धि के लिये है । १०२ । १०३ । अण्ड के चिन्तन स—भेद स उसके मध्य में देव का चिन्तन से—स्वकीय इष्टदेव की चिन्ता सर्वात्म रूप से होती है । १०४ । मैं वही हूँ—इसका निरन्तर चिन्तन करने से देव रूपता होती है । जो कि आत्मा की हा जाती है । भली भाँति पुष्पा के दान से सस्कृति होती है ॥१०५॥

अह देवोऽय नवेद्य पुष्पगन्धादिव च यत् ।

पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते ॥१०६

देवाधारो ह्यह देवो देव देवाय योजयेत् ।

सर्वेषा देवतासृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ॥१०७

मनोजीवात्मनो शुद्धि प्राणायामेन जायते ।

अन्तर्गतं यच्च मल तच्च शुद्ध प्रजायते ॥१०८

गृहे चेन् पूजयेद् देव तदा तस्य विलोकनम् ।

कुर्यादादित्यबीजेन चतुर्ष्वपि क्रमात् ॥१०६॥
 हान्त समाप्तिसहितो वह्निबीजेन सहितः ।
 उपान्त सचतुर्वस्तु स तथा सकलोऽग्रतः ॥११०॥
 आदित्यबीजं कथितं सर्वरोगविनाशनम् ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणां वारणं तोषदायकम् ॥१११॥
 अशुद्धपक्षिसंयोग-पक्षिविष्टाप्रसेचने ।
 मूषिकाणां तथा स्पर्शं कृमिकीटादिसंगमः ॥११२॥
 एवमादीनि नश्यन्ति लोकनाद् गृहदूषणम् ।
 ततस्तु योगपीठस्य ध्यानं प्रथमतश्चरत् ॥११३॥

मैं देव हूँ—ऐसा संस्कार हो जाता है। इसके अनन्तर जो नैवेद्य और पुष्प गन्ध आदिक हैं और जो भी पूजा के उपकरण के लिये हैं यहाँ पर देवत्व हो जाता है। १०६। देव आधार है मैं देव हूँ। देव देव के लिये योजित करे। सबको देवता की सृष्टि से शुद्धता भी समुत्पन्न हो जाया करती है। १०७। मन और जीवात्मा की शुद्धि प्राणायाम से हुआ करती है। अन्तर्गत जो भी मल है वह भी शुद्ध हो जाता है। १०८। गृह में यदि देव का यजन करे तो उस समय में उसका विलोकन करना चाहिये। और आदित्य बीज के द्वारा क्रम से चारों पार्श्वों में करे। १०९। हान्त समाप्ति से सहित और वह्निबीज से सहित होवे। चतुर्थ के सहित उपान्त वह सकल आगे हो—यही आदित्य बीज कहा गया है जो कि समस्त रोगों का विनाश करने वाला है। धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष का कारण है और सन्तोष देने वाला है ॥११०॥१११॥ किसी अशुद्ध पक्षी का संयोग—पक्षी की निष्ठा का प्रसेचन तथा मूषकाओं का स्पर्श एवं कृमि और कीट आदि का सङ्गम एवमादि दोष नष्ट हो जाया करते हैं सोचन करने मात्र से ही इनका विनाश होता है और गृह दूषण नष्ट हो जाया करता है। इसके अनन्तर प्रथम योग पीठ का ध्यान का समाचरण करना चाहिए ॥११२॥११३॥

ध्यानमात्र योगपीठ प्रविशत्येव मण्डलम् ।
 योगपीठे स्मृते सर्व योगपीठमय समम् ॥११४॥
 न योगपीठादधिक विद्यते परमासनम् ।
 यस्य ध्यानाज्जगद् व्याप्त सचराचरमानुषम् ॥११५॥
 तच्चिन्तनस्य माहात्म्य को वा वक्तुं समुत्सहेत् ।
 चिन्तामानेन मानुष्य पश्य शोकविनाशनम् ॥११६॥
 धारणाद् योगपीठ तु चतुर्बर्गफलप्रदम् ।
 शुद्धस्फटिकसकाश चतुष्कोण चतुर्वृत्तिम् ॥११७॥
 आघातशक्त्या विहित प्रग्रह सूर्यसन्निभम् ।
 आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्षु क्रमत स्थितम् ॥११८॥
 धर्मो ज्ञान तथैश्वर्य वैराग्य क्रमत सदा ।
 पूर्वादिदिक्षु चैतानि स्थितानि क्रमतो यथा ॥११९॥

योग पीठ का ध्यान मात्र ही पर्याप्त है । इसी से योग पीठ मण्डल में प्रवेश किया करता है । योगपीठ के स्मरण करने पर सब कुछ योग पीठ में परिपूर्ण सम हो जाता है ॥११४॥ योग पीठ से परमोत्तम अन्य कोई भी आसन नहीं हुआ करता है । जिसके ध्यान से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है जिसमें जड़ चेतन मनुष्य सभी हैं । उसके चिन्तन का बड़ा भारी माहात्म्य है जिसके बहने का उत्साह कौन कर सकता है । उसके चिन्तन भर से ही देखो मनुष्यों के शोक विनाश हो जाया करता है । ११६ । योग पीठ के धारण करने से तो चतुर्बर्ग के फल का वह प्रदायक होता है । अब उसके ध्यान एवं चिन्तन का प्रकार बतलाया जाता है—वह विशुद्ध स्फटिक मणि के सदृश है—चतुष्कोण है और चार वृत्तियों वाला है । आघात शक्ति से विहित प्रग्रह वाला है तथा सूर्य के समान है । आग्नेय आदि चारों कोनों में क्रम से सदा ही धर्म-ज्ञान-ऐश्वर्य और वैराग्य स्थित रहा करते हैं । पूर्व आदि दिशाओं में ये निम्नलिखित क्रम से स्थित रहा करते हैं ॥ ११७—११८ ॥

अधर्मश्च तथाजानमनश्चर्यं तत परम् ।
 अवराग्य पर तन्माद्वारणार्थं व्यवस्थितम् ॥१२०॥
 तस्योपरि जलोघस्तु तस्मिन् ब्रह्माण्डमास्थितम् ।
 ब्रह्माण्ड भ्यन्तरे तोय कूमस्तस्योपरि स्थित ॥१२१॥
 कूर्मोपरि तयानन्न पृथ्वी तस्योपरि स्थिता ।
 अनन्तगात्रसयुक्त नाल पातालगोचरम् ॥१२२॥
 पृथ्वीमध्ये स्थित पद्म दिक्पत्र गिरिवेशरम् ।
 तस्याष्टदिक्षु दिक्पाला स्वर्गो मध्य व्यवस्थित ॥१२३॥
 वर्णिकाया ब्रह्मलोक महर्लोकादयो ह्यध ।
 स्वर्गं ज्योतीषि देवाश्च चतुर्वेदास्तदन्तरे ॥१२४॥
 सत्त्व रजस्तम इति गुणा प्रवृत्तिसम्भवा ।
 सदा स्थिता पद्ममध्ये पर तत्त्व तथैव च ॥१२५॥
 आत्मतत्त्व तत्र सस्थमूर्ध्वच्छदनमूर्धत ।
 अधोऽधश्छदन तत्र केशराग्रे स्थित पुन ॥१२६॥

अधर्म—अज्ञान—अनैश्वर्य—अवराग्य हैं इससे धारणार्थ व्यव-
 स्थित हैं ॥ १२० ॥ उसके ऊपर जल का समुदाय है । उनमें ब्रह्माण्ड
 आस्थित है उस ब्रह्माण्ड के भीतर जल है । उसके ऊपर कूम स्थित है
 ॥ १२१ ॥ उस कूम के ऊपर अनन्त है और उसके ऊपर यह पृथ्वी
 स्थित है । अनन्त के शरीर से संयुक्त एक नाल है । जो पाताल तक
 गोचर होता है ॥ १२२ ॥ पृथ्वी के मध्य में एक पद्म स्थित है जिसके
 दल, दिशाएँ हैं और गिरि उसका केशर है । उसके आठ दिशाओं में
 दिनपाल हैं और मध्यभाग में स्वयं अवस्थित है ॥ १२३ ॥ उस पद्म
 की वर्णिका में ब्रह्मलोक है । उसके नीचे भाग में महर्लोक आदि हैं ।
 स्वर्ग में ज्योतिर्गण हैं और देवगण हैं । उनके अन्तर में चारों वेद हैं
 ॥ १२४ ॥ रज—मत्त्व—तम ये तीन गुण हैं जो प्रकृति से समुद्गत हैं ।
 ये गदा ही पद्म के मध्य में स्थित हैं और तथा परतत्त्व है ॥ १२५ ॥

वहाँ पर आरम तत्व है मस्थित है जो ऊर्ध्वछदन है जो ऊपर की ओर है । अध छदन है जो नीचे की ओर है वहाँ पर केसर के अध भाग में पुनः स्थित है ॥१२६॥

सूर्याग्निचन्द्रमरुता मण्डलानि क्रमात् ततः ।
 शावासन योगपीठे सुखासनमतः परे ॥१२७॥
 आराध्यासनमस्माच्च ततश्च विमलासनम् ।
 मध्ये विचिन्तयेत् सर्वं जगद् सचराचरम् ॥१२८॥
 ब्रह्मविष्णुशिवाश्चैव भागत्रयविनिश्चितान् ।
 आत्मानं चिन्तयेत् तत्र पूजने समुपस्थितम् ॥१२९॥
 मण्डलं योगपीठं तु पद्म पद्म तु चिन्तयेत् ।
 शावादीन्यामनानोह चत्वार्यपि विचिन्तयेत् ॥१३०॥
 योगपीठं पृथग्ध्यात्वा मण्डलेन सहैकताम् ।
 पुनर्ध्यात्वा ततः पश्चात् पूजयेदासनं ततः ॥१३१॥
 ध्यानेन योगपीठस्य यथा यद्दीयते जलम् ।
 नैवेद्यपुष्पधूपपादि तत् स्वयं चोपनिष्ठते ॥१३२॥
 सर्वे देवाः सगन्धर्वा सचराचरगृह्यका ।
 चिन्तिता पूजिताश्च स्युर्योगपीठस्य पूजने ॥१३३॥

इसके अनन्तर सूर्य—अग्नि—चन्द्र और मरुत के मण्डल क्रम में हैं । योग पीठ में सब का आसन है और इसके वा में मुखासन है फिर आराध्य आसन है और इससे पर में विमलासन है । मध्य में सम्पूर्ण इस चराचर जगत् का विशेष चिन्तन करना चाहिए ॥ १२७—१२८ ॥ वहाँ पर तीन भागों में विनिश्चित हुए ब्रह्मा—विष्णु और शिव का चिन्तन करना चाहिए । वहाँ पर अभ्यर्चन करने में समुपस्थित अपने आपका चिन्तन करे ॥ १२९ ॥ मण्डल—योगपीठ और पद्म का चिन्तन करना चाहिए । जब आदि के चारों आसनों का भी यहाँ पर चिन्तन करे ॥ १३० ॥ इसके उपरान्त योग पीठ का ध्यान करके मण्डल

के साथ एकता का पुन ध्यान करे । इसके पीछे आसन का यजन कर ॥ १३१ ॥ योगपीठ के ध्यान के द्वारा जो जिम प्रभार म जन दिया जाता है और नेवेद्य—पुण—धूप आदि स्वयं ही वही पर उपस्थित हो जाया करते हैं ॥ १३२ ॥ योग पीठ के पूजन म गन्धवों के सहित सब देवगण और चर—अचर—गुह्यक सभी चिन्तित और पूजित हो जाया करते हैं ॥ १३३ ॥

अभीष्टदेवतापूजा विना यस्य विचिन्तनात् ।
 लभते च चतुर्वर्गं तुष्टिं पुष्टिश्च जायते ॥१३४॥
 आवाहनानन्तरत पाणिभ्यामवतारयेत् ।
 त्रागुत्तानौ करौ कृत्वा ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य सान्तरौ ॥१३५॥
 निरन्तरावधं कुर्यान्नामयन् पूजकस्तथा ।
 हैरम्बस्य तु बीजेन तस्मादवतरेति च ॥१३६॥
 आम्नेडितेन चाभीष्टदेवानां लम्बनाय वै ।
 नासिकावायुं नि साराद्वियत्स्या देवता भवेत् ॥१३७॥
 एव कृते मण्डले तु स्थितिस्तस्य प्रजायते ।
 स्वान्तं शुद्धाशुविन्दुभ्यां हैरम्ब बीजमुच्यते ॥१३८॥
 नाशनं विघ्नबीजानां धर्मकामार्थसाधनम् ।
 गन्धपुष्पे तथा धूपदीपौ नैवेद्यमेव च ॥१३९॥
 यदन्यद दीयते वस्त्रमलकारादिकं च यत् ।
 तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ॥१४०॥

अपने अभीष्ट देवता के पूजन के बिना जिसके विचिन्तन से चतुर्वर्ग का लाभ उपासक किया करता है और उसकी तुष्टि एवं पुष्टि हो जाती है । १३४ । आवाहन के अनन्तर ही दोनों करों के द्वारा अवतारित करना चाहिए । पहिले दोनों करों को ऊँच करे और ऊपर की ओर उत्क्षिप्त करके अन्तर सहित निरन्तर नीचे की ओर नामित करते हुए पूजक को करना चाहिए । हे रम्ब के बीज से उससे अवतरित

होश्रो—गह कहें ॥ १३५—१३६ ॥ अभीष्ट देवों के सम्बन्ध के लिये आश्रोष्टिन के द्वारा करे अर्थात् दो बार उच्चारण पूर्वक करे । नासिका की वायु के नि मारण से देवता आकाश में स्थित हो जाते हैं ॥ १३७ ॥ इस प्रकार से करने पर उमकी स्थिति मण्डल में हो जाया करती है । स्वान्त भृश्र अंशु और विन्दु में हे रम्य बीज कहा जाया करना है ॥ १३८ ॥ यह विष्णुओं के बीजों का विनाश करने वाला है और धर्म—अर्थ—काम का माघने वाला है । गन्ध—पुष्प—धूप—दीप—नैवेद्य और जो भी अग्न्य वस्तु दी जाती है तब, वस्त्र और अलङ्कार आदि उनका देवन उच्चारण करते प्रोक्षण तथा पूजन करे ॥ १३९—१४० ॥

उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ।
 वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ॥ १४१
 दृष्टेन मूलमन्त्रेण तथोत्सर्गनिवेदने ।
 तपरश्चन्द्रविन्दुभ्या बीजं शारणमुच्यते ॥ १४२
 विनोपन पूजनं च तथा दानं पूयक् पूयक् ।
 जपकर्मणि मालायाः प्रतिपत्तिरिदं त्रयम् ॥ १४३
 दृष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तनम् ।
 बीजं गाणपतं पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ॥ १४४
 अविष्णुं कुरु माने त्वं गृहणीयादित्यनेन च ।
 अपान्ते शिरसि न्यासो मालायाः परिकीर्तितः ॥ १४५
 गजमादाय पाणिभ्यां श्रोत्रबीजेन तथाचंयेत् ।
 अन्त्यदन्त्यान्ममात्राभ्यां चादिष्वगंतृनीययो ॥ १४६
 परतः परतः पूर्वं श्रोत्रबीजं विन्दुनेन्दुना ।
 मालाया अवतारस्तु शिरसि कियते यदा ॥ १४७

वारण बीज कहा जाता है । १४२ । विनोदन—पूरक तथा पृथक् २ दान—जप कम माला की प्रति वृत्ति यह तीन हैं । १४३ । अपने दृष्ट मन्त्र के द्वारा माला का का प्रोक्षण कीर्तित किया गया है । पहिले—गाथा पन बीज का उच्चारण करके इसके अनन्तर ही करना चाहिए । १४४ । हे माता ! आप अविघ्न करें—इसी मन्त्र के द्वारा माला का ग्रहण करें । जप के अन्त में माला का न्याम शिर पर करें—ऐसा कहा गया है । १४५ । हाथों से माला लेकर श्री बीज के द्वारा उमो भक्ति अर्चन करना चाहिए । अन्य दन्त्यान्त मात्राओं आदि चम और नृतीय पर से पर के पूर्व में श्री बीज विन्दु से इन्दु से माला का अवतार शिर से सदा किया जाता ॥१६—१४७ ।

तां समादाय पाणिभ्या कुर्यान् सागस्वतेन वै ।
 श्रीबीजानामाद्यमाद्यं विन्दुचन्द्रार्धसमुत्तम् ॥१४८॥
 एतच्चतुष्टय बीज सारस्वतमुदीरितम् ।
 पौराणिकैर्वैदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि ॥१४९॥
 प्रदक्षिणा प्रणाम च कुर्याद्धर्मार्थसाधकम् ।
 भूमि वीक्ष्य तथाभ्युक्ष्य क्षितिर्योजने पूर्वतः ॥१५०॥
 स्पृशस्ता शिरसा भूमि प्रणमेदिष्टदेवता ।
 समाप्तिहीन वाराह बीज विन्दिन्दुसमुत्तम् ॥१५१॥
 क्षितिबीज विजानीयाच्चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
 दर्पण व्यजन घण्टा चामर प्रोक्षयेत् पुनः ॥१५२॥
 नैवेद्यालोकमन्त्रेण पूर्वप्रोक्तेन भैरव ।
 नामाक्षराणि चाद्यानि चंतेषां विन्दुनेन्दुना ॥१५३॥
 तस्मै नम इति प्रान्ते ग्रहणे मन्त्र उच्यते ।
 निवेदानमर्थतेषामिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ॥१५४॥

उमो हाथों से जादान करके सारस्वत से श्री बीजों का आद्य-
 आद्य विन्दु चन्द्रार्ध से समुत्त—यह चार बीज सारस्वत कहे जाते हैं ।

हे भैरव ! वाग्भव के द्वितीय काम बीज से मुद्रा का व घन
 परना चाहिये । और मूल मन्त्र से दर्शन करे । १५५ । मुद्रा का परि-
 त्याग तारा बीज के द्वारा समाचरण करे । चंद्र बिन्दुओं से प्रान्तादि
 षष्ठ स्वर से सयुक्त जो है वह तारा बीज कहा गया है जो धर्म—अर्थ
 और काम का साधन होता है । क्योंकि यह मुद्रा अर्थात् आनन्द को
 दिया करती है इसी लिये यह मुद्रा—इस नाम से कीर्तित की गयी है ।
 । १५६ । १५७ । मुद्रा के दशित किये जाने पर पूजा का समापन हुआ
 करता है । यह स्वयं काम—मोक्ष—धर्म—अर्थ और मोक्ष से समन्वित
 होती है । १५८ । गमन करने के लिये समुत्सुक् देवता साधक के लिये
 शीघ्र ही देता है । मुद्रा के अन्त में इन छँ महा मन्त्रों का उच्चारण
 करना चाहिये । १५९ । जो भक्ति मात्र के द्वारा पत्र—पुष्प—फल—
 जल दिया गया है और जो नैवेद्य आवेदित किया है उसे वृषा करके
 ग्रहण करिए । १६० । मैं आवाहन कैसे किया जाता है—यह नहीं
 जानता हूँ और मुझे विमर्जन करने का भी ज्ञान नहीं है । मैं यजन के
 भाव को भी नहीं समझता हूँ अतएव हे परमेश्वर ! मेरी आप ही
 गति है ॥ १६१ ॥

कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्य गतिर्मम ।

अन्तश्चरेण भूताना त्व गति परमेश्वरि ॥ १६२

मातर्पोनिसहस्रेषु येषु येषु द्रजाम्यहम् ।

तेषु तेष्प्युता भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ॥ १६३

देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत् ।

देवी जयति सर्वत्र या देवी सोऽहमेव च ॥ १६४

यदक्षरपरिभ्रष्ट मात्राहीनं च यद भवेत् ।

तत्सर्वं क्षाम्यता देवि न स्य स्य न स्थलितं मन ॥ १६५

मन्त्रेषु पठितेष्वेव न्वयमेव प्रसीदति ।

दानु देवी चतुर्वर्गं न चिरादेव भैरव ॥ १६६

ऐशान्या मण्डल कुर्याद् द्वारपद्मविवर्जितम् ।

विसर्जनाथं निर्माल्यधारिण्या पूजनाय वै ॥१६७

पाद्यादिभिः पूजयित्वा ध्यात्वा निर्माल्यधारिणीम् ।

निक्षिप्य तस्मिन् निर्माल्य मन्त्रेण तु विसर्जयेत् ॥१६८

कर्म से—मन से और वचन से आपसे अन्य मेरी कोई भी गति नहीं है । हे परमेश्वरि ! भूतो के अन्दर से सञ्चरण करने से आप ही गति हैं । १६२ । हे माता ! जिन जिन सहस्रा योनियो में मैं गमन करूँ हे अच्युते ! उन-उन ही योनियो में सदा आपके प्रति मेरी भक्ति होवे जो कभी भी च्युत न होवे ॥१६३॥ देवी—दात्री—भोक्त्री यह सम्पूर्ण जगत् देवी ही है । देवी सर्वत्र जप प्राप्त करती है । जो देवी है वह मैं ही हूँ । १६४ । जो अक्षर परिभ्रष्ट हो और जो मात्रा से हीन हो, हे देवि ! वह सभी आप क्षमा कर दें । कौन ऐसा है जिसका मन सूचलित न होता हो । १६५ । हे भैरव ! इन मन्त्रों के पढ़े जाने पर देवी स्वयं ही प्रसन्न हो जाया करती हैं और रूढ़ उह अविलम्ब ही चतुर्वर्ग को प्रदान कर दिया करती हैं । १६६ । ऐशानी दिशा में मण्डल की रचना करे जो द्वार और पद्म से वर्जित होवे । विसर्जन के लिये निर्माल्य धारिणी के पूजन के लिये मण्डल रचना करे । १६७ । निर्माल्य धारिणी का ध्यान पाद्य आदि से पूजन करे । उसमें निर्माल्य का निक्षेपण करके मन्त्र से विसर्जन करे ॥१६८॥

गच्छ गच्छ पर स्थान स्वम्यान परमेश्वरि ।

यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परम पदम् ॥१६९

विसृज्य मन्त्रेणानेन ततः पूरकवायुना ।

ध्यायस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा ता स्थापयेद्दृष्टि ॥१७०

तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।

यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥१७१

ततः एकजटावीजैरिष्टदेवी धिया स्मरन् ।

निर्मल्य मूढिन गृह्णीयाद् धर्मकामार्थसाधनम् ॥१७२
 मण्डलप्रतिपत्तिं तु तत् कुर्याद् विभूतये ।
 सर्वांगुलीनामग्नौ पद्ममष्टदलान्वितम् ॥१७३
 निर्मग्न्येत् क्षितिबीजेन मण्डलं चापि भैरव ।
 ततस्तु मूलमन्त्रेण सववश्येन वा पुन ॥१७४
 अनामिकानामग्रेण ललाटमपि सस्पृशेत् ।
 समाप्तिसहितं प्रान्तस्ताराबीजं तत् परम् ॥१७५
 स्मरबीजं विसर्गेण परतः परतः परम् ।
 भवेदेकजटाबीजं धर्मकामार्थसाधनम् ॥१७६

हे परमेश्वरि ! अपने परम स्थान को गमन कीजिये जाइये ।
 जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण परम पद को नहीं जानते हैं । १६६ । इस
 मन्त्र के द्वारा विसर्जन करके इसके अनन्तर पूरक वायु के द्वारा ध्यान
 करते हुए इस मन्त्र से नमस्कार करके उसको हृदय में स्थापित करे ।
 १७० । हे परमेश्वरि ! हे देव ! परमोत्तम स्थान पर अपने आसन
 पर विराजमान हाइए । जहाँ पर मेरे हृदय में ब्रह्मादिक सब देवता
 स्थित होते हैं । १७१ । इसने उपरान्त एव जटा बीजी से इष्ट देवी का
 बुद्धि से स्मरण करता हुआ निर्मल्य की मूर्धा में ग्रहण करे जो कि
 धर्म—काम और अर्थ का साधन होना है । १७२ । इसके अनन्तर
 विभूति के लिये मण्डल की प्रतिपत्ति करे । समस्त अंगुलियों के समूहों
 से आठ दलों से मगुन पद्म को क्षिति बीज के द्वारा निर्मग्न्यन करे ।
 हे भैरव ! मण्डल का भी निर्मग्न्यन करना चाहिए । इसके पश्चात् मूल
 मन्त्र के द्वारा अथवा पुन सर्ववश्य के द्वारा अनामिकाओं के अप्रमाण में
 ललाट का सस्पर्श करे । समाप्ति के सहित प्रान्त उसके आगे ताराबीज—
 स्मर बीज विसर्ग के सहित पर गभी पद परम एव जटा बीज होता है
 जो धर्म काम और अर्थ का साधन है ॥१७३—१७६॥

ततो भस्करबीजेन सहितेनात्मना पुन ।

मन्त्रेण भास्करायार्घमच्छिद्रार्घं निवेदयेत् ॥१७७
 नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।
 जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥१७८
 ततः कृताञ्जलिभूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् ।
 एकाग्रमनसा वाग्भिरच्छिद्रवमघायेत् ॥१७९
 यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम ।
 सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादनः ॥१८०
 ततस्तु पुष्प नंवेद्य-तोयपात्रादिकं च यत् ।
 देवीबीजेन तत्सर्वं पुनरेव विलोकयेत् ॥१८१
 हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र यत्र कृतः पुरा ।

मन्त्रन्यासस्तत्र तत्र विसृष्टिरमुना भवेत् ॥१८२

इसमें अनन्तर पुनः आत्मा के सहित भास्कर बीज से मन्त्र के द्वारा भास्कर के लिये अच्छिद्रार्घ्य अर्घ्य का निवेदन करना चाहिए ॥१७७॥ हे ब्रह्मन् ! भास्वान्—विवस्वान्—विष्णु तेज वाले—जगत् के सविता—शुचि—सविता—कर्मदायी के लिये नमस्कार है ॥१७८॥ इसके बाद दोनों हाथों को जोड़े हुए होकर बयिन मन्त्र को पढ़कर एकाग्र मन से वागियों द्वारा अच्छिद्र का अवधारण करे ॥१७९॥ यज्ञ का छिद्र—तपश्चर्या का छिद्र—जो छिद्र मेरे पूजन में हो वह सब आच्छिद्र हो जाये भास्कर भगवान् के प्रसाद में ही अच्छिद्रता हो जावे ॥१८०॥ इसके पश्चात् पुष्प—नंवेद्य—जल पात्र आदि जो भी हैं उन सबको देवी बीज के द्वारा पुनः विलोकन करना चाहिये ॥१८१॥ हाथ से अथवा धनु से जहाँ-जहाँ पहिले मन्त्र न्यास किया है वहाँ-वहाँ ही इससे विसृष्टि होती है ॥१८२॥

प्रान्तादिपञ्चमो वह्निबीजपष्ठस्वराहितः ।
 तयोपान्त वाग्भवाद्यं दुर्गाबीजं प्रचक्षते ॥१८३
 स्यण्डिते ज्वलदग्नी च तीये गूर्यमरीचिषु ।

प्रतिमासु च शुद्धासु शालग्रामशिलासु च ॥१८४
 शिवालये शिलाया तु पूजा कार्या विभूतये ।
 सर्वत्र मण्डलन्यासं कुर्यादिकाग्रमानसः ॥१८५
 योगपीठस्य बीजेन स्यण्डिलादिषु साधकः ।
 वासुदेवस्य रुद्रस्य ब्रह्मणो मिहिरस्य च ॥१८६
 कुर्यात् सर्वत्र पूजासु प्रतिपत्तिमिमां बुधः ।
 एव यः पूजयेद् विष्णुममोभिः प्रतिपत्तियिः ॥१८७
 चतुर्वर्गप्रदस्तस्य न चिराज्जायते हरिः ।
 शिवो वा मिहिरो वापि येऽन्ये लम्बोदरादयः ॥१८८
 प्रसीदन्ति सुराः सर्वे पूजाया विधिनामुना ।
 विशेषतो महादेवी महाभाया जगन्मयी ॥१८९

प्रान्तादि पञ्चम वह्नि बीज षष्ठि स्वर से आदित तथा उपरि
 वाग्म वायु दुर्गा बीज कहा जाता है । १८३। स्थाण्डिल मे—जलती हुई
 अग्नि में—जल मे सूर्य की किरणों मे—और शुद्ध प्रतिमाओं मे तथा
 शाल ग्राम की शिलाओं मे—शिव लिङ्ग मे—शिला मे विभूति के लिये
 पूजा करनी चाहिए । एकाग्र मन वाला होकर सभी जगह मण्डल का
 न्यास करे । १८५। योग पीठ के बीज से स्यण्डिल आदि मे साधक
 वासुदेव भगवान् की—रुद्र देव की—ब्रह्माजी की—सूर्य की पूजाओं मे
 सर्वत्र बुध पुरुष को यह प्रतिपत्ति करनी चाहिए । इस प्रकार से इन
 मुक्ति पत्तियों से जो विष्णु भगवान् की पूजा करे तो उसको भगवान्
 की पूजा करे तो उसको भगवान् हरि अविलम्ब ही चार वर्गों के
 प्रदाता हो जाया करते हैं । शिव हो वा मिहिर हो जो भी अन्य लम्बो-
 दर प्रभूति होवें सभी सुर गण इस विधि से प्रसन्न हो जाया करते हैं
 विशेष रूप से जगन्मयी महामाया महादेवी प्रसन्न होती हैं ॥१८६॥
 ॥१८७॥१८८॥१८९॥

प्रतिपत्तिमिमां नित्यं स्पृहयत्येव पूजने ।

एवं यः कुरुते पूजां सम्यक् स फलभाग्भवेत् ॥१६०
 एतंविहीना या पूजा ततोऽल्पाल्पं फलं भवेत् ।
 अंगहीनस्तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको यथा ॥१६१
 अंगहीना तथा पूजा न सम्यक् फलभाग्भवेत् ।
 इदं रहस्यं परममिदं स्वस्त्ययन परम् ।
 मन्त्रवेदमयं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१६२
 यः श्रावयेद् ब्राह्मणसन्निधाने
 श्राद्धेषु यज्ञे सुरपूजनेषु ।
 सम्यक् फल तस्य लभेत् स कर्मणो
 पूर्विनापि जा तदनन्तमश्नुते ॥१६३

॥ देवी तन्त्र कथन ॥

देव्यास्तन्त्र विशेषेण शृणुत साम्प्रतं युवाम् ।
 येन चाराधिता देवी नचिराद्वरदा भवेत् ॥१॥
 पूर्वतन्त्राद्विशेषेण तथा वं तन्त्रमुत्तरम् ।
 विशेषेण च सामान्यात् कथित भवतो. पुरा ॥२॥
 पुनर्देव्या विशेषेण पूजाया भक्तिकर्मणि ।
 यानि तन्त्राणि शेषाणि तानि वक्ष्याम्यह पुनः ॥३॥
 य कुर्यात् तु महामायाभक्तमेकाग्रमानस ।
 अङ्गिना वार्ज्जमन्त्रेण तेन कार्यमिदं शुभम् ॥४॥
 फल पुष्प च ताम्बूलमन्नपानादिकं च यत् ।
 अदत्त्वा तु महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन ॥५॥
 पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः ।
 यथा तथा निवेद्यैव स्वमर्थमुपकल्पयेन् ॥६॥
 हृद्दयैव मदिराभाष्टं रक्तवर्णस्तथा स्निग्धम् ।
 सिंहं शव रक्तपद्मं व्याघ्रवारणसङ्गमम् ॥७॥
 गुरुं राजानमथवा महामायां ततो नमेत् ।
 पतिप्रताया भार्याया सदैव श्रुतुसगमम् ॥८॥

श्री भगवान् ने कहा—आप दोनों ही भली भाँति देवी के तन्त्र का श्रवण अव करिए । जिस तन्त्र के द्वारा आराधना की हुई देवी शीघ्र ही वरदा हो जाया करती है ॥१॥ पूर्व में दिये हुए तन्त्र से विशेष रूप से उसी भाँति यह निश्चय ही उत्तम तन्त्र है विशेषता से सामान्यता से यह पहिले आपके आगे कहा गया है ॥२॥ फिर देवी की पूजा में भक्ति कर्म में विशेष रूप से जो तन्त्र शेष हैं उनको मैं पुनः वनलाङ्गा ॥३॥ जो पुरुष महामाया की भक्ति को एकाग्र मन वाला होकर किया करता है । अङ्गी में अथवा अङ्गी के मन्त्र के द्वारा करता है । इससे यह शुभ कार्य है ॥४॥ फल—पुष्प—ताम्बूल और जो

अन्न पान आदिक है वह स्नमहा देवी को समर्पित न करके कभी भी नहीं खाना चाहिए ॥५॥ मार्ग में अथवा पर्वत के शिखर पर और समा में नाचक जैसे-तैसे निवेदन करके ही अपने अर्थ को अप कल्पित करना चाहिए ॥६॥ मदिरा के पात्र को—रक्त वर्ण वाली स्त्रियों को—सिंह को—शव को—रक्त पद्म को—व्याघ्र और बारण (गज) के सगम को देखकर ही गुरु के लिये राजा के लिये और फिर महामाया के लिये नमन अर्पण नमस्कार करे । जो भार्या पतिव्रता हो उसके साथ सदा ही ऋतुकाल में सङ्गम करना चाहिए ॥७॥॥

क्रियते चण्डिका ध्यात्वा तदा कार्यो विभूतये ।
शान्तिक पीष्टिक वापि तथेष्टापूर्त्तकर्मणा ॥६॥
यदा कुर्यान् तदा मत्वा देवीयात्रा समाचरेत् ।
तीर्थयात्रक यदा पश्येन् केवल गीतमेव वा ॥१०॥
तच्च देव्य निवेद्य कर्तव्य स्वोपयाजनम् ।
यदेव भूषण वासा मलयाद्भवमव वा ॥११॥
स्वकाये परियुञ्जोत तत्र मन्त्र धिया न्यसत् ।
व्यायामे च विद्याने च सभाया वा जल स्थल ॥१२॥
यत्र यत्र स्वय गच्छेत् तत्र देवी सदा स्मरेत् ।
यद् यत् कर्म तु पूजाग तत्तन्मन्त्रेण चाचरेत् ॥१३॥
मन्त्रहीन पूजनाङ्गं कम यत् तत्तु निष्फलम् ।
यस्मिन् कर्मणि योद्दिष्टो मन्त्रपूजामु भरेव ॥१४॥
नैवेद्यालोकमन्त्रेण तन् तन् कम समाचरेत् ।
देव्यास्तु मण्डलन्यासमिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ॥१५॥

चण्डिका देवी का ध्यान करके जो किया जाता है तब वह कार्य विभूति के लिये होता है । चाहे शान्तिक कर्म हों अथवा पीष्टिक कर्म हों तथा दृष्टा पूर्ण कर्म हों जब भी करे तब नमस्कार करके देवी मन्त्र का समाचरण करना चाहिए । जिस समय में तीर्थयात्रा(नृत्यगान)अथवा

केवल गीत को ही देखे और वह देवी के लिये निवेदन करके ही अपना उपयोजन करना चाहिए । जो भी कोई भूषण हो अथवा वस्त्र हो या मलय से समुत्पन्न चन्दन हो । ६-११। अपने शरीर में यदि उपभोग करे तो वहाँ पर धी अर्थात् बुद्धि से मन्त्र का न्यास करना चाहिए । चाहे वह व्यायाम में हो और वह विद्या में हो—सभा में हो—जल में हो या स्थल में हो—वही पर भी हो मन्त्र का बुद्धि से न्यास करे । १२। जहाँ-जहाँ पर भी स्वयं गमन करे वहाँ पर ही सदा देवी का स्मरण करना चाहिए । जो जो भी कर्म पूजन का अङ्ग स्वरूप हो उसका समाचरण मन्त्र के द्वारा ही करना चाहिए । १३। मन्त्र से हीन पूजन का जो भी कोई अङ्ग होना है वह तो सब निष्फल होना है । जिस कर्म में जो भी उद्दिष्ट हो हे भैरव ! जो मन्त्र पूजाओं में होवे । वह-वह कर्म नैवेद्य के आलोक मन्त्र के द्वारा उस-उस कर्म को समाचरित करे । देवी का मण्डल न्यास इष्ट मन्त्र के द्वारा करना चाहिए ॥१४॥१५॥

पूजान्ते मण्डल लिप्त्वा तिलक तेन कारयेत् ।
 सर्ववश्येन मन्त्रेण धर्मकामार्थदायिना ॥१६
 वलिदाने वलि छित्वा खड्गस्थं रुधिरं स्वर्कं ।
 सर्ववश्येन मन्त्रेण सलादे तिलक न्यसेत् ॥१७
 जगद्वशे भवेत् तस्य चतुर्यं कस्य वह्निना ।
 पृष्ठस्वरेण सयुक्तः कलाविन्दुसमन्वितः ॥१८
 अयोपान्तस्थकारान्तः सपरोक्षपि तथा पुनः ।
 द्विर्मोहोति हकारास्य तुर्यो द्विस्वरसयुतः ॥१९
 तृतीयवर्ग-प्रान्तेन तृतीयस्वरसज्जिता ।
 पूरितान्तो द्विधा वर्णस्तथा वादिचतुर्धकः ॥२०
 स्वरो द्वितीयश्च तथा क्षोमशब्दः पुर सरः ।
 पुरेति सहितः शोऽपि मित्र शत्रुश्च राक्षसः ॥२१

पूजा के अन्त में मण्डल को नीपकर उसके द्वारा त्रिक कराना चाहिये । और उसके सर्व वश मन्त्र के द्वारा मन्त्राट में त्रिक का न्यास करे जो कि छमें—वाम और अर्ध व प्रदान करने वाला है । ११६-१७। उसके वश में सम्पूर्ण जगत् हो जाता है । वहिनके माधवसार का चतुर्थ छट्टें स्वर में मयुक्त और बना विन्दु में सयुक्त हो । इसके अनन्तर उपांग में स्थित वागन्त तथा पुन मपर भी—द्विर्मोही—इति अर्थात् दो बार मोही—यह—हवार का—चौथा दो स्वरों में समन्वित हो । तीसरे वर्ग प्राग्न में—तृतीय स्वर मज्ञा वाता में पूरित अग्न वाला दो प्रकार का वर्ण हो तथा यदि चतुर्थक होवे । और द्वितीय स्वर तथा शीघ्र शब्द आगे हो वह भी पुर—इसमें सहित होव । वह भी मित्र—मन्त्र और राक्षस होना है ॥१८—७१॥

दक्ष प्रजा तथा राजा सर्वशास्त्र इति श्रुत ।

विनापि पूजन कुर्याद् यो रहस्ति सक् नर ॥२२

मन्त्रेणानेन सन्त सर्वे तस्य वशे भवेत् ।

राजा वा राजपुत्रो वा स्त्रियो वा यदाराक्षसा ॥२३

सर्वे तस्य वशं यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधा ।

प्रवामे पथि वा दुर्गे म्यानाप्राप्नो जनेऽपि वा ॥२४

पाशगारे निबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि वा ।

कुर्यात् तत्र महामायापूजा वै मानसो बुध ॥२५

मनोऽनये समुत्पन्ने मिहव्याघ्रममाकुने ।

पञ्चक्रागमे वापि कुर्यान्मानमपूजनम् ॥२६

मनसा हृदयस्यान्तर्ध्यात्वा योगाद्वरपीठम् ।

तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजा तत्र समाचरेत् ॥२७

मंत्र प्रपाठन स्नान दन्तधावनकर्म वै ।

अन्यच्च सर्वं मनसा कृत्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥२८

एष पूजा तथा राजा सर्व शास्त्र है—यह श्रुत है । पूजन के

बिना भी जो कोई मर रहस्तिताक करे । इस मन्त्र के द्वारा निरन्तर करे उसके सब वश में हो जाते हैं चाहे वह राजा हो—राजा का पुत्र हो—स्त्रियाँ हो अथवा यज्ञ तथा राक्षस हों । २२ । २३ । चारों प्रकार के भूत ग्राम सब उसके वश में हो जाया करते हैं । प्रवास में अर्थात् अपने घर में दूर देश में हो—अथवा मार्ग में हो—दुर्ग में हो—स्थान के न प्राप्ति होने पर कहीं भी हो—अथवा जल में हो । अथवा बारागार में घिरा हुआ हो अथवा प्रायोम वेश में हो अर्थात् निरन्तर भूखा हो वहीं पर महामाया की पूजा करके जो बिं वृद्ध पुरुष को मानसी हो बनती चाहिए । २४ । २५ । मन में भय के सम्पन्न हो जाने पर तथा मिह और व्याघ्र आदि के द्वारा समाकुल होने पर—दूसरे के चक्र में समागम होने पर मानसिक पूजन ही इन स्थितियों में रहने पर करना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा में अन्य कोई भी चारा नहीं होता है । २६ । मन के द्वारा हृदय के अन्दर योग नामक पीठ का ध्यान करके वहीं पर पृथिवी के मध्य में पूजन का समाचरण करना चाहिए । २७ । मंत्र—प्रसाधन स्नान—दन्तघावन कर्म और अन्य सभी मनके द्वारा ही करके पूजा करना चाहिए ॥२८॥

पञ्चानु पुष्पादिभि पूजा वहिर्दशे विधीयते ।
 तथा हृद्यपि कर्तव्या सर्वाश्च प्रतिपत्तय ॥२९॥
 अष्टम्या सतत देवीमाजक स्यात् सप्तम्यो व्रती ।
 नवम्या तु तथा पूजा कर्तव्या निजशोणितं ॥३०॥
 लिङ्गस्था पूजयेद् देवीं पस्तकस्था तथैव च ।
 स्थण्डिलस्था महामाया पादुकाप्रतिमासु च ॥३१॥
 चित्रे च त्रिशिखे खड्ग जलस्था वापि पूजयेत् ।
 पञ्चाशदङ्गुल खड्ग त्रिशिख च त्रिशूलकम् ॥३२॥
 शिलाया पर्वतस्याग्रे तथा पर्वतगह्वरे ।
 देवी सम्पूजयेन्नित्य भक्तिश्रद्धासमन्वित ॥३३॥

तत्र सिद्धेश्वरीयोनी ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
 ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ॥३६
 तत्समा कामरूपे तु सर्वत्रैव जले स्थले ।
 सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मी सर्वोत्तमा यथा ॥४०
 देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ।
 देवीक्षेत्र कामरूप विद्यतेऽन्यत्र तत्समम् ॥४१
 अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।
 तत शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ॥४२

विन्ध्याबल मे की हुई पूजा चौगुनी फल दायिका होती है—
 ऐसा कहा गया है और गङ्गा में भी की गई पूजा उसी के समान होती
 है । आर्यावर्त में—मध्यदेश में—ग्रहा चर्त में तथा पुष्कर में करतोया
 नाम की नदी के जल में उसमें भी चौगुनी फल देने वाली पूजा नदि
 १३६।३७। हे शैरव ! उसमें भी चौगुने फल देने वाली पूजा नदि
 कुण्ड होती है । उसमें भी चौगुनी जाल्मपेश्वर की सम्मिधि में की हुई
 बतलायी गयी है । ३८। वहाँ पर सिद्धेश्वरी की योगिनी में की गयी
 पूजा उससे भी दुगुनी बतायी गयी है । उससे भी चौगुने फल की देने
 वाली लौहित्य नद के जल में कही गयी है । ३९। उसी के समान काम
 रूप देश में सभी जगह जल और स्थल में मानी गयी है । जैसे सबसे
 श्रेष्ठ भगवान् विष्णु हैं तथा लक्ष्मी सबसे उत्तम है । ४०। काम रूप में
 सुरालय में देवी की पूजा प्रशस्त होती है । देवी का क्षेत्र काम रूप देश
 है और अन्यत्र उसके समान है अन्य स्थल में देवी विरला ही हुआ करती
 है और काम रूप में तो घर-घर में ही विद्यमान रहती हैं । इसमें
 भी सौ गुने महत्त्व वाली पूजा नील कूट पर्वत के शिखर पर होती
 है ॥४२॥

ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हेरुके शिवलिङ्गवे ।
 ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शंखपुत्र्यादियोनिषु ॥४३

तत जनगुणा प्रोक्ता कामान्ध्यायोनिमण्डले ।
 कामाध्याया महामायापूजा य इतवान् सङ्गत् ॥४४॥
 स चेह लभते कामान् परम शिवन्पदाम् ।
 न तस्य सदृशोज्योत्स्नि हृत्य तस्य न विद्यते ॥४५॥
 वाञ्छितार्थमवाप्तेह चिन्मयगुर्गभिजायते ।
 वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरवाधिता ॥४६॥
 सद्यमे गस्तवादे वा दुर्जय स च जायते ।
 वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कामान्ध्यायोनिमण्डले ।
 मङ्गलं तु पूजनं कृत्वा फलं गन्तुं नभेत् ॥४७॥
 भूतमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
 तस्यास्तु वैष्णवीतन्त्र मन्त्र प्राक् प्रतिपादिनम् ॥४८॥
 स्यात्वा या मूर्तयः प्रोक्ता शैवपुन्यादयोऽपरा ।
 तस्या एव विभागास्तान्मण्डलीगविनिर्गता ॥४९॥

उसमें भी दुर्गुनी हेंग्व शिवमिद्ध में की गई पूजा फलदायिनी होती है । उसमें भी दुर्गुनी फलदायिनी शैव पुण्यादि की योनियों में कही गई है । ४३ । उसमें भी मौनुनी अधिक महत्त्व वाली पूजा कामान्ध्या-देवा के योनि मण्डल में बनवाई गई है । कामान्ध्या में महामाया की पूजा जो एक बार कर चुका है वह इन लोग में कामनाओं की प्राप्त करता है और परलोक में भावान् शिव की स्वच्छता का नाम दिया करता है । इस पुण्य के समान अन्य कोई भी भाग्यशाली नहीं है और फिर उनका कोई भी हृत्य शैव नहीं रह जाता है ॥ ४४—४९ ॥ वह पुरुष अपना मनोवाञ्छित अर्थ इन लोग में प्राप्त कर चिरञ्जिव होता है । उसकी गति बाधु के ही समान हो जाती है जो कन्यों के द्वारा कभी भी वांछित नहीं हुआ करती है । ४६ । वह पुरुष सद्यमे में अथवा शास्त्रवाद में दुर्जय हो जाता है । वैष्णवी तन्त्र मन्त्र के द्वारा कामान्ध्या के योनि मण्डल में एक बार अभ्यर्चन करके उनका सोनुता फल का

लाभ किया करता है । ४७ । मूलमूर्ति महामाया योगनिद्रा जगन्मयी है उसका वैष्णवी तन्त्र मन्त्र पहिले ही प्रतिपादित कर दिया गया है । ४८ । अन्य जो मूर्तिर्णी कही गई हैं जो शैल पुत्री आदि दूसरी हैं वे सब उसी के विभाग हैं और उमके ही शरीर से निर्गत हुई हैं । ४९ ।

नि मरन्ति यथा नित्य सूर्यविम्बान्मरेचय ।
 देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या महामायाशरीरतः ॥५०॥
 तामामेवाङ्गपाणि वक्तव्यानि मया तव ।
 एकैव तु महामाया कार्यार्थ भिन्नता गता ॥५१॥
 कामाख्या तु महामाया मूलमूर्ति प्रगीयते ।
 पीठभिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ॥५२॥
 एक एव यथा विष्णुनित्यत्वाद् हि सनातन ।
 जनानामर्दनात् सोऽपि जनार्दन इति श्रुत ॥५३॥
 तथैव सा महामाया कामार्थ सङ्गता गिरी ।
 कानाख्येति सदा देवगद्यते सतत नरैः ॥५४॥
 यथा हि पुरुष कोऽपि च्छत्री च्छत्रग्रहाद् भवेत् ।
 स्नापक स्नानकाले वै कामाख्यापि तथाह्वया ॥५५॥
 महामायाशरीर तु कामार्थ समुपस्थितम् ।
 लोहितं कु कुम्भी पीत कामार्थमुपयोजितं ॥५६॥
 खड्ग त्यक्त्वा कामकाले सा गृह्णाति स्रज स्वयम् ।
 यदा तु त्यक्तकामा सा तदा स्यादसिधारिणी ॥५७॥

जिम रीति से नित्य ही सूर्य के विम्ब से किरणों नि सरण किया करती है ठीक उसी भाँति देवी महामाया के शरीर से उग्र चण्डाय निबला करती है । ५० । मेरे द्वारा आपको उन्हीं के अग्ररूप कहने चाहिये । महामाया का स्वरूप तो एक ही है और कार्यों के सम्पादन करने के लिये वही भिन्नता को प्राप्त हुई है । ५१ । कामाख्या तो महामाया है और मूलमूर्ति मान की जाया करती है । वह पीठों के द्वारा विभिन्न

नामो वाली होकर महामाया भायी जाया करती है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार से एक ही भगवान् विष्णु नित्य होने में सनातन हैं । जनों के पीडा का दूर करने में वही प्रभु जनार्दन—इस नाम से कह गये हैं । ५३ । ठीक उसी भाँति महामाया कामाक्षी गिरि में मङ्गल दूर्द की उसी समय में यह सदा देवों के द्वारा और नरों के द्वारा निरन्तर कामाख्या कही जाती है । ५४ । जैम बोई पुष्प छत्र के ग्रहण करने में छत्री हो जाया करना है और स्नान काल में स्थापक कहा जाता है और उसी रीति से नाम में यह कामाख्या हो गई हैं । ५४ । महामाया का शरीर काम के निये ममुपस्थित हुआ था । नोहित—कु कुम्भों में पीन जो कामाक्षी उपयोजित किये गये हैं । काम जान म स्वयं का परित्याग करके वह स्वयं ही सब् को ग्रहण किया करती है । जिस समय में वह काम को त्याग कर देने वाली होनी है उस समय में वह अमिच्छारिणी होनी है ॥ ५६—५७ ॥

कामजाले शिवप्रेने न्यन्तलोहितपक्व ।

रमते त्यक्तकामा तु सितप्रेनोपरि स्थिता ॥ ५८

तथैवेतन्मतो गत्या मिहत्या कमदा भवेन् ।

कदाचित् मा भितप्रेने कदाचिद्रक्नपक्वे ॥ ५९

कदाचित् केशरीपुंसे रमते कामरूपिणी ।

यदा लोहितपद्मस्था नयाग्रे केशरी चर ॥ ६०

यदा प्रेनगता देवी तदाऽन्य निरोक्षते ।

महामायाम्बरुपेण तदा मा वरदा भवेत् ॥ ६१

पूजाकाले तदा प्रेनपदममिहोपरि स्थिता ।

रक्नपदमे यदा ध्यायेन् तदाग्रे चिन्तयेद्धरिम् ॥ ६२

यदा ध्यायेद्धरो चान्यद्वयमग्रे विचिन्तयेन् ।

त्रिषु ध्यातेषु युगपन् प्रेनपद्महरो क्रमात् ॥ ६३

नोहित पञ्चज का न्यन्त वरन वाले शिव प्रेन काम काल में सित प्रेन के ऊपर नम्यन काम का परित्यक्त कर देने वाली रमण

करनी है । ५८ । उभी भीति दधर उधर गमन करके सिंह के ऊपर विराजमाना होती हुई कामदा हो जाती है । किसी समय में तो वह मित प्रेत पर होती है और किसी समय में रक्त पद्मज पर स्थित होती है । ५९ । किसी अवसर पर वह केशरी के पीठ पर स्थित होती हुई कामरूप वाली रमण किया करती है । जिस अवसर पर वह लोहित पद्म पर स्थित हुआ करती है तो उस समय में उसके आगे केशरी चरण किया करता है । ६० । जिस समय में प्रेत पर स्थित देवी होती है उस समय में आग अग्नि का निरीक्षण किया करती है । जिस समय में वह महामाया के स्वरूप से वह वरदा होती है । ६१ । उस समय में पूजा के काल में प्रेत—पद्म और सिंह के ऊपर स्थित होती है । जिस अवसर में रक्त पद्म में ध्यान करे तब आगे हरि का चिन्तन करना चाहिए । ६२ । जब हरि में ध्यान करे तब अन्य दो का आगे चिन्तन परे । एक ही साथ तीनों के ध्यान करने पर प्रेत पद्म हरि में क्रम से करना चाहिए । ६३ ।

स्थितेषु कामदा देवी तेषु ध्यायेत कामदाम् ।
 एकैकस्मिन्नपि तथा यथावच्छिन्तयेच्छिवम् ॥६४॥
 एका समस्ता जगता प्रकृति सा यतस्तत ।
 त्रिषणुग्रहाशिवैर्दोध्यते स जगन्मयी ॥६५॥
 सितप्रेता महादेवो ग्रहानोहितपञ्चमम् ।
 हरिर्हरिस्तु विज्ञेयो वाहनानि महोजय ॥६६॥
 स्वमूर्त्या वाहनत्व तु तेषा यस्मान्न युज्यते ।
 तस्मान्मूर्त्यन्तरं कृत्वा वाहनत्व गतास्त्रय ॥६७॥
 यस्मिन् यस्मिन् महामाया प्रीणाति सतत शिवा ।
 तेन तेनैव रूपेण आसनाग्नयस्त्रय ॥६८॥
 मिहोपरि स्थितं पद्मं रक्तं तस्योर्ध्वं शिव ।
 तस्योपरि महामाया वरदान्मयदायिनी ॥६९॥

एवं रूपेण यो ध्यात्वा पूजयेत् सततं शिवाम् ।
 ब्रह्मविष्णुशिवान्नेन पूजिता. स्युरसंशयम् ॥७०
 एवं सदा महामाया कामाद्या चैकरूपिणी ।
 ध्यानतो रूपतो भिन्ना तस्मात्ता तत्र पूजयेत् ॥७१
 एव विशेषतन्त्राणि दुर्गायाः कथितानि वाम् ।
 अङ्गमन्त्राणि तस्यास्तु श्रूयता नरमत्तमो ॥७२

उन पर कामदा देवी के स्थित होने पर कामदा का ध्यान करना चाहिए । एक—एक पर भी जैसे भी हो उसी भाँति शिवा का चिन्तन करे । ६४ । वह एक समस्तों जगनों की प्रवृत्ति जहाँ—तहाँ ब्रह्मा—विष्णु—शिव देवी के द्वारा वह जगन्मयी धारण की जाया करती है । ६५ । सित प्रेत महादेव हैं—ब्रह्मा तोहित पद्म है—हार हरि है ऐसे ही महान् भोज वाले के वाहन जानने चाहिए । ६६ । क्योंकि अपनी पूति से उनका वाहन होना युक्त नहीं होता है । इसी कारण से अन्य मूर्ति करके तीनों वाहनता को प्राप्त हुए हैं । ६७ । जिस—जिसमें महामाया शिवा निरन्तर प्रसन्न होती है । उसी—उसी रूप से तीनों ही आसन हुए थे । ६८ । सिंह के ऊपर रत्न पद्म स्थित है । उनके ऊर्ध्व में गत शिव है । उनके ऊपर वह देने वाली अभय दायिनी महामाया है । ६९ । इस प्रकार के स्वरूप से जो ध्यान करके निरन्तर शिवा का पूजन करना चाहिए । उससे ब्रह्मा—विष्णु और शिव बिना ही संशय के पूजित हो जाते हैं । ७० । इस प्रकार से सदा कामाद्या—एक रूप वाली महामाया ध्यान से और रूप से भिन्ना है इससे वहाँ पर उसका पूजन करना चाहिए । ७१ । इस प्रकार से दुर्गा के विशेष तन्त्रों को आप दोनों से कह दिये हैं । हे नरथोष्ठो ! अब उसके अङ्गमन्त्रों का आप श्रवण करिये । ७२ ।

॥ चण्डिका मन्त्र वर्णन ॥

अङ्गमन्त्राण्यह वक्ष्य चण्डिकाया विशपत ।
 यं समाराधिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ॥१॥
 तालव्यान्तो युत पृष्ठस्वरविन्दिन्दुवह्निभि ।
 तथोपान्त स्वरस्त्वेते बाह्य वाग्भवमेव च ॥२॥
 नेत्रबीज चण्डिकायास्त्रयमेतत् प्रकीर्तितम् ।
 वामललाटदाक्षिण्यनेत्रेषु त्रितय क्रमात् ॥३॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां सर्वदा कारण परम् ।
 मन्त्रमेतन्महागुह्य दुर्गाबीजमिति स्मृतम् ॥४॥
 यदा कात्यायनमुनेराश्रमेषु दिवौकसाम् ।
 तेजोभिर्धृतवायाभूद् देवी देवीवसस्तुता ॥५॥
 तदा नेत्रत्रयाद् देव्या मूलमूर्तिर्विन सृता ।
 तेजोमयी जगद्धात्री महिपासुरघातिनी ॥६॥
 तेजोभि सर्वदेवानां सा धृत्वा वपुरत्तमम् ।
 अस्त्राण्यनैकान्यादाय देवदत्तानि भागशः ॥७॥

श्री भगवान् ने कहा—विशेष रूप से चाण्डिका के अङ्ग मन्त्रों को मैं बतलाऊंगा । जिनके द्वारा समाराधन की गयी देवी चारों वर्गों के फल को प्रदान करने वाली होती है ॥ १ ॥ तत्तत्पुस्तक पृष्ठ स्वर विन्दु-इन्दु वह्नि से युक्त तथा स्वस्व (स्वर का) उपान्त ये बाह्य वाग्भव ही मैं तीनों चण्डिका के मन्त्र बीज कीर्तित किये गये हैं । गम ललाट दाक्षिण्य नेत्रों में क्रम से ये तीनों हैं । २ — ३ । ये धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष के सर्वदा परम कारण हैं । यह मन्त्र दुर्गा का परम गेयनीय है—यह कहा गया है ॥ ४ ॥ जिस समय भे देवी के आश्रमों में कात्यायन मुनि के तजों में देवी के समुदाय से समुत्त देवी काया को धारण करने वाली हुई थी ॥ ५ ॥ उसी समय मैं तीनों नेत्रों से देवी की मूल मूर्ति विनि सृज हुई थी । जो तेशों से परिपूर्ण थी और महिपा-

सुर के घात रग्ग वाली जगत् के धात्री अर्थात् पालन करने वाली थी । ६ । समाज देवी के तजा से उनमें अपना—उत्तम शरीर धारण किया था और भागा द्वारा देवी के लिए दूर अनन्त अस्त्रों का समादान किया था । ७ ।

सगण सानुबन्ध च सामात्यवलवाहनम् ।
 ब्रह्माद्यैः सस्तुता देवी जघान महिपासुरम् ॥८॥
 हते तु महिषे देवी पूजिता त्रिदशंस्ततः ।
 अनेनैव तु मन्त्रेण लोके द्याति च मा गता ॥९॥
 ततः प्रभृति सा मूर्ति सर्वे सर्वत्र पूज्यते ।
 मलमूर्ति सुगुप्ताभूत् स्वमूर्त्या द्यातिमानता ॥१०॥
 देवानां वरदानेन ब्रह्माद्यैरुपयोजनान् ।
 यन्मूर्ति पूज्यते सर्वेऽन्ता मूर्तिं शृणु भैरव ॥११॥
 जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृततशेखराम् ।
 लोचनत्रयसयुक्ता पूर्णन्दुसदृशाननाम् ॥१२॥
 तप्तवाचनवर्णाभा सुप्रनिष्ठा सुलोचनाम् ।
 नवयीवनसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिताम् ॥१३॥
 सुचारुदशना तीक्ष्णा पीनोन्नतपयोधराम् ।
 त्रिभङ्गस्थानसस्थाना महिपासुरमदिनीम् ॥१४॥

वह गणों और अनुबन्ध के सहित तथा अमात्य बल और वाहनों से समुत वह देवी ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा भली भाँति सन्तुष्ट की हुई थी और फिर उस देवी ने महिपासुर का वध किया था । ८ । महिष असुर के निहत हो जाने पर देवी देवों के द्वारा पूजित हुई थी । और इसी मन्त्र के द्वारा वह लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी । ९ । तभी से लेकर वह मूर्ति सबके द्वारा सर्वत्र पूजी जाया करती है । मूल मूर्ति तो सुगुप्त हो गई थी और अपनी मूर्ति से ही द्याति को प्राप्त हो गई थी । १० । देवों के वरदान से ब्रह्मा आदि के द्वारा उपयोजन से जा

मूर्ति सबके द्वारा पूजी जानी है हे भैरव ! उगवा ध्वज तुम प्रदत्त करो । ११ । उम मूर्ति का स्वरूप वर्णन किया जाता है—वह उटा जूटो में समायुक्त है और अर्धे चन्द्र उसके मस्तक में विराजमान है । तीन नेत्रों से उपशोभित है और पूर्ण चन्द्र के समान उमका मुख है । तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्ण की आभा वाली है—वह सुन्दर प्रतिष्ठा में युक्त और परम मनोहर लोचनों वाली है । उमका स्वरूप नूतन यौवन से युक्त है तथा सभी प्रकार के आभूषणों में बहु विभूषित है । १२ । उसकी परम सुन्दर दन्त पवित्र हैं—तीक्ष्ण और वह पीन तथा उन्नत स्तनों से समन्वित है । त्रिशङ्ग स्थानों के मस्यान वाली और वह महिष अमुर के घात करने वाली है ॥१४॥

मृणालायतसस्पर्शदशबाहुसमन्विताम् ।

त्रिशूल दक्षिण देय खड्ग चक्र क्रमादधः ॥१५॥

तीक्ष्णबाण तथा शक्ति बाहुसधेपु सङ्गताम् ।

खेटक पूर्णचाप च पाशं चाकुशमूर्धतः ॥१६॥

घण्टा च परशु चापि वामेऽधः प्रतियोजयेत् ।

अधस्तान्महिय तद्वद्विशिरस्क प्रदर्शयेत् ॥१७॥

शिरश्छेदोद्भव तद्वद्दानव खड्गपाणिनम् ।

हृदि शूलेन निर्भिन्न नयंदन्त्रविभूषितम् ॥१८॥

रक्ततरवतीकृताग च रक्तविस्फुरितेक्षणम् ।

वेष्टित नागपाशेन ध्रुक्कुटीकुटिलाननम् ॥१९॥

सपाशवामहस्तेन धृतकश च दुर्गया ।

वमद्बुधिरवत्र च देव्याः सिंह प्रदशयेत् ॥२०॥

देव्यास्तु दक्षिण पाद सप्त सिंहोपरि स्तितम् ।

किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममगुष्ठ महिषोपरि ॥२१॥

मृणाल के सदृश आयत और भले स्पर्श वाली दश बाहुओं से युक्त है । दाहिने हाथ में त्रिशूल—देव—खड्ग—चक्र क्रम से नीचे की

योग हैं । १५ । बाहूओं के संधी में तीटण बाण तथा अग्नि से सङ्गत है । ऊपर की ओर घटक—पूर्ण चाप—पाश और अनुम घातक किमे हुए हैं । १६ । घण्टा—परशु की नीचे वाम भोग में प्रतिरोजित करना चाहिये । नीचे की ओर बिना शिर वाले महिष असुर को प्रदर्शित करना चाहिए । १७ । जिसका शिर छिन्न हो गया है और जो दानव अपने हाथ में खड्ग लिए हुए हैं । जो हृदय में बल से विद्ध हो रहा है और जिसकी अंतर्द्विया बाहिर निकल रही है । १८ । समित होते हुए रक्त से जिसके अङ्ग रघिर प्लापित हो रहे हैं और जो रक्त से विस्फुरित नेत्रों वाला हो रहा है । जो नाथ पाश से घटित है और जो क्रोधावेश के कारण कुटिल भौंहों से समान्वित मुख वाला है । १९ । जो पाश के सहित बायें हाथ से दुर्गा के द्वारा मस्तक के केश पकड़ा हुआ है । जिसने मुख से रघिर प्रवाहित हो रहा है ऐसा देवी के निह का भी प्रदर्शन करना चाहिए । २० । देवी का दाहिना चरण सिंह के ऊपर स्थित है तथा कुछ ऊपर की ओर वाम चरण का अगुष्ठ महिषा सुर के ऊपर स्थित है ॥२१॥

उप्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोष्ठा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चामुण्डा चण्डिका तथा ॥२२॥
आभि, शक्तिभिरष्टाभि, सतत परिवेष्टिताम् ।
विस्तार्यत् सतत देवी धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥२३॥
एतस्याश्चागमन्त्र तु दुर्गातन्त्रमिति श्रुतम् ।
शृणुष्वकमना भूत्वा धर्मकामार्थसाधनम् ॥२४॥
यद्दिनमायां स्वर, पण्ठी हान्तः प्रान्तोर्ज्ज्वररेष च ।
दुर्गादिरिति सोद्धार दुर्गागमन्त्र मिति श्रुतम् ॥२५॥
रवौ मकरराशिस्थे यां भवेन् सितपचमौ ।
सम्पामनेन मन्त्रेण सम्पूज्य विधिचच्छिताम् ॥२६॥
पुनराष्टम्या पुनर्देवी पूजयित्वा यथाविधि ।

नवम्या वलिदानानि प्रभूतानि समाचरेत् ॥२७

सन्ध्याया च वलिं कुर्यान्निजमात्रासंगुदितम् ।

एव वृत्ते तु वर्याण्युक्तो नित्य प्रमोदते ॥२८

इस प्रकार के ध्यान की करते हुए फिर देवी का ध्यान करे जो
उप चण्डा—प्रचण्डा—चण्डोद्या—चण्ड नायिका—चण्डा—चण्डवती—
चामुण्डा—चण्डिका है । इन आठ शक्तियों से निरन्तर परिवर्तित है ।
इसी रीति से घर्म—अथ—काम और मोक्ष प्रदान करने वाली देवी का
निरन्तर चिन्तन करना चाहिए । २२ । २३ । इसका एक मन होकर
श्रवण करो । यह धर्म काम और मर्त्य का साधन है । २३ । वहिन
भार्गो छटवा स्वर हान्त प्रान्त और अग्नि दूर्मादि इति सोङ्कार दुर्गा
मन्त्र—यह श्रुत है । इसका अङ्ग मन्त्र दुर्गा मन्त्र—यह श्रुत किया
गया है । २४ । २५ । सूर्य को मकर राशि पर स्थित होने पर जो
शुक्ल पक्ष की पञ्चमी होती है । उसमें इस मन्त्र के द्वारा विधि विधान
साथ शिवा का भली भाँति पूजन करके फिर शुक्ल पक्ष की ऋषी
में यथा विधि देवी का पूजन करके नवमी तिथि में वृद्ध वलिदावो का
समाचरण करना चाहिए । २६ । २७ । और सन्ध्या के समय में अपने
शरीर से उक्षित रुधिर की बलि करनी चाहिए । उस प्रकार से
करने पर कल्याणों से युक्त होता हुआ पुरुष नित्य ही प्रमुदित होता
है ॥२८॥

पुत्रपौत्रसमृद्धस्तु धनधान्यसमृद्धिणि ।

दीर्घायु सर्वसुभगो लोकेऽस्मिन् स च जायते ॥२६

सिताष्टम्या तु चैत्रम्य पुष्पैस्तत्कालसम्भवं ।

अशोकैरपि य कुर्यान्मन्त्रेणानेन पूजनम् ॥३०

न तस्य जायते शोको रोमो वाप्यथ दुर्गति ।

ज्येष्ठे तु शुक्लपक्षस्य अष्टम्या समुपोषित ॥३१

नवम्या सतिनैरन्नेर्यावकैरथ मोदकं ।

वैष्णवीतन्त्रत्रेण दुर्गाविजेन भैरव ।
 वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण पवित्रारोपण चरेत् ।
 विश्वाच्छ्रावण प्राप्य देव्या कुर्यात् पवित्रकम् ॥३७
 सर्वेषामेव देवानां पवित्रारोपण चरेत् ।
 आपाद्वे श्रावणे चापि सवत्सरफलप्रदम् ॥३८
 प्रतिपद्वनदस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथिः ।
 द्वितीया तु श्रियो देव्यास्तिथीनामुत्तमा स्मृता ॥३९
 तृतीया भवभाविन्याश्चतुर्थी तत्सुतस्य च ।
 पञ्चमी सोमराजस्य पष्ठी प्रोक्ता गृहस्य च ॥४०
 सप्तमीभास्वरस्योक्ता दुर्गायाश्च तथाष्टमी ।
 मातृणां नवमी प्रोक्ता वासुकेर्दशमी मता ॥४१
 एकादशी ऋषीणां च द्वादशी चक्रपाणिन ।
 त्रयोदशी त्वनङ्गस्य भगवत् चतुर्दशी ॥४२

पवित्राओ का आरोपण देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला होता है । हे भैरव ! दुर्गा तन्त्र से मन्त्र से—दुर्गा बीज के द्वारा पवित्रा रोपण कर । ३६ । वैष्णवी तन्त्र के मन्त्र के द्वारा और दुर्गा बीज से हे भैरव ! पवित्रारोपण का समाधरण करे । विशेष रूप से श्रावण को प्राप्त करके देवी का पवित्रारोपण करना चाहिए । ३७ । समस्त देवी का पवित्रारोपण करना चाहिए । आपाद्वे में अवका श्रावण में सवत्सर के फल का प्रदायक होता है । ३८ । धनद की प्रतिपत्ति पवित्रारोपण में बड़ी मयी है । द्वितीया तो देवी के श्री की है जो अन्य सब तिथियों में उत्तम है—लेगा कहा है । ३९ । तृतीया तिथि पर भाविनी की है और चतुर्थी उगव गृह की है पंचमी सोमराज की है और पष्ठी गृह की बनायी गयी है । ४० । सप्तमी तिथि भगवान् भुवनेश्वर की कही गयी है । तथा अष्टमी तिथि दुर्गा देवी की है । मातृ गणा की नवमी तिथि बड़ी है तथा दशमी तिथि वासुकि की होती है ।

। ४१। एकादशी ऋषियो की है और द्वादशी भगवान् चक्र पाणि की होती है। त्रयोदशी कामदेव की है और चतुर्दशी तिथि है ॥४१॥४२॥

ब्रह्मणो दिक्पतीना च पौर्णमासी तिथिर्मता ।
 पवित्रारोपण यो वं देवाना न समाचरेत् ॥४३
 तस्य सात्रत्सरीपूजाफल हरति केशव ।
 तस्माद् यत्नेन कर्तव्य पवित्रारोपण परम् ॥४४
 कृते बहुफलप्राप्तित्स्तपूजा सपला भवेत् ।
 पवित्र येन सूत्रेण यथा कार्यं विजानता ॥४५
 तच्छृणुष्व प्रमाणं तु वचनान्मम भैरव ।
 प्रथमं दर्शसूत्रं च पद्मसूत्रं ततः परम् ॥४६
 ततः क्षीमं सुपुण्यं स्यात् कार्पासकमलं परम् ।
 पट्टसूत्रं तथान्येन पवित्राणि न कारयेत् ॥४७
 विचित्राणि पवित्राणि कर्तव्यानि तु यत्नतः ।
 गन्धमान्यं सुरभिभि रचितानि यथोदितम् ॥४८
 कन्या च कर्तयेत् सूत्रं प्रमदा च पतिव्रता ।
 विधवा माधुशीला वा दुःखशीला न कर्तयेत् ॥४९

ब्रह्मर्षी की और दिक्पालों की पौर्णमासी तिथि मानी गयी है । जो पुरुष देवों की पवित्राओं का आरोपण नहीं करता है । उसकी साम्ब-
 त्मरी पूजा के पत्र की भगवान् केशव हरण कर लिया करते हैं । इसी
 लिये प्रयत्न पूर्वक पवित्रारोपण अवश्य करना चाहिए । ४३ । ४४ ।
 ऐसा करने पर बहुत फल की प्राप्ति होती है और पूजा से फल होती
 है । पवित्रा त्रिम सूत्र से और जैसे भी करना चाहिए उसका ज्ञान होना
 चाहिए तभी उसे पवित्रारोपण करना चाहिए । ४४ । हे भैरव ! मेरे
 श्रवण से उमका प्रमाण आप अब श्रवण करिये । सर्व प्रथम तो दर्श सूत्र
 है उसके परपद्म सूत्र होता है । ४५ । इसके पश्चात् क्षीम सुपुण्य होना

है और इससे पर कपाम का सूत्र हुआ भरता है फिर यह सूत्र है तथा अन्य के द्वारा पवित्रो का करावे । ४६ । ४७ । यत्न पूर्व का पवित्र विचित्र करने चाहिए । अर्थात् कई रङ्गों से समन्वित होने चाहिए । गन्धमाग्य सुरभियो मे जैसा कहा गया है विरचित होने चाहिये । ४८ । उम सूत को क'या कर से अथवा पति व्रता प्रमदा उसको करते । जो विधवा हो और माधु शीला हो वह उमको करने किन्तु दु शील या दुष्ट शील कभी भी इसको न करे ॥४६॥

यत्सूचिभिन्न दग्ध च भस्मधूमाभिगुण्ठितम् ।
तद्वर्जनीय यत्नेन सूत्रमस्मिन् पवित्रके ॥५०
उपयुक्त चाखुजग्ध मद्यरक्तादिदूषितम् ।
मलिन नीलरक्त च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥५१
सूत्रं पवित्रं कूर्वात कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।
कनिष्ठं यन् पवित्रं तु सप्तविंशतितन्तुभिः ॥५२
मर्त्यलोके यज्ञं धीतिं सुखसौभाग्यवर्धनम् ।
चतुःपञ्चाशता प्रोक्तं तन्तूनां मध्यमं परम् ॥५३
दिव्यभोगावहं पुण्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।
उत्तमं चैव तन्तूनामष्टोत्तरशतेन वै ॥५४
तददत्त्वा तु महादेव्यै शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
उत्तमं वासुदेवाय दद्याद् यदि पवित्रकम् ॥५५
तदा याति हरेर्लोकं साधको नात्र मशयः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु रत्नमालेति गीयते ॥५६

इस पवित्रा की रचना मे ऐसे सूत्र का वर्जन कर देवे जो दुर्ग से भिन्न हो—दग्ध हो—भस्म और धूम से अभिगुण्ठित हो । ५० । जिमका उपयोग किया गया हो—जो चूहों के द्वारा कुतरा हुआ हो—मद्य एव रक्त से दूषित हो—मलिन—नील रक्त हो—ऐसे सूत्र परनपूर्वक परिवर्जन कर देना चाहिए ॥ ५१ ॥ सूत्रों से कनिष्ठ—

और उत्तम पवित्रा की रचना करे । कनिष्ठ जो पवित्रा है वह सत्ताईस तन्तुओं से होता है । ५२ । यह पवित्रा मर्त्यलोक में यश—कीर्ति—सुख और सौभाग्य का बढ़ाने वाला होता है । चौजन तन्तुओं का पवित्रा मध्यम कहा गया है । ५३ । परम दिव्य भोगों का आवहन करने वाला पुण्य—स्वर्ग और मोक्ष का प्रगट करने वाला उत्तम होता है । एक सौ आठ तन्तुओं के द्वारा निर्मित होता है । ५४ । उसको महादेवी के लिये अर्पित करके मनुष्य भगवान् शिव की सामुज्यता की प्राप्ति किया करता है । यदि भगवान् वामदेव के लिये उत्तम पवित्रा को समर्पित करे तो वेद पुरुष सीधा हरि के साक में गमन किया करता है—इसमें शेष मात्र भी सत्य नहीं है । एक हजार आठ तो रत्नमाना पाई जाती है ॥५५—५६॥

पवित्रं तु महादेव्या भुक्तिभुक्तिप्रदायकम् ।

रत्नमाल्यां तु यो यच्छेन्महादेव्यं पवित्रकम् ॥५७

कल्पवोटिसहस्राणि स्वर्गे स्थित्वा शिवो भवेत् ।

एतत् तु नागहाराद्यं शकरस्य पवित्रकम् ॥५८

अष्टोत्तरसहस्रेण तन्तुना सुमनोहरम् ।

य प्रयच्छति मह्यं तु स यावास्तन्तुसंचय ॥५९

रावत्यल्पसहस्राणि मम लोके प्रमोदते ।

अष्टोत्तरसहस्रेण वनमाला हरे स्मृता ॥६०

तन्तूना तस्य दानेन बिष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।

यत् कनिष्ठं पवित्रं तु नाभिमानं भवेत् तु तत् ॥६१

द्वादशग्रन्थिसयुक्तात्ममानेन योजयत् ।

ऊर्ध्वप्रमाणं मध्यं म्याद् ग्रन्थीनां तत्र योजयेत् ॥६२

चतुर्विंशतिमप्यस्य मानमात्मन एव च ।

पवित्रमुत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं च भैरवं ॥६३

महादेवी को अर्पित पवित्रा तो मुक्ति और भुक्ति के प्रदान

करने वाला होता है । जो पुण्य रत्न माना मे महादेवी की सेवा में पवित्रा का समर्पण किया करता है ॥ १७ ॥ वह सहस्र करोड़ कल्पों तक स्वर्ग में निवास करके फिर ही हो जाया करता है । यह तो नागहार नाम वाला भगवान् शङ्कर का पवित्रा होता है । १८ । एक सहस्र आठ तन्त्रों के द्वारा परम मनोहर पवित्रा बनाकर जो मेरे लिये अर्पित किया करता है वह उसमें जितने ही तन्त्रों का सम्बन्ध होता है उतने ही सहस्र कल्पों तक मेरे ही लोक में आनन्द का उपभोग किया करता है । एक हजार आठ से भगवान् हरि की वनमाला कही गई है ॥ १९—२० ॥ उसी तन्त्रों के ज्ञान में भगवान् विष्णु के स्तुत्य की प्राप्ति किया करता है । जो कनिष्ठ पवित्रा होता है वह नाभि पर्यन्त रहने वाला होता है । २१ । बारह श्रितियों से समन्वित आत्ममान के द्वारा उसे योजित करे । ऊहमें तक जाने वाला मध्यम पवित्रा होता है । वहा पर ग्रन्थियों की योजित कर लेना चाहिए । २२ । इसका चौबीस वा मान आत्मा का है वह उत्तम बोटि का पवित्रा होता है । हे भैरव ! वह जानु पर्यन्त कहा गया है । २३ ।

पटत्रिंशत्तन्त्रग्रन्थीना योजयेदात्ममानत ।

शतमष्टोत्तर कार्यं ग्रन्थीना सुविधानत ॥२४॥

नागहाराह्वय तद्वदन्येषु च विधानत ।

पवित्रं क्रियते येन सत्रेण ग्रन्थय पुन ॥२५॥

तदग्न्यवर्णसूत्रेण वर्तय्या लक्षणांश्विता ।

ग्रन्थि तु सप्तभि कुर्याद् वेष्टनेस्तु वनिष्ठरे ॥२६॥

द्विगुणर्मध्यमे कुर्यात्त्रिगुणंरुस्तमे तथा ।

अधियास्य पवित्राणि पूर्वस्मिन् दिवसे सत ॥२७॥

मन्त्रन्यास पवित्रे तु कुर्यात् तत्रापरेऽहनि ।

दुर्गावीजेन मन्त्रेण मन्त्रन्यास द्विजग्वरेत् ॥२८॥

वेणुवातन्त्रमन्त्रेण कुर्यान्न्ये च भैरव ।

प्रतिग्रन्थि स्वयं कुर्यान्मन्त्रन्यास विचक्षण ॥६६

अगुष्ठाग्रेण जपन मालायामिह भैरव ।

यावन्तो ग्रन्थयश्चात्र तावन्त्येव च सन्ययसेत् ॥७०

आत्मा के अर्थात् अपने मान से छत्तीस ग्रन्थियों का योजित करे । एक सौ आठ ग्रन्थियों का सुविधान से करना चाहिए । ६४ । नागहार नामक जो है उसी के समान अन्यो में विधान से पवित्र किया जाता है जिस सूत्र के द्वारा पुनः ग्रन्थियाँ होती हैं ॥ ६५ ॥ उनमें अग्य वर्ण वाले सूत्र से लक्षण से समन्वित पवित्रा की रचना करनी चाहिए । कनिष्ठक में सात छेदनों के द्वारा ग्रन्थि करे । मध्यम में दुगुनी करे और उत्तम में तिगुनी करे । पूर्व दिन में पवित्राओं का अधि-
वासन करना चाहिए । फिर वहाँ दूसरे दिन में पवित्रा में मन्त्र न्यास करे । ६६—६७ । दुर्गा बीज मन्त्र में द्विज को मन्त्र का न्यास करना चाहिए । ६८ । हे भैरव ! अन्य लोग वैष्णवी तन्त्र के मन्त्र के द्वारा करे । विचक्षण पुरुष को प्रत्येक ग्रन्थि में स्वयं मन्त्र का न्यास करना चाहिए । ६९ । हे भैरव ! यहाँ पर माला में अगुष्ठ के अग्र भाग से जप है । यहाँ पर जितनी भी ग्रन्थियाँ हों उतनी ही भस्मी भाँति न्यास करे । ७० ।

मन्त्राणि तस्य तेन स्यादेवांगोपनियोजनम् ।

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्त्वन्यास तु कारयेत् ॥७१

एकत्र न्यस्य सकल यजपात्रे पवित्रम् ।

तस्मिन् निधाय गन्धादि पुष्पाणि च सुशोभनम् ॥७२

तत्त्वन्यास ततः कुर्यादगुल्यग्रेण भैरव ।

विष्णोस्तु मूलमन्त्रेण तत्त्वन्यास तु कारयेत् ॥७३

इदं विष्णुरिति प्रोक्तं मन्त्रन्यासं द्विजस्य हि ।

शूद्राणां मन्त्रविन्यासे मन्त्रो वै द्वादशाक्षरः ॥७४

प्रासादेन तु मन्त्रेण तत्त्वन्यासो मम स्मृतः ।

अनेन मन्त्रन्यासं च दानं चानेन कारयेत् ॥७५

कु कुमोशीरवपूरं श्चन्दनादिविलेपनं ।
 पवित्राणि विलिप्याथ तत्त्वन्यास तु योजयेत् ॥७६॥
 सम्पूज्य मण्डले देवी विधिवत् प्रयतो नर ।
 शैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ॥७७॥

उसक मन्त्र उसस भङ्गापयाजन हावें । दुर्गा तन्त्र के मन्त्र के
 द्वारा तत्त्व न्यस कराना चाहिये ॥ ७६ ॥ एक स्थान में दश पात्र में
 म समस्त पवित्राभा का रखकर उसमें मन्त्र आदि और पुष्पो को
 रखकर दरम शोषन ह भैरव । अमुली के अग्रभाग ॥ फिर तत्त्व न्यास
 करना चाहिए । भगवान् विष्णु के मूल मन्त्र के द्वारा तत्त्व न्यास करावे
 ॥७२—७३॥ द्विज का मन्त्र न्यास ' इदं विष्णु '—यह कहा गया है ।
 शूद्रो के मन्त्र विष्णु म मन्त्र बारह अक्षरो का होता है ॥ ७४ ॥
 प्रासार मन्त्र से मेरा तत्त्व न्यास कहा गया है । इसके द्वारा मन्त्र न्यास
 और इसमें ही दान कराव । ७५ । कु कुम—उशीर—कर्पूर और चन्दन
 आदि विलेपनी से पवित्राओं का विलपन करके तत्त्व न्यास को योजन
 करना चाहिए । ७६ । प्रयत्न होने हुए मनुष्य को विधिपूर्वक मण्डल में
 देवी का भले प्रकार से अभ्यवन करके हे भैरव । ओ शैष्णवी तन्त्र से
 मन्त्र के द्वारा दुर्गा तन्त्र से करे । ७७ ।

दुर्गावीजेन दद्यात् तु देव्या भूधिन पवित्रकम् ।
 यस्य देवस्य य प्रोक्तस्तस्य तेनैव मण्डलम् ॥७८॥
 यस्म यस्य तु यो मन्त्रो यथा ध्यानादि पूजनम् ।
 तत् तत् तेनैव मन्त्रेण पूजयित्वा प्रयत्नत ॥७९॥
 तस्यैव वीजमन्त्राग्या भूधिन दद्यात् पवित्रकम् ।
 पवित्र मम यो दद्याद् देवेभ्यश्च पवित्रकम् ॥८०॥
 सर्वेषामेव देवानां सम्पूर्णार्थश्च भैरव ।
 अग्निर्ब्रह्मा भवानो च गजवक्त्रो महोरय ॥८१॥
 स्वन्दो भानुमार्तृगणो दिक्पालाश्च नवग्रहा ।

एतान् घटेषु प्रत्येक पूजयित्वा यथाविधि ॥८२
 पवित्र मूर्ध्नि चैकैक दद्यादेव्य समाहित ।
 पञ्चगव्यचरु कृत्वा देव्यं दत्त्वाहुतित्रयम् ॥८३
 तेनैव विष्णवे दत्त्वा शम्भवे च यथाविधि ।
 आज्यैरष्टोत्तरशत तिलैराज्यैस्तथैव च ॥८४

दुर्गा बीज के द्वारा देवी के मस्तक में पवित्रा का समर्पण करना चाहिए । जिस देव का जो कहा गया है उसका उसी से ही मण्डल होना है । ७६ । जिस-जिसका जो मन्त्र है, जैसा भी ध्यान आदि पूजन है वह-वह उसी मन्त्र से ही यत्नपूर्वक पूजन करके उसके ही बीज और मन्त्र से मस्तक में पवित्रा का अर्पण करे । जो भी मुझको पवित्रा का समर्पण करता है और देवी के लिये देता है ॥ ७६—८० ॥ हे भैरव ! सभी देवी का सम्पूर्ण अर्थ होता है । अग्नि—ब्रह्मा—भवानी—गज-ध्वज—महोरग—स्वन्द—भानु—मातृगण—दिव्यात्म—नवग्रह—इन सबको घटों में यथा विधि—प्रत्येक का पूजन करके परम सावधान होते हुए इनके लिये एक एक पवित्रा मस्तक में समर्पित करे पञ्चगव्य चरु को मना करके देवी के लिये तीन आहुतियाँ देवे । उसी से भगवान् विष्णु और शम्भु के लिये यथा विधि देवे । आज्य (घृत) से तथा तिल संयुक्त घृत से अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देनी चाहिये । ॥ ८१—८४ ॥

अष्टोत्तरशत दद्यान्महादेव्यं च साधक ।
 एवमेव विधानेन विष्णवादीनां च साधक ॥८५
 पवित्रारोपणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
 नैवेद्यं विविधं पेयं वटपिष्टकमादवे ॥८६
 कूपमाण्डनारिखेलैश्च खज्जुरैः पनसैस्तथा ।
 आम्रदाडिमकर्वादिद्राक्षादिविविधं फलं ॥८७
 भदयभोज्यादिभिः सर्वमन्त्र्यमसिस्तथोदनं ।

गन्धं पुष्पैस्तथा धूपदीपैश्च सुमनोहरैः ॥८८॥
 वासोभिर्भूषणैश्चैव भवानीसाधको यजन् ।
 नटनर्तकसङ्घंश्च वेश्याभिश्चैव भैरव ॥८९॥
 नृत्यगीतो समुदितो जागर करयेन्निशि ।
 भोजयेद् ब्राह्मणाश्चापि जातीनपि द्विजातिभिः ॥९०॥
 पवित्रारोपणे वृत्ते दक्षिणामुपदापयेत् ।
 हिरण्यं वा निलघृतं वासो वा श्यावमेव वा ॥९१॥

साधना करने वाले को महादेवी के लिये एक सौ आठ आहु-
 तियाँ देनी चाहिए । इसी विधान से भगवान् विष्णु आदि को भी साधक
 द्वारा आहुतिर्ण देनी चाहिए । ८५ । धर्म— काम और अर्थ की सिद्धि
 के लिये पवित्रारोपण करना चाहिए । परमावश्यक कृत्य है । अनेक
 प्रकार के नैवेद्य—पेय—पिष्टक—मोदनी से—कूटमाण्ड—नारिकेल—
 खजूर—पतस—आम्र—दाडिम—ककं—रत्नाक्ष—आदि विविध भूति
 के फलों के द्वारा—समस्त भक्ष्य भोज्य आदि से—मत्स्य—मांस बीदन
 से—गन्ध—पुष्प—धूप—दीप—सुगन्ध मोह वस्त्र—भूषण से भवानी का
 साधक यजन करे । ह भैरव । नर और नर्तकों के समुदाय तथा वेश्याओं
 के द्वारा देवी का मनो विनोद करे ॥ ८६—८९ ॥ नृत्य और गीतों से
 समुदित होकर रात्रि में जागरण करे । द्विजातियों के साथ और जातियों
 को तथा ब्राह्मणों को भोजन कराव । पवित्रा रोपण के हो जाने पर
 दक्षिणा का उपदाय न करे । दक्षिणा में सुवर्ण—गो—तिस—घृत—
 वस्त्र अथवा श्याव ही दवे ॥९०॥९१॥

इमं मन्त्रं ततः पश्चात् साधकः समुदीरयेत् ।
 मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ॥९२॥
 इयं सावत्सरी पूजा तवास्तु परमेश्वरि ।
 ततो विसर्जयेद् देवीं पूजामि प्रतिपत्तिभिः ॥९३॥
 एव कृते पवित्राणां दाने देव्या यथाविधि ।

संवत्सरस्य या पूजा सम्पूर्णा वत्सराद् भवेत् ॥६४॥

कल्पकोटिशत यावद् देवीगेहे वसेन्नरः ।

तत्रापि सुखसीभाग्यसमृद्धिरतुला भवेत् ॥६५॥

इसके अनन्तर साधक इस मन्त्र का उच्चारण करे—हे परमेश्वरि ! मणि—विद्रुम की मालाओं से और मन्थर के कुमुम आदि के द्वारा आपकी यह साम्बत्सरी पूजा सम्पन्न होवे । इसके उपरान्त पूजाओं से और प्रति पत्तियों के द्वारा देवी का विमर्जन करना चाहिए ॥६२॥ ॥६३॥ इस रीति से देवी को यथा विधि पवित्राओं के दान के हो जाने पर सम्बत्सर की जो पूजा है वह वासर से सम्पूर्ण हो जाया करती है । ॥६४॥ वह मनुष्य सबको करीब वत्सों तक देवी के ही घर में निवास किया करता है और वहाँ पर भी उसको सुख—सीभाग्य की अतुला समृद्धि होती है ॥६५॥



॥ महिषासुरो पादयान ॥

दुर्गातिन्त्रेण मन्त्रेण कुर्याद् दुर्गामहोत्सवम् ।

महानवम्या शरदि बलिदान नृपादयः ॥१॥

आश्विनस्य तु शुक्लस्य भवेद् ता अष्टमी तिथिः ।

महाष्टमीति सा प्रोक्ता देव्याः प्रीतिकरी परा ॥२॥

ततोऽनु नवमी या स्यान् मा महानवमो स्मृता ।

सा तिथिः सर्वलोकानां पूजनीया शिवाप्रिया ॥३॥

अनयोर्वत्स पूजायां विभेदं शृणु भैरव ।

सम्पूज्य मण्डले देवी विधिवन् प्रयतो नरः ॥४॥

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातिन्त्रेण भैरव ।

मूर्तिभेदे यथा देवी पूजा गृह्णाति भूतये ॥५॥

कन्यासस्त्रे रवौ वत्स शुक्लामाश्व्य नन्दिकाम् ।
 अयाचिताशा नक्ताशी एकाशी त्वथ चापद ॥६॥
 प्रातस्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकाल शिवपूजकः ।
 जपहोमसमायुक्तो भोजयेच्च कुमारिका ॥७॥

श्री भगवान् ने कहा—दुर्गा तन्त्र में मन्त्र के द्वारा दुर्गा का महोत्सव करना चाहिये । शरद काल में महा नवमी राजा आदि को बलिदान करना चाहिए । १ । आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में जो अष्टमी तिथि होती है । वह महाष्टमी कही गयी है जो देवी की परम प्रीति करने वाली हुआ करती है । २ । इसके पश्चात् जो नवमी तिथि होती है वह महा नवमी कही गयी है । वह तिथि समस्त लोको की पूजनीय और शिव की प्रिय होती है । ३ । हे भैरव ! हे वत्स ! इन दोनों में जो पूजा होती है उसमें जो भी कुछ विशेषता है उसका आप अवगण करिए । मण्डल में विधि के साथ देवी का प्रणत होकर मनुष्य भवती भक्ति पूजा करे । ४ । हे भैरव ! वंछवो तन्त्र से मन्त्र के द्वारा और दुर्गा के मन्त्र से मूर्ति भेद में जब देवी भूति के लिये पूजा का ग्रहण किया करती है । ५ । कन्या राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे वत्स ! शुक्ल पक्ष की नन्दिका अर्थात् प्रति पक्ष तिथि से आरम्भ करके रहे । अयाचिन का अंगन करने वाला—रात्रि में एक बार भोजन करने वाला—अमद रहने वाला—प्रातः कास में स्नान करने वाला—शीतोष्ण भादि द्वन्द्वों का सहन करने वाला और दोनों वक्त में शिव का पूजन करने वाला—जप और होम में समायुक्त होता हुआ कुमारिकाओं की भोजन कराना चाहिए ॥ ६ ॥ ७ ॥

चोद्यध्वं वितरशाग्रामु पष्ठजा देवीफलैषु च ।
 सप्तम्या विदशाखा नामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥८॥
 पुन पूजा यथाष्टम्या विशेषेण समाचरेत् ।
 जागर च स्वय कुर्याद बलिदान महानिशि ॥९॥

प्रभूतबलिदान तु नवम्या विधिवन्चरेत् ।
 ध्यायेद् दशभुजा देवी दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥१०
 विसर्जनं दशम्या तु कुर्याद् वै साधकोत्तम ।
 कृत्वा विसर्जनं तस्या तिथौ नक्तं समाचरेत् ॥११
 यदा तु षोडशभुजा महामाया प्रपूजयेत् ।
 दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेषेण तत्र वै शृणु ॥१२
 कन्याया कृष्णपक्षस्य एकादश्यामुपोषित ।
 द्वादश्यामेकभक्त तु नक्तं कुर्यान् परेऽहनि ॥१३
 चतुर्दश्या महामाया बोधयित्वा विधानतः ।
 गीतवादित्रनिर्घोषैर्नानां नैवेद्यवेदनं ॥१४

विश्व वृक्ष की शाखाओं में बोध न करे और पृथ्वी तिथि में देवी फलो में करे । सप्तमी तिथि में उस विश्व की शाखा का आहरण करके प्रति पूजन करना चाहिए । ८ । फिर अष्टमी में विशेष रूप से पूजा का समाचरण करना चाहिए । स्वयं जागरण करे तथा महा निशा में बलिदान करे । ९ । अधिक बलिदान तो विधि के सहित नवमी में करना चाहिए । दश भुजाओं वाली देवी का ध्यान करे और दुर्गा तन्त्र से पूजा करनी चाहिए । १० । उत्तम साधक को दशमी तिथि में विसर्जन करना चाहिए । उस तिथि में रात्री में विसर्जन करके समाचरण करे । ११ । जिस समय में सोलह भुजाओं वाली महामाया का पूजन करे । दुर्गा तन्त्र के मन्त्र से करे । उसकी विशेषता के विषय में अब श्रवण करो । कन्या की सक्रांति में कृष्ण पक्ष की एकादशी में उपवास किए हुए द्वादशी में एकवार दूसरे दिन में रात्री में करे । १३ । चतुर्दशी में विधान से महामाया का बोधन करे जो गीत वारिच और निर्घोष के द्वारा और अनेक नैवेद्यों के वेदनो के द्वारा बोधन करना चाहिये ॥१४॥

अयाचितं पुष्टं कुर्यादुपवासं परेऽहनि ।

एवमेव त्रयं कुर्याद् यावद् नवमी भवेत् ॥१५॥

ज्येष्ठाया च समभ्यर्च्य मूलेन प्रतिपूजयेत् ।
 उत्तरेणार्चनं कृत्वा श्रवणान्ते विसर्जयेत् ॥१६॥
 यदा त्वष्टादशभुजा महामाया प्रपूजयेत् ।
 दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्रापि शृणु भैरव ॥१७॥
 कन्याया कृष्णपक्षस्य पूजयित्वाद्रंभे दिवा ।
 नवम्या बोधयेद् देवी गीतवादिशनिस्वर्न ॥१८॥
 शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोचनम् ।
 प्रातरेव तु पञ्चम्या स्नापयेत् तु शुभजलं ॥१९॥
 सप्तम्या पत्रिकापूजा अष्टम्या चाप्युपोषणम् ।
 पूजाजागरणं च नवम्या विधिवद्वलि ॥२०॥
 सम्प्रेषणं दशम्यां तु व्रीडाकोतुकमगलैः ।
 नीराजनं दशम्यां तु बलवृद्धिकरं महत् ॥२१॥

बुध पुरुष को दूसरे दिन में आया चतुर्दश उपवास करे ।
 सी प्रकार ही जब तक नवमी हो सत करे ॥ १५ ॥ ज्येष्ठा में
 सी भाँति अभ्यर्चन करना चाहिये और मूल में प्रतिपूजन करे ।
 सरा से अर्चन करके श्रवण के अन्त में विसर्जन करना चाहिए ।
 १६ ॥ जिस समय में अठारह भुजाओं वाली महामाया का पूजन
 करे । हे भैरव ! दुर्गा तन्त्र से मन्त्र के द्वारा वहाँ पर भी करे ।
 भैरव ! उसका आप श्रवण कीजिए ॥ १७ ॥ कन्या में कृष्ण
 पक्ष की आर्द्रा नक्षत्र में दिन में पूजन करे । नवमी तिथि में गीत वादिश
 त्रियों के द्वारा देवी का बोधन करे । १८ । शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि
 । देवी के केशों का विमोचन करे । पञ्चमी में प्रातः काल ही में शुभ
 ल से स्नान करावे । १९ । सप्तमी में पत्रिका की पूजा करे और
 अष्टमी में भी उपोषण करे । नवमी में विधि के साथ पूजा जागरण
 और बलि करे । २० । दशमी में व्रीडा—वीरता मङ्गल के द्वारा
 सम्प्रेषण करे । दशमी में नीराजन करे जो महान् बल और वृद्धि का
 करने वाला होता है ॥ २१ ॥

यदा वै वैष्णवो देवी महामाया जगन्मयोम् ।
 पूजयेत् तत्र च यदा विशेष शृणु भैरव ॥२२
 कन्यासंस्थे रवौ पूजा या शुक्ला तिथिरष्टमी ।
 तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरेः ॥२३
 नवम्यां जलदानं तु कर्तव्यं यथाविधि ।
 जपं होमं च विधिवत् कुर्यात् ततः विभूतये ॥२४
 सम्पूजयेन्महादेवीमष्टपुष्पजया नरः ।
 रामस्यानुग्रहायै रावणस्य वधाय च ॥२५
 रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा ।
 ततस्तु व्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्रिते ॥२६
 जगाम नगरो लङ्का यत्रासीद्राघव पुरा ।
 ततः गत्वा महादेवी तदा तौ रामरावणौ ॥२७
 शुद्ध नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ।
 रक्षसां वानराणां च जग्ध्वा सा मासशोणिते ॥२८

जिस समय में जगन्मयी वैष्णवी देवी महामाया का पूजन करे
 वहाँ पर उस अवसर पर जो विशेषता है उसका है भैरव ! अब आप
 श्रवण करिए । २२ : सूर्य के कन्या राशि पर सन्स्थित होने पर जो पूजा
 है वह शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि है उस तिथि में राशि में महान
 भव के विस्तारों से पूजा करनी चाहिए । २३ : नवमी में यथा विधि
 जलदान करना चाहिए । वहाँ पर विशेष भूति के लिए जप—होम
 विधि के साथ ही करना चाहिए । २४ : मनुष्य को महादेवी का अष्ट
 पुष्पिका से भली भाँति करना चाहिए । पहिले समय में श्री राम के
 ऊपर अनुग्रह करने के लिये और रावण के वध के लिये ब्रह्मजी के
 द्वारा महादेवी राशि में ही बोधित की गयी थी । इसके अनन्तर वह
 निद्रा का त्याग करके नन्दा में आश्रित राम के शुक्ल पक्ष में नन्दा
 तिथि में गमन करने वाली हुई थी । २५ । २६ । जहाँ पर पहिले श्री

देवी दशमी तिथि में देवी सम्प्रोषित की गयी थी ॥ ३२ ॥ इन्द्रदेव ने देव सेना का नीराजन किया था । और वह नीराजन देव सेना में शान्ति के लिये और देवों के राज्य की वृद्धि के लिये हो किया था । ३३ । राम और रावण के क्षण से जो युद्ध हुआ था वह देखकर भय देने वाला हुआ था । तृतीयाँ मन्वन्तरे के पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाती नक्षत्र से युक्त में सुरो का बल बहुत अधिक भयभीत हो गया था । देवेन्द्र न हरि के वचन से शान्ति के लिये धारण किया था ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम् ।
 विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलनीराजन हरिः ॥ ३६
 नीराजिबलः शक्रस्तत्र राम च राघवम् ।
 सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवैः शचीपतिः ॥ ३७
 इतिवृत्त पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
 प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वा ॥ ३८
 नृणां श्रेतायुगस्यादां जगता हितकाम्यया ।
 पुराकल्पे यथावृत्त प्रतिकल्प तथा तथा ॥ ३९
 प्रवर्तते स्वयं देवी दंत्यानां नाशनाय वा ।
 प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः ॥ ४०
 तथैव जायते युद्धं तथा त्रिदशसगमः ।
 एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः ॥ ४१
 भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
 पूजयन्ति सुराः सर्वे बल नीराजयन्त्यपि ॥ ४२

इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से सयुक्त दशमी में शुभ चण्डिका को विदा करके हरिने शान्ति स्थाप्य करने के लिये बल का नीराजन (आरती) किया था । ३६ । जिसके बल का नीराजन किया था वह इन्द्रदेव वही पर श्रीराम और रावण को मस्थापित करके वह शची का

राघवेन्द्र थे वहाँ लका में गये थे । वहाँ पर महादेवजी न गमन करके उस समय में राम और रावण को युद्ध करने के लिये नियोजित कर दिया था और अम्बिका देवी स्वयं अन्तर्धान हो गई थी । वहाँ वानरा और राक्षसों के मांस और रुधिर का भक्षण किया था ॥२७॥२८॥

रामरावणयोर्युद्ध सप्ताह सा न्ययोजयत् ।
 व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्या रावण ततः ॥२६॥
 रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ।
 यावत्तयो स्वयं देवी युद्धकेलिमुदक्षत ॥३०॥
 तावत् तु सप्तरात्राणि सव देवैः सुपूजिता ।
 निहते रावणे घोरे नवम्या सकलः सुरैः ॥३१॥
 विशेषपूजा दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामह ।
 ततः सम्प्रेषिता देवी दशम्या शर्वरोत्सवौ ॥३२॥
 ऋषोऽपि देवसेनाया नीराजनमथाकरोत् ।
 शान्त्यर्थं सुरसैन्यानां देवराज्यस्य वृद्धये ॥३३॥
 रामरावणबाणेन युद्धं चावेक्ष्य भीतिदम् ।
 तृतीया तु लकाया पूर्वोत्तरदिशि स्थितम् ॥३४॥
 स्वातीनक्षत्रयुक्ताया भीतः सुरवल महत् ।
 शान्त्यर्थं वरयामास देवेन्द्रो वचनाद् हरे ॥३५॥

देवी दशमी त्रिभिः देवी सम्प्रोषित की गयी थी ॥ ३२ ॥ इन्द्रदेव ने देव सेना का नीराजन किया था । और वह नीराजन देव सेना में शान्ति के लिये और देवों के राज्य की वृद्धि के लिये ही किया था । ३३ । राम और रावण के घाण से खो मुद्ध हुआ था यह देखकर भय देने वाला हुआ था । तृतीया में सङ्का के पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाती नक्षत्र संयुक्त में सुरो का बल बहुत अधिक भयभीत हो गया था । देवेन्द्र न हार के वचन से शान्ति के लिये धारण किया था ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ततस्तु श्रवणेनाय दशम्या चण्डिका शुभाम् ।
 विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलनीराजन हरिः ॥ ३६
 नीराजिवलः शक्रस्तत्र राम च राघवम् ।
 सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवैः शचीपतिः ॥ ३७
 इतिवृत्त पुराव ल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
 प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय नः ॥ ३८
 नृणां त्रेतायुगस्यादौ जगतां हितकाम्यया ।
 पुराकल्पे यथावृत्त प्रतिकल्प तथा तथा ॥ ३९
 प्रवर्तते स्वयं देवी दंत्याना नाशनाय वै ।
 प्रतिकल्प भवेद्दामो रावणश्चापि राक्षसः ॥ ४०
 तथैव जायते युद्धं तथा त्रिदशसगमः ।
 एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः
 भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
 पूजयन्ति सुराः सर्वे बल नीराजयन्त्यपि

इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से संयुक्त दशमी विदा करके हरिने शान्ति स्थाप करने के लिये (आरती) किया था । ३६ । जिसके बल का इन्द्रदेव वहाँ पर धीराम और रावण को

राघवेन्द्र थे वहाँ लका में गये थे । वहाँ पर महादेवजी ने गमन करके उस समय में राम और रावण को युद्ध करने के लिये नियोजित कर दिया था और अम्बिका देवी स्वयं अन्तर्धान हो गई थी । वहाँ वानरों और राक्षसों के मींस और रुधिर का भक्षण किया था ॥२७॥२८॥

रामरावणयोर्युद्धं सप्ताहं सा न्ययोजयत् ।
 व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्या रावण तत ॥२९॥
 रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ।
 यावत्तयो, स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षत ॥३०॥
 तावत् तु सप्तरात्राणि सव देवैः सुपूजिताः ।
 निहते रावणे वीरे नवम्या सकल सुरैः ॥३१॥
 विशोपपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः ।
 ततः सम्प्रेषिता देवी दशम्या शार्ङ्गरोत्सवौ ॥३२॥
 क्रपोऽपि देवसेनाया नीराजनमथाकरोत् ।
 शान्त्यर्थं मुरसौन्यानां देवराज्यस्य वृद्धये ॥३३॥
 रामरावणबाणेन युद्धं चावेदय भीतिदम् ।
 तृतीया तु लकाया पूर्वोत्तरदिशि स्थितम् ॥३४॥
 स्वातीनक्षत्रयुक्ताया भीतं मुरखलं महत् ।
 शान्त्यर्थं वरयामास देवेन्द्रो वज्रनाद् हरे ॥३५॥

उस देवी ने श्रीराम और रावण का युद्ध एक सप्ताह तक नियोजित किया था । सातवी रात्रि के समाप्त होने पर फिर नवमी में रावण की श्रीराम ने मार दिया था । यह जगन्मयी महामाया देवी ने उन दोनों की जब तक युद्ध की चेति हुई थी उसको स्वयं देखा था । २९ । ३० । तब तक सात रात्रियाँ में वह ही देवी के द्वारा सुपूजित हुई थी । और रावण के निहत हो जाने पर नवमी तिथि में समस्त दैवगणों के द्वारा पूजा की गयी थी । ३१ । सोचा के पितामह श्री ब्रह्माजी ने दुर्गा देवी की विशेष पूजा की थी । इसके अनन्तर शार्ङ्गरोत्सवों के द्वारा

देवी दशमी नियम में देवी सम्प्रोपित की गयी थी ॥ ३२ ॥ इन्द्रदेव ने देव सेना का नीराजन किया था । और वह नीराजन देव सेना में शान्ति के लिये और देवों के राज्य की वृद्धि के लिये हो किया था । ३३ । शम और रावण के पाण ने जो युद्ध हुआ था वह देखकर शम देने बाधा हुआ था । तृतीया मन्त्र का पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाती नक्षत्र से युक्त म सुरों का वस्तु बहुत अधिक भयभीत हो गया था । दवेन्द्र न हार के वचन से शान्ति के लिये कारण किया था ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ततस्तु श्रवणनाथ दशम्या चण्डिका शुभाम् ।
वितृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलनीराजन हरिः ॥ ३६
नीराजितलः शक्रन्तत्र राम च राघवम् ।
सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवैः मर्चापतिः ॥ ३७
इतिवृत्त पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
आदुर्भूता बलभुजा देवी देवहिताय न ॥ ३८
नृणां त्रेतायुगस्यादी जगता हितकाम्यया ।
पुराकल्पे यथावृत्त प्रतिकल्प तथा तथा ॥ ३९
प्रवर्तते स्वयं देवी संत्यगा नाशनाय वं ।
प्रतिकल्प भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः ॥ ४०
तथैव जायते युद्धं तथा त्रिदशसगम ।
एव रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः ॥ ४१
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
पूजयन्ति सुराः सर्वे बल नीराजयन्त्यपि ॥ ४२

इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से मश्रुत दशमी में शुभ चण्डिका को विदा करके हरिने शान्ति स्थाप्य करने के लिये बल का नीराजन (आरती) किया था । ३६ । जिसके बल का नीराजन किया था वह इन्द्रदेव वहाँ पर श्रीराम और रावण को मस्थापित करने वह शची का

पति देवों के सहित अपने स्वर्ग लोक को चला गया था । ३७ । पहिले कल्प में यह इति वृत्त है जो कि स्वायम्भुव मन्तर में था । उस समय में दश भुजाओं वाली देवी देवों के हित का सम्पादन करने के लिये प्रादुर्भूत हुई थी । ३८ । त्रेता युग के आदि काल में मनुष्यों के जगतों की जनता के हित की कामना से पहिले काल में जो हुआ था वैसा ही वैसा प्रत्येक कल्प में हुआ था । ३९ । दक्षी स्वयं दंत्यों के विनाश करने के लिये प्रवृत्त होती है । प्रत्येक कल्प में श्रीराम होते हैं और राक्षस राज रावण भी हुआ करता है । ४० । उसी प्रकार से युद्ध होता है और उसी भाँति देवों का सङ्ग्राम भी होता है । इस प्रकार से सहसा ही श्रीराम के अवतार हुआ करता है और रावण भी सहस्रों की मध्या में होते हैं । ४१ । प्राणी भी जो होने वाले हैं वे होते हैं और वैसे ही देवी भी प्रवृत्त हुआ करती है । सभी सुरमण उसी देवी का पूजन किया करते हैं तथा नीराजननी करते हैं । ४२ ।

तथैव च नरा सर्वे कुर्युं पूजा यथाविधि ।

वलनीराजन राजा कुर्याद् वलविवृद्धये ॥४३॥

दिध्यालङ्कुर्युवनाभिर्वाङ्गीभिः प्रवतनम् ।

वर्तव्य नृत्यगीतानि श्रीढाकीतुकमगल ॥४४॥

मोदकं पिष्टवै पेयभक्ष्यभोज्यरनेकशः ।

कूष्माण्डैर्नारिवैस्संश्रयं खजुरैः पनसैस्तथा ॥४५॥

द्राक्षामलकशाण्डित्यं प्लीहैश्च करुणैस्तथा ।

वशेरुक्त्रमुक्त्रं मूलैः सजम्बूतिन्दुनादिभिः ॥४६॥

गव्यैर्गुडैस्तथा मांसमंद्यमधुभिरपि च ।

यावत्प्रियंश्च नैवेद्यं लाजाक्षतपलादिभिः ॥४७॥

इक्षुदण्डं सितामिश्रं सवलीनागरङ्गकं ।

अजाभिर्महिषैर्मैषैरात्मशोणितसञ्चयं ॥४८॥

पद्मपादित्वालिजातीर्यस्तथा नानाविधं मृगं च ।

पूजयेच्च जगद्धात्री मांसशोणितकर्मैः ॥४६

उमी भाति जैमा कि पूर्व कल्प मे करते थे सभी मनुष्य विधि विधान के साथ पूजा किया करते हैं । गजा बल का नीराजन बल की वृद्धि के लिये किया करता हैं । ४३ । दिव्य बलधारो से युक्त बाहणी मे प्रवर्तन होना हैं । उम समय मे क्षीष्ट कौतुको के द्वारा मङ्गलमय नृत्य और गीत करने चाहिए । ४४ । मोदको मे—पिष्टो से पेयो से और अनेक प्रकार के भक्ष्यो तथा भोज्यो मे—कूष्माण्ड—नारिकेल—खजूर—पनस—हाम—अंबला—शादिल—प्लीह—करुण—कशेर—क्रमुक—मूल—जम्बू—तिन्दूक तथा मष्य—गुड—माम—मद्य—मधु—ताल प्रिय नैवेद्य लाजा (खील)—अधत—दक्षु षण्ड—सिता (मिथी) सबलो नागरकुक्क—अजा—महिष—मेघ—अपने शोणित के सञ्चय—पक्षी आदि बलि के जाति वाले तथा अनेक प्रकार के पशुगण के द्वारा तथा माम और रुधिर के बर्झम के द्वारा जगत् की धात्री का पूजन करना चाहिये ॥४५—४६॥

रात्रौ स्कन्दविशाखस्य कृत्वा विष्टकपुत्रिकाम् ।

पूजयेच्छत्रुनाशाय दुर्गायाः प्रीतये तथा ॥५०

होमं च सतिलैराज्यैर्मांसैरपि तथा चरेत् ।

उग्रचण्डादिकाः पूज्यास्तथाष्टौ योगिनीः शुभाः ॥५१

योगिन्यश्च चतु पष्टिस्तथा वै कोटियोगिनीः ।

नवदुर्गास्तथा पूज्या देव्याः सन्निहिताः शुभाः ॥५२

जयन्त्यादिर्गन्धपुष्पैस्ता देव्या मर्त्यो यतः ।

देव्यः सर्वाणि चास्त्राणि भूषणानि तथैव च ॥५३

अङ्गप्रत्यङ्गयवतानि वाहन सिंहमेव च ।

महिषासुरमदिन्या पूजयेद् भूतये सदा ॥५४

पुराकल्पे महादेवी मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

नृणां कृतयुगस्यादौ सर्वदेवं स्तुता सदा ॥५५

महिषामुरनाशाय जगतां हितकाम्यया ।

योगनिद्रा महामाया जगद्धात्री जगन्मयी ॥१६॥

रात्रि में स्कन्द त्रिशाख वी विष्ट पुत्रिवा बना कर शत्रुओं के विनाश के लिये दुर्गा की प्रीति के सम्पादन के वास्ते पूजन करे । १० । ओर तिलों के सहित घृत से तथा मास से भी होम करना चाहिए । उग्र चण्डादिक की पूजा करनी चाहिये तथा आठ शुभ योगिनियों की अर्चना करे । ११ । योगिनियाँ बैसठ हैं तथा करोड योगिनियाँ हैं । देवी के सन्निहित परम शुभ नव दुर्गाओं का यजन करे । १२ । जयन्ती आदि का गन्ध पुष्पों से पूजन करे क्योंकि वे देवी की मूर्तियाँ हैं और देवियाँ हैं । देवी के समस्त अस्त्र तथा सब भूषण जो देवी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में युक्त हैं और देवी का वाहन सिंह का पूजन करना चाहिए । महिषासुर के मर्दन करने वाली के सब का सदा भूति—वैभव के लिये यजन करे । १३ । १४ । पहिले कल्प में श्यामभुव मनु के अन्तर में मनुष्यों के कृतयुग के आदि काल में महादेवी सदा देवगणों के द्वारा सस्तवन की गई थी । १५ । महिषामुर के विनाश के लिये तदा जगती के हित की कामना से योगनिद्रा—जगद्धात्री—जगन्मयी महामाया प्रसिद्ध थी ॥१६॥

भूर्जी षोडशभिर्युक्ता भद्रकालीति विश्रुता ।

क्षीरोदस्योत्तरे तीरे विभ्रती विपुला तनुम् ॥१७॥

अतसीपुष्पवर्णाभा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ।

जटाजूटसखण्डेन्दुमुकुटत्रयभूषिता ॥१८॥

नागहारेण सहिता स्वर्णहारविभूषिता ।

शूल चक्र च खड्ग च शङ्ख वाण तथैव च ॥१९॥

शक्ति वज्र च दण्ड च नित्य दक्षिणबाहुभि ।

विभ्रती सतत देवी विवाशिदशनोज्ज्वला ॥२०॥

शेटक चर्म चाप च पाश चाबुशमेव च ।

घण्टां पशुं च मुपलं विघ्नती वामपाणिभिः ॥६१

सिहस्था नयने रक्तवर्णस्त्रिभिरतिज्वला ।

शूलेन महिषं भित्त्वा तिष्ठन्ती परमेश्वरी ॥६२

वामपदेन चाक्रम्य तत्र देवी जगन्मयी ।

तां दृष्ट्वा सकला देवाः प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥६३

नोचुः किञ्चन तं दृष्ट्वा निहतं महिषासुरम् ।

ततः प्रोवाच देवांस्तान् ब्रह्मादीन् परमेश्वरी ॥६४

वह महामाया सोलह मुञ्जाओ से समुत थी और भद्र काली—

इस नाम से लोको मे विघ्नत थी । क्षीर सागर के उत्तर वर्त्ती तट पर अपने विपुल तनु का धारण करती हुई थी । ५७ । उनका वर्ण अलसी के पुष्प की आभा के ही समान था और उनके कुण्डल तपे हुए सुवर्ण के समान देदीप्यमान थे । खण्ड चन्द्र से युक्त उनके मस्तक पर जटाजूट थे तथा तीन मुकुटों से वह शोभायमान थी । ५८ । उनके कण्ठ मे नागों का हार विराजमान तथा सुवर्ण का भी हार पड़ा हुआ था जिससे वे विभूयिन हो रही थी । दाहिनी ओर की बाहुओं के द्वारा वे शूल—चक्र—खड्ग—शंख—बाण शक्ति—वज्र—दण्ड नित्य ही निरंतर धारण कर रही थी । देवी विकाश समुत दशानों की पंक्तियों से परम समुज्ज्वल थी । ५९ । ६० । बाईं ओर वाली बाहुओं के द्वारा वे छेदक—चर्म—चाप—पाश—अंगुश—घण्टा—परशु—मुशल को धारण कर रही थी । ६१ । सिंह बाहन पर विराजमान थी और लाल वर्ण वाले तीन नेत्री मे अतीव उज्ज्वल थी । परमेश्वरी अपने शूल के द्वारा महिष असुर का भेदन करके सस्थित थी । ६२ । वहाँ पर अपने बाँये चरण से आक्रमण करके जगन्मयी देवी विराजमान थी । उन देवी का दर्शन करके समस्त देवगण उनको प्रणाम कर रहे थे ॥ ६३ ॥ उस महिषासुर को निहत विलोकन करके वे देव कुछ भी नहीं बोले थे । इसके अनन्तर वह परमेश्वरी उन ब्रह्मादिक देवों से बोली । ६४ ।

स्मितप्रभिन्नवदना विकाराशिवदोज्ज्वला ।
 गच्छन्तु भोः सुरगणा जम्बुद्वीपान्तरं प्रति ॥६४॥
 हिमवत् - पर्वतासन्ने वर कात्यायनाश्रमम् ।
 तत्रैव भवतां साध्यं भविष्यति न संशयः ॥६५॥
 इत्युक्त्वा सा महादेवी नत्रैवान्तरधीयत ।
 देवा अपि तदा जग्मुः कात्यायनमुनेः पुरम् ॥६७॥
 आश्रमं प्रति ते गत्वा विस्मयाविष्टमानसा ।
 निहता महिषो देव्या दिष्टोऽस्माभिर्यदर्थः ॥६८॥
 स्तुता चैव महादेवी जगद्धात्री जगन्मयी ।
 किमर्थमाह सा देवी गन्तुं कान्यानाश्रमम् ॥६९॥
 किमन्यद् वाञ्छितं कार्यमस्माकं वा भविष्यति ।
 इति प्रवृत्तस्ते सर्वे गच्छन्ति स्म परस्परम् ॥७०॥

देवी के मुख में मन्द हास था और परम प्रसन्न थी—उनकी
 शुभ्रवन्त पंक्ति से वे उज्ज्वल थीं । उन्होंने देवी से कहा—हे सुरगणों !
 आप लोग अब अन्य जम्बुद्वीप की ओर गमन कर जाओ ॥६४॥ हिमवान्
 पर्वत के समीप में परम श्रेष्ठ कात्यायन का आश्रम है । वहाँ पर ही
 आपका साध्य होगा—दुर्गम गण्य नहीं है ॥ ६५ ॥ इतना ही कहकर
 वह महादेवी वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थी । उग अवसर में देव-
 गण भी कात्यायन मुनि के पुर की ओर चले गये थे । ६७ । आश्रम की ओर
 वे गमन करके विस्मय में समाविष्ट मन वाले हो गये थे । देवी के द्वारा
 महिषासुर निहत्त हो गया था जो कि अर्थ में हम सबने देखा था ॥६८॥
 और महा जगती की धात्री—जगती ने परिपूर्ण देवी का स्तवन किया
 गया था उस महादेवी ने हमको यहाँ कात्यायन के आश्रम में गमन
 करने की किम प्रयोजन के लिये कहा है । ६९ । क्या कोई अन्य कार्य
 हमारा वाञ्छित होगा ? वे सब यही परस्पर में बोधने हुए चले गये
 थे । ७० ।

हितवत्-पर्वतासन्न मुनि-कात्यायनाश्रमम् ।
 ततः सेन्द्राः सदिक्पाला ब्रह्मविष्णुशिवास्तथा ॥७१॥
 निपेदुः सुचिरं प्रीता दुर्गादर्शनलालसाः ।
 ततो रुद्रगणा सर्वे महिषासुरचेष्टितम् ॥७२॥
 आगत्य कथयामासुर्देवलोकपराभवम् ।
 ततस्तत्र महाकोपं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७३॥
 चक्रुः कोऽन्योऽस्ति महिषो हतो देव्या स दानवः ।
 पुनर्येनेह क्रियते जगदविध्वंसनं भृशम् ॥७४॥
 इति प्रकुप्यतां तेषां शरीरेभ्यः पृथक् पृथक् ।
 निश्चकमुश्च तेजासि शक्तिरूपाणि तरक्षणात् ॥७५॥
 तत्तेजोभिर्घृतवपदेवी कात्यायनेन वै ।
 सन्धिक्षिता पूजिता च तेन कात्यायनी स्मृता ॥७६॥
 ततस्तेनैव मन्त्रेण दशबाहुयुतेन वै ।
 पश्चाज्जघान महिषं जगद्धात्री जगन्मयी ॥७७॥

हिमवान् पर्वत राज के समीप में ही कात्यायन मुनि का आश्रम
 है । फिर इन्द्र के सहित तथा दिक्पालों के समेत ब्रह्मा—विष्णु—शिव
 वहाँ गये थे ॥७१॥ वहाँ पर बहुत लम्बे समय तक वे बैठ गये थे और
 सभी दुर्गा देवी के दर्शन की सालमा वाले हो रहे थे । इसके अनन्तर
 समस्त रुद्रगणों ने महिषामुर के मोहित को आकर कहा था । ७२ ।
 उन्होंने देवलोक के पराभव का कथन वहाँ आकर किया था । इसके
 अनन्तर वहाँ पर ब्रह्मा—विष्णु—शिव प्रभृति ने महान कोप किया
 था । ७३ । क्या कोई अन्य महिष है । वह महिषासुर तो देवी के द्वारा
 हत कर दिया गया । वह कौन है जिसके द्वारा पुनः यहाँ पर जगती का
 अत्यन्त विध्वंस किया जा रहा है । ७४ । इस प्रकार से प्रकोप करते
 हुए उन देवी के शरीरों से पृथक्-पृथक् तेज निर्वात हुए जो उसी क्षण
 में शक्ति के स्वरूप वाते थे । ७५ । उन देवी के शरीरों से निस्तृत तेजो

मे देवी ने वषु धारण किया था और निम्नय ही कात्यायन के द्वारा सम्बुधित एवं पूजित हुई थी। इसी से वह कात्यायनी—इस नाम से कही गयी है। ७६। इसके अनन्तर उसी मन्त्र के द्वारा जो दश बाहुओं से समन्वित है उस जगतो की धात्री और जगन्मयी देवी ने पश्चात् महिषासुर का वध कर दिया था ॥७७॥

यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च ।
चतुर्दशी कृष्णपक्षे पादुभूता जगन्मयी ॥७८॥
देवानां तेजसा मूर्ति शुक्लपक्षे सुशोभने ।
सप्तम्या साऽकरोद् देवी अष्टम्या तंरलङ्कृता ॥७९॥
नवम्यामुपहारस्तु पूजिता महिषासुरम् ।
निजघान दशम्या तु विसृष्टान्तहिता शिवा ॥८०॥
श्रुत्वेमा सगरो राजा देव्या सङ्गतिमुत्तमाम् ।
सशयालुश्च तद्रूपे पुनरोर्व्वमपृच्छत् ॥८१॥
यदि पश्चात् महादेवी जघान महिषासुरम् ।
कथं पूर्वं भद्रकाली-रूपाभून्महिषासुरम् ॥८२॥
तथाहि दर्शनं तस्या पादाक्रान्तश्चकार च ।
हृदि शूलेन निभिन्नं ददृशुः सकला सुरा ।
एव तु सशयं छिन्धि मुनिर्धे ॥ ममाधुना ॥८३॥

जिस अवसर पर महादेवी का सरतवन किया गया था और बोधित की गई थी ता आश्विन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में वह जगन्मयी प्रादुभूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी। ७८। वह देवी के तेजों की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में उमन किया था और वह देवी अष्टमी में उन्हीं के द्वारा समलङ्कित हुई थी। ७९। नवमी तिथि में वह उपहारों के द्वारा पूजित थी और उसने महिषासुर का हनन किया था। दशमी में विदा की गई और वह शिव अन्तर्धान हो गई थी। ८०। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा— राजा सगर ने इन परमोत्तम देवी की सङ्गति का श्रवण करके वह

उमके स्वरूप में सशयालु होकर पुन उमने ओंघं से पूछा था । ८१ । राजा सगर ने कहा—यदि महादेवी ने पीछे महिषासुर का हनन किया था तो पूर्व में कैसे महिषासुर के लिये वह भद्रकाली रूप वाली हुई थी? । ८२ । उमी भीति उसका दर्शन है कि वह उमके चरणों से समाक्रान्त किया गया था । सभी मुग्धों ने यह देखा था कि उम असुर के हृदय में गूल गड़ा हुआ है और हृदय निर्भिन्न हो रहा है । हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझे यह बड़ा सशय हो रहा है इसका छेदन कृपाकर करिए । ८३ ।

शृणु त्व नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।

प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥८४॥

महिषासुर एवामौ निद्राया निशि पर्वते ।

स्वप्न प्रदृष्टो घोरो दारुण घोरदर्शनम् ॥८५॥

महामाया भद्रकाली छित्त्वा खड्गेन मे शिर ।

पपौ तम्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥८६॥

नत प्रातर्भयुत म दैत्यो महिषासुर ।

तामेव पूजयामास सुचिर सानुगस्तदा ॥८७॥

आगधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।

प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजं पोडशमियुंता ॥८८॥

तत प्रणम्य महिषो महामाया जगन्मयीम् ।

उवाचेद वचो नम्रमूर्तिर्भक्तिभक्त्युतोऽमुम् ॥८९॥

देवि खड्गेन सन्निभद्य शोणितानि शिरो मम ।

त्वया भुवनानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥९०॥

अपश्य तु त्वया कार्यं मया ज्ञात प्रमाणत ।

एतद्रुधिरपान मे तत्रैव देहि मे वरम् ॥९१॥

ओंघं मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल ! आप श्रवण करिए—

जिम तरह पहिले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी । वह महामाया महिषासुर के साथ ही थी । ८४ । यह महिषासुर ही है जो पर्वत में निद्रा में

मे देवी ने वसुधारण किया था और विष्णु की वात्स्यायन के द्वारा सन्धुक्षित एवं पूजित हुई थी। इसी में वह वात्स्यायनी—इग नाम से पड़ी गयी है। ७६। इससे अनन्तर उगी मन्त्र के द्वारा जो दश मातृओं से सम्बन्धित है उस जगतों की धात्री और जगन्मयी देवी ने पश्चात् महिषासुर का वध कर दिया था ॥७७॥

यदा स्तुता महादेवी द्योषिता आश्विनस्य च ।
चतुर्दशी वृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥७८॥
देवानां तेजसा मूर्ति शुक्लपक्षे सुशोभने ।
सप्तम्या साङ्करोद् देवी अष्टम्या तैरलट्कृता ॥७९॥
नवम्यामुपहारंस्तु पूजिता महिषासुरम् ।
निजघान दशम्या तु विसृष्टान्तहिता शिवा ॥८०॥
श्रुत्वेमा सगरो राजा देव्या सङ्गतिमुत्तमाम् ।
सशयालुश्च तद्रूपे पुनरोर्ध्वमपृच्छत् ॥८१॥
यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम् ।
कथं पूर्वं भद्रकाली-रूपाभून्महियासुरम् ॥८२॥
तथाहि दर्शनं तस्या पादाक्रान्तश्चकार च ।
हृदि शूलेन निमिन्न दहशु सकला सुरा ।
एव तु सशय छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ॥८३॥

जिस अवसर पर महादेवी का सन्तवन किया गया था और द्योषित की गई थी तो आश्विन मास के वृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में वह जगन्मयी प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी। ७८। वह देवी के तेजों की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में उसने किया था और वह देवी अष्टमी में उन्हीं के द्वारा समलङ्कित हुई थी। ७९। नवमी तिथि में वह उपहारों के द्वारा पूजित थी और उसने महिषासुर का हनन किया था। दशमी में बिदा की गई और वह शिव अन्तर्धान हो गई थी। ८०। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा— राजा सगर ने इस परमोत्तम देवी की सङ्गति का श्रवण करके वह

उमके स्वरूप में मशयालु होकर पुन उमने आँचें से पूछा था । ८१ ।
 राजा सगर ने कहा—यदि महादेवी ने पीछे महिषासुर का हनन किया
 था तो पूर्व में कैसे महिषासुर के लिये वह भद्रकाली रूप वाली हुई थी ?
 । ८२ । उमी भौंनि उमका दर्शन है कि वह उमके चरणों से समाक्रान्त
 किया गया था । मभी मुग्गणो ने यह देखा था कि उम असुर के हृदय
 में गूल गया हुआ है और हृदय विभिन्न हो रहा है । हे मुनिश्रेष्ठ !
 मुझे यह बड़ा मंशय हो रहा है इसका छेदन कृपाकर करिए । ८३ ।

शृणु त्व नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
 प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥८४॥
 महिषासुर एवासौ निद्राया निशि पवन्ते ।
 म्वप्न प्रदृष्टो वीरो दारुण घोरदर्शनम् ॥८५॥
 महामाया भद्रकाली छित्वा खड्गेन मे जिह्र ।
 पपी तम्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥८६॥
 तत प्राणभंयन म दंत्यो महिषासुर ।
 तामेव पूजयामास मुचिर मानुगन्तदा ॥८७॥
 आगधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
 प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजं पण्डितभिर्युता ॥८८॥
 सत प्रणम्य महिषो महामाया जगन्मयीम् ।
 उवाचेद वचो नम्रमूर्तिर्भक्तिपूतोऽसुर ॥८९॥
 देवि खड्गेन सन्मिल्य शोणितानि शिरो मम ।
 त्वया भुवनानि दृष्टानि मया म्वप्नेन निश्चितम् ॥९०॥
 अयं यत् तु त्वया कार्यं मया ज्ञान प्रमाणत ।
 एतद्रुधिरपात मे तत्रैव देहि मे वरम् ॥९१॥

आँचें मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल ! आप धबल करिए—
 त्रिग तरह पहिले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी । वह महामाया महिषासुर
 के गाय हो थी । ८४ । यह महिषासुर हो है जो गर्वन में निद्रा में

मे देवी ने वषुष्माण किया था और निम्नमे नी वाय्यापन के द्वारा मन्धुक्षित एवं पूजित हुई थी । इसी मे वह वाय्यापनी—इम नाम मे पती गयी है । ७६ । इसके अनन्तर उर्मा मन्त्र के द्वारा जो दश माहृषी मे समन्वित है उम जगतो की छात्री और जगन्मयी देवी ने पश्चात् महिषासुर का वध कर दिया था ॥७७॥

यदा स्तुता महादेवी बोधिना चाश्विनस्य च ।
चतुर्दशी कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥७८॥
देवानां तेजसा मूर्ति शुक्लपक्षे मुक्षोभने ।
सप्तम्या साऽनरोद् देवी अष्टम्या तंरत्नद्वृता ॥७९॥
नवम्यामुपहारस्तु पूजिता महिषासुरम् ।
निजघान दशम्या तु विसृष्टान्तहिता शिवा ॥८०॥
श्रुत्वेमा सगरो राजा देव्या सङ्गतिमुत्तमाम् ।
सशयालुश्च तद्रूपं पुनरोर्ध्वमवृच्छत् ॥८१॥
यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम् ।
कथं पूर्वं भद्रकाली-रूपाभून्महियासुरम् ॥८२॥
नथाहि दर्शनं तस्याः पादाक्रान्तश्चकार च ।
हृदि शूलेन निर्भिन्न ददृशुः सक्ताः सुराः ।
एव तु संशय छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ॥८३॥

जिस अवसर पर महादेवी का सरतधन किया गया था और बोधित की गई थी तो आश्विन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि मे वह जगन्मयी प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप मे प्रकट हुई थी । ७८ । वह देवी के तेजो की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष मे सप्तमी तिथि मे उसने किया था और वह देवी अष्टमी मे उन्ही के द्वारा समस्तकृत हुई थी । ७९ । नवमी तिथि मे वह उपहारो के द्वारा पूजित थी और उसने महिषासुर का हनन किया था । दशमी मे विदा की गई और वह शिव अन्तर्धान हो गई थी । ८० । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा— राजा सगर ने इस परमोत्तम देवी की सङ्गति का श्रवण करके वह

उमके स्वरूप में सज्जयालु होकर पुन उमने और्ध्व से पूछा था । ८१ । राजा मगर ने कहा—यदि मत्तादेवी ने पीछे महिषामुर का हनन किया था तो पूर्व में कैसे महिषामुर के लिये वह भद्रकाली रूप वाली हुई थी? । ८२ । उमी भाँति उमका दर्शन है कि वह उमके चरणों से समाक्रान्त किया गया था । सभी मुग्धों ने यह देखा था कि उम अमुर के हृदय में गूल गद्दा हुआ है और हृदय निर्भिन्न हो रहा है । हे मुनिर्घोष ! मुझे यह बड़ा मशय हो रहा है इसका छेदन कृपाकर करिए । ८३ ।

शृणु त्व नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
 प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥८४॥
 महिषामुर एवामौ निद्राया निशि पवन्ते ।
 स्वप्न प्रदृष्टो वीरो दारुण घोरदर्शनम् ॥८५॥
 महामाया भद्रकाली छित्त्वा खड्गेन मे शिर ।
 पपौ तम्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥८६॥
 तत प्रातर्भयुत म दैत्यो महिषासुर ।
 तामेव पूजयामास सुचिर मानुगन्तदा ॥८७॥
 आगधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
 प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजं पोडशभिद्युता ॥८८॥
 तत प्रणम्य महिषो महामाया जगन्मयीम् ।
 उवाचेद वचो नम्रमूर्तिभक्तिभक्त्युतोऽमुर ॥८९॥
 देवि खड्गेन सज्जिग्रह शोणितानि शिरो मम ।
 त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥९०॥
 अयश्य तु त्वया कार्यं मया ज्ञान प्रमाणतु ।
 एतद्रुधिरपान मे तथैव देहि मे वरम् ॥९१॥

और्ध्व मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल ! आप श्रवण करिए—
 जिस तरह पहिले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी । वह महामाया महिषामुर
 के साथ ही थी । ८४ । यह महिषामुर ही है जो पर्वत में निद्रा में

वर्त्तमान था । उस धीर ने एक महान् दारुण धार दशन थागा स्वप्न देखा था । ८५ । उमने यह स्वप्न देखा था कि मुँह फेंकाय दृष अत्यन्त भीषण महामाया भद्रवासी न खड्ग ॥ मर शिर का छदन करके उसने रुधिर का पान कर रही थी । ८६ । इनके अन्तर प्रातःपान में वह दैत्य महिषासुर भय न युक्त होकर उमी का अपन अनुगामियों के साथ बहुत बान्धव्यन्त पूजन किया करता था । ८७ । उन समय में महिषासुर के द्वारा भली भोति आराधना की हुई देवी भद्र कानी सोलह—भुजाओं से युक्त होकर प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी । ८८ । इसके अनन्तर महिषासुर ने जगन्मयी महामाया की प्रणाम किया और अत्यन्त विनम्र मूर्ति वाला होकर भक्ति की भावना से परिपूर्ण होते हुए उम अमुर न यह वचन बड़ा ॥ ८९ ॥ महिष बोला—हे देवि ! आपने खड्ग से मेरे मस्तक को काटकर मेरे रुधिर को आपने पीया था और मैंने यह देखा है । स्वप्न के द्वारा निश्चित रूप से मैंने अवलोकन किया है । ९० । आपके द्वारा यह अवश्य ही करना ही है—यह मैंने प्रमाण से ज्ञान प्राप्त कर लिया है यह मेरे रुधिर का पान आप अवश्य ही करेगी । अब उसमें मुझे एक वरदान दीजिए । ९१ ।

वध्यस्तबाह नाश्रास्त्रि सशय परमेश्वरि ।

ममापि तत्र नो दुःख नियति केन लघ्यते ॥ ९२

किन्तु त्वयैव सहित शम्भुराराधित पुरा ।

मम पित्रा मदर्थेन जात पश्चादह तत ॥ ९३

मयाप्याराधित शम्भु प्राप्ताश्चेष्टास्तथाविधा ।

मन्वन्तरत्रय यावदासुर राज्यमुत्तमम् ॥ ९४

अकण्टक मया भुक्तमनुतापो न विद्यते ।

कात्यायनेन मुनिना शप्तोऽह शिष्यकारणात् ॥ ९५

सीमन्तिनी विनाश ते करिष्यति न सशय ।

पुरा मुनि तपस्तस्त रौद्राश्व नाम सत्तमम् ॥ ९६

मुने कात्यायनाद्यस्य शिष्य हिमवदन्तिके ।

दिव्यस्त्रीरूपमतुलं कृत्वाह कौतुकात् तदा ॥६७

मया समोहितो विप्रोज्यजत् सद्यस्तदा नपः ।

नदूरात् सन्धितेनाह मुनिना कात्यसूनुना ॥६८

हे परमेश्वर ! मैं तुम्हारे द्वारा ही वध्य करने के योग्य हूँ । इसमें कुछ भी गशय नहीं है । मुझे भी इस विषय में कोई भी दुःख नहीं है क्योंकि जो नियति है अर्थात् जो होने वाला नियत ही है वह किसी के भी द्वारा नष्ट नहीं हुआ करता है अर्थात् उसे कोई भी टाल नहीं सकता है । ६२ । किन्तु पहिले समय में आपने ही गाय मीने भगवान् शम्भु की आराधना की थी । मदयं से हो मेरे बिना के द्वारा जन्म ग्रहण किया था उनके पश्चात् मैं ममुत्पन्न हुआ था । ६३ । मैंने भी शम्भु का समाराधन किया था और उसी भाँति की चेष्टाएं प्राप्त हुई थी । जब तक तीन मन्वन्तर हैं उत्तम अमुर राज्य है ॥ ६४ ॥ मैंने उस राज्य को अक्षय रूप में भोग किया है । मुझे इसका कुछ भी अनुताप नहीं है । शिष्य के कारण से कात्यायन मुनि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था । ६५ । एक मोमाग्निनी तेरा विनाश करेगी — इसमें संशय नहीं है । पुराने समय में तपश्चर्चा करने हुए परम श्रेष्ठ रोद्राश्व नामक जो कात्यायन नाम वाले मुनि के शिष्य को हिमवान् के समीप में एक अनुपम स्त्री का रूप धारण करके मैंने कौतुक में उस समय में मेरे द्वारा मोहित किया गया था । विप्र ने उस अवसर में तप करने का त्याग कर दिया था । पाम में ही सन्निहित कात्यायन के पुत्र ने मुझे शाप दिया था ॥६६—६८॥

ज्ञात्वा माया तदा शप्तः शिष्यार्थे मोघवहिनना ।

यस्मान् त्वया मे शिष्योऽय मोहितस्तपसश्च्युतः ॥६९

शुक्लरत्नव्या स्त्रीरूपेण तत् त्वा स्त्री निहनिष्यति ।

इति मा शप्नवान् पूर्वं मुनिः कात्यायनः स्वयम् ॥७००

तस्य आपस्य कालाऽयमागत्य समुपस्थित ।
 देवेन्द्रत्व मया प्राप्त भुवत् त्रिभुवन समम् ॥१०१॥
 किञ्चिन्न धोच्य मेऽत्रास्ति वाञ्छनीय हि यन्मया ।
 तस्मात् त्वा वं प्रपतोऽहं प्रार्थ्यं शेष हि यन्मया ।
 यद् देवि देवि दुर्गे त्वं भूयस्तुभ्य नमो नम ॥१०२॥
 प्रायनीयो वरा यस्ते त वृण्व महासुर ।
 दास्यामि ते वरं प्राप्य सशयो नात्र विद्यते ॥१०३॥
 यज्ञभागमहं भोक्तुमिच्छामि त्वत् प्रसादत ।
 यथा मन्त्रेषु सर्वेषु पूज्योऽहं स्या तथा कुरु ॥१०४॥
 त्वत् पादसेवा न त्यज्ये यावत्सूयं प्रवतते ।
 एव वरद्वयं देहि यदि देवो वरो मम ॥१०५॥

उस समय मे माया का ज्ञान प्राप्त करके शिष्य के लिये क्रोध की अग्नि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था क्योंकि तुमने यह मेरा शिष्य मोहित किया है जो सप से च्युत हो गया है । ६६। तुने स्त्री के स्वरूप के द्वारा ऐसा किया है इससे तुमका स्त्री ही मारेगी । इस रीति से पूर्व मे कात्य यना मुनि ने स्वयं भुजको शाप दिया था । उस शाप का काल अब आकर उपस्थित हो गया है । मैंने देवों के इन्द्र का पद प्राप्त किया था और तीनों भुवनों का समान उपभोग किया था ॥१००॥१०१॥ मुझे कुछ भी सोचने अर्थात् शोक और चिन्ता करने के योग्य नहीं है और न मुझ कुछ भी वाञ्छनीय ही है । इस कारण से मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हुआ हूँ । मुझ शेष जो भी प्रार्थना करने के योग्य है जो देवि । हे दुर्गे । मुझ दीजिए । आपकी सेवा में मरा बारम्बार नमस्कार है ॥१०२॥ देवी न कहा—ह महासुर । जो तुम वरदान प्रार्थना करने के लायक है उससे विषय में तुम अब श्रवण करो । तुम्हारा प्रायनीय जो वर है उसको दे दूँगी—इसमें सश मात्र भी सशय नहीं है । १०३ । महिषी । वटा—मैं आपकी प्रसन्नता से यज्ञ के भाग का उपभोग करना

वर प्राप्त करके परम प्रसन्न हुआ और उसका मुख प्रसन्नता से सयुत हो गया था । १०६ । उसने कहा—हे उग्र चण्डे ! हे भद्र कालि ! हे दुर्गे ! हे देवि ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है । हे देवि ! आपको बहुत सी मूर्तियाँ है और आपके द्वारा समस्त परिपूर्ण हैं । हे परमेश्वरि ! मैं यज्ञ मे किन मूर्तियों के द्वारा पूज्य होऊँगा । यही आप मुझे बतलाइये यदि आपके द्वारा मेरे ऊपर यहा पर कृपा की गई है ।
॥ ११०—१११ ॥

यानि नामानि प्रोवतानि त्वयेह महिषासुर ।
तासु मूर्तिषु संपृष्ट पूज्यो लोके भविष्यसि ॥११२॥
उग्रचण्डेति या मूर्तिभद्रकालः ह्यह पुन ।
यया मूर्त्या त्वा हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्तिता ॥११३॥
एतासु मूर्तिषु सदा पादलग्नो नृणा भवान् ।
पूज्यो भविष्यति स्वर्गं देवानामपि रक्षसाम् ॥११४॥
आदिसृष्टान्नुग्रचण्डामूर्त्या त्व निहत पुरा ।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हत ॥११५॥
दुर्गाह्वयेणाधुना त्वा हनिष्यामि महानुगम् ।
किन्तु पूर्वं न शूहीतस्त्व मया पादयोस्तले ॥११६॥
अधुना प्रार्थितवरो शूहीतः पूर्वाकापयोः ।
ग्रहातव्यश्च पश्चात् त्व यज्ञभागोपभुक्तये ॥११७॥
इत्युक्त्वा सा महामाया उग्रचण्डाह्वया तनुम् ।
दशमामास च तदा महिषाप्सासुराय वं ॥११८॥
या मूर्ति षोडशभुजा भद्रकालीति विश्रुता ।
तथैव मूर्तिं बाहुभ्यामपराभ्या तु विभ्रती ॥११९॥

देवी ने कहा—हे महिषासुर ! यही पर आप ने जो भी नाम कहे है उन मूर्तियों मे संपृष्ट होता हुआ खोव मे तुम पूज्य होओगे । ११२ । जो उग्र चण्डा मूर्ति है फिर मैं भद्र काली हूँ । जिस मूर्ति के

द्वारा में तेरा हनन करूँगी वह दुर्गा कीर्तित की गयी है । ११३। इन मूर्तियों में सदा ही तुम मेरे चरणों में सततग्न रहोगे और आप मनुष्यों के—स्वयं मे देवों के भी और राक्षसों के पूज्य होआये । ११४। प्राचीन काल में जब सृष्टि का आदि काल था उस समय मैं उग्र चण्डा मूर्ति के द्वारा तुम्हारा हनन किया गया था । दूसरी सृष्टि के समय में आपको भद्रकाली मेरे द्वारा निहत किया गया था । ११५। और इस समय में दुर्गा के स्वरूप के द्वारा तुमको तुम्हारे अनुगामियों के सहित हनन करूँगी किन्तु पूर्व में मेरे द्वारा चरण के तल में तुमको ग्रहण नहीं किया गया था । ११६। इस समय मैं तो तुम वरदान को ग्रहण करने वाले हो गये हो अतएव पूर्व कालों में ग्रहण किये गये हो । और पीछे भी यज्ञ भाग की मुक्ति के लिये ग्रहण करने के योग्य हो गये हो । ११७। श्रीग्वं मुनि ने कहा—इतना कहकर उस महामाया ने उग्र चण्डा नाम वाले तनु को उस समय में महिषासुर को दिखला दिया था । ११८। जो मूर्ति सोलह भुजाओं वाली थी और भद्रकाली—इस नाम से विप्रसूत थी उसी भाँति मूर्ति को अमर बाहुओं से धारण करने वाली थी ॥११९॥

दक्षिणाधो गदां वामपाणिना पानपात्रकम् ।

सुरापूर्णं च शिरसा मुष्टिमाला विवेषयम् ॥१२०॥

भिन्नाञ्जनचयद्रव्या प्रचण्डा सिंहवाहिनी ।

रक्तनेत्रा महाकाया युक्ताऽष्टादशबाहुभिः ॥१२१॥

उग्रचण्डा भद्रकाली देव्या मूर्तिद्वय तथा ।

महिषः प्रणनामाशु दृष्ट्वा विस्मयमायतः ॥१२२॥

ततो यथा पदाक्रम्य निहतो महिषासुरः ।

तथैव जगृहे पादतले देवोद्वय ॥ तम् ॥१२३॥

हृदि शूलेन निर्भिन्न माहिप विशिरस्ककम् ।

गृहीतकेशं देव्या तु नियंदन्त्रविभूषितम् ॥१२४॥

यमद्रक्तं महाकाय दृष्ट्वा पूर्वतनुं स्वकम् ।

भय प्राप्यासुरः सोऽथ शुशोच च मुमोह च ॥१२५

ततस्तु क्षणमात्मानं सस्तभ्य स तु दानवः ।

प्रणम्य वचन देवीमिदमाह स गद्गदम् ॥१२६

दक्षिण की ओर नीचे गदा रखे हुए—बाँये हाथ से पान पात्र को रखे हुए थी जो सुरा से भरा हुआ था । शिर में नर मुण्डों की माला धारण करने वाली थी । भिन्न हुए अजा के समान थी—प्रचण्ड स्वरूप वाली और सिंह के वाहन वाली थी । लाल वर्ण वाले नेत्र थे—महती जाया थी और अठारह बाहुओं से युक्त थी । १२०, १२१। उग्र चण्डा और भद्रकाली ये दो मूर्तियाँ थी । ऐसे स्वरूप का दर्शन करके शीघ्र ही महिषासुर ने उनको प्रणिपात किया था और वह बहुत ही विस्मय को प्राप्त हो गया था । १२२। इसके अनन्तर जिस रीति से आक्रान्त करके महिषासुर को निहत्त किया था ठीक उसी भाँति दोनों देवियों ने उसको चरण के तल के नीचे ग्रहण कर लिया था । १२३। उसका हृदय धूल में विदीर्ण किया हुआ और महिषासुर बिना शिरवाला था । देवी के द्वारा उसके केश ग्रहण किये हुए थे और निक्लती अँट-डियो से मूर्पित हो रहा था । १२४। जिसके मुँह से रधिर निकल रहा था—महान् जिगवा शरीर था ऐसे अपने पूर्व शरीर को उसने देखा था । वह अपुर भय को प्राप्त करके बहुत चिन्ता एवं शोक करने लगा था तथा मोह को प्राप्त हो गया था ॥ १२५ ॥ इसके अनन्तर एक ही क्षण में दानव ने अपने आपको सस्तभित किया था और उसने देवी को प्रणाम किया था तथा गद्गद् होकर देवी से उसने यह वचन कहा—। १२६।

यदि देवि प्रसन्नामि यजभागाश्च वरिषता ।

तदा ममान्यदा नाश एवमेतद् भवेन्न हि ॥१२७

यथाहं न सुरैः सार्धं वरिष्ये वरमद्भुतम् ।

तथा मा कुम्भो देवि न जन्म प्रसभे यथा ॥१२८

आराधिताऽहं भवता वरो दत्तो मया तव ।
 वध्यश्च त्वं ममैवेह नात्र कार्या विचारणा ॥१२६
 यत् त्वया प्रार्थितं चापि सर्वैः सुरगणैः सह ।
 विरोधो मे सदा मा भूदिति चापि भविष्यति ॥१३०
 भत्पादतलसंस्पर्शान्छरीरं तव दानव ।
 यज्ञभागोपभोगाय विशीर्णं न भविष्यति ॥१३१
 तव जीवात्मभिः प्राणाः सर्व एव महामुर ।
 हरस्य पादसंयोगान्चिरं स्थास्यति केवलम् ॥१३२
 कल्पकोटिसहस्राणि त्रिंशत् त्वं महिषामुर ।
 शतानि चाष्टावन्यानि जन्म ते न भविष्यति ॥१३३

महिष ने कहा—हे देवि ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और आपने यज्ञ के भगो को मेरे लिये कल्पित किया है तब मेरा अन्य प्रकार में नाश ही है—इस प्रकार से नहीं होना चाहिए । १२७ । जिस प्रकार से मैं देवगणों के साथ अद्भुत वीर न करूँगा हे देवि ! मुझे आप ऐसा ही कर दें जिससे मैं अन्य जन्म न प्राप्त करूँ । १२८ । देवी ने कहा—आपने मेरी आराधना की है अतएव मैंने आपको वर दे दिया है । यहाँ पर तुम मेरे ही द्वारा बध होगे इस विषय में कुछ भी विचार तुमको नहीं करना चाहिए । १२९ । जो भी तुमने प्रार्थना की है कि मेरा विरोध सुरों के साथ न होवे—यह भी सब हो जायगा । १३० । हे दानव ! मेरे चरण के तल के संस्पर्श से तेरा शरीर यज्ञ भागों के उपभोग करने के लिये विशीर्ण नहीं होगा । १३१ । हे महामुर ! तेरे जीवात्माओं के साथ प्राण सब ही भगवान् हर के पाद के संयोग से केवल चिरकाल पर्यन्त स्थित रहेंगे । १३२ । हे महिषामुर ! सहस्रों करोड़ कल्प तक और अन्य आठ तीस सौ तक चिरकाल पर्यन्त तेरे जन्म न होंगे । १३३ ।

इति देवी वरं दत्त्वा महिषायासुराय वं ।

प्रणता तेन शिरसा तत्रैवान्तरधीयत ॥१३४
 महिषोऽपि निजस्थानं ययौ समोहितः पुनः ।
 मायया चासुरं भावमादाय नृपं पूर्ववत् ॥१३५
 अनेके निहता दैत्याः मायया लोकभूतये ।
 न ते पुनः प्रगृहीतास्तेभ्यो दत्त्वा वरान् शुभान् ।
 केन वा कारणेनायं प्रगृहीतो वरः कथम् ।
 दत्तास्तस्मै समाचक्ष्व मम सम्यग् द्विजोत्तम ॥१३६
 आराधितो महादेवो रम्भेण सुरवैरिणः ।
 चिरेण स च सुप्रीतस्तपसा तस्य शकरः ॥१३७
 अथ तुष्टो महादेवः प्रत्यक्षं रम्भमूचिवान् ।
 प्रीतोऽस्मि ते वरं रम्भं वरयस्व यथेप्सितम् ॥१३८
 एवमुक्त्वा प्रत्युवाच रम्भस्तं चन्द्रशेखरम् ।
 अपुत्रोऽहं महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः ॥१३९
 मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शकरः ।
 अवध्यं सर्वभूतानां जैता च त्रिदिवौकसाम् ॥१४०

इस प्रकार से यह वर देवी ने उस महिषासुर को देकर उस
 असुर के द्वारा शिर से प्रणत होती हुई वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई
 थी । १३४ । वह महिष भी हे नृप ! पुनः माया के द्वारा सम्मोहित
 होता हुआ पूर्व की भाँति आसुर भाव का आदान करके अपने स्थान को
 चला गया था । १३५ । राजा सगर ने कहा—माया के द्वारा अनेक
 दैत्य निहत किये गये थे जिनका विह्वलन लोको की विभूति के ही लिये
 ही हुआ था । उनको शुभ वरदान देकर वे पुनः प्रगृहीत नहीं हुए थे ।
 यह किस कारण ने वर देकर वैसे पुनः प्रगृहीत हुआ था ? हे द्विजो-
 त्तम ! मुझे यह बतलान की कृपा कर । १३६ । और्व्य मुनि ने कहा—
 मुरो के वैरी रम्भ के द्वारा महादेवजी की आराधना की गयी थी ।
 उनके चिरकाल पयःन विद्य हुए तप स के भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न

हो गये थे । १३७ । इसके अन्तर परम प्रसन्न महादेवजी प्रत्यक्ष रूप में उरग्निय होकर उम रम्भ से बोले थे । मैं तुझ पर परम प्रसन्न हो गया हूँ अब जो भी तेरा इच्छित हो मुझसे वरदान का वरण करलो । १३८ । इस रीति में कहा हुआ रम्भ भगवान् चन्द्रशेखर से बोला था । हे महादेवजी ! मैं बिना पुत्र वाला हूँ । यदि आपका मुझ पर अनुग्रह हो तो हे शंकर ! मेरे तीन जन्मों में आप ही मेरे पुत्र होकर जन्म ग्रहण करें । ऐसा ही पुत्र हो जो ममस्त प्राणियों के द्वारा अवध्य हो और देवगणों का नेता होवे ॥१३६—१४०॥

विरागुश्च यशस्वी च लदमीवान् म च शंकर ।

एवमुक्तस्तु दंत्येन प्रत्युवाच वृषध्वजः ॥१४१

भवत्वेतद्वाञ्छितं ते भविष्यामि सुतस्तव ।

इत्युक्त्वा म महादेवस्तत्रैवान्तरर्षीयन् ॥१४२

रम्भोऽपि यान् स्वस्यानं हर्षोत्फुल्लविलोचनः ।

पथि गच्छन् स रम्भोऽप्य ददर्श महिषी शुभाम् ॥१४३

त्रिहायणी चित्रवर्णा मुन्दरोभृतुशालिनीम् ।

म ता दृष्ट्वाय महिषी रम्भः कायेन मोहितः ॥१४४

दोभ्यां गृहीत्वा च तदा चकार सुरतोत्सवम् ।

तयोः प्रवृत्ते सुरते तदा सा तस्य तेजसा ॥१४५

दधार महिषी गर्भं तदाऽभून्महिषासुरः ।

तस्या स्वाग्नेन गिरिशन्तत्युत्रत्वमवाप्तवान् ॥१४६

ववृधे स तदा राम्भः शुक्लपक्षशशांकवत् ।

त च नात्यायनमुनिः शतवान्महिषासुरम् ॥१४७

दुनंय वीक्ष्य शिष्यार्थं शिष्यानुग्रहकारकः ।

पात्यायनेन शप्तं तं विज्ञाय महिषासुरम् ।

प्राह प्रणामपूर्वं तु चण्डिका चन्द्रशेखरः ॥१४८

हे शङ्कर ! यह मेरा पुत्र ऐसा हो जिसकी आयु विरक्तान तक ---

की होवे—वह यशस्वी और लक्ष्मीमान् होवे । इस प्रकार से जब उस दैत्य के द्वारा प्रार्थना की गयी तो भगवान् वृषभध्वज ने कहा—॥१४१॥ यह तेरा वाञ्छित हो जावे और मैं तेरा पुत्र हो जाऊंगा । इतना ही कहकर भगवान् वृषभध्वज वही पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥ १४२ ॥ रम्भ भी हृष से विकसित लोचनी वाला होता हुआ अपने निवास स्थान को चला गया था । मार्ग में गमन करते हुए उस रम्भ ने शुभ महिषी को देखा था । १४३ । वह महिषी त्रिहायणी—चित्र वर्ण वाली—परम सुन्दरी और ऋतुशालिनी थी । उस रम्भ ने उस महिषी को देखा था और कामदेव से मोहित हो गया था अर्थात् महिषी को देखकर ही उसके हृदय में काम का विकार हो गया था ॥ १४४ ॥ उसी अवसर पर रम्भ ने अपने दोनों बाहुओं से उस महिषी को ग्रहण करके उसके साथ सुरतोत्सव किया था । अर्थात् उससे सङ्गम किया । फिर रति क्रीडा में प्रवृत्त हो जाने पर उसी समय में वह महिषी उसके तेज से मुक्त होकर वह गर्भवती हो गयी थी । १४५ । महिषी ने गर्भ धारण कर लिया था तभी उसके उदर से महिषासुर समुत्पन्न हुआ था । उस महिषी में अपने ही अंश से भगवान् शङ्कर ने उसके पुत्र हो जाने की प्राप्ति की थी । १४६ । वह रम्भ का पुत्र राम्भि शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की ही भाँति बड़ा हो गया था । कात्यायन मुनि ने उस महिषासुर के लिये शाप दे दिया था । १४७ । शिष्य के अर्थ में उसको दुर्नय अवलोकन करके शिष्य पर अनुग्रह करने वाले चन्द्रशेखर ने कात्यायन के द्वारा शाप दिये हुए उस महिषासुर का ज्ञान प्राप्त करके चाण्डिका से प्रणाम पूर्वक कहा—॥१४८॥

देवी कात्यायनेनायं शप्तोऽद्य महिषासुरः ।

योपिद्विनाशकर्त्रीति भवितेति जगन्मये ॥१४९॥

निःसंशयमृषेर्वाक्य भविष्यति न संशयः ।

मदीयो माहिपः कायो देवि कार्यंस्त्वया त्वधि ॥१५०॥

हन्तव्यः सतत योगयुक्तः पूर्वं परेऽपि च ।
हरिर्हरिस्वरूपेण न त्वां वोढुं क्षमोऽभुता ॥१५१॥
ममायं माहिपः कायस्तव वोढा भविष्यति ।
इति पूर्वं महादेवो देवीं प्रार्थितवान् पुरा ॥१५२॥
तेन देवी महादेवं जग्राह महिषासुरम् ।
त्रिषु जन्मसु पुत्रोऽगूढरम्भस्य भगवान् हरः ॥१५३॥
सृष्टिस्तये स रम्भोऽपि रम्भ एव व्यजायत ।
आसुरं तादृशं तपे तपः परमदारणम् ॥१५४॥

ईश्वर ने कहा—आज हे देवि ! यह महिषासुर कात्यायन के द्वारा शाप दिया गया है । इसके बिनाश करने वाली दोगली होगी । इससे हे जगन्मये । श्रुति का वाक्य बिना किसी संदेह के ही पूर्ण होगा—इसमें कुछ भी मगल नहीं है । यह महिष मेरा ही शरीर है । हे जगन्मयि ! यह तुम्हारे द्वारा करना है और इसका हनन करना है । पूर्व ओर पर में भी निरन्तर योग से युक्त मैं हरि हरि के स्वरूप से तुमको बहन करने में अब समर्थ नहीं हूँ ॥ १५६—१५१ ॥ मेरा यह शरीर महिष तुम्हारा वोढा होगा । यह महादेवजी ने पूर्व में पहिले देवी से प्रार्थना की थी । १५२ । इससे देवी ने महिषासुर महादेव का ग्रहण किया था । तीनों जन्मों में भगवान् हर रम्भ के पुत्र हुए थे । ॥ १५३ ॥ तीनों सृष्टियों में वह रम्भ भी रम्भ ही होकर समुत्पन्न हुआ था । उसने उमी प्रकार का आसुर तप का तपन किया था जो परम दारण था ॥ १५४ ॥

तयंचाराधितः शम्भुः पुत्रार्थं प्रददौ वरम् ।
तयैव महिषी भेजे प्रथम सुरताय सः ॥१५५॥
तस्यां तथाऽभवद्वीरो दानवो महिषासुरः ।
तथैव भेजे भगवान् मुनिः कात्यायनस्तु तम् ॥१५६॥
इति प्रवृत्ते पूर्वोऽस्मिन् परस्मिन् स तु जन्मनि ।

महिष पूजयित्वाऽथ देवी वरमयाचत ॥१५७

तृतीये जन्मनि वर प्राप्य कल्पानशेषत ।

नेह मे जन्म भवितेत्येव वरमयाचत ॥१५८

तेन देवीपादले तिष्ठत्येषोऽसुरोऽधुना ।

मोत्पत्तिरपि तस्याथ सर्वतान्तादभून्नृप ॥१५९

उसी भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की थी और पुत्रार्थ वरदान प्रदान किया था । उसी रीति से उसने अपनी महिषी का सुरत के लिये सेवन किया था । १५५ । उसमे उसी प्रकार से दानव महिषासुर दानव बौर हुआ था । भगवान् कात्यायन ने भी उसी प्रकार से उसको शाप दिया था । १५६ । पूर्व जन्म मे इस प्रकार से प्रवृत्त होने पर उसने पर जन्म मे महिष ने देवी का पूजन करके वरकी याचना की थी । १५७ । तीसरे जन्म मे वर प्राप्त करके अशेष कल्पों मे यहाँ पर मेरा जन्म न होवे—यह ही वरदान मागा था । १५८ । इस कारण से देवी के शरणों के तल मे इस समय मे महिषासुर स्थित रहा करता है । हे नृप । इसके अनन्तर सर्वज्ञ के अन्त से उसकी उत्पत्ति भी नहीं हुई थी ॥१५९॥

एव देवीप्रसादेन महादेवाशसम्भव ।

परामवाप सतत प्रतिपत्ति महासुर ॥१६०

इति ते कथित राजन यथा स महिषासुर ।

देवीपादतल प्राप्य यथा सोऽद्यापि मोदते ।

प्रस्तुत शृणु भो राजन् वथयामि नृपोत्तम ॥१६१

इति व कथित राजा सगर सहितो यथा ।

और्व्वेण चक्रे सवाद देवीमहिषयोजने ॥१६२

पुनर्यदाह भूयोऽपि सगराय महात्मने ।

तच्छृण्वन्तु मुनिश्चेष्टा गुह्याद् गुह्यतर परम् ॥१६३

इस प्रकार से देवी के प्रसाद से महादेव जी के अग से उत्पन्न

होने वाले महासुर ने निरन्तर परा प्रति पति का लाभ किया था ।
 । १६० । वह आज भी देवी के चरणों के तल की प्राप्ति करके परम
 प्रसन्न होता है । हे राजन् ! यह आपके समक्ष मैं सब कहकर मुना
 दिया है जिस तरह मैं महिषासुर था । हे राजन् ! अब प्रस्तुत विषय
 का आप श्रवण कीजिए । हे नृपोत्तम ! मैं आपके सामने कहता हूँ ।
 मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जिस तरह मैं महिष राजा मामर था और
 दधी—महिष के योजन मैं श्रीर्ष के साथ सम्वाद किया था—यह सभी
 आपको बतला दिया है । १६२ । पुन महात्मा सगर के लिये जो कहा
 था हे मुनि श्रेष्ठो ! उसका आर लोण अब श्रवण कीजिए । यह
 गोपनीय मैं भी परम गोपनीय है ॥ १६३ ॥



॥ कामाख्या माहात्म्य ॥

यथाह भगवान् देवो भैरवाय महात्मने ।
 येतास्त्राय नृपश्रेष्ठ तया त्व प्रतुस्त शृणु ॥१
 उग्रचण्डा च या मूर्तिरष्टादशभुजाऽभवत् ।
 सा नवम्यां पुरा कृष्णपक्षे कन्या गते रवौ ॥२
 प्रादुर्भूता महामाया योगिनीकोटिभिः सह ।
 आपादम्य तु पूर्णाया सत्र द्वादशवार्षिकम् ॥३
 दक्ष कर्तुं समारेभे वृता सर्व दिवौकस ।
 ततोऽन वृत्तस्तेन दक्षेण मूमहात्मना ॥४
 कपालाति सती चापि तज्जायेति च नो वृता ।
 ततो रोपममायुक्ता प्राणांस्तत्याज सा सती ॥५
 त्यक्त्वा देहा सती चापि चण्डमूर्तिस्तदाऽभवत् ।
 तत्र प्रवृत्ते यज्ञेऽपि तस्मिन् द्वादशवार्षिके ॥६

नवम्या कृष्णपक्षे तु कन्याया चण्डमूर्तिधृक् ।

योगनिद्रा महामाया योगिनीकोटिभि सह ॥७॥

और भूत ने कहा—जिस रीति से भगवान् देव ने महात्मा भरव से कहा था वेताल के लिये कहा था हे नृप खेच्छ । आप उसी भाँति प्रस्तुत को सुनो ॥१॥ श्री भगवान् ने कहा—जो उग्र चण्डा मूर्ति है और जो अठारह भुजाओं वाली हुई थी वह पहिले नन्या राशिगत सूर्य के होने पर कृष्ण पक्ष में नवमी प करौडो योगिनियों के सहित महामाया प्रादुर्भूत हुई थी । आपाठ मास की पूर्णिमा में द्वादश वर्ष का होने वाला सत्र होता है । इस सत्र को करने के लिये प्रजापति दक्ष ने समारम्भ किया था और सभी देवों का वरण किया गया था अर्थात् आमन्त्रित थे । उसने मुझे वरण नहीं किया था । अर्थात् महात्मा दक्ष ने मुझे आमन्त्रण नहीं दिया था ॥२॥३॥४॥ वे कपाली अर्थात् कपाल धारी है और सती उनकी पत्नी है—इसी लिये वरण नहीं किया था । इसके पश्चात् रोष में समागुप्त होकर उस सती ने प्राणों का परित्याग कर दिया था ॥५॥ देह के त्याग करने वाली सती फिर उस समय में चण्ड मूर्ति हो गई थी । फिर बारह वर्ष में पूर्ण होने वाले उस यज्ञ के प्रवृत्त होन पर नन्या के मूर्त्य में कृष्ण पक्ष में नवमी तिथि के दिन चण्ड मूर्ति को धारण करने वाली योगनिद्रा महामाया ने करौडो योगिनियों के साथ यज्ञ का नाश किया था ॥६॥७॥

सतीरूप परित्यज्य यज्ञभङ्गमथाकरोत् ।

शक्रस्य गणै सर्वे सहिता शकरेण च ॥८॥

स्वयं बभञ्ज सा देवी महासत्र महात्मन ।

ततो दक्ष्या महाक्रोधे व्यतीते त्रिदिवीरस ॥९॥

पूजयाक्रुचरतुला देवी पूर्वोदितेन वै ।

पूर्वोदितविधानेन पूजामस्या दिवौवस ॥१०॥

शृण्वं परमामाप्नुनिर्वृति दुःखहानये ।

उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान न समाचरेत् ॥१६
 यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवी प्रपूजयेत् ।
 पूजयित्वा महाष्टम्यां नवम्यां बलिभिस्तथा ॥१७
 विसर्जयेद् दशम्यां तु श्रवणे शावरोत्सवं ।
 अन्त्यपादो दिवाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥१८
 तदा सम्प्रेषणं देव्या दशम्यां कारयेद् बुध ।
 सुवासिनो - कुमारोभिर्वेश्याभिनंतंकस्तथा ॥१९
 शङ्खनूर्यनिनादश्च मृदङ्गः पटहस्तथा ।
 ध्वजर्वस्त्रं वंहुविर्घलाजपुष्पप्रकीर्णकः ॥२०
 धूलिकदंमविलेपं क्रीडाकौतुकमङ्गलं ।
 भगलिङ्गामिधानंश्च भगलिङ्गप्रगीतकं ॥२१
 भगलिङ्गादिशब्दंश्च क्रीडयेयुरस जनाः ।
 परं नार्क्षिष्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपेद् यदि ॥२२
 क्रुद्धा भगवती तस्य शाप दद्यात् सुदारुणम् ।
 आदिपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥२३

बहुत जाति वाले बलियो के द्वारा तथा भोजनो से—सिन्दूर—
 वह वस्त्र—अनेक प्रकार के विलेपन—पुष्प जो नाना प्रकार के हो—
 बहुत तरह के कर्मों के द्वारा पूजन करना चाहिये । इस महाष्टमी में जो
 पुत्र वाला हो उसे उपशम नहीं करना चाहिये ॥१५॥१६॥ जिस-
 किनी प्रकार में पवित्र आत्मा बामा—वनचारी देवी का यजन करे ।
 महाष्टमी में पूजा करके नवमी तिथि में बलियों का समर्पण करके बिदा
 करे ॥१७॥ दशमी तिथि में श्रवण में शावरोत्सवों के द्वारा जिस समय
 में दिवा के भाग में श्रवण का अन्तिम चरण होवे उसी समय में देवी
 का दशमी में बुध पुरुष को सम्प्रेषण करना चाहिये । सुवासिनियों के
 द्वारा—कुमारियों के—वेश्याओं के—गर्हावियों के द्वारा—गधों—तूपों
 की ध्वनियों के—मृदङ्ग और पटहों के द्वारा—ध्वज—बहुत प्रकार के

दस्त्रों से—ताजा (खोल) और पुष्पों के प्रकीर्ण के द्वारा धूलि कंदम
विशेषों के द्वारा तथा कीटा—बौलुक मङ्गलों से भगलिङ्ग विग्रहों से
तथा भग लिङ्ग बीतों से—भगलिङ्ग आदि शब्दों के द्वारा मनुष्यों की
पर्याप्त रूप से कीटा करनी चाहिये ॥१८॥१९॥२०॥२१॥ यदि परो के
द्वारा जो आशिस न हो और जो परो का आक्षेप न करे तो भगवती
बहुत क्रुद्ध हो जाती है और परम दारुण जाप दे देती है । यवण का
आदि चरण जब निशा भाग में होवे ॥२२॥२३॥

तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां न पुनर्दिवा ।

अन्त्यपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥२४

तदा देव्याः समुत्थान नवम्यां दिनमागतः ।

विसर्जनमनेनैव मन्त्रेण वत्स भैरव ॥२५

कर्तव्यमभास स्थाप्य विभूज्य च विभूतये ।

उत्तिष्ठ देवि चण्डेशे शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥२६

कुरुष्व मम कल्याणमष्टभिः शक्तिभिः सह ।

गच्छ गच्छ परं स्थान स्वस्थान देवि चण्डिके ॥२७

यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।

ब्रज त्व स्रोतसि जले तिष्ठ गेहे च भूतये ॥२८

उसी समय में नवमी में निशा के भाग में देवी का समुत्थान
करे दिन में नहीं करे । निशा के भाग में जब अन्तिम चरण यवण का
होवे ॥२४॥ उसी समय में देवी का समुत्थान नवमी में दिन के भाग
में होता है । हे वत्स भैरव ! इसी मन्त्र के द्वारा विसर्जन होता है ॥२५॥
कर्तव्य का अन्त में स्थापित करके विभूति के लिये विसर्जन करना
चाहिए । हे देवि ! हे चण्डेशे ! आप समुत्थान कीजिए और शुभा पूजा
का ग्रहण करिये ॥२६॥ अपनी आठों शक्तियों के सहित मेरा कल्याण
करिए । हे देवि ! हे चण्डिके ! अपने परम स्थान की समस्त कीजिए
प्रस्थान करिए । २७ । हे देवि ! मेरे द्वारा जो पूजन किया गया है वह

मुझे परिपूर्ण होवे । आपस्त्रोता के जल में गमन करो और भूति के लिए
 गृह में संस्थित होइए ॥२८॥

निमज्ज्याम्भसि सन्त्यज्य पत्रिकावजिते जले ।

पुत्रायुधनवृद्धयर्थं स्थापितासि जले मया ॥२९॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण देवी सस्यापयेज्जले ।

सर्वलोक-हितार्थाय सर्वलोकविभूतये ॥३०॥

दुर्गा तन्त्रेण मन्त्रेण पूजितव्ये उभे अपि ।

भद्रकालीमुग्रचण्डा महामाया महोत्सवे ॥३१॥

नेत्रबीजं तु सर्वासा पूजने परिकीर्तनम् ।

योगिनीनां तु सर्वासा मूलमूर्तैस्तथैव च ॥३२॥

मन्त्र तथोग्रचण्डाया पृथक् त्व शृणु भैरव ।

आद्यद्वय नेत्रबीजं मन्त्रस्थोपान्तमन्तरे ॥३३॥

वहिनाञ्जन् स्वरेणेन्दुविदुभ्या तन्त्रमोग्रकम् ।

नेत्रबीजं द्वितीयं तु द्विधावतितमुच्यते ॥३४॥

भद्रकाल्यास्तु मन्त्रोऽयं धमकामार्थसिद्धये ।

यदा तु वंद्यन्ती देवी महामाया जगन्मयी ॥३५॥

जल में निमज्जन करके पत्रिका वजित जल में भसी भाँति त्याग
 करके पुत्र—आयु और धन की वृद्धि के लिए मेरे द्वारा जल में
 आपको स्थापित किया गया है ॥ २९ ॥ इसी मन्त्र के द्वारा देवी
 का जल में संस्थापन करना चाहिये । यह सब लोकों के हित के
 सम्पादन के लिये और सब लोगों की विभूति के लिये करे ॥ ३० ॥
 महोत्सव में दुर्गा तन्त्र के मन्त्र के द्वारा भद्रकाली—महामाया उग्र-
 चण्डा दोनों ही देवियों का पूजन करना चाहिए । ३१ । सब देवियों
 के पूजन में नेत्र बीज परिकीर्तन किया गया है । सब योगिनियों का
 तथा मूल मूर्ति का तथा उग्र चण्डा का मन्त्र है भैरव । आप पृथक्
 श्रवण कीजिए । अन्तर में मन्त्र का उपान्त आद्यद्वय नेत्र बीज है ।
 अन्तस्वरवहिन में—इन्दु बिन्दुओं में बीच में तन्त्र है । द्वितीय तो नेत्र

बोज द्विधा वर्तित कहा जाता है ॥ ३२—३४ ॥ यह भद्रका का मन्त्र है जो धर्म—वाम और अर्थ की सिद्धि के लिए है । जिस समय में वैष्णवी देवी जगन्मयी महामाया है ॥ ३५ ॥

पूजयेत वैष्णवी देवी तन्त्रोक्ता अप्टयोगिनी ।
ता प्रोक्ता शैलपुत्र्याश्च पूर्वकल्पे च भैरव ॥ ३६ ॥
उग्रचण्डादयश्चाष्टौ दुर्गातिन्त्रस्य कीर्तिता ।
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रेण भद्रकाली प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥
पूजयेद् भूतिवृद्धिर्धर्मेना एवाष्टयोगिनी ।
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनीम् ॥ ३८ ॥
दुर्गा शिला क्षमा घात्री दलेष्वष्टसु पूजयेत् ।
यदोग्रचण्डातन्त्रेण सा देवी तत्र पूजयेत् ॥ ३९ ॥
योगिन्यस्तत्र पूज्या स्युरष्टावग्याश्च भैरव ।
कौशिकी शिवदूती च उमा हैमवतीश्वरी ॥ ४० ॥
शाकम्भरी च दुर्गा च सप्तमी च महोदरी ।
उमायाः सौम्यमूर्तेस्तु तन्त्रे त्व शृणु भैरव ॥ ४१ ॥
पादि समाप्तिसहितः फडन्तो नान्त एव च ।
एकक्षरस्त्र्यक्षरश्च उमामन्त्र इति स्मृत ॥ ४२ ॥

आठ योगिनियों वाली तन्त्र में वर्णित वैष्णवी देवी का यजन किया जाता करता है । हे भैरव पूर्व कल्प में वे शैल की पुत्री कही गयी हैं ॥ ३६ ॥ उग्रचण्डा आदि आठ दुर्गा तन्त्र की कीर्ति की गयी हैं । भद्रकाली के मन्त्र के द्वारा भद्र काली का पूजन करना चाहिये । ॥ ३७ ॥ ये आठों योगिनियों का भूति की वृद्धि के लिये अभ्यर्चन करना चाहिए । अब उन आठों के नाम धनसाये जाते हैं—जयन्ती—मङ्गला—काली—भद्रकाली—कपालिनी—दुर्गा—शिला—क्षमा—घात्री इनका आठ दलों में पूजन कर । जिस समय में उग्र चण्डा तन्त्र के द्वारा वहाँ पर वह देवी पूजी जानी है ॥ ३९ ॥ हे भैरव ! वहाँ पर आठ योगि-

नियों जो अन्य हैं पूजनी चाहिए अब इनके भी नाम बतलाये जाते हैं—
 कोशिकी—शिव दूती—उमा—रैमवतीश्वरी—शाकम्भरी—दुर्गा—
 सातवीं महोदरी है । हे भैरव ! सौम्य मूर्ति उमा का मन्त्र अब अप
 श्रवण कीजिए ॥४०॥४१॥ समाप्ति के सहित पादि पट्ट जिसके अन्त में
 होवे और अन्त ही न होवे । एक अक्षर वाला और तीन अक्षरों से समुत्
 उमा का मन्त्र कहा गया है ॥४२॥

सुवर्णसहशी गौरी भुजद्वयसमन्विताम् ।
 नीलारविन्द वामेन पाणिना विभ्रती सदा ॥४३॥
 शुक्लं तु चामर धृत्वा भगस्याङ्गज्य दक्षिणे ।
 विन्यस्य दक्षिण हस्त तिष्ठन्ती परिचिन्तयेत् ॥४४॥
 विनापि शम्भुं रुद्राणी भक्तस्तु परिचिन्तयेत् ।
 द्विभुजा स्वर्णगौराङ्गी पद्मचामरधारिणीम् ॥४५॥
 व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मामनगता सदा ।
 एतस्या पूजने प्रोक्ता अष्टौ चेतालभैरव ॥४६॥
 योगिन्यो नायिकाश्चापि पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।
 जया च विजया चैव मातङ्गी ललिता तथा ॥४७॥
 नारायण्यथ सावित्री स्वधा स्वाहा तथाऽष्टमी ।
 पूर्वं शुम्भो निशुम्भश्च दानवी भ्रातराबुधो ॥४८॥
 बभूवतुर्भहासत्त्वो महाकायो महाबलो ।
 अन्धकस्य सुतो द्वौ तौ दन्तिनाविव दुर्मदौ ॥४९॥
 मया विनिहिते तस्मिन्नन्धकाख्ये महाबले ।
 ससैन्यवाहनौ तौ तु पातालतलमाश्रितौ ॥५०॥

अब ध्यान बतलाया जाता है—सुवर्ण के समान वर्ण वाली है—
 गौरी—दो भुजाओं से युक्त है—बाँये हाथ से नील कमल को सदा
 धारण किये रहती है ॥४३॥ शुक्ल चामर को धारण करके भर्ग के
 दाहिने अङ्ग में दाहिने हाथ का विन्यास करके सन्धिप है—ऐसा ही

परिचिन्तन करना चाहिए । ४४ । भक्त को शम्भु के बिना भी रुद्राणी का ध्यान करना चाहिए । जो दो भुजाओं वाली है—स्वर्ण के सहस्र परम शुद्ध अङ्गों से समन्वित है—पद्म तथा चामरो को धारण करने वाली है । व्याघ्र के चर्म पर स्थित पद्म पर सदा पद्मासन में सस्थित है । हे वेताल चैरव ! इसके पूजन में आठ योगिनियाँ बतायी गयी हैं ॥ ४५—४६ ॥ योगिनियों और नायिकाएँ भी पृथक् व्यवस्थित हैं—अब उन आठों के नाम बताये जाते हैं—जया—विजया—मातङ्गी—ललिता—नारायणी—सावित्री—स्वधा—स्वाहा ये हैं । पहिले समय में शुम्भ और निशुम्भ—ये दो भाई दानव थे ॥ ४७—४८ ॥ ये दोनों महान् मत्स्य वाले थे । इनका विशाल शरीर था । ये महान् बल वाले थे अश्वक दानव के पुत्र थे और ये दोनों मत्स्यवाले दुर्मेद यज्ञों के ही समान थे । ४९ । ये अश्वक नाम वाले महान् बलवान् मेरे द्वारा ही विनिष्ट हुए थे । वे दोनों सेना के सहित रहते थे और उनके वाहन भी थे । वे वातास तल में समाश्रित थे । ५० ।

ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं ब्रह्माणन्तो महागुरो ।

सम्यक् तदास्तोषयता स सुप्रीतो धरं ददौ ॥५१॥

तो ब्रह्मवरदृष्टो तु समासाद्य जगत्त्रयम् ।

इन्द्रत्वमकरोच्छुभश्चन्द्रत्व च निशुम्भवः ॥५२॥

सर्वेषामेव देवाना यज्ञभागानृशदृष्टः ।

स्वयं शुम्भो निशुम्भश्च दिक्पालश्च च दाम्निः ॥५३॥

सर्वे सुरगणाः सेन्द्रास्ततो गन्त्रा शिवाश्च यः ।

गंगावतारनिकटे महामाया शङ्करः ॥५४॥

अनकेशः स्तुता देवी मदा मयाः ॥५५॥

मानङ्गवनितामूर्तिर्भुवः ॥५६॥

मुष्माभिरमरेरश्च नृपः ॥५७॥

किमर्णमागता ययं ॥५८॥

दमो उगान्तः ॥५९॥

या तपन किया था और उस समय म तप के द्वारा उन्होंने ब्रह्माजी को परम सन्तुष्ट कर लिया था । ब्रह्माजी ने बहुत ही प्रसन्न होकर उनको वरदान दिया था । ५१ । वे दोनों ही ब्रह्माजी के द्वारा वर प्राप्त करके बहुत धमण्डी हो गये थे और उन्हीं तीनों लोकों को प्राप्त कर लिया था । शुम्भ ने इन्द्र के पद को प्राप्त करके इन्द्रत्व वर लिया था और निशुम्भ ने चन्द्रत्व प्राप्त कर लिया था । ५२ । इन्होंने समस्त देवगणों के जो यशों में भाग थे उनका उपहारण कर लिया था । स्वयं शुम्भ और निशुम्भ ने दिक्पालों के पद को प्राप्त कर लिया था । ५३ । इन्द्र के सहित समस्त देवगण फिर हिमाचल पर गये थे और गङ्गावतरण के स्थल के समीप में उन्होंने महामाया की स्तुति की थी । ५४ । नाना भाँति स स्तवन की हुई देवी जो कि सभी देवों के समुदायो द्वारा स्तुत हुई थी मातङ्ग वनिता का स्वरूप धारण करके उस देवी ने देवगणों से पूछा था । ५५ । हे देवगणों ! यहाँ पर आपके द्वारा कौन सी भार्मिनी का स्तवन किया जा रहा है और आप लोग यहाँ पर किस लिये समागत हुए हैं किम प्रयोजन की सिद्धि के लिये दस मातङ्ग के आश्रम की ओर आये हैं ? । ५६ ।

एव ब्रुवन्त्या मातङ्गास्तस्यास्तु कायकोपत ।

समुद्भूताऽब्रवीद् देवो मा स्तुवन्ति सुरा इति ॥५७

शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरो वाधेते सकलान् सुरान् ।

तस्मात् तयोर्वंध्यायाह स्तूयेतं सर्वलं सुरं ॥५८

विनि सृताया देव्या तु मातङ्गा कायकोपत ।

भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साऽमूद गौरी क्षणादपि ॥५९

कालिकाद्याज्जवत् सापि हिमाचलकृताथया ।

तामुग्रतारामृपयो वदन्तोह मनीषिणः ॥६०

उग्रादपि भयात्प्राति यस्माद् भक्तान् सदाभ्यिका ।

एतस्या प्रथम बीज कथित त्रयमेव च ॥६१

एवंकजटाद्या तु यस्मात्तस्माज्जटिका ।
 शृणुतं चिन्तन चास्याः सम्यग्वेतालभैरवी ॥६०॥
 यथा ध्यात्वा महादेवी भक्तः प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।
 चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥६१॥

इस प्रकार से यह खोमती हुई उस मातङ्गी के काय काय से समुद्रमूत हुई देवी ने कहा—ये मुरगण मेरा ही स्तवन कर रहे हैं । ५७। शुम्भ और निगुम्भ ये असुर ममत्न देवों को बाधा दिया करते हैं । इसी कारण से उन दोनों के वध करने के ही लिये इन ममत्न सुरों के द्वारा मेरा स्तवन किया जा रहा है ॥ ५८ ॥ मातङ्गी के नाम कीय में देवी के विनिसृत होने पर वह गौरी पिये हुए अञ्जन के समान ही एक ही क्षण में कृष्ण वर्ण की हो गयी थी । ५९ । वह भी कालिका नाम वाली हो गई थी और वह हिमवान् पर्वत में समाश्रय वाली थी । ऋषिगण जो मनीषी है उसको यहाँ पर उग्र तारा नाम से कहा करते हैं । ६० । यह अम्बिका देवी सदा अत्युग्र भय से भी परित्राण किया करती है । इसका प्रथम बीज तीनो ही बहे गये हैं । ६१ । यह ही इसी कारण से एक जटा नाम वाली है क्योंकि एक ही जटा वाली है । हे वेनाय मरुतो ! इसका चिन्तन अर्थात् ध्यान किस प्रकार में करना चाहिए उसका अथ आप लोग श्रवण करिए । ६२ । जिस प्रकार में भक्त ध्यान करके अपना अभीप्सित प्राप्त किया करता है—वह चार भुजाओं से समन्वित हैं उनका वर्ण एवम् कृष्ण है और यह नरमुण्डों की माला में शोभायमान है । ६३ ।

छद्म दक्षिणपाणिन्या विभ्रती चामरं त्वघ ।
 कर्त्री च छर्परं चैव त्रमाद्वामेन विभ्रतोम् ॥६४॥
 एषा लिखन्ती जटामेका विभ्रती शिरसा स्वयम् ।
 मुण्डमालाधरा क्षीपे ग्रीवायामपि मण्डा ॥६५॥
 वदसा नागहारं तु विभ्रती रत्नलोचनाम् ।

कृष्णवस्त्रधरा कट्या व्याघ्राजिन-समन्विताम् ॥६६॥

वामपाद शवहृदि सस्थाप्य दक्षिणं पदम् ।

विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम् ॥६७॥

सादृष्टासा महाघोरां रावयुक्तातिभीषणाम् ।

चिन्त्याग्रे तारा सततं भक्तिमद्भिः सुधेप्सुभिः ॥६८॥

एतस्याः सम्प्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनीः स्मृताः ।

महकात्यय रुद्राणा उग्रा भीमा तथैव च ॥६९॥

घोरा च घ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।

भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत् ॥७०॥

दाहिने हाथो से वह खड्ग को धारण किये हुए हैं और अधोभाग में चमर कर रही हैं । कम में बाँधे हाथ से खर्पर को धारण करने वाली हैं । ६४ । स्वयं शिर के द्वारा एक जटा को धारण कर रही हैं । जो धोलोक को मानो जटा से लिख रही हों । मस्तक में मुण्डो की माला पहिने हुए हैं और सर्वदा धीमा में भी मुण्डमाला धारण करती हैं । ६५ । उनके वक्षः स्थल में नागो का हार है और उनके नेत्र रक्त वर्ण के हैं । कटि में कृष्ण वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली है तथा बायम्बर से भी समन्वित रहती हैं ॥ ६६ ॥ उनका बायाँ चरण शव के हृदय पर है तथा दाहिना चरण सिंह की पीठ पर सस्थापित हो रहा है और स्वयं शव को अपनी सम्बन्धी जिह्वा से चाट रही हैं । ६७ । अट्ट-हास करती हुई महान् घोर ध्वनि वाली अत्यन्त ही भीषण स्वरूप वाली हैं । निरन्तर सुख की इच्छा वाले भक्तियुक्त भक्तों के द्वारा भागे वह तारा देवी चिन्तन के योग्य हैं । ६८ । अब इस देवी की जो आठ योगिनियाँ बही गयी हैं उनको मैं वतलाऊँगा । उनके अब नाम बतलाये जाते हैं—महाकाली—रुद्राणी—उग्रा—भीमा—घोरा—घ्रामरी—महारात्रि और आठवीं भैरवी अतलायी गई है । उन योगिनियों का यजन करना चाहिए ॥ ६९—७० ॥

या कायकोपाग्निमृता बालिकायास्तु भैरव ।
 सा कोशिकीति विख्याता चारुरूपा मनोहरा ॥७१॥
 निःसृता हृदयाद् देव्या रसनाग्रेण चण्डिका ।
 नैतस्याः सदृशो मूर्त्या चारुद्वयेण विद्यते ॥७२॥
 त्रिषु लोकेषु कान्त्या वा नास्यास्तुल्या भविष्यति ।
 योगनिद्रा महामाया या मूलप्रकृतिर्मता ॥७३॥
 तस्याः प्राणस्वरूपेयं देवी या कोशिकी स्मृता ।
 नेत्रबीजं तथैतस्या बीजं तु परिकीर्तितम् ॥७४॥
 मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि मूर्तिरूपं च भैरव ।
 ममाश्रितान्त्यदन्त्यस्तु पद्मवर्गादि-सविन्दुभिः ॥७५॥
 पष्ठस्वरेण संस्पृष्टो विन्दुना समलंकृतः ।
 कोशिकोमन्त्रस्तन्त्रोऽयं सर्वकामार्थदायकः ॥७६॥
 तस्यास्तु सम्प्रवक्ष्यामि या मूर्तिरिह भैरव ।
 शृणुर्वकमना भूत्वा जगदाह्लादकारकम् ॥७७॥

हे भैरव ! जो बालिका के काम कोप में निवली थी वह
 कोशिकी—इस गुप्त नाम से विख्यात हुई थी । यह परम सुन्दर—स्वरूप
 वाली और अत्यधिक मनोहर थी ॥७१॥ यह देवी के हृदय में निःसृत
 हुई थी रसमा के अग्रभाग में चण्डिका निकली थी । यह इतनी अधिक
 सुन्दर थी कि इनके समान कोई भी अपनी मूर्तियों की चारु रूपता से
 युक्त नहीं थी ॥७२॥ तीनों लोकों में कान्ति में इसके तुल्य कोई भी
 है और न होगी । जो महामाया योग निद्रा भूत प्रकृति मानी गयी है ।
 ॥७३॥ जो यह कोशिकी देवी कहो गयी है यह उसकी प्राण की स्वरूप
 वाली है । तथा इसका नेत्र बीज बीज कहा गया है ॥७४॥ हे भैरव !
 इसका मन्त्र और मूर्ति रूप भी मैं कहूँगा । समाप्ति नान्त्य दन्त्य
 विन्दुओं के सहित पद्मवर्गादि जो परस्पर में संस्पृष्ट हो और विन्दु से
 समलंकित होवे यह कोशिकी मन्त्र वा तन्त्र है जो समस्त काम और अर्थ

हैं और रत्न निर्मित केमुरों को पहिने हुये हैं । वह मृणाल के मद्म
 आयत एवं सुवृत्त तथा कोमल और शुभ व दृश्यों से समन्वित है ॥८१॥
 जो वज्र की के समान पीन एवं उन्नत पयोधरो वाली शोभायमान है ।
 इनका मध्यभाग बहुत क्षीण है—पीन वर्ण के वस्त्रों वाली हैं और
 त्रिवली से विभूषित हैं ॥८२॥ वह देवी अपने दाहिने ओर के करों के
 द्वारा भूत—वज्र बाण—छद्म और शक्ति को धारण करके विराजमान हैं ।
 ॥८३॥ वह देवी अपने बायें करों में ऊर्ध्वदि क्रय में ही गदा—घटा—
 पाप—वर्म और शत्रु को धारण करने वाली हैं ॥८४॥

सिंहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्माणि कौञ्जिकी ।

विभ्रती रूपमतुलं ससरामुरमोहनम् ॥८५॥

एतस्याः शृणु वरम त्वं या पूज्या जष्टयोगिनीः ।

नाः पूजिताश्च कूर्बन्ति चतुर्वर्गं नृणां सदा ॥८६॥

ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता ततो माहेश्वरी मता ।

कौमारी चैव वाराहो वंष्णवी पञ्चमी तथा ॥८७॥

नारामही तथैवैन्द्री शिवदूती तथाऽष्टमी ।

एताः पूज्या महामाया योगिन्यः कामदायिकाः ॥८८॥

देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कालोति च विधुता ।

तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदं शृणु संरव ॥८९॥

समाप्तिसहितो दन्त्य प्रान्तस्तस्मान् पुरःसरः ।

पृष्ठस्वराग्निविन्दिन्दुसहितः सादिरेव च ॥९०॥

कालीमन्त्रमिति श्रोतं धर्मकामार्थदायकम् ।

एतन्मूर्तिं प्रवक्ष्यामि वत्सीशायमनाः शृणु ॥९१॥

वह कौञ्जिकी देवी सिंह के ऊपर संस्थित हैं तथा व्याघ्र के चर्म
 को अर्पित बाघम्बर को धारण किये हुए हैं । उनका रूप अतुल्य अर्थात्
 अनूपम है—जो सभी गुरों और असुरों के मोदन करने वाला है ॥८५॥
 हे परम ! इसकी जो आठ योगिनी पूजा के योग्य हैं उनके विषय में

का देन वाला है ॥७५॥७६॥ हे भैरव ! उसकी जो यहीं पर मूर्ति है उसको मैं बनवाऊंगा । आप एक मन वाले होकर उसका श्रवण करिये । यह जगत् के आह्लाद का करन वाला है ॥७७॥

धम्मिल्लसयनकचा विधोश्चाधोमुखी कलाम् ।
 केशान्मे तिलकम्योर्ध्वे दधती सुमनोहरा ॥७८॥
 मणिकुण्डलमघृष्टगण्डा मुकुटमण्डिता ।
 मज्जयोनि कर्णपूराभ्या कर्णमापूर्य सगता ॥७९॥
 सुवर्णमणिमाणिक्यनागहारविराजिता ।
 सदा सुगन्धिभि पद्मंरम्लानरतिमुन्दरी ॥८०॥
 माला विभसि ग्रीवाया रत्नकेयूरधारिणी ।
 मृणालायतवत्तैस्तु बाहुभि कोमलै शुभै ॥८१॥
 राजन्ती वज्रचक्रोपेत पीनोन्नत पयोधरा ।
 क्षीणमध्या पीतवस्त्रा त्रिवलीप्रख्यभूषिता ॥८२॥
 शूल ध्वज च बाण च सङ्ग शक्ति तथैव च ।
 दक्षिणं पाणिभिर्देवी गृहीत्वा तु विराजिता ॥८३॥
 गदा घण्टा च चाप च चर्म शस्त्र तथैव च ।
 ऊर्ध्वादिक्षमतो देवी दधती वामपाणिभि ॥८४॥

अब उसने स्वर्ण का वर्णन किया जाता है—धम्मिल पुष्पों के द्वारा जिसके केश मसृजन हैं—केशों के धन्त के और तिसके के ऊर्ध्व भाग में चाट्ट की नीचे की ओर मुख वामो कमा की धारण किये हुए है और परम मनोहर है । मणियों से परिपूर्ण मुण्डको से जिसने गण्ड स्थल संस्पृष्ट हो रहे हैं तथा जिसका मस्तक मुकुट से विभूषित है । कर्ण पुरों की सङ्गमोति कानों का आभूषित करने सज्जत हो रही है और वह मृवर्ण—मणि तथा माणिक्यों के सहित नागहार से विराजमान है । वह सर्वदा सुगन्ध युक्त पद्मों से जो विमान नहीं हैं अथवा गुन्दर स्वरूप वाली है १०८—८०॥ जो अपनी ग्रीवा में माला की धारण किये हुये

है और रत्न निर्मित केयूरो को पहिने हुये हैं । वह मृणाल के सदृश
आयन एवं सुवृत्त तथा कोमल और शुभ व दृशो से समन्वित है ॥८१॥
और रज्जु की के समेत पीन एवं उन्नत पयोधरो वाली शोभायमान है ।
इनका मध्यभाग बहुत लोण है—पीन वर्ण के वस्त्रों वाली है और
शिवजी से विभूषित है ॥८२॥ वह देवी अपने दाहिने हाँ के करो के
हाथ शूल—वज्र बाण—खड्ग और शक्ति को धारण करके विराजमान है ।
॥८३॥ वह देवी अपने बाँवें वनों से ऊर्ध्वादि कम से ही गदा—घटा—
बाण—धर्म और शक्त को धारण करने वाली है ॥८४॥

मिहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्मणि कीशिकी ।
विभ्रती रूपमतुलं समरामुरमोहनम् ॥८५॥
एतस्याः शृणु वस्त्रं त्वं या पूज्या अष्टयोगिनी ।
नाः पूजिताश्च भूवंति चतुर्वर्गे नृपां सदा ॥८६॥
ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता तनो माहेश्वरी मता ।
कौमारी चैव वाराही वैष्णवी पञ्चमी तथा ॥८७॥
नारसिंही तथैवंद्रो शिवदूती तथाऽष्टमी ।
एताः पूज्या महाभामा योगिन्यः कामदायिकाः ॥८८॥
देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कामोति च विश्रुता ।
मस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदं शृणु सैरव ॥८९॥
समाप्तिसहितो दन्तय प्रान्तस्तस्मात् पुरःसरः ।
पठस्वराग्नविन्द्विन्दुसहितं सादिरेव च ॥९०॥
कालीमन्त्रमिति श्रोतं धर्मकामार्पदायकम् ।
एतन्मूतिं प्रवक्ष्यामि वत्सीनाग्रमनाः शृणु ॥९१॥

वह कीशिकी देवी सिंह के ऊपर मस्थित है तथा व्याघ्र के चर्म
को अपनी बाधम्बर को धारण किये हुए है । उनका रूप अतुल अर्थात्
अनुपम है—और सभी पुरों और असुरों के मोदन करने वाला है ॥८५॥
हे पाम ! इसकी ओ आठ योगिनी पूजा के योग्य है उनसे विषय से

जाप श्रवण करिये । वे पूजित होनी हुई मनुष्यों के चतुर्वंग को सदा विया करती हैं ॥८६॥ अब उन आठों के शुभ नाम बतलाये जाते हैं—सब प्रथम ब्रह्माणी नहीं गयी है—फिर माहेश्वरी—कौमारी—वाराही—तथा पाँचवी वीष्णवी है—नारसिंही—ऐन्द्री—तथा आठवी शिवहूती है । इन महामाया योगिनियों का अभ्यर्चन करना चाहिए । ये कामनाओं के प्रदान करने वाली हैं ॥८७॥८८॥ जो देवी के सलाट से विनिर्गत हुई थी वह काली—इस नाम से प्रसिद्ध है । हे भैरव ! उस काली का मन्त्र मैं बतलाऊँगा—उसका आप श्रवण करिए । मन्त्र कामनाओं का प्रदान करने वाला है ॥८९॥ समाप्ति क सहित दन्त्य है और उसके आगे रहने वाला प्रान्त होता है । छठवें स्वर—जग्गि और बिन्दु के सहित होता है तथा धादि के भी सहित होता है ॥९०॥ यही वाली का मन्त्र बनाया गया है । यह धर्म—काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है । अब इसकी मूर्ति का वर्णन करूँगा । हे वत्स ! तुम एकाग्र मन वाले होकर उसका श्रवण करिए ॥९१॥

नीलोत्पलदलश्यामा चतुर्बाहुसमन्विता ।
 खट्वाग चद्रहास च विभ्रती दक्षिणे करे ॥९२॥
 वामे चर्म च पाशं च ऊर्वाधोभागत पुनः ।
 दधती मुण्डमाला च व्याघ्रचर्मधरा वराम् ॥९३॥
 कृशांगी दीर्घदंष्ट्रा च अतिदीर्घातिभीषणा ।
 लोलजिह्वा निम्नरक्त-नयना नादभैरवा ॥९४॥
 वयन्धवाहनासीना विस्तार-श्रवणानना ।
 एषा ताराह्वया देवी चामुण्डेति च गीयते ॥९५॥
 एतस्या योगिनोश्चाष्टौ पूजयेच्चिन्तयेद् यदि ।
 त्रिपुरा भीषणा चण्डी कर्त्री हर्त्री विद्यायिनी ॥९६॥
 पराला शूलिनी चेति अष्टौ ताः परिवीतिताः ।

एषाऽतिकामदा देवी जाटघटानिकरी मदा ॥६७॥

एतस्या मृदुशी वाचिन कामदा न हि विद्यते ।

कौशिकया हृदयाद् देवी नि सृता ध्यायतो हरे ॥६८॥

स्वरूप का वर्णन अब किया जाता है—बह नील कमल के समान श्याम वर्ण वाली हैं और भाग बाहुओं में ममन्वित उनका वपु है । वह अपने दाहिने कर में छट्वाङ्ग और चन्द्र त्रय को धारण करने वाली हैं ॥६२॥ काम करमें पुनः ऊर्ध्व और अधो भाग में चर्म और पाश को धारण किये हुये हैं । कण्ठ में नरमुण्डों की माला पहिने हुये हैं और वराह के चर्म को धारण करने वाली परम श्रेष्ठ हैं ॥६३॥ उनका अङ्ग क्रम है और लम्बी दाहों वाली है तथा अत्यन्त दीर्घ अर्थात् लम्बी एव अत्यन्त मीथल स्वरूप में ममन्वित हैं । उनकी जिह्वा अतीव चञ्चल है—निम्न रत्न वर्ण वाले नेत्रों में संयुत है—उनका यमान भैरव अर्थात् नाद है ॥६४॥ मृत मनुष्य के घट को बाहन बना कर उपविष्ट हैं और उनके ध्वज तथा मुष्ट धिम्नार बाने हैं । इस प्रकार के स्वरूप में सम्पन्न यह तारा देवी हैं और यह चामुण्डा—इस नाम से गान की जाया करती हैं ॥६५॥ इस देवी की आठ योगिनियाँ हैं यदि उनका यजन एव ध्यान किया जावे । उनके ये शुभ नाम हैं—त्रिपुरा—भीषणा—चण्डी—कर्त्री—हर्त्री—विद्यायिनी ॥६६॥ बराला और भूतिनी—ये आठ के कीर्तित की गयी हैं । यह देवी अति काम की हानि करने वाली हैं । अर्थात् जड़ता के भाव का विनाश कर देने वाली है । ६७॥ इस देवी के यमान कोई भी कामनाओं के देने वाली नहीं है । यह देवी कौशिक के हृदय में निवसती हैं और ध्यान करने बाने हरि की यह प्रसिद्ध है ॥६८॥

शिवदूतीति मा ख्याता या च देवशतैवृता ।

मन्त्रमस्या प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थदायकम् ॥६९॥

यच्छ्रुत्वा साधवो याति दुर्लभं शिवमन्दिरम् ।

मुण्डों की माता धारण किये हुये रहती हैं और मन्त्रक में जटा-जूट तथा अर्ध चन्द्र विराजमान रहा करता है । नागों के कुण्डलों तथा हार से गोभायमान है और उसके मुख परम उज्ज्वल है ॥१०५॥

ध्याद्यधर्म-परीधानं दक्षिणे शलम्रडगधृक् ।

वामे पाञ तथा चम विभ्रदृध्वापरक्रमान् ॥१०६॥

म्यूनवक्तृषं च पीनोष्ठं नृगमर्नि भयंकम् ।

निक्षिप्य दक्षिणं पादं सन्तिष्ठन् कुणपोपरि ॥१०७॥

वामपादं शृगालस्य पृष्ठे फेछजर्तवृत्तम् ।

ईदृशी शिवदत्त्यास्तु मूर्तिं ध्यायेद विभूतये ॥१०८॥

ध्यानमात्रादयंतस्या नरः कन्याणमाप्नुयात् ।

पूजनादचिराद देवी सर्वान् कामान् ददाति च ॥१०९॥

यः शिवाविरुनं श्रुत्वा शिवदूतीं श्रुमप्रदाम् ।

प्रणमेन साधको भक्त्या तस्य कामाः करे स्थिताः ॥११०॥

यदा जघान जगतां रक्तबीजं हिताय वै ।

महादेवी महामाया तदास्याः कायतः सूताः ॥१११॥

दूतं प्रस्थापयामास शिवं शम्भाय साम्बिका ।

तेन सा शिवदूतीति देवैः सर्वैः प्रगीयते ॥११२॥

यह देवी वायम्बर का परिधान करती है । दक्षिण मृजाओं में

गूल—धङ्ग धारण किया करती हैं तथा बाँधे बरों में पाञ तथा चर्म ऊपर तथा अधो भाग के क्रम में धारण करने वाली हैं ॥१०६॥ इनका मुख स्थूल है—पीन अर्थात् मोटे ओष्ठ हैं—इनकी मूर्ति बहुत ऊँची है और यह परमाधिक भयङ्कर हैं—यह दाहिने धरण की कुणपके ऊपर निक्षिप्त करके संस्थित रहती हैं । उनके बाँया धरण शृगाल की पीठ पर रहता है जो शृगाल सौं बरों ही फेरकों में घिरा हुआ होता है । इस प्रकार की शिव दूती की प्रतिमा है । इसका ध्यान विभूति की वृद्धि के लिये करना

यामाराध्य महादेवी शिवदूती शिवात्मिकाम् ॥१००॥

नचिराल्लभले कामान नर मर्वजयी भवेत् ।

अन्त समाप्तिसहितो विन्दिन्दुभ्यां दशावरः ॥१०१॥

स्वरेणोपान्तदन्त्येन संस्पष्टोऽन्तेन पूर्वजः ।

स एव विन्दुयुगलपवंस्थोपान्तपावकः ॥१०२॥

पष्ठम्बरकलाशयै महिन प्रथमस्थितः ।

मन्त्रोऽय शिवदूत्यास्तु शिवदूतीजयप्रदः ॥१०३॥

रूपमस्या प्रवक्ष्यामि शृणु वत्सैकसम्मते ।

चतुर्भुजं महाकायं मिन्दूरमदृशयति ॥१०४॥

रक्तदन्त मूण्डमाला-जटाजूटाद्यंचन्द्रधृक् ।

नागकण्ठलहाराभ्यां शोभित नन्त्ररोज्ज्वलम् ॥१०५॥

वह देवी शिवदूती नाम मे प्रसिद्ध हैं और सैकड़ों देवी मे सर्वदा समावृत्त रहती हैं । अब मैं इसका मन्त्र बतलाऊंगा जो धर्म— काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है ॥६६॥ जिसका श्रवण करके साधना करने वाला व्यक्ति परम दुर्लभ भगवान् शिव के मन्दिर में गमन किया करता है । जिस महा देवी की आराधना करके जो कि शिव दूती और शिव के ही स्वरूप वाली हैं मनुष्य अवि सम्बन्धी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है और सब विजय प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है । अन्त समाप्ति के सहित है और विन्दु तथा इन्दु से दशावर है ॥१००॥१०१॥ उपान्त दन्त्य स्वर मे अन्त मे पूर्व से संस्पष्ट होना है । वह ही दो विन्दु पूर्व मे स्थित उपान्त पावक है ॥१०२॥ छठे स्वर कला से शून्यों के सहित प्रथम स्थित है । यह शिव दूती का मन्त्र है जो शिवदूती के धूप को प्रदान करने वाला है ॥१०३॥ हे वत्स ! अब मैं इसके स्वरूप का वर्णन करूंगा । आप एकाग्र चित्त होकर ही इसका श्रवण करिये । इसको चार तो भुजायें हैं—राम विशाल शरीर है और सिन्दूर के समान ही इसको आकृति है ॥१०४॥ रक्त वर्ण वाली इसकी दन्त पण्डित है । कंठ मे नर

मुन्डों की माला धारण किये हुये रहती है और भस्त्रक में जटा-जूट तथा धर्म चन्द्र विराजमान रहा करता है । नाभों के कुण्डलों तथा हार से गोभायमान है और उसके मुख परम उज्ज्वल है ॥१०५॥

व्याघ्रचर्म-परीधानं दक्षिणे शलखडगवृक् ।
 वामे पाश तथा त्रिम विभ्रद्दूर्वापरकमान् ॥१०६॥
 म्यूनवक्त्रं च पीनोष्ठं नृगमर्नि भयंकरम् ।
 निक्षिप्य दक्षिणं पादं सन्तिष्ठन् कुणपोपरि ॥१०७॥
 वामपादं शृगालस्य पृष्ठे पेरुजर्तवृत्तम् ।
 ईदृशीं शिवदत्त्यान्तु मूर्तिं ध्यायेद विभूतये ॥१०८॥
 ध्यानमात्रादयंतस्या नरः कल्याणमाप्नुयात् ।
 पूजनादचिरात् देवी सर्वान् कामान् ददाति च ॥१०९॥
 यः शिवाविहृतं श्रुत्वा शिवदूर्ती शृंगप्रदाम् ।
 प्रणमेत् साधको भक्त्या तस्य कामाः करे स्थिताः ॥११०॥
 यदा जघाम जगतां रक्तबीजं हिताय वै ।
 महादेवी महामाया तदाम्बाः कायतः सुताः ॥१११॥
 दूर्तं प्रस्थापयामास शिवं शम्भाय साम्बिका ।
 तेन सा शिवदूर्तीति देवैः सर्वैः प्रगीयते ॥११२॥

यह देवी वायम्बर का परिधान करती है । दक्षिण भुजाओं में शूल—घड़घर घारण किया करती है तथा बाँये करों में पाश तथा चर्म ऊर्ध्व तथा अधो भाग के क्रम से धारण करने वाली है ॥१०६॥ इनका मुख स्थूल है—पीन अर्थात् मोटे ओष्ठ हैं—इनकी मूर्ति बहुत ऊँची है और यह परमाधिक भयङ्कर है—यह दाहिने चरण को कुण्डल के ऊपर निक्षिप्त करके संश्लिप्त रहती है । उनका बाँया चरण शृगाल की पीठ पर रहता है जो शृगाल सौंठों ही पैरों से घिरा हुआ होता है । इस प्रकार की शिव दूर्ती की प्रतिमा है । इसका ध्यान विभूति की वृद्धि के लिये करना

प्राप्तिए ॥१०७॥१०८॥ इस देवी के वचन ध्यान ही व वरन स मनुष्य परम ब्रह्मण की प्राप्ति कर लिया करता है । और यदि इस देवी का अर्चन किया जावे तो यह समस्त कामनाओं को प्रदान कर दिया करती है ॥१०९॥ जो कोई पुरुष शिवाओ की ध्वनि का श्रवण करके शुभों की प्रदात्री शिवदूती को साद्यक प्रणाम किया करता है और भक्ति की भावना से प्रतिपात करता है तो उसकी सभी कामनायें उसके हाथ ही में स्थित रहा करती हैं ॥११०॥ जिस अवसर पर समस्त जगत् की भलाई करने के लिये इसने रक्त बीज का हनन किया था तो उस समय में महामाया महेश्वी इसके शरीर से विनि सृत हुई थी ॥१११॥ उस अम्बिका ने शुम्भ दैत्य के लिये शिव को ही अपना दूत बनाकर उसके पाम प्रेषित किया था । उसी कारण से वह समस्त देवगणों के द्वारा शिवदूती—इम शुभ नाम से गान की जाया करती है ॥११२॥

क्षेमकारी च शान्ता च वेदमाता महोदरी ।

कराला कामदा देवी भगास्या भगमालिनी ॥११३॥

भगोदरी भगारोहा भगजिह्वा भगा तथा ।

एता द्वादश योगिन्यः पूजने परिकीर्तिता ॥११४॥

एता द्वादश योगिन्यः शिवदूत्या सदैव हि ।

विचरन्ती स्वयं देवी यत्र तत्रैव गच्छति ॥११५॥

योगिन्यो ह्यथ सख्यः स्युर्यथान्यासा तथा पुनः ।

चण्डिकायास्तु योगिन् सख्योऽथ च प्रकीर्तिता ॥११६॥

इति ते त्वङ्गमन्त्राणि कथितानि समासतः ।

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं कल्पमात्रं वदामि वाम् ॥११७॥

इसके पूजन में बारह योगिनियाँ कीर्तित की गयी हैं—उनके शुभ नाम ये हैं—क्षेमकारी—शान्ता—वेदमाता—महोदरी—कराला—कामदा देवी—भगास्या—भग मालिनी—भगोदरी—भगारोहा—भग-जिह्वा—भगा—ये द्वादश योगिनियाँ हैं जिनका पूजन कहा गया है ।

॥ ११३—११४ ॥ देवी स्वयं ही विचरण करती हुई जहाँ-तहाँ पर गमन किया करती है ॥ ११५ ॥ जिन प्रकार से अन्धों की दृष्टि करती है वैसे ही पुनः वे योगिनिधियाँ सखियाँ होती हैं । चण्डिका की योगिनिधियाँ यहाँ पर सखियाँ बतायी गई हैं । ११६ । ये इस रीति से आपके मामन अङ्ग मन्त्र में क्षेम में वर्णित कर दिये गये हैं । अब आप दोनों के समक्ष में कामाख्या देवी का कल्पमात्र माहात्म्य बतलाता हूँ ॥ ११७ ॥



॥ नृप धर्म कथन ॥

कथितो भवता सर्गः संशयश्चापि शातिताः ।
 त्वत्प्रसादान्महाभाग कृतकृत्या वयं गुरो ॥१
 भूयश्च श्रोतुमिच्छामो वयमेतद् द्विजोत्तम ।
 कौञ्च्यो भृङ्गी महाकालो जानी वेतालभैरवी ॥२
 वेतालं च महाकाल भैरवं भृङ्गिण तथा ।
 शृणुमो द्विजशार्दूल कथमेषा चतुष्टयम् ॥३
 भुव गते महाकाले मानुष्यस्थे च भृङ्गिणि ।
 वेतालभैरवाद्ये च तयोर्भूते द्विजोत्तमाः ॥४
 वरलब्धे च वेताले भैरवे तेन सङ्गते ।
 अन्धकः तपसा युक्त भृङ्गिण चाकरोद्वरः ॥५
 अन्धकस्तु हर पूर्वं विरुध्यापदमागतः ।
 पश्चाद्वरं समाराध्य पुत्रोऽभून् तस्य सोऽमुरः ॥६
 भृङ्गिन्नेहाद् भृङ्गिण तं मंजया चाकरोद्वरः ।
 स्नेहेन तु महाकाले दार्यं बलिमुत हरः ॥७
 विष्णुना छिन्नबाहुं तु महाकालमयाकरोत् ।
 एव मुनिवरन्तेषां सयतं च चतुष्टयम् ।

वेतालभैरवी भृङ्गिमहाकाली ह्यनुक्रमात् ॥८

ऋषिया ने कहा—आपने सर्ग का वर्णन किया और जो भी कुछ सशय उसमें हुए थे उनका भी आपने निवारण कर दिया है। हे गुरो ! आपके प्रसाद से हे महाभाग ! हम कृत कृत्य हो गये हैं। हे द्विजोत्तम फिर हम आपसे कुछ श्रवण करना चाहते हैं। यह अग्न्यभृङ्गी महाकाल कौन है और जो यह वेताल तथा भैरव समुत्पन्न हुए हैं। वेताल को महाकाल और भृङ्गी भैरव को हम सुनते हैं। इनका चतुष्टय कैसे हुआ अर्थात् चार कैसे हो गये थे ॥ १—३ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! महाकाल के भ्रूमण्डल में उत्पन्न होने पर और मनुष्यत्व में भृङ्गी के होने पर उन दोनों से ये वेताल और भैरव नामों वाले समुदभूत हुए थे। वेताल को वरदान प्राप्त होने पर और उसके साथ भैरव के सङ्गत हो जाने पर भगवान् हर ने तप में युक्त अग्निक को भृङ्गी कर दिया था। ४—५। अग्निक पहिले हर से विरुद्ध होकर आपदा में पँस गया था। इससे उसने भगवान् हर की समाराधना की थी और वह असुर उनका पुत्र हुआ था। भगवान् हरि ने भृङ्गि के स्नेह से उसका नाम भृङ्गी रख दिया था। भगवान् हर ने स्नेह में जो महा काल में था उसकी बलि का पुत्र वाण कर दिया। ॥ ६—७ ॥ भगवान् विष्णु के द्वारा बँटे हुए बाहुओं वाले को महाकाल बना दिया था। इस प्रकार से हे मुनिवरों ! उनका धार होता सयत होता है। अनुक्रम से वेताल—भैरव भृङ्गी और महाकाल हैं ॥ ८ ॥

यत् पृष्ट सगरेणैव मुनिमोर्व्वं महाधियम् ।
 नीत्मा योज्या यया भार्या सुत आत्माऽथवा गुरो ॥६
 राजनीतो सता नीतो सदाचारे च ये स्थिता ।
 विशेषास्तेन ये प्रोक्ता और्व्वेण सुमहात्मना ॥१०
 विशेषेण द्विजश्रेष्ठ श्रोतुं सम्यक् तपोधन ।

इच्छामस्तान् महाभाग कथयस्व जगद्गुरो ॥११
ये ये विशेषाः कथिता और्वेण सुमहात्मना ।
तद् वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमा- ॥१२
श्रुत्वंव मगरो राजा मन्त्रकल्पादिक पुनः ।
विशेषं परिप्रच्छ नीत्यादोना महामुनिम् ॥१३
यदा नीत्या प्रयोक्नव्यः सुत आत्मा प्रिया तथा ।
तेषां विशेषः सहितं सदाचारं वदस्व मे ॥१४

श्रुतियो ने कहा—जो राजा मगर ने महान् बुद्धिमान और्वं
मुनि से पूछा था, हे गुरुवर ! नीति में जिन तरह से भार्या, पुत्र और
बोधित बिधे जाते हैं । राजनीति में सत्पुरुषों की नीति में और सदा-
चार में स्थित हैं । महात्मा और्वं ने जो विशेष कहे हैं । हे तप ही के
छत्र वाले ! हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! उमे हम विशेष रूप से श्रवण
करना भली भाँति चाहते हैं । हे जगद् के गुरुवर ! आप तो महान्
भाग वाले हैं उनको आप बतलाइये ॥६—११॥ भाकन्देय महर्षि ने
कहा—महान् आत्मा वाले और्वं ने जो-जो विशेष बतलाये थे । हे
मुनिगणों में श्रेष्ठ वरा ! वह सब आपको बतलाऊँगा आप श्रवण करिये ।
राजा मगर ने इस तरह से मन्त्र कल्पादिक को सुन कर उन महा मुनि
से पुनः नीत्यादिक की विशेषता पूछी थी । मगर ने कहा—जिस प्रकार
से नीति के द्वारा मुनिके—आत्मा के और प्रिया के साथ नीति से प्रयोग
करना था उनको विशेषता के सहित जो सदाचार है उसको आप मुझे
बतलाइए ॥१२—१४॥

क्रमेण शृणु राजेन्द्र यदा नीत्या नियोजिता ।
आत्मा सुता वा भार्या वा तद्विशेषं शृणुष्व मे ॥१५
ज्ञानविद्यातपोवृद्धान् वयोवृद्धान् सुदक्षिणान् ।
सेवेत प्रथमं विप्रानसूयापरिवर्जितान् ॥१६
तेभ्यश्च शृणुयान्नित्यं वेदशास्त्रविनिश्चयम् ।

यद्वृक्षुस्ते च तत् कार्यं प्राज्ञं चैव नृपश्चरेत् ॥१७॥
 पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चाश्वाः शरीरं रथ उच्यते ।
 आत्मा रथी कशा ज्ञानं सारथिर्मन उच्यते ॥१८॥
 अश्वान् सुदान्तान् कुर्वीत सारथिं चात्मनो वशम् ।
 कशां दृढां सदा कार्यां शरीरं स्थिरतां तथा ॥१९॥
 अदान्तास्तु समारुह्य सैन्धवान् स्पन्दनं यथा ।
 अश्वानामिच्छया गच्छन्नुत्पथं प्रतिपद्यते ॥२०॥
 सत्रावशं सारथिस्तु स्वेच्छया प्रेरयन् हयान् ।
 भयेत् परवशं सम्यग् प्रथितं वीरमप्युत ॥२१॥

श्रीर्ष्वं मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! अब आप क्रम से ही अध्वन

कीजिये जिस प्रकार की नीति के द्वारा आत्मा—भुत और भार्या को
 नियोजित किया जाता है उसकी विशेषता मुझसे सुनिये ॥१५॥ ज्ञान में
 बड़े—वय में बड़े—विद्या—तप में बड़े मुदक्षिणों का सब से प्रथम
 सेवन करे तथा निम्ना में रहित विष्णु का सेवन करना चाहिये । और
 उनसे नित्य ही वेदों और शास्त्रों के विशेष निश्चय का ध्वन करना
 चाहिए उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह करना चाहिए—जो प्राज्ञ नृप है
 उसे उसका समाचरण करना चाहिए ॥१६॥१७॥ ये पाँच इन्द्रियाँ पाँच
 अश्व हैं और यह शरीर रथ कहा जाता है । आत्मा रथी अर्थात् रथ का
 स्वामी है अश्वों को हाँकने के लिये ज्ञान कशा (चाबुक) है इस रथ का
 सारथि मन होता है । अश्वों को सुदान्त करे और सारथि मन को
 आत्मा के वश में करना चाहिये । कशा नो सदा सुदृढ़ करे तथा शरीर
 की स्थिरता रखनी चाहिए ॥१७—१९॥ जिस तरह से अदान्त अश्वों
 पर समारोहण करके रथी अश्वों की इच्छा के अनुसार गमन करता हुआ
 मृग को प्राप्त हो जाया करता है । अपनी ही इच्छा से अश्वों को
 प्रेरित करता हुआ सारथि यही पर अवश होता है और वह परम
 प्रथित वीर को भी परवश कर देता है ॥२०॥२१॥

तथेन्द्रियाणि नृपतिविवक्षाणा परिरुहे ।
 स्ववश्यानि प्रकुर्वीत मनो ज्ञान दृढ नया ॥२२॥
 ज्ञाने दृढे कक्षायां च दृढाया नृपसत्तम ।
 सारथिः स्ववशो दान्तानीशः प्रेरयितुं ह्यान् ॥२३॥
 अतो नृपः स्वेन्द्रियाणि वशे कृत्वा मनस्तथा ।
 ज्ञानमार्गमधिष्ठाय प्रकुर्वीतात्मनो हितम् ॥२४॥
 भोक्तव्यं स्वेच्छया भूयो न कुर्यात्लोभमासवे ।
 द्रष्टव्यमिति द्रष्टव्यं न द्रष्टव्यं च स्वेच्छया ॥२५॥
 श्रोतव्यमिति श्रोतव्यं नाधिकं ध्वजने चरेत् ।
 शास्त्रतत्त्वामृते धीरः श्रुतिवशो भवेन्न हि ॥२६॥
 एवं घ्राणं त्वचं चापि वशोऽकृत्येच्छया नृपः ।
 स्वेच्छया नोपभुञ्जीत नोदामं विषयं द्रजेत् ॥२७॥
 एवं यदि भवेद्राजा तदा स स्याज्जितेन्द्रियः ।
 जितेन्द्रियत्वं हेतुश्च शास्त्रबुद्धोपनेवनम् ॥२८॥

जमी भाति राजा को विषयों के परिरुहण करने में इन्द्रियो को अपने ही वश करना चाहिए तथा मन और ज्ञान को सुदृढ रखना चाहिए ॥ २२ ॥ हे नृपर्षद ! ज्ञान के सुदृढ होने पर वश की सुदृढता में अपने वश में रहने वाला मारुति दत्त अश्वों को प्रेरित करने में समर्थ होता है । इसीलिए नृप को चाहिए कि अपनी इन्द्रियो को तथा मन को अपने वश में रखकर ज्ञान के मार्ग में अधिष्ठित होकर आत्मा का हित सम्पादित करे ॥ २३—२४ ॥ फिर अपनी इच्छा में भोग करना चाहिए और आसव में लोभ न करे देखना है—इसने देखना चाहिए और अपनी इच्छा में नहीं देखना चाहिए ॥ २५ ॥ जो मुनने के योग्य है उसे ही श्रवण करना चाहिए । ध्वज में अधिक का समाचरण न करे । शास्त्रों के तत्त्वामृत में धीर श्रुति वश नहीं होता है ॥ २६ ॥ इसी रीति में इच्छा में घ्राण—त्वचा को वशीकृत करने अपनी इच्छा

मे उपभोग न करे और उद्दाम विषय का गमन न करना चाहिए । २७।
यदि राजा इसी रीति से समाचरण करने वाला होवे तो उसी समय में
बहु इन्द्रियो को जोत लेने वाला हो सकता है जिनन्द्रिय होने ॥ शास्त्रो
थोर बृद्धो वा उपसेवन करना ही हेतु हुआ करता है । २८ ।

अवृद्धसेव्याशस्त्रज्ञो नृप शत्रुवशो भवेत् ।

तस्माच्छास्त्रमधिष्ठाय भवेद्राजा जितेन्द्रिय ॥२९॥

धृति प्रागल्भ्यमुत्साहो वाक्पटुत्व विवेचनम् ।

दक्षत्व धारविष्णुत्व दानमंन्त्रीकृतज्ञता ॥३०॥

दृढशासनतासत्यशौच मतिविनिश्चयम् ।

पराभिप्रायवेदित्व चरित्र धर्ममापदि ॥३१॥

क्लेशधारणशक्तिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम् ।

अनसूया ह्यकोपित्व गुणानेतान्नृपोऽभ्यसेत् । ३२

कार्यकार्यविभागश्च धर्मार्थे वाम एव च ।

मतत प्रतिबुध्येत कुर्यादवसरेऽपि तन ॥३३॥

सामदान च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम् ।

ज्ञात्वापायान्त तत्काले तदुपायान् प्रयोजयेत् ॥३४॥

सामस्तु विषये भेदो मध्यम परिष्कृतित ।

दानस्य विषये साम योग्यमेवोपलक्ष्यते ॥३५॥

जो नृप बृद्धो वा सेवन करने वाला नहीं है तथा शास्त्रो का
ज्ञाता नहीं होता है वह शत्रुओं के वशोभूत हो जाया करता है । इस
कारण मे शास्त्रो में अधिष्ठित होकर राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए
। २९। धृति—प्रागल्भ्य—उत्साह—वाक्पटुता—विवेचन—दक्षता—
धार विष्णुता—दान—मंन्त्री—कृतज्ञता—दृढ शासनता—सत्य—शौच—
गुष्टि का विशेष निश्चय—दूमना के आभप्राय का ज्ञान करना—चरित्र—
आपत्ति में धीरज—क्लेशों के धारण करने की शक्ति—गुरुदेव और
द्विजों का अर्चन—गिरा न करना—क्रोधी न होना—इन गुणों का

राजा को अभ्यास करना चाहिए ॥ ३०—३२ ॥ धर्म म—अर्थ म और काम म वायं और अवाय का विभाग का निरन्तर प्रतिपाद करना चाहिए और अवसर हान पर उभे करना चाहिए ॥ ३३ ॥ साम—दान—भेद और दण्ड यह चतुष्टय अर्थात् चार बातें हैं उसक कालो म उपायो का ज्ञान करके उनके उपायो का प्रयोग करे ॥ ३४ ॥ माम विषय म भेद मध्यम कहा गया है । दान के विषय म माम योग्य हो उपलक्षित होता है ॥ ३५ ॥

दानस्य विषये दण्डो ह्यधम परिकीर्तितः ।

दण्डस्य विषये दानं तदप्यधममुच्यते ॥ ३६ ॥

मांस्तु गोचरे दण्डो ह्यधमादधमं स्मृतः ।

सौजन्यं सततं ज्ञेयं भूयती भेददण्डयोः ॥ ३७ ॥

साम्नो दानस्य च तथा सौजन्यं याति गोचरे ।

कामं क्रोधश्च लोभश्च हर्षो मानो मदस्तथा ॥ ३८ ॥

एतानतिशयान् राजा शत्रूनिव विशानयेत् ।

सेव्या काले मुमुक्षुतो तं लोभगर्वो विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

तेज एव नपाणात् तीव्रं सूर्यस्य वै यथा ।

तत्र गर्वं रोगयुक्ताय वायवास्तु तत् सत्यजेत् ॥ ४० ॥

आश्लेषकाक्षी स्त्रीसेवा पानं चयायदूषणम् ।

चाग्दण्डयोश्च पाशेष्यं सप्तैतानि विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

परस्त्रीषु विरक्तासु सेवामेकान्ततन्मयजेत् ।

सनीपुत्रं निजनारापुं युक्तां कुर्यान्निवेशनम् ॥ ४२ ॥

दान क विषय म दण्ड अधम कहा गया है । दण्ड क विषय म

दान जो होता है—इह मा अत्र ही कहा जाता है ॥ ३६ ॥ माम क गोचर अर्थात् प्रत्यक्ष होने पर जो दण्ड का प्रयोग है वह अधम म भी अधम कहा गया है । राजा क दण्ड और भेद म निरन्तर सौजन्य जानना चाहिए ॥ ३७ ॥ साम और दान की सुजनता गोचर म जाती है । काम क्रोध—लोभ—हर्ष—मान—मद—इनका अतिशय रूप म

होने वालो का राजा को शत्रुओ की तरह विनष्ट कर देना चाहिए । सपुत्र काल मे ही उनका सेवन करना चाहिए । लोभ और गर्व को विवर्जित कर देवे ॥ ३८—३९ ॥ नृपो का तेज ही तीव्र होता है जिग तरह मे मूर्ख का हुआ करना है । उसमे सर्व रोग मे युक्त हो ग है । वायवान् को उसका त्याग कर देना चाहिए । ४० । आठेट—अश—
 मंत्री मेदन—पान और अर्थ दूषण—बाणी और दण्ड मे कठोरता इन सबका वर्जन कर देना चाहिए । विरक्त पराई स्त्रियो मे सेवन करना एकान्त रूप मे वर्जित कर देवे । सनी अपनी नारियो मे युक्त सेवन करना चाहिए ॥ ४१—४२ ॥

रतिपुत्रफला दारास्तास्तु नैकान्ततस्त्यजेत् ।
 तयो सिद्धयं स्त्रिय सेवया वर्जयित्वातिसक्तताम् ॥४३
 मृगया तु प्रमादाना स्थान नित्य विवर्जयेत् ।
 अक्षास्तथा न कुर्वीत सत्कार्यासक्तिनाशनम् ॥४४
 अन्यं कृत कदाचिन् तु सेवेत नात्मनाचरेत् ।
 जकार्यकरणे बीज कृत्याना च विवर्जने ॥४५
 अकालमन्नभेदे च कलहे सत्कृतिक्षये ।
 व्रजेत् सतत पान शीघ्रमाङ्गल्यनाशनम् ॥४६
 अर्थक्षयकर नित्य त्यजेच्चवात्मदूषणम् ।
 अभिशस्तेषु चोरेषु घातकप्वानतायषु ॥४७
 सतत पृथिव्यापालो दण्डपारुष्यमाचरेत् ।
 नान्यत्त दण्डपारुष्य कुर्यान्नपतिसत्तमः ॥४८
 वाक्पारुष्य च सर्वत्र नव कुर्यात् कदाचन ।
 रक्षणीय सदा सत्य सत्यमेक परायणम् ॥४९

जो दाराए रति और पुत्र के फल वाली है उनका एकान्त रूप से त्याग नही करे । रति और पुत्र दोनो की सिद्धि के लिए स्त्रियो को सेवन करना चाहिए किन्तु उनमे अत्यन्त आसक्ति या वर्जन कर देवे ।

मृगया तो प्रयासों का स्थान होता है इसका नित्य वर्जन कर देवे । कदाचित् अन्यो के द्वारा नित्य हुए का सेवन करे किन्तु अपने द्वारा इसका सम चरण नही करे । अन्नो का भी सेवन न करे । ये सत्कार्य और शक्ति का विनाश करने वाले होते हैं । अकार्यों के करने में और कृत्यों के वर्जन में यह बोज होना है ॥४३—४५॥ अकार्य मन्त्र भेद में— कलह में मत्कार के क्षय में निरन्तर पान का वर्जन कर देवे । जो कि यह मदिरा पान शीघ्र और मज्जन्म का विनाश करने वाला होता है ॥४६॥ यह अर्थ के क्षय का करने वाला होता है । अतएव आत्मा के रूपण इसका त्याग कर देना चाहिए अभिशप्त—चोर—घातक—आतनायी में राजा को निरन्तर दण्ड की कठोरता का समाचरण करना चाहिए । श्रेष्ठ नृप को अन्ध स्थलों में दण्ड की कठोरता नही करनी चाहिए ॥४७॥ ॥४८॥ बाणी की कठोरता को तो मर्मा जगह नमी भी नहीं करे । सदा मत्प की रक्षा करनी चाहिए । एक सत्य में ही परायण रह ॥४९॥

क्षमा तेजस्विता चैव प्रस्तावान्नृप आचरेत् ।

यानासनाश्रयद्वन्द्वसन्धयो विग्रहेस्तथा ॥५०॥

अभ्यसेत् पङ्गुणनेतास्तेषा स्थान च शाश्वतम् ।

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धो तथा क्षये ॥५१॥

कोपे जनपदे दण्डे न म राज्येऽवतिष्ठते ।

कोपे जनपदे दण्डे चैवकत्र त्रय त्रयम् ॥५२॥

प्रस्तावाद्बिनिगुञ्जीत रत्नेन्नेकास्ततस्तिष्ठमान् ।

मित्रं शत्रौपदासीने प्रभाव त्रिष्वपीरयेत् ॥५३॥

उत्तमाहो विजिगीषाय धर्मकृत्येऽष्टवर्गके ।

शरीरयानानिवाहि क्रियेत सतत नृपः ॥५४॥

मन्त्रनिश्चयमम्भूता बुद्धि सर्वत्र योजयेत् ।

अमात्ये शात्रवे राज्ये पुत्रेष्वन्त पुरेषु च ॥५५॥

क्षमा और तेजस्विता का प्रस्ताव ते नृप को समाचरण करना

चाहिए । यान, आसन, आश्रय, द्रव्य, मन्थि तथा विग्रह—इन छँ गुणों का तथा इनके शाश्वत स्थान का नृप को अभ्यास करना चाहिए । जो स्थान में—वृद्धि में—अय में—क्षय में—जनपद में और दण्ड में जो प्रमाण को नष्टी जानता है वह राज्य पर अवस्थित नहीं रहता करता है । यह एक-एक में तीन तीनों हैं । प्रस्ताव में विनियोग करना चाहिए । किसी एक की ही रक्षा न कर इन सबकी रक्षा करना चाहिए । मित्र में—शत्रु में और उदासीन में तीनों में ही अपने प्रभाव कोई रित करना चाहिए ॥ ५०—५३ ॥ नृपों को विजय की दृष्टि में—धर्म कृत्य में अष्ट वर्गों में—शरीर याथा निर्दात्र में निरन्तर उत्साह करना चाहिए । ॥५४॥ मन्त्र के निश्चय में समुत्पन्न बुद्धि को सर्वत्र योजित करे—अमात्य में—शासक में—राज्य में—पुत्रों में और अन्तःपुर में बुद्धि का योजन करना चाहिए ॥५५॥

कृपि दुर्गं च द्राणिज्य खड्गानां करसाधनम् ।
 आदानं सैन्यकरयोर्वन्धनं गजवाजिनो ॥५६॥
 शून्ये सधमुत्थानां च योजनं सततं जनैः ।
 त्रयाणां सारसेतूनां बन्धनं चेति चाष्टमम् ॥५७॥
 एतदष्टसु वर्गेषु चारान् सम्यक् प्रयोजयेत् ।
 कार्याकार्यविभागाय चाष्टवर्गाधिकारिणाम् ॥५८॥
 अष्टौ चारान्निमुञ्जीयादष्टवर्गेषु पाथिषः ।
 दश शून्येषु युञ्जीत क्रमतः शृणु तानि मे ॥५९॥
 स्वामी सचिव-राष्ट्राणि मित्र कोशो बलं तथा ।
 दुर्गं तु सप्तमं ज्ञेयं राज्याङ्गं गुरुभाषितम् ॥६०॥
 दुर्गमुक्तं चाष्टवर्गं चाराभ्यात्मनि योजयेत् ।
 तस्मादिमानि शेषाणि पञ्च चारपदानि च ॥६१॥
 शुद्धान्तेषु च पुत्रेषु स यूयादो महानसे ।
 शत्रूदासीनयोश्चापि बलावलविनिश्चये ॥६२॥

अष्टादशसु चनेषु चारान् राजा प्रयोजयेत् ।

न यत्प्रकाश जानीयान् तत् तच्चार्त्तनिरूपयेत् ॥६३॥

कृषि—दुर्ग—वार्गज्य—खड्गो ला कर माग्न—सैन्य करो वा
आदान—गत्रो और जधो वा वधन—मदम मुखों के शून्य में जनो के
द्वारा निरन्तर योजन और मीन चार मनुष्यों का वधन आठवां है । इन
आठ वर्गों में चारों को सली भाँति प्रयोजित करना चाहिए । कार्य
और जकायों के विभाग के लिये जग वर्ग के उच्चकारियों को योजित
करे । राजा आठ भागों को आठ वर्गों में नियोजित करे । दश को
शून्य में नियुक्त करे । उनका क्रम से भूषने श्रवण करिये ॥५६—५८॥
स्वामी—मन्त्रि—राष्ट्र—मित्र—कोश—बल—दुर्ग मत्तम और गुरु
भाषित राज्य के लक्षण हैं ॥६०॥ दुर्ग से युक्त करने अष्ट वर्ग में चारों
को योजित करे । इस कारण से इन जेय पाँच चार पदों को श्रद्धान्तों
में—पुत्रों में—मृगदि में—महानम में—जग और उदामीनों में—
बल—अनल के विशेष निष्पन्न में इन अठारहों में राजा चारों को
प्रयुक्त करे । प्रमाण में इनको कोई भी न जान पावे उमी भाँति चारों
के द्वारा निरूपण कर देना चाहिए ॥६१—६३॥

निष्पद्य तत्-प्रतीकारमवश्य छिद्रतरचरेत् ।

यथानियोगमेतेषा यो यो यत्रान्यथाचरेत् ॥६४॥

ज्ञात्वा तत्र नृपञ्चारे दण्डयेद् वा विप्रयोजयेत् ।

चारान्नु मन्त्रिणा माघं रहस्ये मन्थितो नृप ॥६५॥

प्रदोषममे पृच्छेत् तदानीमेव साधयेत् ।

स्वसुत्रे चाय श्रुद्धान्ते ये तु चारा महानने ॥६६॥

निबुक्तास्तान्मध्यरात्रे पृच्छेत् स्वेषि च मन्त्रिणि ।

एताश्चागन् स्वय परयेन्नृपतिर्मन्त्रिणा विना ॥६७॥

अन्धाम्नु मन्त्रिणा माघं निरूप्य प्रदिजेत् फलम् ।

नैकवेशधरश्चारो नको नोनमाह्वजित ॥६८॥

मस्तुतो नहि सर्वत्र नानिदीर्घो न वामन ।
 मतन न दिवाचारी न रोगी नाप्यबुद्धिमान् ॥६६॥
 न वित्तविभवेर्हीनो न भार्यापुत्रवर्जित ।
 कायंश्चारी नृपतिना तत्त्वगुह्यविनिर्णये ॥७०॥

उमरा प्रमीक्षण अवश्य ही निरूपण करके छिट में समाचरण करे । इनका जैसा निशान है जोर जा जो जहाँ पर अव्यथा चरण करे । ॥६४॥ वहाँ पर नृप को ज्ञान प्राप्त करके जो कि चारों के द्वारा बिया जाये दण्ड देवे या चाणों को अलग कर देवे । नृप मन्त्री के साथ एकात्म म सम्पित रह । राजा का चाहिये कि प्रदोष के समय में पूछे और उमी समय में माधन करे । अपन पुत्र के विषय में—शुद्धान्त पुर में और जा चार महानस (रमोई ग्रंथ) में नियुक्त हों उनमें मध्य रात्रि में पूछना चाहिये । और जो अपने मन्त्री के विषय चार हो उन में राजा बिना मन्त्री के स्वय ही पूछ ॥६५—६७॥ अन्य जो चार हो उनमें मन्त्री के साथ निरूपण करके फल का प्रदर्शन करे । चार एक वन के धारण करने वाला न होवे—न एक ही होवे और न उत्साह से रहित होना चाहिए ॥६८॥ चार सर्वत्र सस्तुत नहीं होना चाहिए । वह अस्पृश लम्बा न होवे और न बीता ही होना चाहिये । निरन्तर दिन में चरण करने वाला चार होना चाहिये । और वह रोगी तथा बुद्धि रहित भी नहीं होवे ॥६९॥ चार वित्त के वैभव से हीन भी न होवे और ऐसा भी नहीं होगा चाहिए जिसके भार्या तथा पुत्र न होवे । ऐसा ही चार राजा को तत्त्व गुह्य के विशेष निर्णय में नियुक्त करना चाहिये ॥७०॥

अनेकवैशग्रहणक्षम भार्यासुतैर्युतम् ।
 बहुदेशवचोऽभिज्ञ पराभिप्रायवेदकम् ॥७१॥
 रटभक्त प्रबुर्वीत चार शक्तमसाध्वसम् ।
 अभितिष्ठेत् स्वयं राजा कृपिमात्ममैस्तथा ॥७२॥

नाम और मोन के प्रत्येक वा परिशोधन के द्वारा प्राप्त होकर ७ छात्र किया जाता है इसी कारण से वह उत्पन्न करने वाला है ॥७३॥

अर्थात् आमोपघास्या तु भार्यापुत्राश्च शोधयेत् ।

घर्मोपघाभिधिप्राप्तुं मर्वाभि सचिवान् पुन ॥७४॥

एभिर्गोमन्त्रेण दानं गृहेण नपतिर्भवेत् ।

तस्माद् भवाम्स्तु राज्यार्थो धर्ममेव समाचरेत् ॥७५॥

अनेनैवाभिचार्येण यज्ञैर्वा पायित्रो ह्यपम् ।

प्राप्तास्त्यजनि राजा त्व भवित्यभि न मशय ॥७६॥

इति धर्मो नपत्येव अश्वमेधादिकश्च य ।

स्वयं न कुरते भवाम्भमान् त्व कुरु मतम् ॥७७॥

एव मन्त्रमन्त्रयित्वा नप कार्यन्तिपाठ द्विजान् ।

तैरज्ञानान् स्वयं ज्ञात्वा गृहणीयान् तस्य तर्पणम् ॥७८॥

यदि राज्याभिलाषेण सचिवोऽप्यभ्याचरेत् ।

नृपतो वाधिक कुर्याद् धर्मं त हीनता नयन ॥७९॥

आभिचारिकमत्यर्थं कुर्यात् तु विघातयेत् ।

प्रवासयेद् ब्राह्मणं तु पायिवश्चाभिचारिकम् ॥८०॥

अर्थ—काम की उपघाओ से भार्या और पुत्रों का परिशोधन करे । धर्म की उपघाओ से विप्रों की और तब उपघाओ से सचिवों का शोधन करे ॥७४॥ इनके द्वारा—यज्ञों से और दानों के द्वारा यहाँ पर ही नृप होता है । इस कारण से आप राज्य के अर्थी हैं अतएव इसी भाँति धर्म का ही समाचरण करे ॥७५॥ इसी अभिचार से अपवा यज्ञों से यह राजा प्राणों का त्याग करता है और तुम राजा हो जाओगे—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥७६॥ यही नृप का धर्म है और जो अश्वमेध आदिक हैं राजा स्वयं नहीं करता है इस कारण से हे श्रेष्ठतम । तुम करो ॥७७॥ इस प्रकार से नृप कार्यान्तिक द्विज से मन्त्रों के द्वारा मन्त्रणा करके उनके द्वारा अज्ञातों को स्वयं ज्ञान प्राप्त करके उनसे उस

ने मन का ग्रहण करे ॥८२॥ यदि राज्य की अभिलाषा में सचिव लघुर्धर्म का आचरण कर अथवा राजा ने विषय में अधिक करे तो उस धर्म का हीन बना देव ॥८३॥ अत्यन्त अभिचारि कर्म को करने वाले का विघात कर देवे । राजा को चाहिए कि अभिचारि कर्म ग्रहण हो तो उसको दण्ड से बाहिर निकलवा देव ॥८४॥

एषा धर्मोपधा ज्ञेया तैरमात्यान् सुभ्यान् जयेत् ।
 एतादृशी तर्धवान्यानुपधा धर्मतश्चरेत् ॥८५॥
 कोशाध्यक्षान् ममामन्त्र्य राजामात्यान् प्रतारयेत् ।
 पुत्रानन्यान् प्रति तथा मन्त्रमवगणाक्षमान् ॥८६॥
 अयं हि प्रचुर कोपो मदायता नरोत्तम ।
 अन्ये तव समत्या तद् यदि त्व प्रतीक्षसि ॥८७॥
 तवार्थलग्नादस्माकं जीवनं च भविष्यति ।
 त्वं चापि प्रचुरं कोपं किं किं वा न करिष्यसि ॥८८॥
 एवमन्यं कोपगनेष्पायैर्तुं पसतम ।
 पुत्रामात्यादिकान् सर्वान् सतत परिशोधयेत् ॥८९॥
 पोषदोषकरणं हन्यात् कर्तुं मिच्छन् विवासयेत् ।
 द्वैधचित्तान् विमन्येत कुर्वाद् वै कोशरक्षणम् ॥९०॥
 दासीश्च शिल्पिनीर्वृद्धा मेधाधृतिमनो हिनय ।
 अन्तर्यहिश्च या यान्ति विदिता सचिवादिभि ॥९१॥

यह धर्मोपधा जाननी चाहिये । उनसे अमात्यो को और सुतो को विजित करे । इस प्रकार की उसी भाँति अन्य उपधा का धर्म से समा-
 चरण करना चाहिये ॥८५॥ कोषाध्यक्षो को सममन्त्रित करके राजा
 अमात्यो का प्रतारित कर देव । तथा पुत्रो को कथवा अन्यो को जो
 मन्त्र के सुकरण करने में असमर्थ हों प्रतारित कर देना चाहिए ॥८६॥
 हे नरोत्तम ! यह प्रचुर (बहुत बड़ा) कोप मेरे अधीन है यदि उसको
 आप प्रतीक्षा करते हैं तो आपकी सधर्मति से दण्ड ले आता हूँ ॥ ८७ ॥

आपके अर्थ के नग्न होन से हमारा जीवन होगा और आप भी इन प्रभुर कोषों के द्वारा क्या-क्या नती करोगे ॥ ८८ ॥ इस प्रकार स अग्न्य कोष गत उपाया के नृप श्रेष्ठ पुत्र—अमात्य आदिक सबका निरन्तर परिशोधन करे ॥ ८९ ॥ जो कोष में दोषों के करने वाले हैं उनका हनन कर देवे और जो करने की इच्छा रखते हों उनको देश से बाहर निकलवा देना चाहिये । जो द्वंद्व चित्त बान्ध हों उनको विमानित कर देवे किन्तु कोष की रक्षा हर प्रकार से करनी चाहिये ॥ ९० ॥ दामिनी शिल्पिनी—वृद्धा—मेधा और धृति वाली स्त्रियाँ जो बाहर और भीतर गमन किया करती हैं तथा सचिको आदिक के द्वारा विदित हैं ॥ ९१ ॥

ता राजा रहसि स्थित्वा भार्यादिभिर्गलक्षित ।
अभिमन्त्र्याथ ममन्त्र्य प्रेषयेन् सचिवान् प्रति ॥ ९२
ता गत्वा हृदय जुद्धा स्त्रियो विज्ञानतत्परा ।
महिषीप्रमुखा राजस्त्वा वै कामयते शुभा ॥ ९३
तत्राह योजयिष्यामि यदि ते विद्यते स्पृहा ।
सचिवस्त्वा कामयते त्वदयोग्यो बग्बणिनि ॥ ९४
त सममयितु शक्ता यदि श्रद्धा तवास्त्यहम् ।
इत्यनेन प्रकारेण नानोपार्पस्तथोत्तरं ॥ ९५
भार्या पुत्रद्वहिनीश्च स्नुषाश्च प्रनुस्पास्तथा ।
शोधयेन् सचिवान् पुत्रान् पौत्रादीन् सेवकास्तथा ॥ ९६
कामोपघाविशुद्धास्तु घातयेद्विचारयन् ।
स्त्रियस्तु योज्या दण्डेन ब्राह्मणास्तु प्रवासयेत् ॥ ९७
मोक्षमार्गावसवनं तु हिंसापशुन्यवजितम् ।
दामकसारं नृपति सचिव परित्रजयेत् ॥ ९८

राजा उनको भार्या आदि से अलक्षित हाकर स्थित रह कर एकाग्र म अभिमन्त्रणा करके तथा इसका अनन्तर भली भाँति मन्त्रणा

करके सचिवों के पास प्रेषित कर देवे ॥ ६२ ॥ वे जाकर वहाँ हृदय का ज्ञान प्राप्त करने विज्ञान में तत्पर राजा की महिषी प्रमुख शुभ तुमको चाहती है यदि आपकी स्मृति हो तो वहाँ पर मैं योजित कर दूँगी । सचिव तुमको चाहता है हे वरवर्णिनि ! आपके योग्य भी है यदि आपकी श्रद्धा हो तो मैं उसका मङ्गल कराने के लिये समर्थ हूँ । इस रीति से तथा अनेक उपायों से और उत्तरो के द्वारा भायों—पुत्र दुहितृयो—स्नुपाओं तथा प्रस्नुपाओं—सचिवों—पुत्रों—पौत्रों—सेवकों आदि का शोधन करना चाहिए ॥ ६३—६६ ॥ काम की उरघाओं से अविशुद्ध के बिना ही कुछ विचार किये हुए विघात कर देना चाहिए । स्त्रियों को दण्ड के द्वारा योजित करे और ब्राह्मणों को प्रवासित कर देवे । मोक्ष के मार्ग में अवसवन तथा हिंसा और पैशुन्य से रहित—क्षमा को ही एक सार मानने वाले सचिव का राजा को परिवर्जन कर देना चाहिए ॥ ६७—६८ ॥

मोक्षमार्गविपक्तास्तु दण्डयानपि न दण्डयेत् ।
समद्विस्तु सर्वत्र तस्मात् त परिवर्जयेत् ॥ ६६
इति सूत्र चोपधानामुपधा बहुधा पुन ।
विवेचिता चोशनसा तच्छास्त्रे तत्र बोधयत् ॥ १००
विग्रहं सततं राजा परैर्न सम्यगाचरेत् ।
भूविस्तमित्रलाभेऽपि निश्चितेष्वेव विग्रहा ॥ १०१
सप्ताङ्गेषु प्रसादश्च सदा कार्यो नृपोत्तमः ।
क्रोपस्य सञ्चय रक्षा सततं सम्यगाचरेत् ॥ १०२
मन्त्रिणस्तु नृपः कुर्याद् विप्रान् विद्याविशारदान् ।
विनयाज्ञान् कुलीनाश्च धर्मार्थकुशलातृजन् ॥ १०३
मन्त्रयेत् ततः समं ज्ञानं नात्यर्थं बहुमिश्रयत् ।
एवंकेनेव वक्तव्यं मन्त्रस्य च विनिश्चयम् ॥ १०४
व्यस्तैः समस्तश्चान्यस्य व्यपदेशः समन्ततः ।

सुसंवृत मन्त्रगृह स्थल वारुह्य मन्त्रयेत् ॥१०५॥

जो मोक्ष मार्ग विशेष रूप से संयत हो वे दण्ड के योग्य भी हों तो भी उन्हें दण्ड नहीं देना चाहिये । वह सर्वत्र मम बुद्धि वाला है इसी कारण से उसको परिवर्जित कर देवे ॥६६॥ उपघातो का यह मूल है । पुन उपघा का बहृत-मा विवेचन किया गया है । उशना ने इसका अच्छा विवेचन किया है । वहाँ पर उसके शास्त्र में इसका बोध करे । ॥१००॥ राजा को दूसरों के साथ निरन्तर विग्रह का भले प्रकार से आचरण नहीं करना चाहिए । भूमि—वित्त—मित्र लाभों से जब ये निश्चित हो जायें तो ही विग्रह होते हैं । उत्तम नृपों के द्वारा स्वतः अङ्गों में सदा प्रसाद ही करना चाहिये । कोप की रक्षा और निरन्तर सञ्चय भली भाँति करना चाहिए ॥१०१॥१०२॥ राजा को अपने मन्त्रीगण विद्या में विदारद विप्रों को ही करना चाहिये । जो विशेष रूप से नमशास्त्र के ज्ञाता—कुम्भीन—धर्म और अर्थ में कुशल एवं सरल स्वभाव वाले हों ॥ १०३ ॥ उनके साथ ज्ञान की मन्त्रणा करे और अत्यन्त अधिक बहुतों के साथ कभी भी समाचरण न करे । एक-एक के ही साथ मन्त्रणा का विशेष निश्चय करे ॥ १०४ ॥ व्यस्त—समस्त सभी ओर से अन्य के व्यय देशों से सुसंवृत मन्त्रणा करने का यह होवे उसी स्थल में समारोहण करके मन्त्रणा करे ॥१०५॥

अरण्ये नि शलाके वा न यामिन्या वदायत ।

शिशूञ्छाखामृगान् पण्डाञ्छुकान् वं सारिकास्तथा ॥१०६॥

वज्र्येन्मन्त्रगेहे तु मनुष्यान् विकृतास्तथा ।

दूषण मन्त्रभेदेषु नृपाणा यत् तु जायते ॥१०७॥

न तच्छ्रव्य समाधातु दक्षेनृपशतंरपि ।

दण्ड्यास्तु दण्डयेद् दण्डंरदण्ड्यान् दण्डयेन्नहि ॥१०८॥

अदण्डमन् नृपो दण्ड्यान्नदण्ड्यापि दण्डयन् ।

नृपतिर्वाच्यता प्राप्य चीरकित्त्वपमाप्नुयान् ॥१०९॥

दुर्गे नु समता कुर्यान् प्राकाराट्टालतोरणं ।
 नृपितान्नगराद्राजा दूरे दुर्गाश्रय चरेत् ॥११०॥
 दुर्गे बल नृपाणा नु नित्य दुर्गं प्रशस्यते ।
 शतमेका योधयति दुर्गस्यो यो धनुर्द्धर ॥१११॥
 शत दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं प्रशस्यते ।
 जलदुर्गं भूमिदुर्गं वृक्षदुर्गं तथैव च ॥११२॥

अरण्य म अथवा निजिलोक म मन्त्रण कर किन्तु रात्रि म कभी भी मन्त्रणा नही करनी चाहिए । मन्त्रणा क गृह म छाटे बच्चो को—भाखा मृगो को (बन्दरो)—पण्डा का शूको को—सारिकाआ को तथा विट्ठन मनुष्या को वज्रिन कर देना चाहिए । नृपा के मन्त्र भेदो मे जो दूषण हो जाता है । वह परम बल मैकडा नृपा के द्वारा भी ममाद्यान नही किया जा सकता है । जो दड के योग्य हैं उनको तो अवश्य दड देवे और जो अदडवीर हा उनको नही देना चाहिये ॥ १०६—१०८ ॥ जो दड के योग्य हैं उनको दड न देने हुय और जो दड के योग्य नहीं हैं उनका दड देत हुय राजा निन्दा का प्राप्त करक चोर क पाप का प्राप्त किया करता हैं ॥१०६॥ प्राकार-सट्ट लिखा और तोरणो क द्वारा दुर्ग म समता करनी चाहिए । राजा को चाहिये कि भूषण नगर म दूर म दुर्गाश्रय कर ॥११०॥ राजाओ का बल दुर्ग है और नित्य ही दुर्ग की प्रशंसा की जाती है । एक ही धनुर्धारी दुर्ग म स्थित हाकर सो शूरा से युद्ध किया करता है । और सो शूर दश सहस्र वीरा क साथ युद्ध किया करता है । इसी कारण मे दुर्ग का प्रशस्त कहा जाया करता है । दुर्ग कई प्रकार क हात है—जल दुर्ग होता है—भूमि दुर्ग है—और वृक्ष दुर्ग हाता है ॥१११॥११२॥

अरण्यमरुदुर्गं च शंसज परिखोद्भवम् ।

दुर्गं कार्यं नृपतिना यथा दुर्गं स्वदेशत ॥११३॥

दुर्गं कुर्वन् पुर कुर्यान् त्रिकोण धनुराकृति ।

वतुंल च चतुष्कोण नान्यथा नगर चरेत् ॥११४॥
 मृदङ्गाकृतिदुर्गं तु सतत कुलनाशनम् ।
 यथा राक्षसराज्यस्य लङ्का दुर्गान्विता पुरा ॥११५॥
 बले पुर शोणिताख्य तेजो दुर्गे प्रतिष्ठितम् ।
 तद यस्माद् व्यञ्जनाकार मनोभ्रष्ट शिवावलि ॥११६॥
 सोभाग्य शारवराजस्य नगर पंचकोणकम् ।
 दिवि यद् वर्तते राज्य तच्च भ्रष्ट विप्यात ॥११७॥
 यच्चायोध्याह्वय भूप पुरमिक्ष्वाकुभूमृताम् ।
 धनुराकृति तच्चापि ततोऽभूद् विजयप्रदम् ॥११८॥
 दुर्गभूमौ जयेद् दुर्गा दिक्पालाश्चैव द्वारत ।
 पूजयित्वा विधानेन जय भूप समाप्नुयात् ॥११९॥

अर्थ यह दुर्ग—शैल से समुद्रभूत दुर्ग और परिवर्षा से उद्भूत
 दुर्ग होता है । नृप को जैसा अपने देश से दुर्ग हो वैसा ही दुर्ग करना
 चाहिये ॥११३॥ दुर्ग की रचना करते हुए त्रिकोण और धनुष की
 आकृति वाला पुर बनाना चाहिए । वतुंल और चतुष्कोण पुर की
 रचना करे अन्य प्रकार से नगर नहीं करना चाहिए ॥११४॥ मृदङ्ग की
 आकृति वाला दुर्ग निरन्तर कुल के नाश पर तैयार होता है । जिस
 प्रकार से पहिले राक्षसों के राजा रावण की लङ्का पुरी दुर्ग से युक्त
 थी ॥११५॥ राजा बलि का शोणित नाम वाला पुर था और दुर्गों से
 से प्रतिष्ठित तेज था । क्योंकि वह व्यञ्जनाकार था और शिवा बलि
 मनो भ्रष्ट थी ॥११६॥ शारवराज का सोभाग्य नगर पंच कोनो वाला
 था । जो राज्य दिव सोच में है वह भ्रष्ट हो जायेगा ॥११७॥ और जो
 अयोध्या नामक इक्ष्वाकु नृपों का पुर था वह भी धनुष की आकृति
 वाला था इसी से वह विजय प्रद हुआ था ॥११८॥ दुर्ग की भूमि में
 दुर्गा का यजन करना चाहिए । और द्वार पर दिक्पालों का यजन करे ।
 विधान में पूजन करने नृप जय को प्राप्त किया करता है ॥११९॥

अतो दुर्गं नृपः कुर्यात् सतत जयवृद्धये ।
 न ब्राह्मणान् सदा राजा केनाप्यवमनीकृतान् ॥१२०॥
 अवमन्य नृपो विप्रान् प्रेत्येह दुःखभाग् भवेत् ।
 न विरोधस्तु तं कार्यं स्वानि तेषां न चाददेत् ॥१२१॥
 कृत्यकालेषु सततं सानेव परिपूजयेत् ।
 नैषां निन्दा प्रकुर्वीत नाम्यसूमा तथाचरेत् ॥१२२॥
 एवं नृपो तद्वाञ्छुद्धिस्तत्त्वमण्डलसयुतः ।
 अप्रभादी चारक्षगुणवान् सुप्रियवदः ॥१२३॥
 प्रेत्येह महती सिद्धिं प्राप्नोति सुखभागवान् ।
 यन्गुणैर्योजितश्चात्मा तं पुत्रानपि योजयेत् ॥१२४॥
 नृपस्य च स्वतन्त्रत्व सततं स्वं विनाशयेत् ।
 स्वतन्त्रो भूपतनयो विकारं याति निश्चितम् ॥१२५॥
 निर्विकाराय सततं वृद्धाश्च परियोजयेत् ।
 भोजने शयने याने पुस्तकाणां च वीक्षणं ॥१२६॥
 वियोजयेत् सदा दारान् भूपः कामविचेष्टने ।
 अस्वतन्त्राः स्त्रियः कामी सततं पार्थिवेन तु ॥१२७॥

इसीलिये राजा को अपना दुर्ग निरन्तर जय की वृद्धि के लिये
 करना चाहिए । राजा ब्राह्मणों को सदा किसी से भी अवमनीकृत न
 करे । राजा विप्रों को अवमान करके यहाँ पर और मृत्युगत होकर भी
 दुःख भागी होता है । उनके साथ कभी विरोध नहीं करे और
 उनका धन ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥१२०॥१२१॥ कृत्य के कालों
 में निरन्तर उनका ही परिपूजन करना चाहिए । इनकी निन्दा न करे
 और न इनकी अन्य सूमा करनी चाहिए ॥१२२॥ इस प्रकार से महान्
 बुद्धिमान तत्त्व मण्डल में मयुज नृप अप्रभादी—चार चक्षु—गुणवान्—
 प्रिय वद होता है । यहाँ पर और मृत्युगत होकर महती सिद्धि को
 प्राप्त होता है और मुखों के भाग वाला हुआ करता है । विन गुणों से

अपने आपको योजित करे उन गुणों से पुत्रों को भी याजिन करना चाहिये ॥१२३॥१२४॥ नृप की निरन्तर स्वतन्त्रता अपने आपको विनाश किया करती है । राजा का पुत्र स्वतन्त्र रहकर निश्चिन्त रूप से विकार को प्राप्त हो जाता है ॥१२५॥ निविकार के लिये निरन्तर वृद्धों को पारियोजित करे । भोजन में—शयन में—यान में और पुरुषों के वीक्षण में सदा दारों को भय को काम विचष्टन में वियोजित करना चाहिए । राजा के द्वारा स्त्रियाँ निरन्तर अम्बाघीन रखनी चाहिए ॥१२६—१२७॥

ता स्वतन्त्रा स्त्रियो नित्य हानय सम्भवन्ति हि ।

तस्मात् कुमार महिषीमुपघाभिर्मनोहरै ॥१२८

शोधयित्वा नियुञ्जीत यौवराज्यावरोधयो ।

अन्तपुरप्रदेशे तु स्वतन्त्रत्व निषेधयेत् ॥१२९

भूपुत्रस्य भार्याया वहि सारे तथैव च ।

अय विशेष नक्षेपान्नुपधर्मो मयोदित ॥१३०

पुत्राणा गुणविन्यासे भार्याणामपि भूपते ।

उशना राजनीतीनां तन्त्राणि तु बृहस्पति ॥१३१

चकारान्यान् विशेषास्तु तयोस्तन्त्रेषु बोधयेत् ।

एव राजा महाभामो राजनीतौ विशेषनाम् ।

कुर्वन्त सीदति सदा भूयसी श्रियमश्नुते ॥१३२

व स्वतन्त्र रहने वाली स्त्रियाँ नित्य ही हानि के लिये हुआ करती हैं । इस कारण से कुमार को और महिषी को मनोहर उपघातों में शोधन करने यौवराज्य और अवरोध में नियोजित करे । अन्तपुर के प्रवेश में स्वतन्त्रता का निषेध कर देना चाहिए ॥१२८॥१२९॥ राजा के पुत्र का—भार्या का तथा वहि सार में यह विशेषता नक्षेप से नृप का धर्म में देना दिया है ॥१३०॥ पुत्रों के गुणों के विन्यास में और राजा की भार्याओं के भी विषय में उशना ने और बृहस्पति ने राजनी-

तियो के तन्त्रा को किया है । अन्य विशेषताओं को उन दोनों के तन्त्रों में समझना चाहिये । इस प्रकार में महाभाग राजा राजनीति में विशेषता को करता हुआ कभी भी दुःखित नहीं होता है और सदा बहुत बड़ी श्री को प्राप्ति किश करता है ॥१३२॥



॥ सदाचार कथन ॥

सदाचारेषु राजेन्द्र विशेषाङ्गं शृणु सम्प्रति ।
 यानवश्य नृप कुर्यात् तान्मत्त सकलाङ्गं शृणु ॥१॥
 साधक क्षीणदोषोऽथ सच्छब्द साधुवाचक ।
 तेषामाचरणं यत् तत् सदाचारं स उच्यते ॥२॥
 आग्नेषु पुराणेषु सहितासु यथोदिताम् ।
 समुद्दिष्टसदाचारान् गृह्णीयात् तान् गृह्यस्यवत् ॥३॥
 ऋषीन् यजेद् वेदपाठैर्देवान् होमं प्रपूजयेत् ।
 श्राद्धं पितृस्तपयेत् तु भूतानि बलिमिस्तथा ॥४॥
 मैत्र प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ।
 सर्वं गृह्यस्यवत् कुर्यान्निषेकाच्च विधिं तथा ॥५॥
 पट्कर्मसु नियुञ्जीत राजा विप्रान् समन्ततः ।
 तथैव क्षत्रियादोऽपि स्वे स्वे धर्मे नियाजयेत् ॥६॥
 यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत् ।
 तः शतेन नृपो दण्डं पुनस्तमिन् नियोजयेत् ॥७॥

श्रीर्ग ने कहा—अब हे राजेन्द्र ! सदा चारों में जो विशेषताएँ हैं उनका अवगत कीजिये । जिन्हें राजा को अवश्य ही करना चाहिये उन सबको आप मुझसे ही उन सबका अवगण कीजिये ॥१॥ साधुगण क्षीण दोषों वाले होते हैं वषोनि गत् शब्द साधु वाचक हुआ करता है । उनका

जो भी आचरण है वही, सदाचार कहा जाया करता है ॥२॥ आगमों में—पुराणों में और संहिताओं में जिस प्रकार से कहे गये हैं उन समुद्दिष्ट सदाचारों में गृहस्थ की भाँति ग्रहण करना चाहिये ॥३॥ वेदों के पाठा के द्वारा अधियो का यजन करे और होमों के द्वारा देवगणों का पूजन करे । आठों के द्वारा पितृगणों को तृप्त करे तथा यनियों के द्वारा भूतों को सन्तुष्ट करना चाहिए ॥४॥ मंत्र—प्रसाधन—स्नान—दन्त धावन—अञ्जन यह सब गृहस्थ की ही भाँति करे तथा निषेकाद्य विधि को करना चाहिए ॥५॥ राजा को चाहिए कि पट्ट कर्मों में सभी ओर से विप्रों की नियुक्ति करे । उभी भाँति क्षत्रिय आदि को अपने-अपने धर्म में नियोजित कर ॥६॥ जो अपने शास्त्रात् धर्म का परित्याग करके परादों के धर्म का समाचरण करे उसका राज एक मौ का दण्ड देवे और फिर उसको उसी विहित धर्म में नियोजित करना चाहिए ॥७॥

सावन्सरेषु कृत्येषु विशिष्यतान् समाचरेत् ।
 अवश्य पार्थिवो राजन् तान् विशेषाद्वा शृणुष्व मे ॥८॥
 भरतृकातो महाष्टम्या दुर्गाया परिपूजनम् ।
 नीराजन दशम्या तु कुर्याद् वै वलवृद्धय ॥९॥
 पापे मासि तृतीयाया कुर्यात् पुण्याभिषेकम् ।
 पूजयित्वा श्रियं देवी पञ्चम्या नृपतिश्चरेत् ॥१०॥
 श्रीयज्ञ धनधान्यस्य वृद्धये नृपसत्तम ।
 ज्येष्ठे दशहराया तु विष्णोरिष्टिं तथाचरेत् ॥११॥
 रवौ हरिस्थे द्वादश्या शङ्खपूजा समाचरेत् ।
 विशिष्यतास्तु नपति कुर्याद् यज्ञान बहुव्ययं ॥१२॥
 एभि कर्तव्यैः राज्यं कोपद्वापि विवर्धते ।
 अकृत्येषु यज्ञेषु दुर्भिक्षं मरणं तथा ॥१३॥
 जायन्ते चेनय सर्वा विशिष्येतास्ततश्चरेत् ।

शरत्काले महाष्टम्या दुर्गायाः पूजने विधिः ॥१४॥

एवं सम्बत्सर में होने वाले वृत्तों में विशेष रूप से इनको समाचरण करना चाहिये । हे राजन् ! राजा उन विशेषों का अवश्य ही समाचरण करे—उनका अवधन मुझने करनी ॥८॥ शरत्काल में महा अष्टमी के दिन दुर्गा का परिपूजन करे । दशमी तिथि में वन की वृद्धि के लिये नीराजन करना चाहिए ॥९॥ पौष मास में तृतीया में पुष्प का अभिषेक करे । नव पञ्चमी में श्री देवी का पूजन करके चरण करे । ॥१०॥ हे नृप ज्येष्ठ ! धन धान्य की वृद्धि के लिये श्री यज्ञ का समाचरण करना चाहिए । ज्येष्ठ मास में दशहरा के दिन भगवान् विष्णु को इष्टि का समाचरण करे ॥ ११ ॥ द्वादशी में हरिश्चन्द्र रवि के दिन में इन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिए । गजा को इन यज्ञों का विशेष रूप में बहुत ध्यय के दान करना चाहिए ॥१२॥ इनके किये जाने पर वन—राज्य—और ऋषि भी वृद्धि को प्राप्त होते हैं । इन यज्ञों के न किए जाने पर देश में दुर्मिथ (अबाल) और मरण होता है ॥१३॥ सब प्रकार की ईनियां होनी हैं (टिड्डी आदि ईतियां हुआ करती हैं) अतएव इनको विशेष रूप में करना चाहिए । शरत्काल में महाष्टमी तिथि में दुर्गा के पूजन की विधि है ॥१४॥

पुरा प्रोक्तस्तु विधिना तेन कार्यं तु पूजयम् ।

विधि नीराजनस्य त्वं गृणु पाथिवसत्तम ॥१५॥

कृतेन येन चाश्वाना गजानामपि वर्धनम् ।

आश्विने शुक्लपक्षे तु तृतीया स्वातीयोगिनी ॥१६॥

पेशान्या स्वपूरस्यैव गृहणीयात् स्थानमुत्तमम् ।

नीराजनं ततः कुर्यान् नप्राप्ते दिवसेऽष्टमे ॥१७॥

नीराजनस्य कालस्तु पूर्वमुक्तो मया तव ।

विधानमात्रं गृणु मे कृतकृत्यो भविष्यसि ॥१८॥

एकं ह्य महासत्त्वं सुमनोहरमेव च ।

पूजयेत् सप्तदिवसान गन्धपुष्पाशुवादिभिः ॥१६

तृतीयादौ पूजयित्वा नयेत यज्ञमण्डलम् ।

चेष्टा निरूपयस्तस्य जानीयात् तु शुभशुभम् ॥२०

परराष्ट्रावमद स्यादश्वो यदि पलायते ।

भियते राजपुत्रस्तु यदि चाश्वूणि मुञ्चति ॥२१

यह विधि पहिल बह्दी गयी है उसी विधि में पूजन करना चाहिए । हे पार्थिव ! मैं परम श्रेष्ठ ! आप नीराजन की विधि का श्रवण करिय । १५ । जिसके करन से अश्व की और गजों की वृद्धि हुआ करती है । आश्विन मास में शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि स्वाती नक्षत्र की योग वाली हो ॥ १६ ॥ अपने पुर की ही ऐशानी दिशा में किसी उत्तम स्थान का ग्रहण करे । आठव दिन के सम्प्राप्त हो जाने पर नीराजन करना चाहिये । १७ । नीराजन (आरती) का काल तो आपको मैंने पहिल ही बताया दिया है । अब तो केवल मुझसे विधान ही का श्रवण करिय । इसमें आप वृत्तवृत्त्य हो जायेंगे । १८ । हे महा मत्स्य ! एक अश्व जा बहुत ही सुन्दर होवे सात दिन तक गन्ध पुष्प वस्त्र आदि से उसकी पूजा करे । १९ । तृतीया के आदि में अर्चन करके उस यज्ञ मण्डल में ले जावे । उसकी चेष्टा का निरूपण करत हुए शुभ और अशुभ का ज्ञान प्राप्त करो । २० । यदि अश्व पलायन करता है तो पराये राष्ट्र का अवमद होता है । यदि यह अश्व अपने नेत्रों से अश्रुओं का मोचन किया करता है तो राजा का पुत्र की मृत्यु हो आती है । २१ ।

नीयमानो न गच्छेत् तु महिषीमरणं ततः ।

तर्ध्व मुखनाभाक्षि शब्दं कुर्याद्विद्या यदि ॥२२

यथाष्ठाभिमुखं कुर्यात् तन् राष्ठाया जयेद्रिपून् ।

उत्क्षिप्य दक्षिणाग्रं तु पदमश्वो भवेत् पुर ॥२३

तदा यदि नमस्ताश्च नृपतिर्विजयेद्रिपून् ।

प्रानर्नीराजनं कुर्याद् तशम्यां नृपसत्तम ॥२४
 तदप्राप्नो च द्वादश्या तस्यामेव समाचरेत् ।
 कार्तिके पञ्चदश्या वा तत्राभावे तु पार्थिव ॥२५
 ऐशान्यां स्वपरस्योर्ध्वं हस्तमानेन षोडश ।
 दशहस्तं तु विपुला दुर्याद वं तत्र तोरणम् ॥२६
 द्वात्रिंशद्वस्त्रमात्रं तं हन्तषोडशविस्तृतम् ।
 यज्ञार्थं मण्डलं कुर्यान्मध्ये वेदिं विनिदिशेत् ॥२७
 वेद्याश्चोत्तरश्चाश्व-वेदिं कुर्यादनुत्तमाम् ।
 यत्र सस्याप्य चाश्वश्च पूजितव्यं पुरोहितैः ॥२८

से जाया हुआ वह अश्व यदि गमन न करे तो महिषी का
 मरण हो जाता है । यदि अश्व मुख—नासिका और नेत्रों से शब्द
 करे तो जिन दिशा की ओर मुख करके ध्वनि करता उस
 दिशा में शत्रुओं के ऊपर जय प्राप्त करता है । यदि अश्व दाहिने
 पद से अग्र भाग को उत्क्षिप्त करके आगे होवे तो राजा सम्पूर्ण रिपुओं
 पर विजय प्राप्त किया करता है । हे नृप श्रेष्ठ ! दशमी तिथि में प्रातः-
 काल में ही भीराजन करना चाहिए । २२—२४ । उसकी अप्राप्ति होने
 पर उसी द्वादशी में समाचरण करना चाहिए । हे पार्थिव ! अथवा
 वहाँ पर अभाव होने पर कार्तिक मास में पञ्चदशी में ऐशानी दिशा
 में जो अपने पुर से होवे सोलह हाथों के मान से दश हाथ विपुल वहाँ
 पर तोरण करे ॥ २४—२६ ॥ बत्तीस हाथ प्रमाण से युक्त और सोलह
 हाथ विस्तार वाला यज्ञ के लिये मण्डल बनावे और मध्य में वेदी का
 विनिर्देश करना चाहिये । २७ । वेदी के उत्तर दिशा में बहुत श्रेष्ठ अश्व
 वेदी की रचना करे । जहाँ पर सस्थापित करके पुरोहितों के द्वारा अश्व
 का पूजन करना चाहिये । २८ ।

सर्जोदुम्बरशाखानामजुं नस्याथवा नृप ।
 मत्स्यशखाद्धितैश्चक्रैर्ध्वजंश्चाप्यभिभूयसेत् ॥२९
 तोरणं कनकरत्नैस्तथा नानाविधं, फलं ।

भल्लातक शालिकुष्ठ मिद्वयस्य संन्धदस्य तु ॥३०

कण्ठदेशे निवध्नीयात् पुष्टिश्चान्त्ययमेव च ।

वैष्णव मण्डलं कृत्वा दिक्पालाश्च नवग्रहान् ॥३१

विश्वेदेवास्तु मन्त्रेण विष्णुपुराणं प्रपूजयेत् ।

आज्यंस्तिलैश्च पुष्पैश्च मिश्रीकृत्य परोहित ॥३२

रवेस्तु वर्णमयं च प्रजेशस्य तथैव च ।

पुरुहूतस्य विष्णोश्च होम सप्ताहमाचरेत् ॥३३

एकैकस्य महस्र वा अष्टोत्तराशं च वा ।

कुर्यात् तु प्रत्यहं होमं चतुर्वर्गस्य सिद्धये ॥३४

समिधश्चापि होतव्या पालाशा खादिरास्तथा ।

औदुम्बर्यंश्च काशमर्या आश्वत्थ्याश्च परोधमा ॥३५

ह नृप ! सर्ज—उदुम्बर की शाखाओं का अथवा अर्जुन की

शाखा के मत्स्य—सख मे अङ्कित चक्रों में और ध्वजों में भूषित करना चाहिये ॥ ३६ ॥ सुवर्ण और रत्नों से तथा अनेक फलों के द्वारा सैन्धव की मिद्धि के लिये भल्लातक शालिकुष्ठ तोरण कण्ठ देश में पुष्टि और शान्ति के लिये बाँधि । वैष्णव मण्डल की रचना करके दिक्पालों और नवग्रहों का तथा विश्वेदेवाओं का और विष्णु गुरुओं का पूजन करना चाहिये । पुरोहित तिलों में मिश्रित घृत में और पुष्पों में रवि का—वर्ण का—प्रजेश का—इन्द्र देव का—भगवान् विष्णु का होम सात दिन तक करे ॥ ३०—३३ ॥ एक-एक का एक महस्र अथवा अष्टोत्तराशं जप करे और चतुर्वर्ग की मिद्धि के लिये प्रति दिन होम करना चाहिये । ३४ । समिधाएँ भी हूनन के लिये पलाश (डाक) अथवा एदिर की होनी चाहिये । पुरोहित के द्वारा समिधाएँ उदुम्बर (गूलर) की हों या काशमीर की हों तथा पीपन की होम में ग्रहण करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

मौवर्णान् राजानान् वापि मातृकान् वा यथेच्छया ।

पुर्यान् तु कलजानष्टौ पत्न्याम्राम्बरयोजितान् ॥३६

क्षिपेत् तेषु घटेष्वेव समञ्जहरितालरुम् ।
 चन्दनं च कुण्डं प्रियङ्गु च मनश्शिलाम् ॥३७
 अञ्जनं च हरिद्रां च श्वेता दन्ती तथैव च ।
 भस्मातकं पूर्णकोश सहदेवी शतावरीम् ॥३८
 वचा मनागकुमुमां सोमराजी मुगुणिकाम् ।
 तुल्य च करवीर च तुलसीदलमेव च ॥३९
 एतानि निक्षिपेन्मध्ये कलशाना पुरोहितः ।
 कनकैरम्बुजैर्यजदालभि स्त्रुकुम्भवी तथा ॥४०
 कर्तव्ये शान्तिकामेन नोगजनविधौ नृप ।
 एवं सप्ताहपर्यन्त पूजाभिह्वनैस्तथा ॥४१
 पूर्वोक्तान् पूजयित्वा तु नृपः सप्ताहमाचरेत् ।
 यावन्नीराजनं कुर्यात् तावद्राजा वमेद गृहे ॥४२

फलाशाम्बर मे घोडित आठ बनन रबो वे बनन चांदी—
 मुवर्णं भयवा इच्छानुमा मृत्तिका के ही होंगे । उन फलशो मे समझ
 हरिताल—चन्दन—कुण्ड—प्रियंगु—मैनसित—अञ्जन—हृदी—श्वे-
 त दन्ती—भस्मातक—पूर्णकोश—मन्देवी—शतावर—वचा—मनगाकु-
 मुम—गोमराजी—मुगुणि का—तुल्य—करवीर—तुलसीदल—इन सब
 को पुरोहित कलशों के मध्य में निक्षिप्त कर देवे । हे नृप ! नीराजन
 विधि में शान्ति की कामना में बनन—अम्बुज अथवा यज्ञ के बाण्डों के
 द्वारा सुकुं और सुव बनवाने चाहिये । इस प्रकार से एक सप्ताह
 पर्यन्त पूजा करे ॥३९—४१॥ इस प्रकार से पूजन करके नृप एक सप्ताह
 तक गमाचरण करे । जब तक नीराजन करे तब तक राजा को गृह में
 बाध करना चाहिए ॥४२॥

गत्त्री न यजममी तु निरसेच्छान्तिमिच्छुकः ।
 नारोहयेत् तुरङ्गं तं गजं वा तत्र पायिवः ॥४३

यावत् सप्ताहपर्यन्त यानेनान्येन वै व्रजेत् ।
 भक्ष्यैर्नानाविधैश्चैव मधुपायमयावकं ॥४४॥
 मोदकैर्वा बलिं कुर्यादन्नव्यञ्जनशम्भवं ।
 पूर्वोक्तानां तु देवानां मप्नाह यावदुत्तमम् ॥४५॥
 सप्तमेष्टि तु रेभन्त पूजयत तोरणान्तरे ।
 सूर्यपुत्र महाबाहु द्विभुज वचचोज्ज्वलम् ॥४६॥
 ज्वलन्त शुक्लवस्त्रेण केशानुद्ग्रस्य वामसा ।
 कशा वामकरे विभ्रद दक्षिण तु कर पुन ॥४७॥
 स खड्ग न्यस्य वामाया सितसंघवसस्थितम् ।
 एवविध तु रेभन्त प्रतिमाया घटेऽपि वा ॥४८॥
 सूर्यपूजाविधानेन पूजयेत् तोरणान्तरे ।
 पूजयित्वा तु रेभन्त द्विरद तुरग तथा ॥४९॥

शांति की इच्छा रखने वाले नृप को रात्रि के समय में यश
 भूमि में निवास नहीं करना चाहिए । राजा उग अश्व पर अथवा हाथी
 पर आरोहण न करे । जब तक एक सप्ताह होवे राजा को दूसरे ही
 किसी यान के द्वारा गमन करना चाहिए । और अनेक प्रकार के अन्न
 के व्यञ्जन में सम्मूत्र भक्ष्यो स—मधु—वापस—मावको से अथवा
 मोदकों के द्वारा बलि करे । मप्नाह तक पूव में बतनाय हुए देवताओं
 की उत्तम बलि कर ॥ ४३—४५ ॥ सातवें दिन में तोरण के अन्तर में
 रेवन करत हुए का पूजन करना चाहिए । महा बाहुभा वाले दो—
 भुजाओं से युक्त—वचच म उज्ज्वल जाज्वल्यमान सूर्य पुत्र का पूजन
 करे । शुक्ल वस्त्र में वशी का उद्गचित करके कशा को बाँधे हाथ में
 लिए हुए दक्षिण कर का खड्ग व मतिन मित मंघज पर मस्थित नामा
 में स्थान कर । इस प्रकार व रेवन का प्रतिमा में अथवा घट में तोरण
 का अन्तर में सूर्यदेव की पूजा के विधान में पूजन कर । रवम अश्व को
 अथवा गज का पूजित करना चाहिए ॥ ४३—४९ ॥

अहताभ्वरसवीत सक्चन्दनमगन्धितम् ।
 सुवर्णविद्धनिस्त्रिश विचित्र क्वचादिभि ॥५०॥
 युक्त तु होमकुण्डस्य तेशान्यामश्ववेदिकाम् ।
 पूर्वं कृत्वा नयेदश्वगजपालौ पृथक् पृथक् ॥५१॥
 नीयमाने गजे चाश्वे पूर्वोक्त तु नितित्तकम् ।
 दस्ताद् वीक्षेत नृपति फल चंवावधारयेत् ॥५२॥
 होमकुण्डस्योत्तरस्या चंपाघ्रे चर्मणि स्थित ।
 वेदविदा चाश्वविदा सहितो वोदय संखवम् ॥५३॥
 भीताय तरगायाशु भवन्पिण्डी मुगन्धिनोम् ।
 दद्यात् पुरोहितस्तत्र समन्त्र्य शान्तिमन्त्रकं ॥५४॥
 भक्षणार्थं यदि जिघ्रेत् तदश्नीयाद् वा ह्य स च ।
 तदा स्यात् रात्रकल्याण विपरीतमतोऽन्यथा ॥५५॥
 शाखामौदुम्बरीमाग्री सकुशां च षटोदके ।
 आप्लाव्याप्लाव्य तुरगान् गजान् भूप च सैनिकान् ॥५६॥
 रथाश्च सस्पृशन्मन्त्रं शान्तिकं पौष्टिकंस्तथा ।
 सेचयेत् महिनैर्विष्वक्चतुरङ्ग पुरोहित ॥५७॥

अहत् अम्बर (वस्त्र) में सवीत—माता और चन्दन से
 मयुक्त—सुवर्ण में विद्ध निस्त्रिश वाला—विचित्र—क्वच आदि से युक्त—
 ऐशानो दिक्ता में हे मकुण्ड की वेदिका पर जो पूर्व में हुई है अश्व और
 गज के पामक पृथक्-पृथक् ले जावे ॥ ५०—५१ ॥ अश्व और गज क
 ले जाया जाने पर राजा पूर्व में वसित निवसित को मत्त साथ देखे और
 फल का भी अवधारण करे ॥ ५२ ॥ होम कुण्ड की उत्तर दिशा में
 चाम्पम्बर चर्म पर स्थित होकर वेदों के ज्ञाता और अश्वों के ज्ञान रखन
 वाले के सहित सं-खव (अश्व) को देखकर लाये हुए अश्व के लिए शीघ्र
 ही मुगन्धिन वस्तु (भात) की पिण्डी देवे । पुरोहित वहाँ पर शान्ति
 मन्त्रों के द्वारा अभिमन्त्रित करके ही उभ देवे ॥ ५३—५४ ॥ वह अश्व

यदि उमका अवप्राण करे अथवा अशन करे तो उम अवमग्न पर मग्न प्रवार का कल्याण होता है । और इसके विपरीत होवे तो अन्यथा हुआ करता है ॥ ५५ ॥ उदुम्बर की शाखा—आम्र की शाखा मुगा के भाग घट के जल में आप्लावित कर कन्ध अश्वो का—हाथियों का—राजा का और सैनिकों का अथवा रथा का स्पर्श करे । पुरोहित शान्तिव और पौष्टिक मन्त्रों के द्वारा विप्रों के महिन चतुरङ्ग का भक्षण करे । ॥ ५६—५७ ॥

दिक्पालाना ग्रहाणा च मन्त्रैश्च वैष्णवैस्तथा ।

बहुधा चाभिपिञ्चयाथ तत मौवर्णं दर्पणम् ॥ ५८

वीक्षयित्वा नृप चत्विक् ततो मन्त्रिणमेव च ।

राजपुत्र तथाभ्यात्मानन्यान्पि च सैनिकान् ॥ ५९

कम्पयन् द्विजशार्दूल सबनिव तु दर्शयेत् ।

चतुरङ्गस्य स्वस्यापि कृत्वैव शान्तिपौष्टिके ॥ ६०

मृन्मय शायक कृत्वा चाभिचारिकमन्त्रवै ।

हृदि शूलेन विध्वा त शिर खड्गेन छेदयेत् ॥ ६१

आचार्या कविका पश्चादभिमन्त्र्य ह्याय वै ।

ऐन्द्रं प्राभाकरं मन्त्रीद्याद वक्त्रे स्वयं पुन ॥ ६२

तमनेन तु मन्त्रेण समाहृष्ट नृपस्तदा ।

गच्छेदुत्तरपूर्वा तु दिश सर्वैर्वर्तयुत ॥ ६३

दिक्पालों का और ग्रहों का वैष्णव मन्त्रों के द्वारा बहुत प्रकार से अभिपिञ्चन करके ऋत्विक् सुवर्ण के दर्पण को नृप को फिर मन्त्री को—राजपुत्र को तथा अन्य भ्यात्माओं को और सैनिकों को दिखला करके द्विज शार्दूल कम्पन करते हुए सबको ही दिखलावे । अपने भी चतुरङ्ग या शान्ति—पौष्टिक इस प्रकार से करे ॥ ५८— ६० ॥ मिट्टी से शत्रु से हृदय में शूल से वेध करे और शिर का खड्ग से छेदन करना चाहिए ॥ ६१ ॥ आचार्या पीछे कवि का को अभिमन्त्रित करके फिर

दक्षिणा सुवर्ण—गौ—तिल आदि शक्ति से दान देवे । इस प्रकार से बलो का और राजाओं का नीराजन करके इस लोक में और मृत्युगत होकर राजा सुस्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति किया करता है । हे अश्व ! आपका उद्भव सागर से हुआ है आप अश्वामृत में सञ्जात हैं । जिस सत्त्व से इन्द्र का वहन किया करते हैं उसी में मेरा वहन करें । जिस सत्य से देवगन्त का—जिस सत्य से भास्कर का वहन करते हो उसी सत्य में विजय प्राप्त करने के लिये मेरा वहन करो । इन भूप मन्त्रों के द्वारा अश्व पर आरोहण का समाचरण करना चाहिए ॥६६—७१॥

आरुह्याग्ने महिष्यास्तु शुद्धान्ते लम्बयेत ततः ।

महिषी च ततो भूप पर्यङ्कोपरि सस्थितम् ॥७२॥

दूर्वाक्षतैः ससिद्धार्थं स्त्रीभिः सह तमचंयेत् ।

कृते तु भूमिग्रहणे तृतीयाया निराजने ॥७३॥

मृतक यदि जायेत तत्र दुष्यति केवलम् ।

सूतकी मृतकी वापि पार्थिवस्त यथा तथा ॥७४॥

यत्ननीराजन कुर्यात् तन्मात्रं च विशेषतः ।

मद्यः शौच भवेद्राज्ञो व्यवहारविलोकने ॥७५॥

तथाधिवासने यज्ञे परराष्ट्रविमर्दमने ।

अयं ते कथितो राजन्नीराजन क्रमो मया ।

पुण्यस्नानविधानां त पार्थिव शृणु साम्प्रतम् ॥७६॥

महिषी के आगे समारोहण करके फिर शुद्धान्त, पुर लम्बित

करे । फिर वह महिषी (पट्टाभिषिक्ता रानी) को पराङ्ग पर सस्थित राजा का सिद्धार्थ के सहित दूर्वा छतों में स्त्रियों के साथ अभ्यर्चन करना चाहिये । यह मन्त्र तृतीया में नीराजन में भूमि के ग्रहण करने पर ही करें ॥७२॥७३॥ यदि मृतक उत्पन्न होवे तो केवल दुषित होता है । मृत की हो अथवा मृत की हो पार्थिव जैसे-तैसे राजा बल का नीराजन करे और विशेष रूप से उत्तना करे । व्यवहार के विलोकन में राजा को गुरुन ही शौच हो जाना है । तथा अधिवासन में यज्ञ में और

पर राष्ट्र के विमर्षन में भी शीघ्र होता है । हे राजन् ! यह मैं आपके सामने नीराजन का क्रम बतला दिया हूँ । अब पुष्प के स्नान का विधान आप मुझसे ध्वज कीजिए ॥७४—७६॥



॥ राज्याभिषेक वर्णन ॥

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुष्पस्नानविधिक्रमम् ।
 येन विज्ञानमात्रेण विघ्ना नश्यन्ति सन्नतम् ॥१॥
 पौषे पुष्पक्षणे चन्द्रे पुष्पस्नानं नृपश्चरत् ।
 सौभाग्यन्याणकर दूभिक्षमरणापहम् ॥२॥
 विष्टपादिष्टकरजे व्यतीपात च वैधृतौ ।
 वज्रे शूने ह्यणादौ योगे तु लभ्यते ॥३॥
 तृतीयायकनपच्यर्क्ष रविशौरिकजेऽहनि ।
 तदा समम्यदोषाणां ततः स्नानं हानिकारकम् ॥४॥
 ग्रहदोषाश्च जायन्ते यदि राज्येषु चेतय ।
 तदा पच्य तु नक्षत्रे कुर्यान्मासान्तरंऽपि च ॥५॥
 इयं तु ग्रहणां शान्तिरुद्दिष्टा गुरवे पुरा ।
 शक्रादिसर्वदेवानां शान्तिर्यत्र च जगत्पति ॥६॥
 तुषकेशास्त्यक्त्वाभीष्टदेशादिवर्जिते ।
 शकंराट्कृमिकृष्माण्ड बहुकृष्टविवर्जिते ॥७॥

जीई ने कहा—हे राजन् ! अब मैं आपका पुष्प—स्नान की विधि के क्रम को बतलाऊँगा जिसके के विज्ञान में ही विघ्न निरन्तर नाश को प्राप्त हो जाया करता है ॥१॥ पौष भाग में चन्द्र व पुष्प नक्षत्र गत होने पर राजा का पुष्प स्नान का समाचरण करना चाहिए । यह स्नान सौभाग्य और कल्याण व नरन वाला होता है और दुष्ट

तथा मरण क अपहरण करन वाला होता है ॥२॥ विष्टि (भद्रा) आदि
दुष्ट करण म—व्यतीमात और घंघूति म—बजू—शूल—दण्ड आदि
म योग मे यदि इसका लाभ होता है ता तृतीय स युक्त पुष्प नक्षत्र
रवि—शोरि और मङ्गल वार म तब यह मन्त्र दाया की हानि करन
वाला होता है ॥३॥४॥ ग्रहदोष होन ह और राग्या म इतिया हाती
हैं तब पुष्प नक्षत्र मे और मामा नर म भो करना चाहिए ॥५॥ यह
शान्त पहले समय मे ब्रह्माजी न गुह क निय बनाई थी और जगत्पति
ने शक्र आदि समस्त देवा का शांति क निय ही कहा था ॥६॥ तुष
केश—अस्थि—धत्मीक कोट देश आदि स वजित—जर्वरा—कुर्म—
नूत्माण्ड—बहु कृष्ट से रहित ॥७॥

काकोलूकश्च कङ्कुश्च काकोलगृध्रशोनक ।
वजिते कण्टकिवन विभातकविर्वाजिते ॥८॥
शिमुश्लेष्मानकाभ्या त जलोकाद्यैर्विवजिते ।
स्वस्थाने चम्पकाशोक ववलादिविराजते ॥९॥
हसकारण्डवाकीर्ण सरस्तीरयवा शुची ।
पुष्यस्नानाय नृपतिगृह्णीयात् स्थानमुत्तमम् ॥१०॥
तत् पराहितो राजा नाना वादित्रनिस्वने ।
प्रदोषसमय गच्छेत् तत् स्थानं पूर्ववासरे ॥११॥
नम्य स्थानरय कौयर्मादिशि स्थित्वा परोहित ।
सुगन्धचन्दने पानी कपूराद्यधिवासिते ॥१२॥
गोरोचनाभि सिद्धार्थैरक्षते सफलादिभि ।
गन्धद्वारैत्यादिभि मन्त्र सर्वाधिसिक्त्वैव ॥१३॥

काक—उतूक—कङ्क—काकान—गृध्र—शोनका से रहित—
कण्टक वाले वन म—विभीतक से वाजित—शिमु श्लेष्मानको से रहित
और जलोका आदि से वजित—चम्पक अशोक—ववुन आदि से
विराजित अपने स्थान म—हस और गण्डवा म समाकीर्ण म अधवा

शुचि सर के तट पर युष्म स्नान के लिए राजा को उत्तम स्थान का ग्रहण करना चाहिए ॥ ८—१० ॥ इसके अनन्तर राजा और पुरोहित अनेक बाद्यो की ध्वनियों के साथ प्रदोष के समय में उस स्थान पर पूर्व दिश में गमन करें । उस स्थान की कीबेरी दिशा में पुरोहित स्थित होकर सुगन्धित चन्दन—पान—चूर्ण आदि से अधिवासित—मोरोचनाओं से—सिद्धियों से—अलतों से जो फल आदि के सहित हों—
“ मन्त्र द्वारा ” इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सबके अधिस्थितों से उस स्थान को अधिवासित करके वहाँ पर देवगणों का पूजन करना चाहिए ।
॥ ११—१३ ॥

अधिवास्य तु तत्स्थान पूजयेत् तत्र देवताः ।
गणेश वेशव धाक्रं ब्रह्माण चापि शङ्करम् ॥१४
उभया सहित देव सर्वाश्च गणदेवताः ।
मातृश्च पूजयेत् तत्र नृपतिः सपुरोहितः ॥१५
मङ्गलान् फलान् कृत्वा नामान्वेष्य सञ्चयान् ।
प्रदद्यान् पायस स्वादुफल मोदकयावकी ॥१६
अधिवास्य च तत् स्थान दूर्वासिद्धार्थकाक्षतैः ।
तत्स्थानाञ्चापि भूतानि मारयेन्मन्त्रमोरयन् ॥१७
अपत्तर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन स्नानकर्म करोम्यहम् ॥१८
ततः करी पुटोक्त्य मन्त्रणानेन पायिव ।
आवाहयेदिमान् देवान् पूज्यान् पुष्याभिषेकतः ॥१९
आगच्छन्तु मुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
दिशो हि पालकाः सर्वे ये चान्येऽप्यंशभामिनः ॥२०
ततः पुष्याञ्जलिं दत्त्वा पुनर्मन्त्र पठेदिमम् ।
अथ तिष्ठन्तु विबुधाः स्थानमासाद्य मामकम् ॥२१
भगवान् गणेश—केशव—इन्द्रदेव—ब्रह्मा—देव शङ्कर उमा के

सहित और मगस्त गण देवता और मातृगणों का पुरोहित के साथ राजा अर्चन करे ॥ १४—१५ ॥ मङ्गल कलशों को स्थापित करे और अनेक प्रकार के गेदों के समुदायों का—पायस—स्वाद फल और मीठक तथा यावक देवे । उस स्थान को अधिवासित करके जो दूर्वा व मिट्टाप और अक्षतों के द्वारा करना चाहिए । उस स्थान में भी भूतो को मन्त्र का उच्चारण करते हुए अपसारित करना चाहिए ॥ १६—१७ ॥ जो भूत भूमि के पालक हैं वे यहाँ से अपमरण कर जावें । भूतो का विरोध न करते हुए मैं स्नान के कर्म करता हूँ ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर दोनों हाथों को पुटित करके राजा इस मन्त्र के द्वारा इन पूज्य देवों का पुष्प के अभिषेक के लिये आवाहन करे ॥ १९ ॥ जो यहाँ पर पूजा के अभि-
सापी देव हों वे सब सुरगण यहाँ पर आगमन करे । सब दिशाओं के पालक हों और जो भी अश भानी हों वे आगमन करें । फिर पुष्पो की अञ्जलि देकर पुनः इस मन्त्र का पाठ करे । मेरे इस स्थान को प्राप्त करके आज यहाँ पर विबुध गण स्थित हों ॥ २०—२१ ॥

स्वपूजा प्राप्य पातारो दत्त्वा शान्तिं महीभुजे ।
नतस्ता नृपती रात्रिं नयत् तु सपुरोहितः ॥ २२
स्वप्ने शुभाशुभ विद्यान्नुपस्तु सपुरोहितः ।
कृत्वा पूजा तु देवानां रात्रौ स्थाने नृप स्वपेत् ॥ २३
शुभाशुभफल स्वप्ने ज्ञेयं दोषज्ञसम्मतम् ।
दुःस्वप्नदर्शनं चेत् स्वात् तदा पुष्याभिषेचने ॥ २४
होम चतुर्गुणं कुर्याद् दत्त्वा चापि गवां शतम् ।
गोवाजिकुं जराणां तु प्रासादस्य गिरेस्तरो ॥ २५
आरोहेण शुभकरं राज्यं प्राप्नुवृद्धिकारकम् ।
दधिदेवसुवर्णानां ब्राह्मणस्य प्रदशनम् ॥ २६
वीणादूर्वादितफलं पुष्पच्छत्रविलेपनम् ।
शास्ताशु चक्रशत्रूणां पद्मस्य सुहृदस्तथा ॥ २७

लामा क्षयकरा शत्रो रत्नकारम्भ भृशम् ।
दशनं चोपरागम्य निगडेन च वन्दनम् ॥२८॥
मासस्य भोजनं चैव पर्वतस्य विवर्ननाम् ।
नाभिमध्ये तम्बपत्तिर्मृत प्रत्यनुरोदनम् ॥२९॥

रत्ना बरने वाले आप अपनी पूजा प्राप्त करने और राजा को शान्ति प्रदान करने स्थित होंगे । इसके उपरान्त राजा पुरोहित के साथ उस रात्रि को व्यतीत कर ॥ २८ ॥ पुरोहित के सहित राजा स्वप्न में शुभ और अशुभ का ज्ञान प्राप्त करे । दवां की पूजा करके रात्रि में स्थान में नृप का स्वयम् करना चाहिए ॥ २९ ॥ दासों के ज्ञाताओं द्वारा सम्मत स्वप्न में शुभ—अशुभ के पक्ष की जानना चाहिए । यदि बुरे स्वप्न का दर्शन होवे तो पुष्प के अभिषेचन में चौकुना हवन करना चाहिए और भी मौओ का दान भी देवे । यो—याज्ञ—हाथी—प्रासाद—पर्वत—वृक्ष का आरोहण शुभ करने वाला और राज्य श्री की वृद्धि का करन वाला हुआ करता है । दधि—देव—सुवर्ण—बाह्यण का प्रदर्शन, दुर्वा—बीषा—अक्षत—फल—पुष्प छत्र—बिलसन—शीताशु (चन्द्र)—चक्र—शत्रु का—पद्म का और सुहृद का लाभ—रात्रि में क्षय करने वाले हैं । रत्नकार—भूधृत् और उपराग का देखना निगड के द्वारा वन्दन करन वाला होता है । मास का भोजन—पर्वत का विधर्शन—नाभि के मध्य में वृक्ष की उत्पत्ति और मृत पुरुष के पीछे रहन करना ॥ २४—२९ ॥

अगम्यागमनं कूपं पद्मगर्भावतीर्णता ।
पर्वतस्य तथा नद्यां स्रोतसा लषणं तथा ॥३०॥
स्वपुत्रमरणं चैव पानं रुधिरमक्षयो ।
भोजनं पायसस्यासि मनुष्यारोहणं तथा ॥३१॥
वत्पाणसुखसौभाग्यं राज्यं शत्रुक्षयं तथा ।
एते स्वप्ना प्रकुर्वन्ति नृपस्य नृपसत्तम ॥३२॥

खरोष्ट्रमहिषाणा च आरोहो राज्यनाशनम् ।
 नत्य गीत तथा हास्य पाठश्चाप्यशुभप्रद ॥३३॥
 रक्तवस्त्रपरिधानं रक्तमालानुलेपनम् ।
 रक्ता कृष्णा स्त्रिय च व कामयन् मृत्युमाप्नुयाम् ॥ ३४ ॥
 कूपान्तरे प्रवेश स्याद् दक्षिणाशाश्वतिस्तथा ।
 पङ्क्ते निमज्जना स्नान भार्यापुत्रविनाशनम् ॥३५॥

अगम्य स्त्री के साथ गमन—कूआ—कीच क मध्य में उतरना—
 पर्वत का—नदी का तथा झोस का लोचना—अपने पुत्र का मरण—
 रुधिर और मदिरा का पान—पायस का भोजन तथा मनुष्य पर आगे-
 हण हे नृप श्रेष्ठ । ये स्वप्न राजा के कल्पण—सुख—सौभाग्य—
 राज्य और शत्रुओं का क्षय किया करते हैं ॥ ३०—३२ ॥ गघ ऊँट
 और महिष का आरोहण राज्य के नाश करने वाला होता है । मृत्यु—
 गीत—हास्य और पाठ भी अशुभ के प्रदान करने वाले हैं ॥ ३३ ॥
 रक्त वस्त्र का परिधान—रक्तमाला और रक्त अनुलेपन—रक्त तथा
 काली रत्ना की कामना करता हुआ भी मृत्यु का प्राप्त किया करता है
 ॥ ३४ ॥ कूआ क अन्दर प्रवेश तथा दाक्षिण दिशा में गत—कीच म
 निमज्जना या स्नान भार्या और पुत्र का विनाश करने वाला होता
 है ॥ ३५ ॥

लाभस्तस्य भवेत् स्वप्नोऽप्यरुत्पत्तिन पथ्य च ।
 आदाय गम्भनाडी तु सकुला याति खञ्जनम् ॥३६॥
 स तु राज्यान्तरं प्राप्य महाकल्याणमाप्नुयाम् ।
 दीघं विभक्तिहस्तं तु हस्तपादशिवस्तृतम् ॥३७॥
 दुर्यान् तु लक्षणापत यज्ञमण्डलमुत्तमम् ।
 ततोऽपरेऽह्नि पूर्वाह्नि मातृणा पूजनं चरेत् ॥३८॥
 बुध्यतेऽग्नौ वसोर्धारा वृद्धिश्चाद् तथैव च ।
 चन्द्रनागुरुश्च स्तूरोऽधमवपू रचूर्णवम् ॥३९॥

सम्पूज्य मण्डलस्थानं तस्मिन् हौं शम्भवे नमः ।

अम्त्राय हौं फडित्येव लिखेन्मन्त्रद्वयं बुध ॥४०॥

उसका स्वप्न में भाग होवे और नृप की अरुणति हो वे गर्भ गर्भ नाडी वा आदान करके कुल भद्रित खज्जन को जाना है ॥३६॥ वह अग्न्य राज्य की प्राप्ति करके महान् कल्याण को प्राप्त किया करता है । बीस हाथ दीर्घ और सोलह हाथ विस्तार में युक्त यद्य लक्षणों से युक्त उत्तम यज्ञ मण्डल की रचना करनी चाहिये । इसके उपरान्त दूसरे दिन में पूर्वाह्न में मातृगणों की पूजा करे ॥३७॥३८॥ भीत में लगी हुई बमो धारा तथा वृद्धि श्राद्ध अर्थात् नान्दी मुख नामक श्राद्ध करे । चन्दन—अगुरु—कस्तूरी—घम कर्पूर के चूर्ण में मण्डल स्थान की भली भाँति पूजा करके उसमें “हौं शम्भवे नमः”, “अम्त्राय हौं फट्” इन दो मन्त्रों को बुध को लिखना चाहिए ॥३९॥४०॥

मन्त्रविन्मण्डलज्ञश्च सूत्रैः कम्बलसम्भवैः ।

कौशेयैर्वा स्वस्तिकाख्यं प्रथमं मण्डलं लिखेत् ॥४१॥

चतुर्हस्तप्रमाणं तु मण्डलं विलिखेत् ततः ।

हस्तप्रमाणं पद्मं त मण्डलस्य प्रकीर्तितम् ॥४२॥

द्वाराणि साधंस्तानि कर्णिकेशरोज्ज्वलनम् ।

सितं रक्तं च पीतं च कृष्णं हरितमेव च ॥४३॥

शालिचूर्णैश्च कौसुमैर्हारिद्रैर्हृदुरदभवं ।

कुर्मतिं तथाञ्जनैश्चूर्णैः राजा मण्डलवृद्धये ॥४४॥

पश्चान्ततः समारभ्य तालं पश्चिमगामिनम् ।

पश्चिमद्वारमध्ये च शतहस्तं विनिदिशेत् ॥४५॥

प्रत्येकं द्वारमध्ये तु पद्मं चैवाष्टपत्रकम् ।

कुर्मन्मण्डलभागज्ञश्चर्णैरेव पूयक् पूयक् ॥४६॥

चर्णस्तु मण्डलं कृत्वा सूत्राण्युत्सारयेत् ततः ।

उत्सार्य सूत्रं प्रथमं मण्डलं पूजयेत् ततः ॥४७॥

भवनाय नम इति ततो हस्तं वियोजयेत् ।

संख्यावलम्बहस्तं तं रजपात्रं समाचरेत् ॥४८॥

मध्यमानातिकागुण्टेरपरिष्ठादययेच्छया ।

अधामुखागुलीं कृत्वा पातयच्च विचक्षण ॥४९॥

मन्त्र का जाता और मण्डल के ज्ञान रखन वाला पुरुष ऋषभ से उत्पन्न मूत्रों से अथवा बीजों से प्रथम स्वस्विका नामक मण्डल का लेखन कर ॥४८॥ फिर चार हाथ प्रमाण वाला मण्डल लिखना चाहिए । मण्डल का पदम एक हाथ प्रमाण वाला कहा गया है ॥४९॥ डेढ़ हाथ के प्रमाण वाले द्वार होने चाहिये । वह पदम कणिका के केमरों से समुज्ज्वल होवे । मफेद—बान—पीला—कुण्ज और हरा और शाली के चूर्ण स—कौमुभ से तथा हरिदुद्भव ह्लादि में अजत के घूर्ण में मण्डल की कृति के लिये रचना करे ॥४३॥४४॥ पदम के अंदर में आरम्भ करके पश्चिमगामी ताल की और पश्चिम के द्वार के मध्य में चौ हाथ विनिर्दिष्ट करना चाहिये ॥४५॥ द्वार के मध्य में प्रत्येक पदम आठ पत्रों वाला होना चाहिये । मण्डल के भाग में जाता की चूर्णों में पृथक् पृथक् ही करना चाहिए ॥४६॥ चूर्णों के द्वारा मण्डल की रचना करके फिर मूत्रों की उत्सारित करे । मूत्र का उत्सारण करके प्रथम मण्डल का अर्चन करना चाहिए । “भवनाय नम” इससे फिर हाथ में विधाजित कर । समावलम्ब हस्त रजपात्र का समाचरण करे ॥४७॥४८॥ मध्यमा—जनामिका और अगुष्ठ से इच्छानुसार ऊपर नीचे की आठ मुख वाली अगुणियों का करके विचक्षण पुरष पातन कर देवे ॥४९॥

समारोह्य तं वनेष्ट्या विच्छिन्ना गुप्परञ्जिता ।

अंगुष्ठपर्वनेपुण्यान् समान् वार्या विजानता ॥५०॥

समकनधिपमं गूढं विच्छिन्नं वृत्तरावृत्तम् ।

पर्यन्तमपि तत्सममामिच्छेत्तददायन ॥५१॥

ममक्ते कलह विद्यादूर्ध्वं रेखे तु विग्रहम् ।
 अतिस्थूले भवेद् व्याधिर्निन्य षोडाविमिश्रिते ॥५२॥
 विन्दुमिभंयमाप्नोति शत्रुपक्षान्न मशय ।
 भृशया चार्थहानि स्याच्छिन्नाया मरण ध्रुवम् ॥५३॥
 वियोगो वा भवेत् तस्य इष्टद्रव्यमुनस्य वा ।
 अत्रिदित्वा निषेद् यस्तु मण्डल तु यथेच्छया ॥५४॥
 सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषा पूर्वमीरिता ।
 सितसर्पपदूर्धाया रेखा कार्या विजानता ॥५५॥
 विमल विजय भद्र विमान शुभद शिवम् ।
 वर्धमान च देव च जनाल्ल कामदायकम् ॥५६॥
 रुचिक स्वस्मिक चैव द्वादशते तु मण्डला ।
 यथास्थान यथायज्ञ योजनीया विचक्षणै ॥५७॥

रेखा समान करनी चाहिए जो विच्छिन्न और पुष्प रजित होवे ।
 जाना पुष्प के द्वारा अगुष्ठ के पर्व की निपुणता म समादी करनी
 चाहिए ॥५०॥ ममक्त—विषम स्थूल—विच्छिन्न—इमराकृत—पर्यन्त
 अरित और हस्त बन्धी भी नहीं निगनी चाहिए ॥५१॥ रेखा यदि
 ममक्त हो तो उसमें कलह जानना चाहिए और ऊर्ध्व रेखा में विग्रह
 होता है । अत्यधिक स्थूल होने पर व्याधि होती है—विमिश्रित होने
 पर निर्य पीडा होती है । विन्दुओं में भय को प्राप्त हुआ करता है—
 जो कि शत्रु का यज्ञ की ओर में हुआ करता है इसमें कुछ भी
 मशय नहीं है । भृश में अर्थ की हानि होती है और रेखा छिन्ना
 हो तो उनमें निश्चय ही मरण हुआ करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥
 अथवा अभीष्ट द्रव्य या मुन का वियोग उसका होता है । जो भी कोई न
 जानकर ही इच्छा के ही अनुसार मण्डल या लेखन करे तो वह सभी
 दोषों को प्राप्त किया करता है जो भी दोष पूर्व में बनाये गये हैं ।
 शान रखने वाले पुष्प के द्वारा सफेद सरसों और दूर्वा में रेखा करनी
 चाहिये ॥५४॥५५॥ मण्डल बारह होने हैं उनके नाम—विमल—

विजय—भद्र—विमान—शुभद—शिव—वर्धमान । देव—शताक्ष—
कामदायक—रुचिक—स्वस्तिक— ये ही धारह मंडल हैं । विचित्रा के
द्वारा स्थान और यज्ञ के अनुसार ही योजित करने चाहिये ॥५६॥५७॥

सागरे मध्यमाने तु पीयूषार्थं सुरोत्करं ।
पीयूषधारणार्थाय निमिता विश्वकर्मणः ॥५८॥
कला कला तु देवानामसित्वा ते पृथक् पृथक् ।
यत् कृतास्तु कलसाम्ततस्ते परिकीर्तिता ॥५९॥
नवैव कलसा प्रोक्ता नामतस्तान्निबोधत ।
गोह्योपगोह्यो मरुतो मयूखश्च तथापर ॥६०॥
मनोहाचार्यभद्रश्च विजयस्तनु दूषकः ।
इन्द्रियघ्नोऽथ विजयो नवमः परिकीर्तितः ॥६१॥
तेषामेव द्वादश भूप नव नामानि यानि त ।
शृणु तान्यपराण्येव शान्तिदानि सदैव हि ॥६२॥
क्षितीन्द्र प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो जनसम्भवः ।
पवनान्नो तनो द्वे तु यजमानस्ततः पर ॥६३॥
कोपसम्भवनाभ्यां तु पृष्ठं स परिकीर्तितः ।
सोमस्तु सप्तमः प्रोक्तः आदित्यस्तु तथाष्टमः ॥६४॥

सुरो के समूहो के द्वारा अमृत के नियम सागर के मन्थन किया
जान पर पीयूष के धारण के लिये विश्व कर्मा के द्वारा निर्मित किया गया
ये ॥५८॥ क्योंकि देवों की कला-कला पृथक्-पृथक् आसन करके बैठ
किये गये हैं इसी से व कलस नाम से कीर्तित हुए हैं ॥५९॥ कलस
नौ ही बताये गये हैं । अब उनको नाम से समझ लो । गोह्योपगोह्य—
मरुत—मयूख—मनोहाचार्य भद्र—विजय—तनुदूषक—इन्द्रियघ्न—
विजय ये नौ कहे गये हैं ॥६०॥६१॥ हे भूप ! उनके ही जो दूसरे नौ
नाम हैं उनका ध्यान करो जो सदा ही शान्ति के प्रदान करने वाले हैं ।
॥६२॥ प्रथम क्षितीन्द्र कहा गया है दूसरा जन सम्भव होता है । सो

दो पवन और अग्नि हैं—फिर यजमान है । कोप सम्भव नाभि में छटवा कहा गया है । सोम सातवां कहा गया है और आदित्य आठवां है ॥६३॥६४॥

विजयो नाम बलसो योऽसौ नवम उच्यते ।
 स तु पञ्चमुख प्रोक्तो महादेवस्वरूपधृक् ॥६५॥
 घटस्य पञ्चवक्त्रेषु पञ्चवक्त्र स्वय तथा ।
 यथाकाष्ठा स्थित मय्यगवामदेवादिनामत ॥६६॥
 मण्डलस्य तु पद्मान्तं पञ्चवक्त्र घट न्यसेत् ।
 क्षितौन्द्र पूर्वतो न्यस्य पश्चिमे जलगम्भवम् ॥६७॥
 वायव्ये वायव न्यस्य आग्नेये ह्यग्निसम्भवम् ।
 तैऋत्ये यजमान तु तेशान्या कोपमम्भवम् ॥६८॥
 सोममुत्तरतो योज्य मौर दक्षिणतो न्यसेत् ।
 न्यस्यैव बलसाश्चैव तेषु चंतान् विचिन्तयेत् ॥६९॥
 कलसानां मुखे ब्रह्मा ग्रीवाया शङ्कर स्थित ।
 मूले तु सस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणा स्थित ॥७०॥

ब्रह्मा है और उनवी घीवा में गच्छर स्थित रहते हैं । भूत म भगवान् विष्णु मस्थित हैं और मध्य में मातृगण विराजमान है ॥७०॥

दिवपाला देवता सर्वा वेष्टयन्नि दिशा दश ।

कुक्षौ तु सागरा मप्य मप्यद्वीपाश्च सस्थिता ॥७१॥

नक्षत्राणि ग्रहा सर्वे तथैव कुलपर्वता ।

गङ्गाद्या भरित सर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥७२॥

कलसे सस्थिता सर्वे तेषु तानि त्रिचिन्तयेत् ।

रत्नानि सर्वबीजानि पुष्पाणि च फलानि च ॥७३॥

वज्रमौक्तिकवैदूर्यमहापदमेन्द्रस्फाटिकं ।

सर्वधाममय वित्त्व नागरोदुम्बरं तथा ॥७४॥

बीजपूरकजम्बीरकाशमीराभ्रातदाडिमम् ।

यव शालि च नीवार गोधूम सिनमपपम ॥७५॥

कु कुमागुरुकर्पूरमदन रोचन तथा ।

चन्दन च तथा मासीमेला कुष्ठ तथैव च ॥७६॥

कस्तूरीपत्रचूर्णं च जलनिर्यासकाम्बुदम् ।

शैलेय बदर जातीपत्रपुष्पे तथैव च ॥७७॥

दिवपाल सब नैकता दशो दिशाओ को वेष्टित किया करते हैं ।

कुक्षि में साग सागर हैं और सात द्वीप संस्थित हैं ॥७१॥ नक्षत्र-समस्त ग्रह तथा कुल पर्वत गङ्गा आदि सब नदियाँ—चारो वेद कलस में वे ममी त्रिर त्रयान रहते हैं उन्में उन्नता चिन्तन करना चाहिए । रत्न—सर्वबीज—पुष्प—फल-वज्र मौक्तिक-वैदूर्य—महापदम—इन्द्र—स्फाटिक से युक्त सर्व धाम मय वित्त्व—नागररोदुम्बर—बीज पूरक—जम्बीर—काशमीर अभ्रात—दाडिम—यव—शाली—नीवार—गोधूम—मित मर्पय ॥७२—७५॥ कु कुम—अगुरु—कर्पूर—मदन—रोचन—चन्दन—मासी—एला—कुष्ठ—कस्तूरी पत्र चूर्ण—जल निर्यास काम्बुद—शैलेय—बदर—जातीपत्र—पुष्प ॥७६॥७७॥

कालशाक तथा पृक्का देवीपर्णकमेव च ।
 वचा घात्री समञ्जिष्ठा तुरुष्क मङ्गलाष्टकम् ॥७८
 दूर्वा मोहनिका भद्रा शतमूली शतावरीम् ।
 वर्णाना सरला क्षुद्रा सहदेवी गजाह्वयाम् ॥७९
 पूर्णकोषा सिता पीठा गुञ्जा शिरसिकानलौ ।
 ध्यामक गजदन्त च शतपुष्पा पुनर्नवाम् ॥८०
 ब्राह्मी देवी शिवा रुद्रा सर्वसम्भानिका तथा ।
 समाहरय शुभानेतान कलसेषु निधापयेत् ॥८१
 कलसस्य यथादेश विधिं शम्भु गदाधरम् ।
 यथाक्रम पूजयित्वा शम्भु मुख्यतया यजेत् ॥८२
 प्रासादेन तु मन्त्रेण शम्भु तन्त्रेण शङ्करम् ।
 प्रथम पञ्चममध्ये नाना नैवेद्यवेदनैः ॥८३
 दिक्पालाना घटेष्वेव दिक्पालानपि पूजयेत् ।
 पूर्वं बहिः स्थापितेषु ग्रहाणा कलसेषु च ॥८४

काल शाक-पृक्का-दकी पाक-वचा-घात्री-मञ्जिष्ठा-तुरुष्क-मङ्गला-
 ष्टक-दूर्वा-मोहनिका-भद्रा-शतमूली-शतावरी वर्णों की सरला-क्षुद्रा-सह
 देवी-गजाह्वया-पूर्ण कोषा-सिता-पीठा-गुञ्जा-शिर मक-भनल-व्यामक-
 गजदन्त शत पुष्पा-पुनर्नवा-ब्राह्मी-देवी शिवा-रुद्रा-सर्वसम्भानि का—इन
 सब का समाहरण करके कलसों में निधापित करना चाहिये ॥७८-८१॥
 कलस के देश के अनुसार-ब्राह्मी-शम्भु-गदाधर का क्रम के अनुसार पूजन
 करके मुख्यता में भगवान् शम्भु का यजन करना चाहिए ॥८२॥ प्रासाद
 मन्त्र के द्वारा शम्भु का और तन्त्र के द्वारा शङ्कर का प्रथम मध्य में
 जनेक प्रकार के नैवेद्यों के निवेदन द्वारा पूजन करना चाहिए ॥८३॥
 दिक्पालों के घटों में ही दिक्पालों का अर्चन करे । पूर्व में बाहिर स्था-
 पित कमलों में ग्रहा का पूजन करना चाहिए ॥८४॥

नवग्रहान् पञ्चमे नु मातृमातृघटेषु च ।

सर्वे देवा घटे पूज्या घटास्तेषा पृथक् पृथक् ॥८५॥
 नवैव तत्र पर्वोक्ता स्मृता मुख्यतया नृप ।
 भक्ष्यभोज्यैश्च पेयैश्च पुष्पैर्नानाविधं फलं ॥८६॥
 पायसं पायसं च यथामम्भवयोजितं ।
 पुष्पस्नानाय नृपति पूजयेत् सकलान् मुरान् ॥८७॥
 दक्षिणे मण्डनम्याथ कृण्ड निर्माय पायसं ।
 समिदभि अलिमिद्धायै घृतं दूर्वाक्षतं नृप ॥८८॥
 केवलैश्च सद्योवाज्यै पूजितान् सकलान् मुरान् ।
 होमेन तोषयेद् वृद्धं नृप सार्वत्रिकपरोहित ॥८९॥
 होमान्ते मण्डलोदीच्या वेदिकाया सप्तद्वारम् ।
 रोचनाख्यमलकारास्तथा सर्वान् नियोजयेत् ॥९०॥
 वृद्धावगुलमगुल्या षड्विंशागलिकावधि ।
 वृत्त वा चतुरस्र वा पद्म त्रिकोणसंज्ञकम् ॥९१॥

नवग्रहों का और मातृशरी में मातृकाओं का पूजन करना चाहिए । सभी देवों का घट में यजन करना चाहिए । उनके घर पृथक्-पृथक् होते हैं ॥८५॥ हे नृप ! पूर्व में तो ही कहे गये हैं जो मुख्य तथा वर्जित हैं । भक्ष्य-भोज्य-पेय-अनेक भोगों के पुष्प और फल-पायस-पायस जो भी सम्भव योजित हों उनके द्वारा राजा सकल मुरों का पुष्प स्नान के लिए पूजन करे ॥८६॥८७॥ मण्डल के दक्षिण में कृण्ड का निर्माण करके पायस-समिधा-शाली मिद्धार्थ-दूर्वा—अक्षत तथा केवल घृत में पूजित सकल मुरों को अस्त्रिक् पुरोहित के सहित नृप वृद्धि के लिए होम के द्वारा सन्तुष्ट करे ॥८८॥८९॥ होमके अन्त में मण्डल के उत्तर में वेदिका में पदक के सहित—रोचना नामक तथा भलङ्कारों को सबको नियोजित करे ॥९०॥ वृद्धि में अगुलि से अगुल छब्बीस अगुलिका की अवधि पर्यन्त वृत्त अथवा चौकोर त्रिकोण सज्ञा वाला पद्म को ॥९१॥

रत्नेशा पद्ममध्ये तु गोमुष्टिकविनायकं ।
 श्रीश्रीदक्षवरारोहामुमादेवी शुभान्विताम् ॥६२
 रत्नं सर्व्वग्लङ्कारैः पट्टं कार्यं द्विहस्तकम् ।
 हस्तविस्तारमुच्छ्राय नवहस्त दशांगुलम् ॥६३
 स्नानार्थं साधहस्तं च पट्टं वृत्तं गुणान्वितम् ।
 शय्या चतुर्गुणा दीर्घा धनुर्मानं तु पीठकम् ॥६४
 गजसिंहकृन्ताटोपं हेमरत्नविभूषितम् ।
 सिंहादयः साधविस्ताराद् दण्डासनमथापि वा ॥६५
 व्याघ्रचित्रकपट्टं वा उपधानानि कारयत् ।
 अन्यथा नामता चममृदुतूलवपरिता ॥६६
 शय्या दीर्घाधविस्तोर्णा चतहस्ता सुलक्षणा ।
 वितस्त्याधिकमिच्छन्ति नृपस्या गृहावधया ॥६७
 अधचन्द्रसमं कयोदासनं चतुरस्रकम् ।
 उपधानानि शय्याया कणादिमूलभेदन ॥६८

पद्म के मध्य में गोमुष्टिक विनायक। स रत्नशो की—श्री श्री
 वृद्धा वरारोहा—शुभान्वित उमा देवी का सब रत्नों स और अलङ्कारों
 स दा हाथ का यह बनाना चाहिये । वह एक हाथ विस्तार वाला और
 नी हाथ दश अंगुल बासा ऊँचा स्नान के लिये बड़े हाथ का वृत्त तथा
 गुणा ॥ आगवत्त यह करे । शय्या चौगुनी दीर्घ बनावे और धनुष के
 मान वाला पीठ कर ॥६२—६४॥ गज और सिंह के द्वारा किये हुए
 आरोप बासा और हेम तथा रत्नों स विभूषित सिंह नामक साधं विस्तार
 से दण्डासन को अथवा व्याघ्र चित्रक पदा के द्वारा उपधानों को करावे ।
 अथवा अन्यो के द्वारा निमित्त चमं मृदु तूल में पूरित चार हाथ वाली
 परिमाण में सुन्दर लक्षण से युक्त दोषाव विस्तार से युक्त शय्या गुरु
 विद्या में नृप की विर्तास्त स आधिक की इच्छा करत हैं । आधे चन्द्र के
 समान चतुरस्र आसन करना चाहिए । शय्या के उपधान कर्णादि मूल
 भेद से कर ॥६५—६८॥

षोडशैवात्र कार्याणि वर्णचित्रयुतानि च ।
 यान् सिंहासनं पट्टं शय्योपकरणादिकम् ॥६६॥
 राज्ञो नूतनयोग्यं तद् वेद्या उत्तरतो न्यसेत् ।
 तेषां त पश्चिमे स्वर्णरत्नोद्योतचित्ते वरे ॥१००॥
 पर्यङ्के यज्ञदाबोधनिर्मिते महदास्तरे ।
 अर्धाच्छादनसयुक्ते चर्मवृत्तचतुष्टये ॥१०१॥
 वृषभस्य तथोर्णायां सिंहशार्दूलयोरपि ।
 पादपीठे रत्नयुक्ते पादावारोप्य पार्श्विकः ॥१०२॥
 तस्मिन् पर्यङ्कपीठस्थे चमखड्गचतुष्टये ।
 नानालङ्कारभूषाढ्य नृपतिं रत्नशालिनम् ॥१०३॥
 स्नापयेद् ब्राह्मणैः सार्धं राजानं सुखसङ्गतम् ।
 सत्रीतकम्बलकृष्णबहुवस्त्रीश्च शोभितम् ॥१०४॥
 मलसैवंलिपुष्पाद्यं शालिचर्णैश्च स्नापयेत् ।
 अष्टौ षोडशं विंशष्टशतमधिकं च वा ॥१०५॥

केवल सोलह ही वर्ण और चित्र से युक्त करने चाहिए । धनि-
 सिंहासन—पट्ट शय्या के उपकरण आदि राजा के नूतन योग्य हो वह
 वेदी के उत्तर की ओर न्यस्त करे । उनके पश्चिम में सब प्रकार के रत्नों
 के समुदाय से स्वतंत्र अष्ट पर्यङ्क पर जो यज्ञ के वाद्य के समूह से
 निर्मित—महान् आस्तरण बाले—अर्धाच्छादन से समुत्त हो तथा चर्म से
 आवृत चतुष्टय बाने—वृषभ के तथा सिंह शार्दूलों ऊर्ण ॥ आवृत—
 रत्नों से समन्वित पाद पीठ पर राजा अपने परणों को समारोपित
 करके उन पर्यङ्क के पीठ पर स्थित चर्म खड्गचतुष्टय में रत्नों से शोभित
 अनेक अलङ्कारों से युक्त नृपति का स्नान करावे । ब्राह्मणों के साथ
 मुख से गङ्गा राजा को जो सम्वीत कम्बल वाला कृष्ण और बहुत स
 वस्त्रों से शोभित हो उसको बसलों के द्वारा बलि पुष्पादि से और शालि
 मूलों से स्नान करावे । आठ—सोलह—शीत-एक ही आठ अथवा
 बीस बसलों की संख्या बताया गया है ॥६६-१०५॥

कलसाना समाख्याता अधिकस्योत्तरोत्तरम् ।
 जयकल्याणदैर्मन्त्रैर्मङ्गलोत्थैश्च शाम्भवं ॥१०६
 वंष्णवंरथ दिक्पालैर्ग्रहमन्त्रैश्च मातृकं ।
 आज्य तेज समुद्दिष्टमाज्य पापहर परम् ॥१०७
 आज्य सुराणामाहार आज्ये लोका प्रतिष्ठिता ।
 भौतान्तरिक्ष दिव्य वा यत् ते कल्मसपमागतम् ॥१०८
 सर्वे तदाज्यसस्पर्शात् प्रणाशनुपगच्छन् ।
 ततोऽपनीयगात्रान् त कम्बला वस्त्रमेव च ॥१०९
 कलसं स्नापयेद् भूप पप्पस्नानीयपूरितौ ।
 एभिर्मन्त्रैर्नरथेष्ट तनुतत्त्वार्थसाधक ॥११०
 सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त ये च सिद्धा परातना ।
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राश्च साध्याश्च समरदगणा ॥१११
 आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यौ भिषग्वरौ ।
 अदितिर्देवमाता च स्वाहा लक्ष्मी सरस्वती ॥११२

उक्त मन्त्रा म उत्तरात्तर अधिक भा होती है । जय और
 कल्याण प्रद मन्त्रा व द्वारा-मङ्गलात्थो स शाम्भवा मन्त्रैष्णवो स-दिक्-
 पाला म ग्रह मन्त्रा से और मातृका स आज्य को तेज समुद्दिष्ट किया है ।
 आज्य पापी व हरण कर न वाला है । आज्य ही सुरगणा का आहार
 और आज्य म लाई प्रातिष्ठित है । भूमिगत—अन्तारिक्षस्थ— अपवा
 दिव्य अर्थात् दिवलाव गत जा भा आपका कल्मस आ गया है वह
 सब आज्य व सस्पर्श स विनाश का प्राप्त होंगे । इसके अनन्तर
 शरीर स कम्बल और वस्त्र का अलग करके पुष्पा और स्नानीयो म
 पूरित कलसो व द्वारा भूप का स्नान कराव । ह नरथेष्ट । शरीर व
 तत्साध व साधक इन मन्त्रा स राजा का स्नान कराव जो निम्न स्थल
 म बनाय जा रह है—सुरगण आपका अभिषिञ्चन कर और जा सिद्ध
 एव पुरातन ह—ब्रह्मा, विष्णु—रुद्र-साध्य-मरुदगण-आदित्य-वसुगण-

रुद्र-भिवन्दर दोनो अश्विनी कुमार-देवमाता अदिति-स्वाहा-लक्ष्मी-
सरस्वती ॥१०६—११२॥

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृति श्रीश्च सिनीवाला कुहूस्तथा ।

दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रूरेव च ॥११३

देवपत्न्यश्च या प्रोक्ता देवमातर एव च ।

सर्वास्त्वामपिञ्चन्तु सिद्धाश्चाप्सरसा गणा ॥११४

नक्षत्राणि मुहूर्ताश्चा पक्षाहोरात्रसन्धय ।

सप्तसरा निमेषाश्च कला काष्ठा क्षणा लवा ॥११५

सर्वे त्वामपिञ्चन्त कालस्यावयवस्तथा ।

वंमानिका सुरगणा मनव सागरै सह ॥११६

सरितश्च महानागा नागाः किंपुरुषास्तथा ।

वैद्यानसा महाभागा द्विजा गैहायसाश्च ये ॥११७

मत्तपंथ सदाशाश्च ध्रुवस्थानानि यानि तु ।

मरीचिरात्र पुलह पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥११८

भृगु सनत्कुमारश्च सनवश्च सनन्दन ।

सनातनश्च दक्षश्च जेगीपव्योऽभिनन्दन ॥११९

कीर्ति—लक्ष्मी—धृति—श्री—सिनी वासी—कुहू—दिति—
सुरसा—विनता—कद्रू—जा देव बलियाँ वही गयी है वे और देव
माताएँ—सिद्ध और अप्सराओं के गण गव आपका अभिपिञ्चन
करें ॥ ११३—११४ ॥ नक्षत्र—मुहूर्त—पक्ष—अहोरात्र— रात्रि
—उपवसर—निमेष—कला—काष्ठा—क्षणा—लवा य काल के गण
अवयव आपका अभिपिञ्चन करे १ वंमानिक—अर्थात् विमानों पर
गश्तिग रहने वाले गुरों व गमुदाय—रात्रियों के गश्ति यन्त्रगण—
गश्तिगएँ—महानाग—नाग—किंपुरुष—वैद्यानस—महाभाग द्विज और
जा वैहायस है—अथवा दाराओं व साथ सप्तवि गण—औ प्रप के
इमान वाले है—मरीचि—अत्रि—पुलह—पुलस्त्य क्रतु—अङ्गिरा—

मृगु—मनकुमार—सनक—मनन्दन—दक्ष—जैवोगन्धर्व भिनन्दन ॥१११॥
११६।११७।११८।११९॥

एकतश्च द्वितश्च त्रितो जावालिकाश्रयणो ।
दुर्वासा दुर्विनोश्च कण्व पात्यातपनस्तथा ॥१२०॥
मार्कण्डेयो दीघतमा शुन जेफो विदूरथ ।
और्व मवतंकश्च च्यवनोऽत्रि पराणर ॥१२१॥
द्वैपायनो यवक्रातो देवरात सहात्मज ।
एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणा ॥१२२॥
सशिष्यास्तेऽभिपिञ्चन्तु सदाराश्च तपाधना ।
पर्वतास्तरवो नद्य पुण्यान्यायतनानि च ॥१२३॥
प्रजापति क्षितिश्च य गावो विश्वस्य मातर ।
बाह्नानि च दिव्यानि सर्वे लाकाश्चराचरा ॥१२४॥
अग्नय पितरस्तारा जोमूता ऽ दिजा जलम् ।
एते चान्ये च बहव पुण्यसकीर्तना शुभा ॥१२५॥
तौर्यस्त्वामभिपिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिग्रहण ।
इत्येव शुभदैरेतदिध्यमन्त्रैस्तथापरं ॥१२६॥

एक-दा और तीन—जावानि—कश्यप—दुवामा—दुर्विनोत्—
कण्व—कारपायन—मार्कण्डेय—दीघतमा—शुन शक- विदूरथ—भीष्म—
सवर्तन—च्यवन—अत्रि—पराणर—द्वै पायन—यव क्रीत—देवरात—
सहारमज—य और अ य जा भी बइ वन म पगयण हैं च अपन शिष्या
के सहित और अपने दाराआ क साथ तप क ही घन बाल आपका
अभिपिञ्चन करे । पर्वत—पृथ—नदियाँ और परम पुण्य भायतन ।
प्रजापति—क्षिति—गोयें—विश्व की मातायें—दिव्य बाहन—सब लोक
चर और अचर—अग्निदाँ—पितर—तारा—जो भूत—आकाश—
दिशायें—जल—य और अन्य बहुत स पुण्य सकीर्तन बाल तथा शुभ
मय उक्षातो क निग्रहण करन बाल जसा के द्वारा आपका अभिपिञ्चन

करे । इस प्रकार से इन शुभ प्रदाता दिव्य मन्त्रों के द्वारा तथा दूसरों के द्वारा अभिषेक करे ॥१२०—१२६॥

सोरैर्नरारणं रौद्रैर्ब्रह्मशक्तसमुद्भवै ।

अपोहिष्ठा हिरण्येति सम्भवेति सुरेति च ॥१२७

मानस्योकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेत्यनेन च ।

सर्वमगलमागल्ये श्रीश्च ते ग्रहयोगिभिः ॥१२८

इत्येव स्नानमासाद्य गात्रमावृत्य कम्बले ।

सर्वमगलमन्त्रेण वस्त्र कार्पासक धियात् ॥१२९

आचम्य च ततो देवान् गुरु विप्राश्च पूजयेत् ।

ध्वजच्छत्र चामर च घण्टा चाश्वान् गजास्तथा ॥१३०

मन्त्र जप्त्वा धारयेत् तु ततो गच्छेद्धुताशनम् ।

तत्र गत्वा वह्निमध्ये वह्नेः तीर्थोक्ष्य पायिव ॥१३१

निमित्तान्यनिमित्तानि लक्षयेत् तत्र बिन्दुभिः ।

द्वजकञ्चुष्यमात्यवन्दिपौरजनैर्वृत ॥१३२

वादित्रघोषस्तुमलस्तथा तीर्थत्रिकं शुभैः ।

शृत्वा शेषे पुनः शान्तिमाशोर्वाच्य च यं द्विजान् ॥१३३

पूर्णं त्रिधाय विधियद् दक्षिणा कनकान्विताम् ।

धान्यानि चाय वातामि दत्त्वा कुर्याद् विसर्जनम् ॥१३४

विप्रगणा का अभ्यञ्जन करना चाहिए । फिर ध्वज—छत्र—चामा—
घाटा—अश्व—यज्ञ का मन्त्र का जप करके धारण कर और इसके
अनन्तर हुताशन क समीप गमन करना चाहिए । वहाँ पर जा कर राजा
वर्हिन व मध्यम वर्हिन की स्त्री का निरीक्षण कर ॥१३०-१३१॥ वहाँ पर
विदुषा क द्वारा निमित्ता का और अनिमित्ता को लक्षित करना चाहिए
द्वंद्व (ज्योतिर्विद्) कञ्चुकि—अमात्य—बन्दीजन—पुष्पासीजन से
भावृत्त होत हुए तुमुल वाद्या का ध्वनियास तथा शुभ तौमश्रिका व नाथ
युक्त होकर शयन पुन नार्ति करके और आभी चित्त करके इन्द्रा का
विधिपूर्वक सुवर्णस युक्तपूज दक्षिणा दत्त तथा घ्राण्य और वस्त्र दत्त उन
समयका बिदा कर ॥१३२—१३४॥

तत शयजलं मर्चानमात्यादीन पुराहित ।

सेचयेच्चतुरङ्गं च यत्त चापि सराष्ट्रकम् ॥१३४॥

एव कृत्वा नप पश्चान् शिरान शयना भवत् ।

मासमैधुनहीनश्च कुर्यान्माङ्गल्यमवनम् ॥१३५॥

पुप्यनक्षत्रमवना तु तृतीया यदि सभ्यत ।

तस्या पूज्या मदा दवा चण्डिका शकृण ह ॥१३६॥

पञ्चालिकाविहाराद्य शिशना कौतुकंस्तथा ।

चैवाहिकन विधिना माहयेच्चण्डिका शिवाम् ॥१३७॥

चतुष्पथेषु सर्वेषु देवदेवीगृह्येषु च ।

पताकाभिरला कुर्यादिव कुवन् न सीदति ॥१३८॥

एव कृत्वा शान्तियाग तथा पुप्याभिषेचनम् ।

चतुरङ्गं सम राजा भायाभिस्तु नर सह ॥१३९॥

राज्यमण्डलसयुक्त परत्रेह न सीदति ।

नात परतरा यज्ञा नात परतरोत्सव ॥१४०॥

इसके अनन्तर पुराहित मय जल व मयस्त अमात्यादिक का
मचन कर । तथा तुरङ्ग का—वत्त का—राष्ट्र का मचन करना

चाहिये । इस प्रकार से करके पीछे राजा तीन रोज़ पञ्चमंत पूर्ण तथा समय से युक्त होकर रहे । मांस का अशन—मैथुन से रहित रहे और माङ्गल्यो का सेवन करे ॥१३५॥१३६॥ यदि पुष्प नक्षत्र से युक्त तृतीय तिथि का लाभ होता है उसमें सदा शङ्करके साथ चण्डिका देवीका अर्चन करना चाहिए ॥१३७॥ पाञ्चायिकी विहार आदिके द्वारा तथा शिशुओं के कौतुको से—वैवाहिक विधि से शिवा चण्डिका का मोहन करना चाहिए ॥१३८॥ समस्त चतुष्मणो (चौराहो) में और देवों तथा देवियों के मन्दिरों में पताकाओं को लगाकर उन्हें भूषित करे और ऐसा करता हुआ कभी भी दुःख नहीं पाया करता है ॥१३९॥ इस रीति से शान्ति यणा को सुमम्पन्न करके तथा पुण्य का अभिषेचन करके चतुरङ्गों के साथ—भार्याओं और नरों के साथ राज्य मण्डल में समन्वित यहाँ पर और परलोक में कभी भी दुःखित नहीं हुआ करता है और न इससे बड़ा और श्रेष्ठ कोई भी यज्ञ होता है और न इससे उत्तम कोई उत्सव हो हुआ करता है ॥१४०॥१४१॥

नात परतरा शान्तिर्नात. परतर शिवम् ।
 अनेनैव विधानेन नृपतेरभिषेचनम् ॥१४२॥
 युवराज्याभिषेक च युवाद्वाजपुरोहित ।
 नृपाभिषेककरणमादौ यदि समाचरेत् ॥१४३॥
 अनेनैव विधानेन स्थिर स्यान्नृपतिस्तदा ।
 अयं यज्ञ समुद्दिष्ट शक्रार्थं ब्रह्मणा पुरा ।
 एव यज्ञ नृप. कृत्वा परत्रह न सोर्दति ॥१४४॥

इसमें बड़ा बड़ा कोई भी शान्ति नहीं है और इससे अधिक कोई कल्याण एव मङ्गल नहीं होता है । इस ही विधान से नृप का अभिषेचन होता है । और राजपुरोहित को चाहिए कि इसी विधान में युवराज का अभिषेक करे । यदि आदि नृप का अभिषेक का समाचरण करना हो इसी विधान में नृप सदा स्थिर होता है । प्राचीन काल

मे ब्रह्माजी ने इंद्रदेव से यही यज्ञ इन्द्र के लिये हो कहा था । इसी भाँति राजा इस यज्ञ को करके यहाँ पर और परलोक में सभी भी कुछ नहीं पाया करता है ॥१४२-१४४॥



॥ शक्र ध्वजोत्सव वर्णन ॥

अथात शृणु राजेन्द्र शक्रोत्थान ध्वजोत्सवम् ।
 यत कृत्वा नृपतिर्याति न कदाचिन् पराभवम् ॥१॥
 रवी हरिस्त्ये द्वादश्या श्रवणेन विडौजसम् ।
 आराधयेन्नृप मम्यक मवंविधोपशान्तये ॥२॥
 राजोपरिचरो नाम वसुनामापरस्तु य ।
 नृपस्तेनायमतुलो यज्ञ प्रावर्तित पुरा ॥३॥
 प्रावृट्काले च नमामि द्वादश्याममितेतर ।
 पुरोहितो बहुविधंवाद्यंस्तूर्य समन्विन ॥४॥
 प्रथम शक्रकेतवर्धे वृक्षमामन्त्र्य वर्धयेन् ।
 सवत्सरो वाद्यंकिञ्च कृतमङ्गलकीतुक ॥५॥
 उद्याने देवतागारे श्मशाने मार्गमध्यत ।
 ये जातास्तरवस्ताम्यु वर्जयेद वासवध्वजे ॥६॥
 बहुवन्तीयुन शुक्ल वटुकष्टकसयुतम् ।
 कुञ्ज वृक्षादनीयुवन सताच्छ्रान्ततरु त्यजेत् ॥७॥

और्वर्धे ने कहा—इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! अतएव आप शक्रो-
 त्थान ध्वजोत्सव का श्रवण बीजिष् जिमको मग्पादिन करके राजा किसी
 समय में भी पराभव की प्राप्ति नहीं किया करता है ॥१॥ हरिस्त्य रवि-
 चार के दिन में श्रवण स युवन द्वादशी तिथि में राजा को इंद्रदेव का
 समाराधन करना चाहिए । इसको भली भाँति करने से सब प्रकार के

विघ्नो की उपशान्ति हुआ करती है ॥२॥ राजो परिचर नाम वाला जिमका वसुनाम दूसरा है । नृप इसे करे । यह रहिते समय मे अतुल यज्ञ प्रवृत्त हुआ था ॥३॥ नम मास मे वर्षा ऋतु मे द्वादशी तिथि म शुक्ल पक्ष मे पुरोहित बहुत प्रकार के बाद्यो और तूर्यो मे समन्वित होवे ॥४॥ सबसे प्रथम इन्द्र के केतु के लिये वृज का आमन्त्रित करके उसको वर्धित करना चाहिए । सम्बत्सर और वाधकि मङ्गल कौतुक किया हुआ होवे । उद्यान म—देवता के आगार म—शमशान मे और मार्ग के मध्य म जो भी तरहकर समुत्पन्न होवे उनका वासव ध्वज म वर्जन कर देना चाहिए ॥५॥६॥ जो बहुत बलिभो मे सद्युत होवे-शुष्क हो-बहुत से काँटो मे समन्वित हो—कुम्भ अर्थात् टेढ़ा हो वृक्षा दनीय युक्त हो तथा लताओ से छन्न तरु हा उसका परित्याग कर देना चाहिए ॥७॥

पक्षिवाससमाकीर्ण कोटरैर्बहुभिर्युतम् ।

पवनाननविध्वस्त तरु यत्नेन वर्जयेत् ॥८॥

नारीसजाश्च ये वक्षा अनिलह्रस्वा अतिक्शा ।

तान सदा वर्जयेद धीरः सर्वदा शक्रपूजने ॥९॥

अर्जुनोऽप्यश्वकणश्च प्रियकोपक एव च ।

औदुम्बरद्वय पचैते केत्वये ह्युत्तमा स्मृता ॥१०॥

अन्ये च देवदावाद्या शालाद्यास्तरवस्तथा ।

प्रशस्तास्तु परिग्राह्या नाप्रशस्ना कदाचन ॥११॥

धृत्वा वृक्ष ततो रात्री स्पृष्टा मन्त्रमिम पठेत् ।

यानि पक्षेषु भूतानि तेन्य स्वस्ति नमोज्तु व ॥१२॥

उपहार गृहीत्वैव क्रियता वामवध्वजम् ।

पार्थिवस्त्वा वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नमोऽस्तम ॥१३॥

ध्वजार्यं देवराजस्य पूजयेत् प्रतिगृह्यताम् ।

ततोऽपरेदिनं तं छित्त्वा मूलमष्टांगुला पुन ॥१४॥

जो वृक्ष पक्षियों के निवास में समानार्थ हो अर्थात् जिस पर बहुत से पक्षियों के घोंसले हों—जो बहुत से कोठरों में समन्वित हों—जो वायु और अग्नि में विद्यमान हो गया हो ऐसे तट का यत्न पूर्वक वर्जित कर दें ॥ ८ ॥ जिन वृक्षों का नाम नागों वाला हो—जो अत्यन्त छोटा हो—जो बहुत ही बृहत् हों—ऐसे इन सभी वृक्षों का घोर पुष्प इन्द्र के पूजन में यदा ही वर्णन कर दें ॥ ९ ॥ अर्जुन—अश्वकर्ण—प्रिय कोपक—और शुम्भर—ये पाँच वृक्ष केतु के लिये उत्तम बनाये गये हैं ॥ १० ॥ और अन्य देवदारु आदि तथा जाल आदि वृक्ष जो भी प्रशस्त हैं उनका परिग्रहण करना चाहिए और जो अप्रशस्त हैं उनको कभी भी ग्रहण न करें ॥ ११ ॥ वृक्ष को पकड़ करके रात्रि में स्वर्ण करक इम निम्न कथित मन्त्र का पाठ करना चाहिए—जो प्राणी वृक्षों पर हैं उनके लिये कल्याण होवे और आपको नमस्कार है । यह उद्धार ग्रहण करके इन्द्र की ध्वजा को करें । राजा आपका वर्णन करना है । हे नगोत्तम ! आपका कल्याण होवे ॥ १२—१३ ॥ देवराज इन्द्र की ध्वजा के लिए इस पूजा का परिग्रहण करिए । इसके अनन्तर दूसरे दिन में उसका छेदन करके फिर आठ अंगुल मूल का ग्रहण करें ॥ १४ ॥

जले क्षिपेन् तयाग्रस्य च्छित्त्वं चतुरंगुलम् ।

ततो नीत्वा पुरद्वार केतुं निर्माय तत्र वं ॥१५॥

शुक्लाष्टभ्या भाद्रपदे केतु वेदी प्रवेशयेत् ।

द्वाविंशद्वस्तमानस्तु अष्टम केतुरुच्यते ॥१६॥

द्वाविंशन् तु ततो ज्यायान् द्वाचत्वारिंशदेव च ।

ततोऽधिक ममाध्यातो द्वापञ्चाशत् तयोत्तम ॥१७॥

कुमार्यं पञ्च वर्तव्या शक्रस्य नृपमत्तम ।

शालमय्यस्तु ता सर्वा अपरा शक्रमातृना ॥१८॥

केतो पादप्रमाणेन कार्या शक्रकुमारिणा ।

मातृकार्धप्रमाणा तु मन्त्रिहस्तद्वय तथा ॥१९॥

एव कृत्वा कुमारीश्च मातृका वेतुमेव च ।

एवादश्या सिते पक्षे यष्टि तामधिवासयेत् ॥२०॥

अधिवास्य ततो यष्टि गन्धद्वारादिमन्त्रवत् ।

द्वादश्या मण्डला कृत्वा वसाव विस्तृतात्मकम् ॥२१॥

तथा आग की आर म चार अंगुल का छदन करके उम जल में प्रक्षिप्त कर देव । फिर पुर के द्वार पर ल जाकर वहाँ पर वेतु का निर्माण करके भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में केतु का बेदी प्रवेश करना चाहिए । बार्हस्पत्या हाथ के मान वाला वेतु अधम कहा जाता है ॥ १५—१६ ॥ वत्सीय हाथ के मान वाला उससे ज्येष्ठ होता है । व्यालीय हाथ के मान वाला भी होता है । इससे भी अधिक पावन हाथ के मान वाला उत्तम कहा गया है । १७ । हे नृपक्षेष्ठ ! इन्द्र की पाँच कुमारियाँ करनी चाहिए । वे सब शाल-मपी होवें और कूमरी शक्रमातृकाएँ होनी चाहिए ॥ १८ ॥ केतु का पाद के प्रमाण में ही शक्र कुमारीकाएँ करनी चाहिए । मातृका के अर्घ्य प्रमाण वाला तथा मन्त्री के दो हाथ करे । इस रीति से कुमारियों की रचना करके और मातृका तथा केतु को करके एकादशी तिथि में शुक्लपक्ष में उम यष्टि को अधिवामित न करे ॥ १९—२० ॥ फिर यष्टि का अधिवासव करके जो गन्ध द्वारा आदि मन्त्रों के द्वारा किया जाना चाहिए । द्वादशी तिथि में विस्तृतात्मक वामव मण्डल करे ॥ २१ ॥

अच्युत पजयित्वा त शक्र पश्चान् प्रपूजयेत् ।

शक्रस्य प्रतिमा कुर्यात् काञ्चनी दारवी च वा ॥२२॥

अन्यतैजससम्भूता सर्वाभावे तु मृन्मयीम् ।

ता मण्डलस्य मध्ये तु पूजयित्वा विशेषतः ॥२३॥

ततः शुभे मुहूर्ते तु केतुमुत्थापयेन्नृप ।

वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ।

क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजय प्रतिगृह्यताम् ॥२४॥

एहमेहि सर्वामरसिद्धसर्घरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।

समुत्थितस्त्वश्रवणाद्यपादे गृहाण पूजा भगवन्नमस्ते ॥२५॥
 एवमुत्तरतन्त्रोक्तेन्दहनप्लवनादिभिः ।
 इति मन्त्रेण तन्त्रेण नाना नैवेद्यवेदनं ॥२६॥
 अपूपं पायसं पानं गुडं घाताभिरिव च ।
 भक्ष्यं भोज्यं च दिवि घ्नं पूजयेच्छ्रीविवृद्धये ॥२७॥

भगवान् अच्युत का अर्चन करके पीछे शक्रदेव का पूजन करना चाहिए । इन्द्रदेव को प्रतिमा का निर्माण सुवर्ण के द्वारा अथवा काष्ठ के द्वारा करना चाहिए ॥ २२ ॥ अन्य किसी उत्तम घातु के द्वारा निर्माण करावे अथवा मक्के अमावस में मृत्तिका से परिपूर्ण करे । उस प्रतिमा को मण्डप के मध्य में स्थापित करके विशेष रूप से अर्चन करे ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर किसी परम शुभ मुहूर्त में राजा केतु को उत्थापित करे । हे पुरन्दर ! आपके हाथ में वज्र धारण किए हुए हैं आप अमरों के हनन करने वाले हैं—आपके बृहत् नेत्र हैं । ममस्तु लोकों के कल्याण करने के लिये यह पूजा ग्रहण कीजिए ॥ २४ ॥ हे अमरों के स्वामिन ! आप वज्र के धारण करने वाले हैं और सभी देवगणों के द्वारा अभिषुक्त हैं आप यहाँ पर आगमन कीजिए—यहाँ श्रद्धार्पण करिए । आप श्रवण के आद्य पाद में समुत्थित हुए हैं—आप इस पूजा का ग्रहण कीजिए । हे भगवन् ! आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥ २५ ॥ इस रीति में उत्तर तन्त्रों में वर्णित दहन और प्लवन आदि के द्वारा इस मन्त्र में और तन्त्र में तथा अनेक नैवेद्यों के निवेदनो से—अपूपों से—पायस से—पान—गुड और अनेक तरह के भक्ष्यों से—भोज्यों में श्री की विशेष वृद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए ॥२६—२७॥

घटे तु दशदिक्पालानि ग्रहाश्च परिपूजयत् ।

साध्यादीन् सकलान् देवान् मातृ सर्वा अनुक्रमात् ॥२८॥

ततः शुभे मुहूर्ते तु ज्ञानी वधकिसयुतः ।

केतूत्थापनभूमिं तु यच्चवेद्यास्तु पश्चिमे ॥२९॥

विप्रं पुरोहितं साध्वं गच्छेद्वाजा सुमगलं ।
 रज्जुभिः पञ्चभिर्वद्ध यन्त्रशिलाष्ट समातृकम् ॥३०॥
 कृमारीभिस्तु सयुक्तं दिक्पालानां च पट्टकं ।
 बृहदभिरतिकान्तैश्च नानाद्रव्यैः सुपरितं ॥३१॥
 यथावर्णैर्यथादेशे योजितैर्वस्त्रवेष्टितं ।
 युक्तं तं किङ्किणीजालैर्बृहदघण्टीघण्टाभिरं ॥३२॥
 मण्डपितं मुकुरैरुज्ज्वलैर्माल्यैर्वहविधैस्तथा ।
 बह्वर्णैः सुगन्धैश्च भूषितं रत्नमालया ॥३३॥
 चित्रमाल्याम्बरैश्चैव चतुर्भिरपि तोरणं ।
 उत्थापयेन्महाकेतुं राजकीयं शनं शनं ॥३४॥
 तमत्याय महाकेतुं पूजितं मण्डलान्तरे ।
 प्रतिमां तां नयेन्मूलं केतोः शक्रं विचिन्तयन् ॥३५॥

षट् में दिक्पालों और ग्रहों का अर्चन करे । अनुक्रम से साध्य
 आदि समस्त देवों का और सब मातृकाओं का पूजन करना चाहिए ।
 इसके अनन्तर किसी शुभ मुहूर्त्त में बर्धक से समन्वित शानी यज्ञ वेदी
 के पश्चिम में वेमूलायन की भूमि में विप्रों और पुरोहितों के साथ राजा
 गमन करे । सुमङ्गल पाँच रज्जुओं से सुबुद्ध—सन्ध मे शिलाष्ट—मातृ-
 काओं के सहित—कृमारियों से गयुक्त और दिक्पालों के पदकों से युक्त—
 बृहन् अतिबाल्म सुपरित अनङ्ग द्रव्यों से यथा वर्ण और यथा देश मे
 बन्ध से वेष्टित विष्टे हुए योजितों मे युक्त उसको जो किङ्किणी के जालों
 से तथा बड़े घण्टाओं से और घण्टाओं से भूषित है—मुकुरों से उज्ज्व-
 लमाल्यों मे बहुल प्रकार के सुगन्धित बहुत से पुष्पों से भूषित तथा रत्नों
 की माला से अलङ्कृत अद्भुत—अद्भुत माल्यों और अम्बरों से तथा
 चारों तोरणों से राजकीयों के द्वारा धीरे-धीरे महाकेतु को उत्थापित
 करे । मण्डलान्तर में पूजित उग महाकेतु को उठाकर द्वादश का विं तन
 करने हुए उग प्रतिमा को वस्तु के मूल में ले जावे ॥३८—३५॥

यजेत् न पूर्वेषु न च शची माननिमेव च ।
 जयन्त तनय तन्य वज्रनेरावन् तथा ॥३६॥
 ग्रहाश्चाप्यय दिव्यपालान नवोश्च गणदेवता ।
 अपपाद्यं पूजयेत् नृ बलिभि पायनादिभिः ॥३७॥
 पूजिताना च देवाना दध्यह्नोम समाचरेत् ।
 होमान्ते तु बलि दद्याद् बानवाप महात्मने ॥३८॥
 नितं घृत चाक्षत च धूप दूर्वा तयंब च ।
 एनंश्च जुहुयाद् देवान स्वं स्वीर्मन्त्रनरोत्तम ॥३९॥
 ननो होमावमाने तु भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
 एव मम्पूजयेन्नित्य सप्तरात्र दिने दिने ॥४०॥
 ब्राह्मणे. सहितो राजा वेदवेदाङ्गपारगै ।
 सर्वत्र शक्रपूजाम् यजेत् परिकीर्तित ॥४१॥
 श्रातारमिति मन्त्रोऽय दानवस्य प्रिय पर ।
 एव कृत्वा दिवाभागे शक्रोत्थापनमादित ॥४२॥

बड़ी पर पूर्व को ही भूमि उसका यजन करे तथा शची—
 मातलि—उसके पुत्र जयन्त और ऐरावत वा भी अर्चन करना चाहिए
 ॥ ३६ ॥ ग्रहो वा—दिवशातो वा—सर्पो वा—गणदेवो का अश्वो
 मे—बलियों के द्वारा और पायत आदि से पूजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥
 अवन किये हुए देवों का निरन्तर होम का समाचरण करे । होम के
 अन्त में बलि देवे जो महारत्ना वासव के लिये देनी चाहिए ॥ ३८ ॥ हे
 नरोत्तम ! तिल—घृत—अक्षत—धूप—दूर्वा—इनकी द्वारा अपने-अपने
 मन्त्रों से देवों का हवन करना चाहिए ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त होम के
 अन्त में ब्राह्मणों को भोजन करावे । इसी रीति से सात रात्रि पर्यन्त
 दिन-दिन में नित्य भली भूमि अर्चन करना चाहिए ॥ ४० ॥ वेदों
 और वेदाङ्ग शास्त्रों के पारंगामी विद्वान् ब्राह्मणों के सहित राजा सर्वत्र
 इन्द्र की पूजा में कीर्तित किया गया है ॥ ४१ ॥ 'श्रातारम्'

इन्द्र का परम प्रिय है । इस प्रकार से करके दिवा के भाग में शक्र का उत्पादन करे ॥४२॥

श्रवणक्षयुताया तु द्वादश्यां पार्थिवः स्वयम् ।
 अन्तपादे भरण्यां तु निशि शक्रं विसर्जयेत् ॥४३॥
 सुप्तेषु सर्वलोकेषु यथा राजा न पश्यति ।
 पप्मासान्मृत्युमाप्नोति राजा दृष्ट्वा विसर्जनम् ॥४४॥
 शक्रस्य नृपशार्दूल तस्मान्नेक्षेत सन्नृपः ।
 विसर्जनस्य मन्त्रोऽयं पुराविद्भिरुदीरितः ॥४५॥
 सार्धं सुरासुरगणैः पुरन्दरः शतक्रतोः ।
 उपहारं गृहीत्वैव महेन्द्रध्वज गम्यताम् ॥४६॥
 मृतके तु समुत्पन्ने वारे भोमस्य वा शनैः ।
 भूमिकम्पादिकोत्पाते वासवं न विसर्जयेत् ॥४७॥
 उत्पाते सप्तरात्रं तु तयोपप्लवदर्शने ।
 व्यतीत्य शनिभीमी च ह्यन्यर्क्षोऽपि विसर्जयेत् ॥४८॥
 मृतके त्वय संप्राप्ते व्यतीते मृतके पुनः ।
 यस्मिन् तस्मिन् दिने जीव मृतकान्ते विसर्जयेत् ॥४९॥

श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि में राजा स्वयं भरणी के अन्तिम अरण में रात्रि में शक्र का विसर्जन करना चाहिए ॥ ४३ ॥ ममस्त मीरा के मृत हो जाने पर जैसे राजा देवता है । राजा विसर्जन को देखकर छे माग में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । हे नृप शार्दूल ! इस कारण मैं मृत शक्र का विसर्जन नहीं देखे । पुरावेत्ताओं के द्वारा विसर्जन का यह मन्त्र कहा गया है ॥ ४४—४५ ॥ गुर—अगुर गणों के साथ पुरन्दर जग जगुका हम उपहार का ग्रहण कर है महेन्द्रध्वज । गमन कीजिए ॥ ४६ ॥ मृतक के उत्पन्न होने पर भोम अथवा शनिवार में—भूदग्ग आदि उत्पात के जाने पर वासव का विसर्जन नहीं करना चाहिए ॥ ४७ ॥ उत्पात होने पर तथा उपप्लव के दर्शन होने पर

सात रात्रि को व्यतीत करके तथा शनिवार और भौमवार को छोड़कर अन्य नक्षत्र में भी विसर्जन कर देना चाहिए ॥ ४८ ॥ सूत के सम्प्राप्त हो जाने पर सूतक के अन्त में जिस किमी भी दिन में विसर्जन कर देवे ॥ ४९ ॥

तथा केतुं नृपो रक्षेत् पतन्ति शकुना यथा ।
न केतौ नृपशार्ङ्गल यावन्नहि विसर्जनम् ॥५०॥
शनैः शनैः पातयत् तु यथोत्थापनमादितः ।
कृतं तथा यथा भग्ने केतौ मृत्युमवाप्नुयात् ॥५१॥
विसृष्टं शक्रकेतुं तु सालङ्कारं तवा निशि ।
क्षिपेदनेन मन्त्रेण त्वगाधे सलिले नृप ॥५२॥
तिष्ठ केतो महाभाग यावत् संवत्सरं जले ।
भवाय सर्वलोकानामन्तराय विनाशक ॥५३॥
उत्थापयेत् तूर्ध्वगैः सर्वलोकस्य वै पुरः ।
रहो विसर्जयेत् केतुं विशेषो यः प्रपूजने ॥५४॥
एव यः कुरुत पूजा वासवस्य महात्मनः ।
स विरं पृथिवी भुक्त्वा वासवं लोकमाप्नुयात् ॥५५॥
न तस्य राज्यं दुर्भिक्ष नाघयो व्याघ्रयः क्वचित् ।
स्यास्यन्ति मृत्युर्नाकाले जनाना तत्र जायते ॥५६॥
तत्तुल्यः कोऽपि नान्योऽस्ति प्रियः शक्रस्य पार्थिव ।
तस्य पूजा सर्वपूजा केशवाद्याश्च तत्रगाः ॥५७॥
सकलकलुषहारि व्याधिदुर्भिक्षनाशं

सकलभवनिवेश सर्वसौभाग्यकारि ।

मुरपतिगृह्णामिर्वर्चन शक्रकेतोः

प्रतिशरदमनेकैः पूजयेच्छ्रीविविद्धयै ॥५८॥

राजा के द्वारा उसी भाँति केतु की रक्षा करनी चाहिए जिससे हे नृप शार्ङ्गल ! केतु पर शकुन पतन न करे जब तक उसका विसर्जन

न होवे ॥५०॥ जिस प्रकार से आदि से उत्थापन होवे धीरे-धीरे पातन करना चाहिये । केतु के भग्न होने पर मृत्यु की प्राप्ति होती है ॥५१॥ हे नृप ! अलङ्कारों के सहित विसर्जन किये हुए शक्र केतु को रात्रि में अगाध जल में निम्न वर्णित मन्त्र के द्वारा प्रक्षिप्त कर देवे ॥५२॥ हे महाभाग केतो ! आप विघ्नों के विनाश करने वाले हैं । समस्त लोको के भव के लिये आप जब तक सम्बत्सर होवे जल में स्थित रहें ॥५३॥ समस्त लोको के आगे तूर्य की ध्वनि के माघ उत्पादन करे और एकान्त में केतु का विसर्जन करना चाहिए । यही पूजन में विशेषता है ॥५४॥ इस रीति से महारमा वासव की ओ पूजा किया करता है वह बहुत समय तक पृथ्वी का उपयोग करके अन्त में वासव (इन्द्र) के लोक की प्राप्ति किया करता है ॥५५॥ उसके राज्य में कभी दुर्भिक्ष नहीं हुआ करता है और कहीं पर भी व्याधियाँ तथा आधियाँ नहीं होती हैं तथा मनुष्यों की अकाल में कभी मृत्यु भी नहीं हुआ करती है ॥५६॥ हे पार्थिव ! उसके समान अन्य कोई भी इन्द्रदेव का प्रिय नहीं होता है । उसकी पूजा सब की ही पूजा है । भगवान् केशव आदि वहाँ पर ही सब विराजमान रहा करते हैं ॥५७॥ समस्त कसुपों का अपहरण करने वाला-व्याधि और दुर्भिक्ष का नाशक—सकल भवों का निवेश—सब प्रकार के सौभाग्य का सम्पादन करने वाला—शक्र केतु का सुरपति के गृह की वाणिज्य से वाचन प्रिय शरत्काल में अनेकोपचारों के द्वारा श्री वृद्धि के लिये पूजन करना चाहिए ॥५८॥



॥ राजा के पालनीय नियमादि ॥

ज्येष्ठ दशहराया तु विष्णोरिष्टि नृप शृणु ।

येन वा विधिना कुर्यादिष्टि विष्णोर्नृपः सदाः ॥१॥

प्रत्यब्दं पार्थिव कुर्यात् प्रतिमां काञ्चनी हरेः ।
 अन्यतेजोमयी वापि दारवी वा शिलामयीम् ॥२॥
 तां प्रतिष्ठाप्य विधिना मानोन्मानेस्तु शिल्पिभिः ।
 प्रतिष्ठां विधिवत् तस्याः कुर्याद् विप्रः पुरोहितः ॥३॥
 तां संस्थाप्य सुरागारे स्वयं वा यन्नतः कृते ।
 वासुदेवस्य वीजेन पूर्वोक्तविधिना तथा ॥४॥
 सर्वोपचारैर्भक्त्या तु वासुदेवं प्रपूजयेत् ।
 पूजान्ते संस्कृते वह्नौ कुण्डमध्ये स्थितो द्विजः ॥५॥
 आज्यैः सहस्रं जुहुयादाहुतीनां हरेः प्रियम् ।
 सपूज्य वासुदेव तु होम कृत्वा ततो द्विजः ॥६॥
 नृपस्यानुमते तां तु प्रतिमां मण्डल नयेत् ।
 प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ॥७॥

और्ध्वं ने बहा—हे नृप ! उपेष्ठ मास के दशहरा में भगवान् विष्णु की इष्टि के विषय में अब आप ध्वषण कीजिये जिस विधि से नृप को सदा भगवान् विष्णु की इष्टि करनी चाहिए ॥१॥ प्रतिवर्ष राजा को भगवान् हरि की मुर्ग की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए अथवा किसी अन्य उत्तम धातु के द्वारा बनवाने या काष्ठ की अथवा शिला मयी प्रतिमा की रचना करानी चाहिए ॥२॥ शिल्पियों के द्वारा उसका निर्माण करावे और मानोज्मानो में उसकी विधि के साथ प्रतिष्ठा करे । विप्रों और पुरोहितों के द्वारा विधि-विधान के साथ उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥ ३ ॥ उसकी संस्थापना किसी देवालय में करावे या स्वयं द्वारा निर्मित देवालय में करे । पूर्व में वर्णित विधि से वासुदेव के वीज से सभी उपचारों के द्वारा भक्ति के द्वारा भक्ति के साथ वासुदेव भगवान् का अभ्यर्चन करे । पूजा के अन्त में सस्कार किये हुए अग्नि में जो कि कुण्ड के मध्य में स्थित होवे फिर द्विज घृत से, हरि भगवान् की प्रिय एक सहस्र आहुतियों से हवन करे । द्विज भसी मूर्ति

वासुदेव का पूजन करके फिर होम करे ॥४॥१॥६॥ नृप की अनुमति से उस प्रतिमा को मण्डल में ले जावे । प्रतिमा के दोनों कपोलों का दाहिने हाथ से स्पर्श करना चाहिए ॥७॥

प्राणप्रतिष्ठा कुर्वीत तस्या देवस्य वै हरे ।
 कृताया तु प्रतिष्ठाया प्राणाना नृपसत्तम ॥८॥
 विष्णुप्राणास्ता प्रतिमामायान्ति नियत स्वयम् ।
 प्राणेष्वयागतेष्वस्या देवत्व नियत भवेत् ॥९॥
 अकृताया प्रतिष्ठाया प्राणाना प्रतिमासु च ।
 यथापूर्वं तथाभाव स्वर्णादीना न विष्णुता ॥१०॥
 अन्येषामपि देवाना प्रतिमास्वपि पाथिव ।
 प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्या देवत्वसिद्धये ॥११॥
 सुवर्णं तु सुवर्णं स्याच्छिला दारु तथा शिला ।
 अन्यच्च स्वस्वरूप स्यात् प्राणस्थानमृते सदा ॥१२॥
 वासुदेवस्य वीजेन तद विष्णोरित्यनेन च ।
 तथैवाङ्गाङ्गिमन्त्राभ्या प्रतिष्ठामाचरेद्धरे ॥१३॥
 तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ।
 एभिर्मन्त्रं प्रतिष्ठाप्य हृदयमपि समाचरेत् ॥१४॥

उस प्रतिमा में हरिदेव का प्राण प्रतिष्ठा करे । हे नृपश्रेष्ठ ! प्राणों की प्रतिष्ठा के करने पर भगवान् विष्णु के प्राण नियत रूप से उस प्रतिमा में आ जाया करते हैं । प्राणों के समागत हो जाने पर हम प्रतिमा में नियत रूप से देवत्व हो जाया करता है ॥ ८—९ ॥ प्राणों की प्रतिष्ठा के न करने पर प्रतिमाओं में जैसा पहिल भाव होता है वैसा ही स्वर्ण आदि हो भाव बना रहता है और उनमें विष्णु का भाव नहीं होता है ॥ १० ॥ हे पाथिव ! अन्य देवों की भी प्रतिमाओं में भी प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए तभी उसमें देवत्व की सिद्धि हुआ करती है ॥ ११ ॥ प्राण स्थान के बिना सदा सुवर्ण सुवर्ण ही रहता

हे—मिला मिला है और बाण्ड केवल बाण्ड हो रहा करता है । सभी
 यपन ही स्वरूप में रहते हैं ॥१२॥ वामुद्वक वीज म— तद्विष्णो '
 इयादि म तथा अङ्ग—अङ्गा मन्त्रा व द्वारा भगवान् हरि की प्रतिष्ठा
 का समाचरण करना चाहिए ॥ १३ ॥ उमी भांति मन्त्रा व ज्ञान रखने
 वाला हृदय में निगून्तर अगुष्ठ का दकर इन मन्त्रा व द्वारा प्रतिष्ठा करके
 हृदय में भी समाचरण कर ॥ १४ ॥

अस्यै प्राणा प्रतिपुञ्जन्तु अस्मै प्राणा क्षरन्तु मत् ।

असौ दवत्त्वसन्ध्यायै स्वाहेति यजुरुच्चरन् ॥१५

अङ्गमन्त्रैरङ्गिमन्त्रैर्वेदिकरित्यनन च ।

प्राणाप्रतिष्ठा सवत्स प्रतिमामु समाचरन् ॥१६

प्रतिमापूजन कुर्यादात्मन्यापि च मन्त्रविन् ।

प्राणप्रतिष्ठा प्रथम पूजाभागविशुद्धये ॥१७

अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठा तु प्रतिमापूजनादृत ।

न कश्चित् तु पुत्रं कुमान् कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥१८

विष्णारिष्टिमिमा कृत्वा दशभ्या पायवाप्तम ।

तस्यामेव तु पर्णया प्रतिमा स्थापयन् तत ॥१९

एव दशहराया तु कूर्त्वाष्टि पायिवा हर ।

सयान् कामानवप्नाति निर्विघ्नापि स जायत ॥२०

प्राणयम्या धिय दवी कुन्द सपूजयत्तदा ।

वासव गजराजस्यमुपहारस्तयात्तम ॥२१

इयं नियम प्राण प्रतिष्ठा हाव—इतक लिख प्राण धरण करे—

यह दश व की सख्या के मत स्वाहा—यह मनु का उच्चारण कर—

॥ १५ ॥ वेदक मन्त्र मन्त्रा व और अङ्गा मन्त्रों म और इसक द्वारा

सवत्स प्रतिमाया म प्राणा की प्रतिष्ठा का समाचरण करना चाहिए

॥ १६ ॥ मन्त्रा व ज्ञान रखने वाले पुरुष की प्रतिमा के पूजन म

आत्मा म भी करना चाहिए । पूजा व भाग का विशुद्धि व तब प्रथम

प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥ १७ ॥ इसमें प्राण प्रतिष्ठा को प्रतिमा के पूजन के बिना किसी भी बुध पुरुष को नहीं करना चाहिए । ऐसा करके मृत्यु को प्राप्त किया करता है ॥ १८ ॥ नृपत्रोट दशमी में इस भगवान् विष्णु की दृष्टि को करके उसके पूर्ण हो जाने पर ही फिर उस प्रतिमा को स्थापित करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार से राजा दशहरा में हरि भगवान् की दृष्टि को करके सभी मनोरथों की प्राप्ति कर लिया करता है और वह विष्णा से भी रहित होता है ॥२०॥ श्री पञ्चमी में श्री देवी का कुन्द के पुष्पों के द्वारा उस समय में प्रकृष्ट रूप से पूजन करना चाहिए । मगराज पर भस्मित वासव का उत्तम उपहारों के द्वारा भजन करे ॥२१॥

सध्यास्तन महामन्त्र वासवस्य पुरोदितम् ।

अत्रापि पूजने ग्राह्य मण्डलादि यथाक्रमम् ॥२२॥

एव कृते पूजने तु श्रीपञ्चम्या विशेषतः ।

श्रीयुतो नृपतिर्भूयान्न श्रीहानिमवाप्नुयात् ॥२३॥

सदाचारविशेषोऽयं कथितस्तत्र पार्थिव ।

निषेधे तु विशेषाश्च शृणु यत्न श्रियेप्यते ॥२४॥

असापज्य तथा विष्णु शिवमग्नि परन्दरम् ।

अदत्त्वा च तथा दानं च भुञ्जीत नृप क्वचित् ॥२५॥

हावयेदग्निहोत्रं तं नित्यमेव परोहितं ।

अकृत्वा चाग्निहोत्रं तं भुञ्जन्नरकमाप्नुयात् ॥२६॥

नारक्षिते गृहे राजा रत्नदीपविवर्जिते ।

स्वपेत् तथा स्त्रिया साधुं च कदाचन सविशेत् ॥२७॥

भुक्त्वान्न श्रीफल नाद्यात् तथा घात्रीपत्न्यं नृप ।

बुद्धिदयकरा ह्येता माप आसवमृत्तिका ॥२८॥

यहाँ पर पूजन में भी वासव का पहिले कहे हुए तदमी के तत्र महात्मन का ग्रहण करना चाहिए और क्रम के अनुसार मण्डल आदि

का भी ग्रहण कर ॥ २२ ॥ इस प्रकार से पूजन के करने पर और श्री
पञ्चमी में विशेष रूप से विय जान पर नृप श्री से समान्वित होता है
और कभी भी श्री की हानि का नष्ट प्राप्त किया करता है ॥ २३ ॥ ह
पापिव । यह सदाचार विधायक सामन वर्णित कर दिया है
और नियम में विधायक का यवण काज्य जिससे श्री के द्वारा इष्ट
किया जाता है । २४ । मगवान् विष्णु का भला भाव पूजन न करके
तथा शिव—जगन् तथा पुण्डरीक का पूजन न करके तथा दान न दकर
राजा का कभी भी भाजन नहीं करना चाहिए । २५ । पुराहिता के
द्वारा नित्य ही आग्न हात्र का हवन करना चाहिए । आग्न हात्र न
करके भाजन करने वाला नरक का प्राप्ति किया करता है ॥ २६ ॥
रत्नदीप से राहृत अरक्षित गृह में राजा को स्त्री के साथ गमन नहीं
करना चाहिए और कभी वहाँ बैठना भी नहीं चाहिए ॥ २७ ॥ अन्न
खाकर श्री फल का भक्षण न कर तथा नृप घात्री फल का भी न खावे ।
माप—भासन और मृत्तिका से सब बुद्धि के क्षय करने वाला होता
है ॥ २८ ॥

निम्वाटस्थच्युताश्च बुद्धिबुद्धिकरा मता ।
बुद्धिक्षयकरा नित्य त्यजद्राजा च भाजन ॥ २९ ॥
भक्षयदन्वह बुद्धिबुद्धिहेतु नृपात्तम ।
न पयापविहीन तु प्रागहदासन नृप ॥ ३० ॥
न यान न यज नाश्वमाराहदीनमासन ।
नक्स्तु विचरद्राजा कदाचिदपि निजने ॥ ३१ ॥
मदहत्तु न भुजोयात् कदाचिदपि भोजन ।
कदाचिन्नापि सेवत ह्यष्टम्या मासमैयुत ॥ ३२ ॥
दशश्राद्ध गयाश्राद्ध तिलैस्तर्पणमव च ।
न जीवत्पितृका भूप कुर्यात् कृत्वधमाप्नुयान् ॥ ३३ ॥
न क्षेत्रजादीन्तनयान राज्य राजानिपचन् ।

पितृणां शुद्धये नित्यमौरसे तनये मनये सति ॥३४॥

औरसे क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।

गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च भागाहस्तनया इमे ॥३५॥

निम्ब—अरूप्य च्युत बुद्धि की वृद्धि के करने वाले हैं—ऐसा माना गया है । जो वृद्धि के करने वाले हैं राजा को उनका भेदन म र्थाग कर देना चाहिए ॥३६॥ नृपों में उत्तम को प्रतिदिन बुद्धि के जो हेतु हो उन्हीं का भक्षण करना चाहिए । राजा कां पर्ष्याय पर बिहीन आसन पर आरोहण नहीं करना चाहिए ॥३७॥ जो आमनो में हीन होवे ऐसे यान पर—अश्व और हाथी पर भी आरोहण नृप न करे । किमी भी समय में राजा एक अकला निर्जन वन में विचरण न करे ॥३८॥ राजा का चाहिए किसी भी समय में भोजन में मद के कारण पदार्थ का भक्षण न करे । अष्टमी तिथि में कभी भी भास और मैथुन का सेदन न करे ॥३९॥ दर्शश्राद्ध—गया श्राद्ध— तिस्रो स तर्पण वह राजा न करे जिसका पिता जीवित होवे । ऐसा करके पाप को प्राप्त किया करता है ॥४०॥ राजा को राज्य पर क्षेत्रज तनयो का अभिषेक नहीं करना चाहिए जबकि और सपुत्र होवे तो उसके होते हुए पितृगणों की बुद्धि के लिये और सपुत्र का ही अभिषेक करे ॥४१॥ और स—क्षेत्र अ—दत्तव—कृत्रिम—गूढोत्पन्न—अप विद्ध—य पुत्र भाग के योग्य हुआ करते हैं ॥४२॥

बानीनश्च सहोदरश्च भीत पौनर्भवस्तथा ।

स्वयदत्तश्च दासश्च पश्यते पुत्रपामुखा ॥४३॥

अभावे पूर्वपूर्वेषां परान् ममभिषेचयेत् ।

पौनर्भव स्वयदत्त दास राज्ये न योजयेत् ॥४४॥

दत्ताद्याश्चापि तनया निजगोत्रेण ससृता ।

आयान्ति पुत्रता सम्यगन्यवीजसमुद्भवा ॥४५॥

पितृगोत्रेण य पुत्र सस्कृत पृथिवीण्ते ।

आचूडान्त पुत्र म पुत्रता याति चान्यत ॥३६॥
 चूडान्ता यदि सस्करा निजगोत्रेण सस्थिताः ।
 दत्ताद्यास्तवयाम्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥३७॥
 ऊर्ध्वं तु पचमाद् वर्षाद् दत्ताद्याश्च सुतान्नुप ।
 गृहीत्वा पचवर्षीय पुत्रेण्टि प्रथम चरेत् ॥३८॥
 पौनर्भव तु तनया जातमात्र ममानयेत् ।
 कृत्वा पौनर्भवष्टोम जातमात्रस्य तस्य वै ॥३९॥

कानीन (बन्धा मे उत्पन्न) — महोद — कीन (घन देकर खरीदा हुआ) — पौनर्भव — स्वय दत्त — और दाम — ये छे पुत्र पामुल होने हैं ।
 ॥३६॥ पूर्व-पूर्वों के लक्षण में हमरो का अभिषेक करे । जो पौनर्भव-
 स्वय दत्त और दाम हा उसका बन्धी भी राज्य मे भोजन नहीं करे ।
 ॥३७॥ दत्तक आदि पुत्र भी जो निज गोत्र के द्वारा सम्कार किये गये
 होवें वे अन्य वे धीयों मे समुत्पन्न हुए पुत्रना को प्राप्त हुआ करते हैं ।
 ॥३८॥ पिता के गोत्र से राजा का जो पुत्र मेस्कार किया हुआ है वह
 चूडा कर्म पर्यन्त पुत्र नहीं होता है अन्य मे ही पुत्रता को प्राप्त होता
 है ॥३९॥ यदि चूडान्त सस्कार निज गोत्र मे संस्थित होवें वे दत्तक
 आदि पुत्र होते हैं अन्यथा दाम कर्ता जाया करता है ॥४०॥ हे नृप ।
 पाँचवें वर्ष से ऊपर दत्तक आदि पुत्रों को श्रद्धा करके प्रथम पाँच वर्षीय
 पुत्रेण्टि का समुत्पन्न करना चाहिये ॥४१॥ पौनर्भव पुत्र को जैसे ही
 समुत्पन्न होवे उसे ममानीत करे पौनर्भवष्टोम को जातमात्र उत्तका
 करे ॥४२॥

सर्वास्तु कुर्यात् सस्कारान् जातकर्मादिकान्तर ।
 वृत्ते पौनर्भवष्टोमे सुतः पौनर्भव स्मृत ॥४३॥
 एयोदिष्ट पितु कुर्यान्ति यादं पार्वणादिवम् ।
 कीता या वनिता मूल्यं सा दामोति निगद्यते ॥४४॥
 तस्या यो जायते पुत्रो दासः पुत्रस्तु स स्मृतः ।

न राज्ञो राज्यभाक् स म्याद् विप्राणां नापि श्राद्धवृत् ॥४५
 अथम सर्वपुत्रेभ्यस्त तस्मान् परिवर्जयेत् ।
 पुराण धर्मशास्त्राणि महिनाश्च मुनीरितः ॥४६
 नाध्यापयेन्नृप शूद्रैर्विहितानि यतृच्छया ।
 यस्य राज्ये मदा शूद्रा पुराण महिता तथा ॥४७
 पठन्ति स्यान् स हीनाग् राजा राष्ट्रेण सान्द्रयः ।
 मंदाद वा कामन शूद्र पुराण महिना स्मृतिम् ॥४८
 पठन्मन्त्रमाप्नोति पितृभिः सह पापवृत् ।
 शूद्रेभ्यो विहितं यत् त यश्च मन्त्र उदाहृतः ॥४९
 तद्विप्रवचनाद् याज्ञा द्वयं शूद्रं शूद्रेण हि ।
 न गोत्रेभ्यः शूद्रा इत्येवमस्ति दर्शने ॥५०

करना चाहिये । राजा शूद्र को व्यवहार के दर्जन में गृह को रोजित न करे ॥४६—५०॥

नियोज्य तत्र तं भूपत्यामित्रे तेन पच्यते ।

हीनामृश्व भवेत्सोको राजा वापि सहायकः ॥४९

कानं ध्वङ्गमपुर्षं वा नाभिजमलितेन्द्रियम् ।

न ह्रस्व व्याधित वापि नृपः कुर्यात् पुरोहितम् ॥५२

कृपणम्य घन राजा न शृङ्गोयान् कदाचन ।

न द्विजानां तथा इत्याद् घनानि विपुलान्यपि ॥५३

मारोहेत् कामुकोन्तत्तगज राजा कदाचन ।

आरुह्य कामुक्यं तं परत्रेह वियोदति ॥५४

अनापुष्पं न कुर्यात् तु कर्म भूपः कदाचन ।

सततं चायुषो वृद्धं यत्तेत सवत्सर्धनैः ॥५५

न रूपवारे नाष्टम्या न पष्ट्या च नृपोत्तमः ।

अञ्जनाम्यञ्जने कुर्यात् ताम्बूलस्यापि भोजनम् ॥५६

राजा उमका नियोजन करके उमसे तामिस तामर नरक में पीडा पाया करता है । लोक और सहायक राजा भी दोनों ही होते जाते हैं । ॥४९॥ राजा को चाहिए कि वह कालाम्यञ्ज अर्थात् विशेष अङ्ग वाला अथवा अङ्गहीन—पुत्र रहित—अनभिज्ञ—अजितेन्द्रिय—बहुत छोटे बच्चा—रोगी को कभी अपना पुरोहित न बनावे ॥५२॥ राजा को चाहिये कि वह कभी कृपण के घन का ग्रहण न करे । द्विजों को बहुत अधिक घन भी नहीं देवे ॥५३॥ राजा कभी भी कामुक और उन्मत्त हाथी पर आरोहण न करे । उस कामुक पर समारोहण करके इत लोभ में और परलोक में विषाद को प्राप्त बिना करता है ॥५४॥ राजा को किसी भी समय में ऐसा कोई भी कर्म नहीं करना चाहिए जो बाद के क्षय करने वाला होवे । सम्पूर्ण घन के द्वारा राजा को अपनी आयु को वृद्धि के लिये खर्च करना चाहिए ॥५५॥ किसी भी क्रूर वार से दिन-

करक सदा कीर्ण का वर्जन कर ॥६१॥ १) भक्ष्य बीज के लय करन वाला होव उसको—भोज्य दो—पानक—खार पाक आदि—बहुत छूटे और बहुत तिष्ठन (चरपरा) का वर्जन कर बन चाहिए ॥६२॥ कामे के पात्र म और चांदी के पात्र म स्थित तथा नदी का जल मुत्र दी वृद्धि करन जाता है तथा बीर्ण के लय करन बामा है इसका वर्जन कर देवे ॥६३॥

ताम्राय स्वर्णंजीसाना पात्रम्य फलवर्मणो ।
 मृकषाद्विकर तोय तदुपामीत यत्नत ॥६४॥
 सर्वमन्त्रेषु कृत्यस्य सदाचारेण तिष्ठत ।
 मुक्तत्वेह विविधान भोगानैन्द्र म्यान् व्रजेत् पम् ॥६५॥
 एवमीवंस्तु नगर शशास मुनिपुङ्गव ।
 मास्त्राणि चैव सर्वाणि सदाचाराश्च गृह्यकान् ॥६६॥
 बहुश कथयामास मगगय महात्मने ।
 तन्नास्ति यत परीर्वेण कथिन सगराय न ॥६७॥
 राजनीति सता नीनियंच्वा यच्छास्त्रसम्भवम् ।
 सहिनामु पुराणेषु यच्छागमये स्थितम् ॥६८॥
 भवं शुश्राव नगरो मुग्धादौर्वस्य धीमत ।
 नेपा तु कथित किञ्चिद्दृष्ट्य द्विजमतमा ॥६९॥
 विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रक्षमि भाषितम् ।
 गजनीनि मदाचार वेदवेदाङ्गसङ्गतम् ॥७०॥
 गृहस्य मतत विष्णोर्वीमध्व द्विजमतमा ।
 यच्छानुदितमन्यत्र गदित वा समशयम् ॥७१॥
 गद्ययच्छेदन तेषु युष्मभ्य कथित द्विजा ।
 जन्तुनमशयच्छेदि पुराण वाचिवाहवधम् ।
 योऽभ्यसेन मतत विप्र म वेदाना पत्र जयेत् ॥७२॥
 ताम्र—माहा—मूर्त्ति—जीमा के पात्र मे स्थित तथा नदी और

चर्म में स्थित जल वीर्य की वृद्धि करने वाला होता है ऐसे ही जल का यत्न पूर्वक सेवन करना चाहिए । ६४॥ सम्पूर्ण मूल कृत्यो म और सदाचारो मे स्थित रहने वाला इस लोक मे अनेक भोगो का उपभोग करके परम इन्द्र के स्थान को प्राप्त किया करता है ॥६५॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—मुनियो मे परम श्रेष्ठ और्ग ने इस रीति से राजा सगर को शासित किया था । और उन्होंने सब शास्त्रों को—गुह्यको को और सदाचारो को बहुत बार महात्मा सगर से कहा था । ऐसा कुछ भी नहीं था जो पहिले और्ग ने सगर राजा को कह कर न सुना दिया होवे ॥६६॥६७॥ राजनीति—सत्पुत्र्यो की नीति और जो भी कुछ शास्त्रो मे सम्भव है—महिताओ मे—पुराणो मे और जो आगमो के समुदाय मे है राजा सगर ने सभी कुछ धीमान् और्ग के मुख मे श्रवण किया था । हे द्विजश्रेष्ठो ! उनका कुछ उद्धृत करके कहा था ॥ ६८—६९ ॥ मैंने पूर्व मे विष्णु धर्मोत्तर मे रह स्थल मे कहा था । राजनीति—सदाचार—वदो और वेदो के अङ्गशास्त्रो से मङ्गल विष्णु का रहस्य है हे द्विज श्रेष्ठो उसका वीक्षण कर लो । अन्य स्थल मे जो नही कहा है अथवा मशय के सहित कहा है । हे द्विजो ! उनमे आप लोगो के लिये सम्पूर्ण सशयो का छेदन करके कह दिया है । जो नही कहा है उस मंशय का छेदन करने वाला कालिका नामक पुराण है । जो विप्र इसका निरन्तर अभ्यास किया करता है वह वेदो के पठन का फल प्राप्त किया करता है ॥७१—७२॥



॥ सदाचार धर्षन ॥

संक्षेपतः सदाचारो विशेषो राजनीतिषु ।

श्रुतस्त्वद्वचनादीर्घं मगराय यथोक्तवान् ॥१॥

विष्णुधर्मोत्तरे नन्ने बाह्व्य सर्वं पुनः ।
 द्रष्टव्यन्तु मदाचरो द्रष्टव्यान्ते प्रमादतः ॥२
 भूयो न संशयो योजन्ति तदनुवन त्वरा पुनः ।
 छिन्धि विप्रेन्द्र पन्थाम परं कौनहन हि न ॥३
 अपुत्रस्य गतिर्नास्ति श्रुयने वेदलोकयो ।
 वेनानभंगवो यानो पुरा वं तपने गिरिम् ॥४
 पूर्वस्त्वकुनदारो नो तयो पुत्रा न च श्रुताः ।
 न जाना अथवा जाना यदि नाना द्विजोत्तम ।
 तेषां तु नम्यमिच्छामि श्रानुं स न्दानमुत्तमम् ॥५
 अपुत्रस्य गतिर्नास्ति निश्चिन चेति सुत्तमा ।
 मन्त्रान्नृपश्रवो पवन्तो हि स्वर्गता ॥६
 जानापग्यो च नो विप्र घोगी वेनानभंगवो ।
 नयोर्वगान प्रवदामि शृण्वन्तु च महर्षय ॥७

शु शर्मा ने कहा—मन्त्र मे मदाचार और राजनीतियों में विप्रे
 को धीरे से राजा मगर मे बिना तरह से कहा था वह आपने वचन मे
 धरन दिया है । फिर मन्त्रे बाह्व्य विष्णु धर्मोत्तर मन्त्र मे मदाचार
 देखना चाहिए वह आपने ही प्रमाद मे देखने के योग्य है ॥१॥२॥ फिर
 वो हमको मन्त्र है जो पत्थिने आपने द्वारा नहीं कहा दया है । हे
 विप्रेन्द्र ! उनका छंदन कीजिए । हम आप मे पूछते हैं । हमारे हृदय
 में बहुत ही अश्वि कौतूहल है ॥३॥ वेदों और मोक्ष मे भी यह सुना
 जाता है कि जो पुत्र रहित है उसकी गति नहीं होती है । प्राचीन समय
 में वेनान और भंगव तप के लिए पर्वत पर गये ॥४॥ पूछें मे वे दोनों
 ही दाराओं के न दृष्ट करने वाले थे । उन दोनों के पुत्र नहीं होने
 हैं । हे द्विजोत्तम ! वे ही उत्पन्न नहीं हुए थे अथवा जनक उत्पन्न हुए
 थे । उनका उत्तम न्दान मे घनी मात्रा मे धरन करने की इच्छा
 करता है ॥५॥६॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे सत्तमो ! बिना पुत्र

वाले की यन्त्रि नहीं होती है यह निश्चित ही है । अपने पुत्रों के द्वारा
अम्बा भाई के पुत्रों के द्वारा पुत्रों वाले स्वर्ग में गये हैं । हे विश्वेश !
वे दोनों उत्पन्न मन्तानो वाले थे धीरे बेताल भैरव थे । अब मैं
उन दोनों के वशी को बतलाऊंगा । हे महर्षि गणो ! आप श्रवण
कीजिए ॥७॥

सम्यक् सिद्धिमवाप्स्यैव यदा वेतालभैरवी ।
हरस्य मन्दिरं प्राप्तौ कलासं प्रतिर्हपिती ॥८॥
तदा हरस्य व्रजनान्नन्दी तौ रहमि द्विजा ।
प्राहेद वचन तस्य सान्त्वयन्निव बोधकृत् ॥९॥
अपुत्री पुत्रजनने भवन्तौ शङ्करात्मजौ ।
यतता जातपत्रस्य सर्वत्र मुलभा गति ॥१०॥
पन्नाम नरकं पत्रविहीन परिपश्यति ।
न तपोभिर्न धर्मेण तन्मोचयितुमीश्वर ॥११॥
केवलान् पत्रजननान् तस्मान्मोक्ष प्रजायते ।
तद्दुत्पादयना पुत्र भवन्तौ देवयोनिषु ॥१२॥
अमर्त्यता तु युवयोः क्षीरपानादजायत ।
कात्यायन्यास्ततः पुत्रानमर्त्या स्वसमा यतः ॥१३॥
तस्माद् यथा तथा पुत्रानुमत्पाद्य सुरयोनिषु ।

प्रियौ भवन्तौ शिवयोर्भवन न चिरादिति ॥१४॥
जिम समय में बेताल धीरे भैरव दोनों भली भाँति मिट्टि की
प्राप्त करने ही बँसाम के प्रति हर्षित होते हुए भगवान् हर के मन्दिर में
प्राप्त हुए थे ॥८॥ हे द्विजो ! उस समय में भगवान् हर के यजन से
नन्दी ने एकान्त में उन दोनों से सान्त्वना देते हुए बोध करने वाला यह
तस्य वचन कहा था ॥९॥ नन्दी ने कहा—आप दोनों पुत्र सहित भगवान्
शङ्कर के आत्मज हैं । पुत्र के जन्म लेने में यत्न कीजिए । समुत्पन्न
पुत्र वाले की सर्वत्र मुलभ गति हुआ करती है ॥१०॥ जो पुत्र से हीन
मृदप होता है वह पुत्राभवासे नरक को बेधा करता है । उस का मोक्षन

उधर गमन करते हुए अपने पुत्रों के समुत्पादन के लिये चेष्टा करने लग
 थे ॥१६॥ इसके अनन्तर एक समय में इस भैरव ने हिमवान् पर्वत के
 प्रस्थ में परम सुन्दरी और थोप्ट उजंशी अप्सरा को देखा था ॥१७॥
 इसके उपरान्त परम कामुक होकर इसने उवशी से सुरतोत्सव की याचना
 की थी । वेश्या के भाव से परम प्रसन्न होती हुई उसने उससे मधेच्छ
 कहा था ॥१८॥ इसके अनन्तर भैरव ने उमके साथ सुरतोत्सव की
 क्रीडा की थी । और वह प्रसन्न हुई उवशी में सुरत कोलिया के द्वारा
 परम प्रसन्न हुआ था ॥१९॥ सुप्रसन्न हुई उवशी में भैरव के तेज से
 बाल सूर्य के समान प्रभा वाला सद्योजात पुत्र ने जन्म ग्रहण किया
 था ॥ २० ॥ उस पुत्र का परित्याग करके उवशी अपने स्थान को
 चली गयी थी भैरव पुत्र को लेकर पीछे अपने स्थान को चला गया
 था ॥ २१ ॥

सस्कृत्य तनय त तु भैरवो मोदसयुत ।
 सुवेशमिति तन्नाम चकार सगणाधिप ॥२२
 अथ त जातवयसा शक्रसूर्यसमप्रभम् ।
 विद्याधराधिपत्ये त सुवेशमभ्यपेक्षयत् ॥२३
 स तु विद्याधराध्यक्षस्तनयामतिसुन्दरीम् ।
 येमे गन्धर्वराजस्य धृतराष्ट्राह्वयस्य च ॥२४
 तस्या तस्य मुतो जज्ञ रुक्मनाम मनोहर ।
 ररोस्तु तनयो बाहुर्मनावयामभ्यजायत ॥२५
 बाहोस्तु पुत्राश्चत्वारस्तपनाऽङ्गद ईश्वर ।
 पुमुदोऽभूत् रनीयाम्स्तु चार्वाक्या तु मनोहर ॥२६
 पुमदस्य मुतो जज्ञे दवसेनो महाबल ।
 स देवमेन पृथिवीमवतीर्य मनोहर ॥२७
 मान्धातुमीवानश्वस्य तनया वेशिनी मुहु ।
 वरयामास भार्यायै मृदङ्गोमप्सर समाम् ॥२८

भैरव न बहून ही आनन्द स युक्त होकर उस पुत्र का सत्कार करके
गणाधिया ने महिन उसका नाम उसन सुवक्ष—यह रवधा था ॥२२॥
इमने अनन्तर उचित अवस्था के प्राप्त करन वाले और इन्द्र तथा सूर्य के
तुल्य बाग्नि से मयुत उस सुवक्ष को विद्याधरो के अधिपत्य म अभियेक
कर दिया था ॥२३॥ उसने विद्याधरो के अध्यात्म की अत्यन्त सुन्दरी पुत्री
के माय विवाह कर लिया था, जो कि गन्धर्वों का राजा और धृतराष्ट्र
नाम वाला था ॥२४॥ उसमे उसके परम सुन्दर रुह नाम वाले पुत्र ने
जन्म ग्रहण किया था । रुह का पुत्र बाहु ने मैनाकी मे जन्म लिया था ।
॥२५॥ बाहु के चार पुत्र उत्पन्न हुये थे जिनके नाम तपन—अङ्गद—
ईश्वर और कुमुद थे । कुमुद सबसे छोटा था । कुमुद का पुत्र
परम सुन्दर चार्कतो मे उत्पन्न हुआ था जो महान् बलवान् दवसन
नाम वाला था । यह परम मनोहर देवतेन पृथिवी पर भवतीर्ण हुआ
था । उसन मान्धाता यौवनाश्र की केशिनी नाम वाली पुत्री का जो
बहुत ही कोमल अङ्गो वाली अक्सरा के समान थी अपनी भार्या बनाने
क निप करण किया था ॥२६॥२७॥२८॥

यौवनाश्रवोऽपि मान्धाता शक्रस्य वचनाद् इदौ ।
केशिनी तनया स्वीया देवसेनाय वाञ्छया ॥२६॥
केशिनीमुपयम्याथ देवसेनस्तनया वसह ।
वाराणस्या शम्भुपुर्या हरमाराधयच्छिवम् ॥२७॥
आराधितो हर प्रीतस्त्वस्येष्ट प्रददौ रम् ।
सोऽप्याददे हरात् तस्मादिष्टमेव वरत्नयम् ॥२८॥
यावच्च सूर्यो भविता तावत् स्थास्यति सतति ।
अस्यामेव नगदर्या य मद्विशस्यार्षि राजता ॥२९॥
प्रसन्नो मम वशे त्व नित्यमेव भविष्यमि ।
इत्यादाय वर सोऽपि देवसेनो महावृत्ती ॥३०॥
शङ्करस्य प्रसादेन चिर ता तुभूजे पुरीम् ।

देवसेनोऽथ केशिन्या जनयामास पुत्रकान् ॥३४

यूय शृणुत सप्ततान्नामत कीर्तितास्तथा ।

सुमना वमुदानश्च ऋतुधृग् यवन कृती ॥३५

यौवनाश्च मन्धता न भी इन्द्र के वचन से अपनी पुत्री केशिनी को इच्छा में ही देव सेन के लिये प्रदान कर दिया था ॥३६॥ देवसेन ने केशिनी के साथ विवाह करके उसी को साथ में लेकर उसने शम्भु की पुरी वाराणसी में भगवान् हर शिव की आराधना की थी ॥३७॥ आराधना किया हुए भगवान् शिव परम प्रसन्न हो गये थे और उसका अभीष्ट वरदान उस दे दिया था । उसने भी उन भगवान् शम्भु से अपने अभीष्ट तीन वरदान प्राप्त किये थे ॥३८॥ जब तक भगवान् भास्कर रहें तभी तक मेरी सन्तति स्थित रहेंगी—इसी नगरी में मेरी वंश की राजता रहे ॥ ३९ ॥ मेरे वंश पर आज निरम्य ही परम प्रसन्न रहेंगे । इन वरों को प्राप्त करके महान् कृती वह दधमन ने भी भगवान् शङ्कर की प्रसन्नता में उस पुरी का चिरकास तब उपभोग किया था । देवसेन ने केशिनी के उदर से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया । ३३—३४ ॥ अब आप लोग उठ माता के नामों का श्रवण कीजिए जो कि कीर्ति किये जा रहे हैं । सुमना—वमुदान—ऋतुधृक्—यवन—कृती—नील—विषयी—य सात पुत्र थे जो समस्त शास्त्रों के विचारद थे । य सभी वंश के वंशज वाले परम श्रेष्ठ देव सन्ध के पुत्र थे ॥३५—३६॥

नानो विद्वदी ह्येते वै सवशास्त्रविशारदा ।

मयै वंशवरा पुत्रा देवमनस्य सप्तमा ॥३६

अथ गाने तु संप्राप्ते देवसेनाऽपि भायया ।

पुत्रेषु राज्य निक्षिप्य यातो विद्याधरदायम् ॥३७

ततस्त तस्य तनया कृत्वा सुमनसा नृपम् ।

वमुदानादय सर्वे नुभजुश्चात्तमां त्रियम् ॥३८

जाता मुनमग पुत्वारतय शूरा महाबलाः ।

सुमतिश्च विरूपश्च मत्स्य आम्नायं पारगा ॥३६

सुमतेरभवत् कन्या मुत. मत्स्यस्य द्विण्डिम ।

विरूपस्याभवद् गाधिर्गाधिमित्रोऽभवत् मुत ॥४०

तेषां कल्पोऽभवद्वाणा कल्पात् तु विजयोऽभवत् ।

यो विनित्य क्षितिं सर्वां पार्थिवान् भूरितेजसम् ॥४१

शक्रस्यानुमते चक्रं खाण्डव शतयोजनम् ।

यन् सव्यसाची ह्यदहत् पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ।

आबहत् परमां प्रीतिं ज्वलन्मय महात्मनः ॥४२

इसके अनन्तर समय के सम्प्राप्त होने पर देवमेन भी भार्या के सहित अपने पुत्रों पर राज्य का भार डाल कर विद्याधर क्षय की चला गया था । ३७। इसके उपरान्त उसके पुत्रों में सुमनस की राजा बना कर वनूदाम आदि सबने उत्तम स्त्री का उपयोग किया था । ३८। सुमनस के तीन शूर और महा बलवान् पुत्र समुत्पन्न हुए थे । य सभी शास्त्रों के अर्थ के पारगामी विद्वान् थे उनके नाम सुमति—विरूप और सत्य थे । ३९। सुमति की एक कन्या हुई और मत्स्य का पुत्र द्विण्डिम हुआ था । विरूपका गाधि हुआ और गाधि का मुत मित्र नामक हुआ था । ४०। उनका राजा कल्प में विजय हुआ था जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी की जीत कर बहुत तेज वाले राजाओं का शक्र की अनुमति में सौ याजन का खाण्डव किया था जिसको सव्य साची अर्जुन ने श्री पाण्डव का प्रताप वाला पुत्र या दग्धर कर दिया था और महान् आत्मा वाले जलन की परमाधिक प्रीति का बहुत किया था । ४१ । ४२।

कथं स खाण्डव चक्रं विजयः शतयोजनम् ।

तद् क्षयं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व तपोधन ॥४३

सोमवशोऽभवद्वाजा महाबलपराक्रमः ।

धीरः सुदर्शनो नाम चास्त्रं प्रतापवान् ॥४४

स वै हिमवनो नानिदूरे गच्छत्वा महाबलम् ।

सिंहान् व्याघ्रान् भृशसायं बभूवुश्चापि तपोधनान् ॥४५

खाण्डवी नाम नगरीमकरोन् तत्र शोभनाम् ।
 त्रिणक्षोजनविस्तीर्णमिष्यता शतयोजनाम् ॥४६॥
 उच्चप्राकारसयुक्ता साट्टालाम्बुदतोरणाम् ।
 निम्नाभिरतिदीर्घाभि परिखाभि समावृताम् ॥४७॥
 अधृष्टामपरिवोरिर्नानजनासमावृताम् ।
 दीर्घिनाभिश्चोपवनेर्बहुभिश्चाप्सरोगर्ण ॥४८॥
 आकीर्णा च तथारामरुत्तमैरपि मानवैः ।
 सौत्सवाः सतत यत्र जना देवान् दिवि स्थितान् ॥४९॥
 स्पर्धन्ते स्म मुदा मुक्ता आसा-भोगसमन्विताः ।
 स यं मदर्शनो राजा सात्त्वा भूमि विदार्य च ॥५०॥

खाण्डवो मे रोषित किया था ॥ ५४—५५ ॥ भगवान् विष्णु से भी विष्णु ने उस नृप सुदर्शन को उपचार किया था और प्राय देवों का तथा मनुष्यों का जयशाली वाराणसी के स्वामी विजय को कृत सावित्र्य को मुद्र के लिये उसके वर में योजित किया था ॥ ५६—५७ ॥

विजयो विवर प्राप्य महावलपराक्रम ।

सुदर्शनस्य नृपतेरवस्कन्दमयाकरोत् ॥ ५८

असहन् स ह्यवस्कन्ध विजयस्य सुदर्शन ।

चतुरङ्गवलेनाशु युद्धायाभिमुखोऽभवत् ॥ ५९

विजयो रथमारुह्य नियोज्य चतुरङ्गिणीम् ।

तत सुदर्शनं योद्धुं मम्मुखोऽभवदञ्जसा ॥ ६०

तदा महायुद्धमासीद्विजयेन महात्मना ।

सुदर्शनस्य नृपतेर्वृत्रवासवयोयथा ॥ ६१

सुदर्शनस्य सेनानी रुमण्वान्नाम वीरवान् ।

वाचन रथमारुह्य विजय समुखोऽभ्ययात् ॥ ६२

अक्षौहिण्यस्तु सप्तास्य परिवार्यं समन्तत ।

व्यग्रमत्ता शत्रुमेना मावनीमुद्यतायुध ॥ ६३

महान् बल और पराक्रम वाले विजय ने विवर की प्राप्ति करके नृप सुदर्शन का अब स्वम्भन किया था ॥ ५८ ॥ उस सुदर्शन ने विजय के अङ्ग स्कन्ध से गहन किया था और चतुरङ्गिणी सेना से भीष्म ही मुद्र करने के लिये समुपगत हो गया था ॥ ५९ ॥ विजय अपने रथ पर ममारुह्य होकर चतुरङ्गिणी का नियोजित करके फिर सुदर्शन के साथ मुद्र करने के लिए भीष्म ही सम्मुख हुआ था ॥ ६० ॥ फिर महात्मा विजय के साथ महान् युद्ध हुआ था । सुदर्शन राजा का मुद्र ऐसा ही था जैसे वृत्रासुर और इन्द्र का मुद्र हुआ था ॥ ६१ ॥ सुदर्शन का सेनानी जिमवा नाम रुमण्वान् था बहुत ही अधिक वीरवान् था । वह सोने के रथ पर मवार होकर विजय के सम्मुख हुआ था ॥ ६२ ॥

उद्यम आमुघो बाला होकर इमने उमकी मत्त अश्रीहिषी मेना को चारों ओर मे घेर कर जितनी भी जङ्गु की मेना थी उसको आक्रान्त कर दिया था ॥६३॥

विजयस्य च मेनानी मञ्जय स रिपुञ्जय ।
 नागानोकेन जग्राह रमण्वन् ससैनिकम् ॥६४॥
 तयोर्महदभूद् युद्ध सेनान्योर्बोरयोर्महत् ।
 ववपं शरवर्षेण रमण्वानय सजयम् ॥६५॥
 कृर्वेषापि महानाद गज दृष्टवैव केशरी ।
 रमण्वानय विशत्या वार्जविद्धवाय सञ्जयम् ॥६६॥
 क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद कृतहस्त्ववन् ।
 मोऽपि कामुं कमाशाय तदाऽन्वन् सजयस्तिष्ठि ॥६७॥
 वार्जविद्याय भन्नेन धनुश्चिच्छेद सन्क्षणान् ।
 शताग्न्यष्टौ च नागाना सहस्राणि च पचपट् ॥६८॥
 पत्तीना वार्जिना तीणि महस्त्राणि ममन्तत ।
 राजयो निजंघानाशु वाणवर्षे मुदारुणं ॥६९॥
 अयान्वद् धनुगदाम नमण्वान कुपिता भूवम् ।
 भन्नेन सारथेगस्य शिर कायादपाहरत् ॥७०॥

विजय का जो मेनानी था उसका नाम मञ्जय था और वह रिपुभो का जीतने वाला था । भायो की सेना के द्वारा उमने सैनिकों के सहित रमण्वान के सामने ममुषम्बित की थी ॥ ६४ ॥ उन दोनों कीर मेनानियो का बहुत भारी युद्ध हुआ था । इससे अनन्तर रमण्वान् ने शरी की वर्षा से मञ्जय को घेर लिया था ॥६५॥ यज्ञ को देखकर नेगरी की हो भाति बड़ी भारी गर्जना करते हुए ही रमण्वान् ने बीस वार्जों के द्वारा मञ्जय को बेध दिया था ॥ ६६ ॥ कृत हस्त की तरफ धुरध ने द्वारा उमने धनुष को छिन्न कर दिया था । उस मञ्जय ने भी उगी ममय से धनुष लेकर तीन बालों के द्वारा प्रहार किया था

॥ ६७ ॥ बाणो से वेधन किया था और भाले से उसी क्षण में धनुष का काट दिया था । आठ सौ हाथियों पाँच छैं हजार पक्षियों को और तीन मह्य अश्वों का मञ्जय ने अपन चारों ओर मुदारुण बाणों की वर्षा में झोझ ही मार गिराया था ॥ ६८—६९ ॥ इसके अनन्तर दूसरी ओर से धनुष दहण करके बहुत ही अधिक कुपित हो गया था और भालेके द्वारा इसका साराचि का चिर गरीर से काटकर भक्षण गिरा दिया था ॥७०॥

हयाश्चान्य चतुर्भिस्तु याणानिभ्यं यमहायम् ।

चतुर पक्षनिर्वाणंरविध्यच्चापि मञ्जयम् ॥७१॥

राजयोऽप्यनिवेगेन गदामादाय तत् क्षणात् ।

अवतीर्य रघोपम्याद्रुमपञ्चमघावत ॥७२॥

स धावन्त मञ्जय त रमण्वान् द्रुतहस्तवत् ।

शरवर्षेण मञ्छास्य वारमामास मञ्जयम् ॥७३॥

गदामा भ्रामगनामो निवार्यं शरवर्षेणम् ।

भ्रामगाद रमण्वन्त वेमरीव महागत्रम् ॥७४॥

भ्रामास ता गदा गुर्योमाविद्यामीव मञ्जय ।

तुर्नेनैव प्रहारेण मर्य त द्यवाधनम् ॥७५॥

स पगान महावीर गृविधश गदया हन ।

वसतमो यदा ज्ञात प्रपु ॥ वनमध्यग ॥७६॥

रमण्वन्त निशनिम ह्यर्था राजा मुदमंत ।

शोर-शोरगमाविक मधुम इव दावक ॥७७॥

रुमण्वान ने शरी की वर्षा के द्वारा सच्छादित करके सञ्जय को वारित कर दिया था ॥ ७३ ॥ उसने गदा के फिराने से मिह जैसे महान् गज हटा दिया करता है उमी भांति शरी की वर्षा करने वाले रुमण्वान को हटाकर उसके समीप में प्राप्त हो गया था ॥ ७४ ॥ सञ्जय ने उसके पास पहुँच कर उस बड़ी भारी गदा को अविद्ध करके अपने एक ही प्रहार के द्वारा स्व के सहित उसको न्ययोपित कर दिया था ॥ ७५ ॥ गदा से हत होकर वह महान् घोर पृथ्वी में गिर गया था । जैसे घन के मध्य में पियन जाल का फूला हुआ वृक्ष बज्र से हत होकर गिर जाया करता है ॥ ७६ ॥ राजा मुदर्शन ने रुमण्वान को गिरा हुआ देखकर वह घूम के सहित पावक की ही भांति शोक और कोप से समाविष्ट हो गया था ॥ ७७ ॥

जज्वालान्कुलदेहोऽपि क्रोधेनातीव सायुत ।
 आरुह्य जवनैरश्वैर्युक्तं बंधाघकृत्तिना ॥७८॥
 रथ काचन-चित्राग मिहध्वज-विभूषितम् ।
 आमुक्तो घनुराशय विस्फाय च पुन पुन ॥७९॥
 मसौन्य सञ्जय राजा ममाद्रवत वेगवान् ।
 अथास्य निशिनं शस्त्रे सेनामग्रगता भृशम् ॥८०॥
 न्यहनत सकला राजा मृगानिव मृगाधिप ।
 एकामक्षीहिणीमग्रगामिनी विपुलौजमाम ॥८१॥
 क्रोशद्वयेन न्यहनत् तमामीव दिवाकर ।
 हत्वा चाक्षीहिणीमेकामासाद्य राजय नृप ॥८२॥
 वार्णं पट्ट्या तु विव्याध ध्वजमेवेन चिच्छिदे ।
 राजयोऽप्यथ विशत्या हृदि विद्ध्वा मुदर्शनम् ॥८३॥
 सलाटे त्वेकघाणेन प्राविध्यत् वृत्तहस्तवत् ।
 दुरप्रेणास्य कोदण्ड छित्वा राज प्रतापवान् ॥८४॥
 अर्थाधिव क्रोधेन युक्त होकर मयामुल देह वाला भी वह

श्वत्थित होगया था । वह देववान् अश्वों से युक्त और व्याघ्र के चर्म से सयुक्त सुवर्ण के चित्रित अज्झा वागे—मिह की छवजा में भूषित रथ पर आरुढ़ होकर आमुक्त म्वनुष को ग्रहण करके बारम्बार विम्पारित करता हुआ देववान् राजा ने सैनिकों के सहित सञ्जय को समादधित किया था । इसके अनन्तर अपने पैने अस्त्रों के द्वारा मैना के आगे बहुत ही अधिक सम्पूर्ण सेना का मिह हिरनो को जैसे निहत करता है ठीक उसी भाँति हनन कर दिया था । बहुत ओज वाल बोरों की अश्व गामिनी एक अक्षीहिणी सेना हनन कर दिया था ॥७८—८१॥ जैसे सूर्य अन्ध बारों को नष्ट कर दिया करता है उसी भाँति वा कोश तक निह्नन किया था । राजा एक अक्षीहिणी सेना का हनन करके सञ्जय के समीप में प्राप्त हो गया था । ८२ । राजा ने आठ बाणों से वेधन किया था । और एक बाण के द्वारा छवजा को छिन्न कर दिया था । इसके उपरान्त सञ्जय ने भी बीस बाणा स सुदर्शन के हृदय में वेधन किया था । ८३ । कुत हस्त की भाँति एक बाण से लबाट में वेध किया था । क्षुरप्र के द्वारा प्रताप वाले ने राजा के दण्ड को छिन्न कर दिया था ॥८४॥

सारथि दशभिर्वाणं पुनर्विव्याध सञ्जय ।
 कोदण्डमन्यभादाय तदा राजा सुदर्शन ॥८५॥
 शरवपेण तीव्रेण ववर्षातीव सञ्जयम् ।
 तयोमहदभूद युद्ध मुनिविस्मयकारकम् ॥८६॥
 शस्त्रैस्त्रैर्मृश तीक्ष्णैर्बलिवासवयोरिव ।
 तत सुदर्शनो राजा भल्नेनास्य दृढ धनु ॥८७॥
 चिच्छेद सारथि चास्य जघान निशितं शरं ।
 स्वय सयम्य बाहान स सञ्जय परवीरहा ॥८८॥
 धनुरन्यत् समादाय परिवार्य सुदर्शनम् ।
 निग्याध दशभिर्वाणैर्धनुरप्यच्छिन्नद् दृढम् ॥८९॥

शरामनान्तरं राजा समादाय मुदर्शनं ।

मञ्जयस्य चतुर्वाङ्मूर्तिर्नन्ये यमक्षयम् ॥६०

मुष्टौ धनुश्च चिच्छेद त च विव्याघ पचभिः ।

विरथश्छिन्नवाहश्च मञ्जय सङ्गचमणौ ॥६१

मञ्जय ने फिर दश बाणों से मारवि का वेश्मन उसी समय में कर दिया था । फिर राजा मुदर्शन ने अपना धनुष का आदान किया । ॥ ६५ ॥ अत्यधिक शरों की तीव्र वर्षा में मञ्जय का निमग्न-मा कर दिया था । उन दोनों का मुनियों के विस्मय उत्पन्न करने वाला महान् पट्ट हुआ था । ६६ । वनि और वानव इन्द्र की ही तरह मे वह मुट्ट बहुत ही तीक्ष्ण शस्त्रों में तथा अस्त्रों में हुआ था । फिर राजा मुदर्शन ने अपने भासे के द्वारा हमके दृढ़ धनुष की काट तिराया था । ६७ । उसने अपने लौहे बाणों के द्वारा इसके मारवि का हनन कर दिया था । उस मञ्जय ने जो शत्रु के वीरों का हनन करने वाला था स्वयं ही अपने बाहनों की मर्यामित करके अन्य धनुष का आदान करके मुदर्शन को देर कर दश बाणों में वेश्मन बिया था और हमके मुट्ट धनुष का छेदन कर दिया था । ६८ । ६९ । मुदर्शन ने अन्य धनुष का ग्रहण करके मञ्जय के चार बाहों का यम्बुगी भेज दिया था । ६० । मुट्टा में रहने वाले धनुष को छिन्न कर दिया था और पाँच बाणों में उसका विद्ध कर दिया था । मञ्जय रथ में हीन होकर त्रिमूर्ति बाह छिन्न हो गये थे उसने छद्म और दास को ग्रहण किया था । ६१ ।

आदाय सम्मुख राजेऽभ्यद्रवत् कुपिनो भृशम् ।

तस्य चाप ततः खड्ग क्षुरप्रेण मुदर्शनः ॥६२

द्विधा चिच्छेद भस्तेन चर्म चाप्यच्छिन्नतदा ।

अथ द्रुत तदोपेत्य मञ्जयः स्यन्दनोत्तमम् ॥६३

मुदर्शनस्य सूत तु कराभ्या पातयन् क्षितौ ।

रथान्धाशे गतम्याम्य मञ्जयस्य मुदर्शनः ॥६४

शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसौ न्यपतद् भुवि ।
 स पपात तदा तस्य स्याभ्यां महाबल ॥६५॥
 वृत्त परशुनाऽरण्ये पुष्पित शानवृक्षवत् ।
 सञ्जय पतित दृष्ट्वा विजय क्रोधमूर्च्छित ॥६६॥
 महता शस्त्रनादेन नादयस्तु नम स्थलम् ।
 रथेन स्वर्णचित्त्रेण व्याघ्रचर्मधिराजिना ॥६७॥
 केतुना वृषभेणाथ योजनाधोच्छ्रितेन च ।
 नादयन् ककुभ सर्वा रथौघपरिवेष्टित ॥६८॥
 विमृञ्चच्छस्त्रवर्षाणि समाद च मुदर्थनम् ।
 आसाद्य तं नृप भूपो विजय परवीरहा ॥६९॥

खड्ग और डाल को लेकर अत्यधिक कुपित होते हुए राजा के सम्मुख घावा किया था । फिर सुदर्शन के धुरप्र के द्वारा उसके चाप और खड्ग के टुकड़े कर दिये थे ॥६७॥ उस अवसर में भाले में डाल के दो टुकड़े कर दिये थे । इसके उपरान्त शीघ्र ही समीप में जाकर मञ्जय उसके उत्तम रथ पर पहुँच गया था और सुदर्शन के सारथि को उसने अपने हाथों से भूमि पर द्रिया था । रथ के समीप में गये हुए इस सञ्जय का शिर खड्ग से काट डाला था और फिर यह भूमि पर गिर गया था । वह महान् बलवान् उसके रथ के ही समीप में उस समय में गिर गया था ॥६९—६५॥ वन में पुष्पों वाले शास्त्र के वृक्ष की ही भाँति कटा हुआ और गिरे हुये मञ्जय का अवलोकन करके विजय क्रोध से मूर्च्छित हो गया था । ६६ । बड़े भारी शस्त्र की ध्वनि से नाद करते हुए जिससे आकाश में गूँज हो उठी थी । व्याघ्र के चर्म से विराजित—स्वर्ण से चित्रित—रथ के द्वारा जो वृषभ केतु से युक्त था जो कि केतु आधे योजन ऊँचा था—सभी दिशाओं में गूँज करता हुआ रथों के समुदाय से परिवेष्टित होकर शत्रु की वर्षा करते हुये सुदर्शन के समीप में प्राप्त हुआ था । शत्रु के वीरों के हनन करने वाला राजा विजय उस राजा के पास पहुँच गया था ॥६७—६६॥

हृदि विद्ध्वा त्रिभिर्वाणंस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।
 मुदर्शनोऽपि विजय नदन्त कुञ्जरोपमम् ॥१००॥
 दशभिर्निशितं त्रिभिर्विद्ध्वा चिच्छद तद् धनुः ।
 अघेन छिन्नघन्वान् अश्वदेजे विभि शरं ॥१०१॥
 निर्भिह्वाय महानाद ननाद स मुदर्शन ।
 मोऽन्यद् धनुः समोदाय कक्पत्रन्निभं शरं ॥१०२॥
 विव्याद्य हृदये चौरा विजयोऽपि मुदर्शनम् ।
 ततस्तन्पुनर्मुद्दिष्य महाशक्ति मुदापिताम् ॥१०३॥
 नामकन्या कोपयुक्ता नेतिहानामिवातुलाम् ।
 स्वर्णदण्डा सुतीक्ष्णाया तंनधीता सुनिर्भलाम् ॥१०४॥
 समुद्यम्याथचिदोप विजय शान्तव प्रति ।
 मुदर्शनस्य हृदय मा शक्ति प्रविवेक ह ॥१०५॥

उमन तीन बाणों के द्वारा हृदय में बरन करने खड़ा रह खड़ा रह-रह बोला था । मुदर्शन ने भी हाथों के समान गजेंन करत हुए विजय को अपन दग बाणों के द्वारा बघन करके उसके धनुष को काट गिराया था । इससे अनन्तर बटे हुए धनुष वाल उसको तीन बाणों ने शत्रु को बिड कर दिया था । और फिर मुदर्शन के महान नाद किया था उमन भी दूसरे धनुष का आदान किया था कक्पत्र नामे तीन शरों के द्वारा और विजय ने मुदर्शन के हृदय में घेधन किया था । इसके उपरान्त नृप का उद्देश्य करके उमन मुदीपित महा शक्ति का ग्रहण किया था । १००—१०३। वह महा शक्ति कोप से मुक्त जीम को लप नपाती हुई अनुपम नाग कन्या के ही तुल्य थी । उसमें सुवर्ण का दण्ड लगा हुआ था—उसका अग्रभाग बहुत ही तीक्ष्ण था—वह तैल से धुली हुई मुनिर्भय थी । ऐसी महा शक्ति को लेकर विजय ने शत्रु की ओर उसका प्रयोग किया था । और वह शक्ति मुदर्शन के हृदय में प्रवेश कर गयी थी । १०४—१०५ ।

स विह्वलो रथोपस्थे ह्यघोवक्त्र उपाविशत् ।
 तस्मिन् मोह-समापन्ने नृपतौ च सुदर्शने ॥१०६॥
 तस्याग्रतस्तथा पाश्व ये स्थितास्तत्र सैनिका ।
 तान् सर्वानहनद्राजा क्षणमात्राद् द्विजोत्तमाः ॥१०७॥
 रथान दशसहस्राणि तावन्त्येव च दन्तिनाम् ।
 पञ्चविंशसहस्राणि वाजिना च तरस्विनाम् ॥१०८॥
 लक्षद्वय तु पत्तीना क्षणमात्रादपोथयत् ।
 स तु लब्ध्वा ततः सजां धनुरादाय वै दृढम् ॥१०९॥
 शरवर्षेण विजय वर्षेण स सुदर्शन ।
 नियार्य शरवर्षेण विजय तु सुदर्शन ॥११०॥
 भल्लेन वाम्बुं कं सज्य तस्य चिच्छेद तत्क्षणात् ।
 मारयेस्तु शिर कायाद् भल्लेनापाहरत् ततः ॥१११॥
 हयादि च चतुरश्रचाम्य प्रेषयामास मृग्यवे ।
 अयं च विरथ भूष दशभि कद्रुपत्रिभिः ॥११२॥

वह विह्वल होकर नीचे की ओर मुख वाला रथ के ही समीप
 में बैठ गया था । उस नृप सुदर्शन के मोह को प्राप्त हो जाने पर उसके
 आगे की ओर तथा बायें में वहाँ पर जो सैनिक स्थित थे हे द्विजोत्तमो !
 राजा ने एक ही क्षण भर में उन सब को मार गिराया था । १०६।१०७।
 दस हजार रथों को—और उतने ही हाथियों का—बड़े बेल वाले भालों
 की बीम हजार गद्या और दो लाख पदातियों को क्षण भर में मार
 गिराया था । इसके उपरान्त होश में आकर तथा मुटङ्क धनुष लेकर
 सुदर्शन ने विजय के ऊपर शरीर की वर्षा की थी । १०८।१०९।११०।
 उसके राज्य वाम्बुं के भाले के द्वारा उसी क्षण में छिन्न कर दिया
 था । और मारवि का शिर काय में दूर कर दिया था । १११। और
 इसके चार भालों का मृग्यु के मुँह में भज दिया था । इसके अनन्तर
 बिना रथ वाले राजा को दस कद्रुपत्रों के द्वारा—विद्ध कर दिया
 था ॥११२॥

विद्याद्य हृदये भूयो ननाद च सुदर्शनः ।
 स च्छिन्नघन्वा विरथो गदामादाय वेगवान् ॥११३॥
 विजयो विजयाकाङ्क्षी सुदर्शनमघावतः ।
 आपतन्तं महावीर बाणवर्षः सुदर्शन ॥११४॥
 वर्षं वर्षसु यथा वारिदः पृथिवीधरम् ।
 विजयः सारवृष्टिं ता प्राच्छाद्य स्वशरेण वै ॥११५॥
 गदया तं रथाह्वमाससाद तु तत्क्षणात् ।
 आसाद्य तं महावीर्यं विजयोज्य सुदर्शनम् ॥११६॥
 शोषे प्रहृत्य गदया पातयामास भूतले ।
 गिरेः शृङ्गं यथा तुङ्गं वज्राशनिर्विदारितम् ॥११७॥
 तथा सुदर्शनो राजा दारितो गदयाऽगतत् ।
 तस्मिन्निपतिते वीरे सेनाभिस्तस्य सैनिकाः ॥११८॥
 भयात् साप्राद्रवंस्तस्माद् दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
 नट्येपु तस्य सैन्येपु विजयः खाण्डवीं पुरीम् ॥११९॥

सुदर्शन ने फिर हृदय में बेघन करके फिर गजना की थी । वह
 गटे हुए घनुष वाला और बिना रथ वाला होकर वेग से युक्त ने गदा का
 आदान किया था ॥ ११३ ॥ विजय की इच्छा वाले विजय ने सुदर्शन
 पर घावा किया था । सुदर्शन ने ऊपर से पतन करने वाले महान् धीर
 पर बाणों की वर्षा की थी जैसे वर्षा श्रुतु में बादल पर्वत पर वर्षा किया
 करता है । विजय ने उस बाणों की अपने शरो से प्रच्छादित करके गदा
 में उसी क्षण में रथ पर समाह्वत हुए उसके मभीप में समामादान किया
 था । उस महान् वीर्य वाले के पास पहुँच कर सुदर्शन के शिर में प्रहार
 करके उनको भूमि पर गिरा दिया था । जिस प्रकार से बज्र के द्वारा
 पिपीली किया गया पर्वत का ऊँचा शिखर गिरा बरखा है ॥ ११४—
 ११७ ॥ सुदर्शन गदा के प्रहार से विदारित होकर गिर गया था । उस
 वीर के गिर जाने पर उसकी सेना के सैनिक उस घुट न्यत से डर से

भीत होते हुए दिशा—विदिशाओं में भाग गये थे । उसकी सेना के सैनिकों के नष्ट होजाने पर विजय ने खाण्डवी नाम वाली नगरी में प्रवेश किया था ॥११८—११९॥

प्रविश्य ददृशे तत्र राक्षीभूतान् गिरीनिव ।

सुवर्णानां च रत्नानां सचयान् बहुश पुन ॥१२०॥

दृष्ट्वा सगसि तत्रैव प्रफुल्लकमलानि च ।

हसकारण्डवानादनीदितानि समन्ततः ॥१२१॥

राशीन् सुवर्णरत्नानां पर्वतानि च विस्तृतान् ।

पुष्पितान् देववृक्षाश्च भ्रमद्भ्रमरभूषितान् ॥१२२॥

प्रासादान् विपुलाञ्छुभ्रान् कलाससदृशान् गजान् ।

प्रस्फुटाश्च सुगन्धाढ्यान् प्रतिगेहं व्यवस्थितान् ॥१२३॥

उत्पुल्लनयनो राजा विजय परवीरहा ।

मेनेऽमरावतीं तां तु पुरीम् क्षितिगतामिव ॥१२४॥

तं वीक्षन्त नरपति नगरीं तां सुरेश्वर ।

समेत्य विजय प्राह सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ॥१२५॥

उगने नगरी में प्रवेश करके वहाँ पर एकत्रित पर्वतों की ही भाँति राक्षीभूत मृगणों की तट्टा रत्नों के दुरों को बहुत तादात में देखा था ॥ १२० ॥ वहाँ पर खिने हुए कमलों वाने गंगावरी को देखा था जो हँसो और बारण्डको के नाद में गंधी आरम निनहिन थे ॥१२१॥ पर्वतों के ही समान सुवर्ण और रत्नों के ढेरों को देखा था—सुमन हुए भीरों में विभूषित और पुष्पित देव वृक्षा का देखा था ॥१२२॥ बहुत ही सुभ्र प्रासादों की तथा बँलाग के गहज हाथियों को देखा था जो प्रमृष्ट और सुन्दर गण्ड में सुख प्रत्यक्ष था य व्यवस्थित थे ॥१२३॥ गजों का जनन करने वाली विजय राजा के नय प्रचुरिमन हो गय थे । उतन उत नगरी ॥ भूमि पर समागत हुई अमरावती ही माना था ॥१२४॥ उत परम सुन्दर नगरी को देखन हुए राजा के पास मुरधर न आकर परम मीश्वर बालों में उसका मानवना दन हुए विजय न कहा था ॥१२५॥

राजन् महावनमिदमासीद् देवगणावृतम् ।
 न च गन्धर्वयक्षाणां मुनीनां च मनोहरम् ॥१२६
 सर्वानुत्सायं देवादीन् मम चाप्यप्रिये रत ।
 भङ्क्त्वा वनमिदं गुह्यमुत्साद्य च तपोधनम् ॥१२७
 खाण्डवी नगरीं च त्रे हठाद्राजा सुदर्शन ।
 तदिह पुनरेव त्वं वनं कुरु नरोत्तम ॥१२८
 तत्राह विहरिष्यामि तक्षकेण समं रह ।
 मुनीनां च तपः स्थानमतुलं ते प्रसादत ।
 भविष्यति च यक्षाणां किन्नराणां च पार्थिव ॥१२९
 एनच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य विजयस्तदा ।
 वनमेवाकरोन् तान्तं खाण्डवी शक्रगौरवात् ॥१३०
 गच्छन्तु भो यथास्थानं प्रजा सर्वा यथेच्छया ।
 येषां बाञ्छास्ति लोकानां मद्राज्यगमने पुनः ॥१३१
 वाराणसीं ते गच्छन्तु मयैव प्रतिपालिताम् ।
 ततस्तस्य वक्त्रं श्रुत्वा जना केचिन्निजास्पदम् ॥१३२
 जग्मुर्वाराणसीं केचिद् विजयेनःप्रतिपालिताम् ।
 ततो घनानां तान् राशीन् रत्नानां च पृथक् पृथक् ॥१३३
 मणीनां वनवानां च कुप्यानां विजयस्तथा ।
 विविधैर्वारयामास पुरीं वाराणसीं प्रति ॥१३४

इन्द्रदेव न बहा—ह राजन् । यह महावन देवगणों से समावृत
 था । यह गन्धर्व—यक्ष और मुनियों से समावृत और परम मनोहर
 था । राजा सुदर्शन ने देव आदि सबको यहाँ से उत्सारित करने मेरे
 अप्रिय काम करने में रत होता हुआ उसने इस वन का भङ्ग करने गुह्य
 तपोधन को उत्साहित करके राजा ने हठ से खाण्डवी नगरी की रचना
 की थी । हे नरोत्तम! आप पुनः इसका उत्तम वन बना दीजिए ॥१२६--
 १२८॥ वहाँ पर मैं तक्षक के साथ एकान्त में विश्राम करूँगा । यह

आपके ही प्रसाद से मुनिगणों के तपश्चर्या करने का अनुपम स्थान होगा । हे पाण्डव ! यह यदो का और विन्नरो का भी उत्तम स्थान है जायगा ॥ १२६ ॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस समय में इन्द्रदेव के इस वचन का विजय ने श्रवण करके इन्द्रदेव के गौरव से उस छाण्डवी नगरी को विस्तृत बन ही बना दिया था ॥ १३० ॥ समस्त प्रजाजन की इच्छा के अनुसार यथा स्थान पर गमन कर जावे । जिन लोगों की पुन मेरे राज्य में गमन करने की इच्छा होवे वे वाराणसी में गमन कर जावे जो कि मेरे द्वारा ही प्रतिपालित पुरी है । इसके उपरान्त मनुष्या ने उसके वचन का श्रवण किया और कुछ लोग अपने ही स्थान को गमन कर गये थे ॥ १३१—१३२ ॥ और कुछ लोग विजय नृप के द्वारा अभिपालिता वाराणसी में चले गये थे । इसके अनन्तर धनो की तथा रत्नों की राशियों को असम-बलन और मणियाँ—कनको और पुष्पो की राशियाँ को विजय ने अनेक साधनों के द्वारा वाराणसी नगरी की ही ओर वारित करा दिया था ॥ १३३—१३४ ॥

गन्धर्वाणां च देवानां यदानीत् हठात् पुरा ।
 रत्नदार्वादिव यत् तु विजय तत् प्रसाद्य च ॥ १३५
 तैस्तैर्नीतं च छाण्डव्या स्वस्थानं हनिहपितं ।
 त्रिंशद्योजनविस्तीर्णां शतयोजनमयताम् ॥ १३६
 ता पुरी विजयश्चक्रैर्नचिरादेवै व वनम् ।
 तस्मिच्छक्रस्य सम्मत्या तक्षकं सहितो गण ॥ १३७
 उदास सुचिरं तत्र नतोऽभून्निर्जनं वनम् ।
 तत्र देवा सगन्धर्वा ब्रीहन्तेऽप्सरसा गणा ॥ १३८
 आशसन्तश्च विजय रणेपु विजयावहम् ।
 प्राप्तेऽष्टाविंशतितमे युगे द्वापरशेषत ॥ १३९
 वह्निर्ब्राह्मणरूपेण भिक्षां जिष्णुममाचत ।
 दातुमङ्गीकृते भिक्षा तदा पाण्डुसुतेन वै ॥ १४०

गन्धर्वों की ओर देवों की जो पहिले दृष्ट में रत्न दाह जादि की राशिमा लाई यही थी और विजय के समोप में थी—विजय की प्रसन्न करके उन—उन्होंने प्रतिहर्षित होकर आण्डवी में अपने स्थान को नीत किया था । विजय ने तुरन्त ही तीम योजन विस्तीर्ण की योजन आयत उस पुरी को बन बना दिया था । उस बन में इन्द्रदेव की सम्मति से अपने गणों के साथ तक्षक ने निवास किया था । १३५—१३७। वहाँ पर तक्षक दहृत समय तक रहा था और फिर वह निजन बन बन गया था । वहाँ पर गन्धर्वों के साथ दक्षिण और अप्सराओं के समुदाय आनन्द की छोड़ा किया करते हैं । १३८। वे सब गुहों में विजय प्रदान करने वाले विजय की चर्चा किया करते थे । अट्ठाईसवें युग के प्राप्त होने पर द्वापर के शेष में वहिने ने विष्णु में ब्राह्मण के रूप में भिक्षा का पाचना की थी । आण्डु के मुन के द्वारा भिक्षा देने की स्वीकृति दे दी गई थी ॥१४०॥

वहिन स्वरूपमास्थाय जिष्णु वचनमब्रवीत् ।

अहमग्नि. पाण्डुपुत्र यज्ञभागाभिभोजनात् ॥१४१

व्याधितोऽह ततो व्याधि तम त्व नाशयाधुना ।

खाण्डवं नाम विपिन मपत्त्रिमृगराक्षसम् ॥१४२

यदि त्व मां भोजयितुं शक्नोषि श्वेतवाहन ।

तदा मम ह्यसौ व्याधिरपयास्यति नो चिरान् ॥१४३

पुरा तु विजयो राजा खाण्डवी नाम ता पुरीम् ।

भट्क्त्वा वन यन्म्रके तेन तत् खाण्डवं वनम् ॥१४४

मदर्थं देवविहित वन तु श्वेतवाहन ।

विरोधात् तत् तु शक्यं न स्वयं भोक्तुमुत्सहे ॥१४५

तस्मात् त्राहि महाभाग वने तन्मिन्नियोजय ।

यथाह सकल भोक्तुं शक्नोमि तत्प्रसादतः ॥१४६

तस्य तद्वचन श्रुत्वा सम्पसाची महाबलः ।

दाहयामास विपिन तत्सर्वं प्राणिसमुत्तम् ॥१४७

वाहन ने अपने स्वरूप में स्थित होकर विष्णु से यह वचन कहा था—हे पाण्डु पुत्र ! मैं अग्नि हूँ—यज्ञ भागो के अग्नि भोजन में मैं व्यधित हो रहा हूँ । अब आप ही मेरी इस व्याधि का विनाश कीजिए । छाण्डव नाम वाला विपिन है जो पत्नी—भृग और राक्षसों में समन्वित है ॥१४१—१४२॥ हे श्वेत वाहन ! यदि आप भुक्तियों भोजन कराने में ममयें हैं तभी मेरी यह व्याधि जीवू ही नष्ट हो जायगी ॥ १४३ ॥ पहिले समय में विजय नाम वाले से छाण्डवी नाम की उस पुरी को भङ्ग करके इनको वन बना दिया था इसी कारण से यह छाण्डव वन है । हे श्वेत वाहन ! यह सबों के द्वारा विहित वन मेरे ही लिए था । इन्द्रदेव के विराघ में मैं स्वयं इसका भाग करने का उरसाह नहीं करता हूँ ॥१४४—१४५॥ हे महाभान ! इसी कारण से आप परित्राण करिए और उस वन में नियोजन कीजिए । जिस रीति से मैं सम्पूर्ण का भोग करने के लिए आपसे प्रसाद में मैं समय हो सकता हूँ ॥ १४६ ॥ महान् बलवान् सध्यगाधी न उससे इस यवन का ध्वजन करके उस सम्पूर्ण वन का ओं कि प्राणियों से समन्वित था दाध कर दिया था ॥१४७॥

देवकीतनयनामो यामुदेयेन पालितः ।

छाण्डव दाहयामाग ज्वलनरय हिते रत ॥१४८॥

गुप्रीत प्रददो सम्मादजुं नाय महारमने ।

यहिनर्धनुश्च गाण्डीव वारुण दधनिर्मितम् ॥१४९॥

अक्षये चेपुर्धो दिव्ये रूपादपाशचतुरो ह्याग ।

एनूमताधिष्टित तु महान्त वानरध्वजम् ॥१५०॥

पट्टं च त्रिशिष्य तोदण दहन गध्यसाधिने ।

नीरोगयाभयद् यहिनमनया जिष्णुप्रमादतः ॥१५१॥

सैर्याजेनेन धनुषा मेन राक्षसेन धेनुता ।

तदध्वग्यन्दमेनापि विजिग्ये पात्सुनो रिपून् ॥१५२॥

एव भैरववंशेषु सञ्जातो विजयो नृपः ।

छाण्डव नाम विपिन चकार सुमहाकृती ॥१५३

विजयस्य सुता जातस्त्रयोदश महाबलाः ।

द्युतिमान् सौम्यदर्शी च भूरि, प्रद्युम्न एव च ॥१५४

क्रतुस्तुण्डो विरूपाक्षो विक्रान्तोऽय घनजयः ।

प्रहर्षं प्रबलं केतुस्तथोपरिचरोऽपरः ॥१५५

यह देवरी के आत्मज भगवान् वामुदेव के द्वारा पालित है ।

धर्म के हित करने में रति रखने वाले ने उन छाण्डव वन की जला दिया था ॥१५३॥ परम प्रमग्न होकर वह्नि ने इसी कारण से महारमा अर्जुन को माण्डवी घनप जो देवी द्वारा निमित्त और वाष्प या प्रदान किया था ॥ १५६ ॥ और अक्षय—दिव्य औषधियां दी थीं और मुरूप में मधुत चार अश्व—हनुमानजी में अधिष्ठित बानर ध्वजा वाला महान् रथ—खड्ग—धीष्ण शिवाख अग्नि ने मध्य साक्षी (अर्जुन) को दिये थे । तथा विष्णु के प्रसाद में वह्नि रथ से रहित हो गया था ॥१५०—१५१॥ फाल्गुन (अर्जुन) ने उन वाणों में—उत्त घनप में—खड्ग में—केतु से उन अश्वों वाले रथ में सत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी ॥ १५२ ॥ इस प्रकार से भैरव के वंशों में विजय नृप जो महा यादृति वाला था उसने छाण्डव को विपिन कर दिया था ॥ १५३ ॥ विजय राजा के महान् वन वाले तरह पुत्र हुए थे । उनके नाम द्युतिमान्—सौम्यदर्शी—भूरि—प्रद्युम्न—क्रतु—स्तुण्ड—विरूपाक्ष—विक्रान्त—घन-जय—प्रहर्ष—प्रबल—केतु और उपरिचर थे ॥ १५४—१५५ ॥

एषा राजाऽभवद् वीरः शेषोपरिचरस्तु यः ।

वाराणस्या नगर्या यो यज्ञलक्ष पुराऽकरोत् ॥१५६

लक्षयज्ञकरः कोऽपि नासीन्नापि भविष्यति ।

राजा क्षितौ महाभागो यवोपरिचरस्तथा ॥१५७

एषां सृतिप्रसूतेश्च व्याप्त सर्वमिदं जगद् ।

चिरेण तान् क. सख्यातुं शक्नोति भुवि मानुष. ॥१५८

क्रमाद् भैरववशेन व्याप्त लोकत्रयं स्थितम् ।

एतद् च. कथित विप्रा. सन्तानं भैरवस्य तु ॥१५९

येषा श्रुत्वा कथामात्रे नापुत्रो जायते नरः ।

इदं य कीर्तयेत् पुण्य चरितं विजयस्य तु ॥१६०

सततं विजयस्तस्य जायते न पराभव ।

एकाग्रमनसा यस्तु शृणुयादिदमुत्तमम् ।

तस्य वशस्य विच्छेदो न कदाचिद् भविष्यति ॥१६१

इत सब ॥ राजा वीर हुआ था जो शेषोपरिचर था जिसने वारोणसी नगरी में पहिले एक लाख यज्ञ किये थे ॥ १५६ ॥ एक लाख यज्ञों के करने वाला कोई भी नहीं हुआ था और न भविष्य में भी होगा । पृथ्वी में महाभाग राजा था वह जैसा उपरिचर था वैसा ही था ॥१५७॥ इनके पुत्र—पौत्र—प्रपौत्रों से ही यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । भूमण्डल में ऐसा कौन-सा मनुष्य है जो बहुत लम्बे समय में भी उनकी गिनती कर सकता हो । अर्थात् ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है ॥१५८॥ क्रम से भैरव के वश से यह तीनों ही लोक व्याप्त हो रहे हैं । हे विश्वेश ! यह मैंने आपके समक्ष में भैरव की सन्तति का वर्णन कर दिया है । इनकी केवल कथा ही का श्रवण करके जो पुत्र रहित होवे ऐसा वह कभी भी हो नहीं सकता है । विजय के इस परम पवित्र चरित्र का कीर्तन किया करता है उसका सदा ही विजय ही होगा है और पराभव कभी भी नहीं हुआ करता है । जो एकाग्र मन से इस उत्तम चरित्र का श्रवण करता है उसके वश का विच्छेद कभी भी नहीं हुआ करता है और न होगा ही ॥१५९—१६१॥



॥ घोड शोपचार वर्णन ॥

उपाचारान् प्रवक्ष्यामि शृणु घोडन भंरव ।

यं सम्यक् तुष्यते देवी देवोऽप्यन्यो हि भविततः ॥१॥

आमनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा ।

धान्यं वा चामरं वा शो मण्डलस्योत्तरे सृजेत् ॥२॥

यदंश दीयते पद्मे मण्डलस्य तदुत्सृजेत् ।

वाक्पुष्पतोयं कुसुमं विना यच्छादकं भवेत् ॥३॥

पद्मस्य तद्वह्निर्देशे द्वारादौ विनिवेदयेत् ।

अर्घ्यं पाद्यं चाचमनं स्नानीय मेत्रैरञ्जनम् ॥४॥

मधुपर्कं च गन्धं च पुष्पं पद्मे निवेदयेत् ।

प्रणिमामु च प्रदयोग्यं गात्रे दातुं च तत् तनौ ॥५॥

दद्याद् योभ्यं तु पुरतो नैवेद्यं भोगनादिकम् ।

पौष्पामव यद् विहितं यस्य तद् यदि गर्भकम् ॥६॥

निवेदयेत् तदा पद्मं विगुलं द्वारि चोरमृजेत् ।

पौष्पं पुष्पोधरचित्तं कुशसूत्रादिसमुत्तम् ॥७॥

अतिप्रीतिकरं देव्या ममाप्यन्यस्य भंरव ।

यज्ञकाष्ठसमुद्भूतमासनं मसूणं शुभम् ॥८॥

श्री भगवान् ने कहा—हे भंरव ! मैं अब मोलह उपचारों का वर्णन करता हूँ । उनका प्राण श्रवण कीजिए । शक्ति भाव से निवेदन देवी भर्ता भाति मे मन्त्रुष्ट दृष्टा करती है और अत्यदेव श्री परम प्रमन्न होने हैं । १ । सबसे प्रथम आसन देना चाहिए । वह आमन पौष्प हो अथवा क छ का होवे । चाह वह वस्त्र वा हा—जमं वा हो वा शोण होव । उसे मण्डल के उत्तर की ओर ही सज्जन करना चाहिए । २ । जिस समय मे यह पद्म मे दिया जाता है उसे मण्डल के उत्तर मे ही रेंवे । कुसुम के बिना वाक् पुष्प और जल से आ छादक होवे । ३ । उस पद्म के बाहिर के भाग मे द्वार आदि पर विशेष रूप से निवेदित

करना चाहिए । अर्घ्य—पाद—आचमन—स्नानीय—नेत्र रञ्जन—
मधुपर्क—गन्ध और पुष्प पत्र म निवेदित करे । और प्रतिमाआ म और
गात्र मे देन के लिये जो भी योग्य होवे वह तनु म दना चाहिए । और
नैवेद्य भोजन आदि जो होवे वह आगे देना चाहिए । पौष्पा सब जो
जिसको विहित किया गया है वह यदि गर्भव हो तो उस समय म पद्म
मे निवेदन करना चाहिए और विपुल को द्वार मे उच्छृङ्खल करे । पौष्प
जो होता है वह पुष्पो क समुदाय से रचिन हुआ करता है और कुश
तथा सूत्र आदि से सयुग होता है । हे भैरव ! यह देवी का—मेरा और
अन्य का भी अत्यधिक प्रिय करने वाला होता है । यज्ञ के काष्ठ से
समुद्भूत आसन ममृण और शुभ हुआ करता है । ४—८ ।

नोच्छ्राय नातिविस्तीर्णमासन विनियोजयेत् ।
अन्यद दारुभव चापि दद्यादासनमुत्तमम् ॥८६॥
सकण्टक क्षीरयुत दारुसारविवर्जितम् ।
चैत्यश्मशानसम्भूत वर्जयित्वा विभीतकम् ॥९०॥
वल्कल कोपज शाण वस्त्रमेतत् त्रय भतम् ।
रोमज कम्बल चैतदनेन तु चनुष्टयम् ॥९१॥
अनेन रचित दद्यादासन चेष्टभूतय ।
मिह्व्याघ्रतरक्षूणा छागम्य महिषस्य वा ॥९२॥
गजाना तुरगाणा च कृष्णसारस्य चमण ।
नमरस्याथ रामस्य मृगाणा नवभेदिनाम् ॥९३॥
धर्मभि सर्वदेवानामासन प्रीतिद थुनम् ।
वस्त्रेषु कम्बल शस्तमासन देवतुष्टये ॥९४॥
राक्षुव चार्मण श्रेष्ठ दारव चन्दनोद्भवम् ।
यच्चासन कुशमय तदासनमुत्तमम् ॥९५॥
मर्वेपामपि देवानामृषीणा च यतात्मनाम् ।
योगपीठस्य सदृशमासन स्थानमुच्यते ॥९६॥

आसन ऐसा होना चाहिए जो बहुत ऊँचा न होवे और न बहुत विस्तृत होना चाहिए । ऐसे ही आसन को विनियोजित करे । अन्य सबही से बनाया हुआ भी उत्तम दये । ६ । वह आसन दाह (काष्ठ) के मार से रहित तथा काँटा से युक्त एवं और से मयुक्त—चैत्य स्मशान में समुत्पन्न और भी तब का छोड़कर ही काष्ठ का आसन बनाना चाहिए । १० । वस्त्र के आसन के लिये बल्लभ (वृक्ष की छाल)—कापज नीर प्राण अद्यात् सनका—यही तीन आसन मान गये हैं । रोमज अर्थात् रामो में बनाया हुआ कम्बल—ये चार हात हैं । ११ । अपने दृष्टदंष्ट्र की भूमि के लिये इसक द्वारा विरचित आसन ही देना चाहिए । मिह—व्याघ्र—हरिण—छाग—महिष—गज—गुरग—कृष्ण स्तर स्वर—राम य मृगो के नौ भेद हैं । १३ । इनके चर्मों के द्वारा आसन बनाया जाया करना है जो ममो देवो के नियमों से देने वाला होता है—ऐसा मुना गया है । वस्त्रों के आसनो में कम्बल का आसन प्रशस्त होता है और देवों की तुष्टि के लिये हुआ जाता है । ११४ । चर्म के आसन में रज्जु के चर्म का आसन श्रेष्ठ होता है तथा काष्ठ के आसनो में चन्दन का श्रेष्ठ माना गया है । १५ । सभी देवों का मयन प्रायः वाले ऋषिमा का योग पीठ के सहज आसन तथा स्थान कहा जाता है ॥१६॥

आसनस्य प्रदानेन सौभाग्य मुक्तिमाप्नुयात् ।

शम्भरो रोहितो रामो न्यङ्कुरङ्कुशशाख ॥१७॥

एणश्च हरिणश्चेति मृगा नवविधा मताः ।

हरिणश्चापि विज्ञेयो पञ्चभेदोऽत्र भैरव ॥१८॥

शृङ्ग्य छङ्ग्यो रश्चर्चव पृषतश्च मृगस्तथा ।

एते वलिप्रदानेषु चर्मदानेषु कीर्तिता ॥१९॥

सर्वेषां तज्जसनाच्च आसनं श्रेष्ठमुच्यते ।

आयसा वर्जयित्वा तु काम्यं सीसवभेद वा ॥२०॥

शिलामय मणिमय तथा रत्नमय मतम् ।
 आसन देवनाभ्यस्तु भुक्त्यं भुक्त्यं समुत्सजेत् ॥२१॥
 अथैव साधकानां च आसनं शृणु भैरव ।
 यत्रासीन पूजयस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२२॥
 ऐश्वर्यं चामणं वास्त्रं तैजसा च चतुष्टयम् ।
 आसनं साधकानां च सततं परिकीर्तितम् ॥२३॥
 तत् सर्वमासनं शस्तं पूजाकर्मणि साधके ।
 न यथेष्टासनो भूयान् पूजाकर्मणि साधक ॥२४॥

देवी के लिये आसन के समर्पण से परम सौभाग्य और मुक्ति की प्राप्ति की जाया करती है । मृग नौ प्रकार के माने गये हैं अर्थात् निम्नाङ्कित इनके नौ भेद हात हैं—शम्बर—रोहित—राम—न्यङ्क—अकुशला—रुद्र—राण और हरिण—ये नौ भेद हैं । हे भैरव ! हरिण भी यहाँ पर पाँच भेदों वाला समझना चाहिए । १७।१८। ऋष्य—खड्ग—रक्त—पृषत—तथा मृग—ये बलि के प्रदान करने में तथा धर्म दान में कीर्तित किये गये हैं । १९। और सभी तैजसों के आसन परम ध्येष्ठ कहे जाया करते हैं । घातु के आसनो में केवल लौह को छोड़कर काँसा—सीसा—शिलामय—मणिमय—ये रत्नमय माने गये हैं । देवताओं के लिये आसन मुक्ति अर्थात् सासारिक मुखो के उपभोग और मुक्ति अर्थात् सासारिक बन्धनो में छुटकारा पाने के लिये समुत्सजित करना चाहिए । १२०।२१। हे भैरव ! और यहाँ पर ही साधना करने वालों के आसनो के विषय में भी श्रवण कर लीजिए । जिन पर बैठ कर अभ्यर्चन करता हुआ सब प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति कर लिया करता है । २२। साधकों के लिये चार प्रकार के आसन निरन्तर बताये गये हैं—ऐश्वर्य (बाहुवा)—चामण (धमक)—वास्त्र (वस्त्रवा)—और तैजस अर्थात् घातु निमित्त ये चार हैं । २३। साधक को पूजा के कर्म में वे सभी आसन प्रशस्त होने हैं ॥२४॥

काष्ठादिकासन कुर्यात् सितमेव मदा जुघः ।
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासन मतम् ॥२५॥
पोडशांगुलविस्तीर्णमुच्छ्राय चतुरंगुलम् ।
पडङ्गुलं वा कुर्यात् तु नोच्छ्रितञ्जान आचरेत् ॥२६॥
पूर्वोक्तं वर्जयेद् वर्ज्यमासन पूजनेष्वपि ।
वस्त्रं द्विहस्तान्नो दीर्घं साध्वहस्तान्न विस्तृतम् ॥२७॥
न त्र्यङ्गुलान् तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि साधयेत् ।
यथेष्ट चामणं कुर्यात् पूर्वोक्तं सिद्धिदायकम् ॥२८॥
पडङ्गुलाधिकं कुर्यान्नोच्छ्रितं च कदाचन ।
काम्बलं चामणं शैलं महामायाप्रपूजने ॥२९॥
प्रशस्तमासनं प्रोक्तं कामाख्यायास्तथैव च ।
त्रिपुरायाश्च सततं विष्णोश्चापि कुशासनम् ॥३०॥
बहुदीर्घं बहुच्छ्रायं तथैव बहुविस्तृतम् ।
दारुभूमिसमं प्रोक्तं अमरमापि सर्वकर्मणि ॥३१॥
पृथक् पृथक् कल्पयेत् तु बहिर्द्वारं तथासनम् ।
न पत्रमासनं कुर्यात् कदाचिदपि पूजने ॥३२॥

दुध पुरुष को चाहिए कि सर्वदा काष्ठ आदि का आसन सित
ही रखे । काष्ठ का आसन चौबीस अंगुल प्रमाण वाला दीर्घ
होना चाहिए—यही शास्त्र—मम्मन होता है ॥ २५ ॥ मोलह
अंगुल के विस्तार से मुकन और चार अंगुल ऊँचाई वाला
होना चाहिए । अथवा छे अंगुल ऊँचा करे । इससे ऊँचा कभी नहीं
करे ॥२६॥ पूर्व में कहे हुए को बर्जित कर देवे । जो आसन बर्जित हैं
वह पूजन में वर्जन के ही योग्य होता है । वस्त्र का आसन दो हाथ में
बड़ा नहीं होना चाहिए । और डेढ़ हाथ से अधिक विस्तृत नहीं होवे ।
॥ २७ ॥ तीन अंगुल में ऊँचा आसन कभी भी पूजा के कर्म में साधित
नहीं करना चाहिए । धर्म का आसन जितना भी अभीष्ट हो करे ।

पूर्व में वर्णित आसन मिट्टि का प्रदान करने वाला हुआ करता है । १२८।
 छे अगुन के ऊँचा रूसी नी नही बना चाहिये । कम्बल का आसन
 तथा चर्म का आसन और शैल अर्थात् शिला का आसन महामाया के
 प्रकृष्ट पूजन में परम प्रशस्त आसन कहा गया है तथा कामाख्या देवी के
 पूजन में इसी को श्रेष्ठ बनाया गया है । मन्दा त्रिपुरा देवी के पूजन में
 और भगवान् विष्णु के अर्चन में भी कुशा का आसन प्रशस्त माना गया
 है । १२५।३०। बहुत दीर्घ—बहुत ऊँचा—और बहुत विस्तार वाला
 काष्ठ और भूमि के समान ही कहा गया है और पापाण का भी आसन
 सभी कर्मों में प्रशस्त होना है । ३१। द्वार में बाह्य आसन पृथक्-
 पृथक् ही कल्पित करे । पत्रों का आसन कभी पूजन में नहीं करना
 चाहिए ॥३१॥३२।

न प्राप्यङ्ग-समुद्गतमस्थिज द्विरदादृते ।
 मातङ्गदन्तसञ्जात कामिकेष्वामन चरेत् ॥३३
 चार्मं पूर्वोदित ग्राह्य तथा गन्धमुगस्य च ।
 सलिले यदि कुर्वीत देवताना प्रपूजनम् ॥३४
 तत्राप्यासन आसीनो नोत्थितस्तु कदाचन ।
 तोये शिलामय कुर्यादासन कीशमेव वा ॥३५
 दारव तंजम वापि मान्यदामनमाचरेत् ।
 आसनारोपनस्थान स्यानाभावे तु पूजक ॥३६
 आसन कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेज्जले ।
 यथासित् न मस्थान विद्यते तोयमध्यत ॥३७
 अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजा समाचरेत् ।
 इत्येतत् कथितं पुत्र पूज्यपूजकसङ्गतम् ॥३८
 आसन पाद्यममुना शृणु वेताल भैरव ।
 पादार्यमुदकं पाद्य केवल तोयमेव तत् ॥३९
 सन् तंजसेन पात्रेण शयेनापि प्रदापयेत् ।
 घर्मायंकाममोक्षाणा मस्थान पाद्यमिष्यते ॥४०

यज्ञ की छोड़कर किसी भी प्राणी के अङ्ग में निमित्त आसन तथा उत्सियों में रचित आसन ग्रहण नहीं करे। मातृङ्ग के दोनों में निमित्त आसन कर्मिक कर्मों में समाचरित करना चाहिए। ३३। कर्म का आसन नहीं ग्रहण करना चाहिए जो पूर्व में कहा गया है। तथा गन्ध मृग के कर्म का आसन लेवे। यदि जल में देवताओं का पूजन करे। वहाँ पर भी आसन पर बैठे हुए मातृङ्ग को कभी भी उठना नहीं चाहिए। जल में गितामय जलवा कुत्ता का ही आसन करे ॥३४॥३५॥ काष्ठ का अथवा सज्जम अर्थात् घातु निमित्त आसन का ग्रहण करे तथा अग्न्य आसन को नहीं समाचरित करे। स्नान के उपरांत भक्तों पूजक आसन का आरोप के सम्मान को ही आसन कल्पित करवे। मन में जल में पूजन करे। यदि जल के मध्य में बैठने का सम्मान नहीं होवे तो अग्न्य स्नान में ही बैठकर उक्त समय में देव की पूजा का समाचरण करना चाहिए दे पुनः। यही आपको देने पूज्य और पूजक का जो मङ्गल विषय है वह कह कर देना दिया है ॥३६॥३७॥३८॥ ह वेनाल भैरव। आसन और इसमें पाद का धारण कीजिय। चरणों के प्रक्षालन के लिये जो जल है वही पाद होना है अथवा केवल वह अक्ष ही होना है। ३६। वह पाद किसी उत्तम घातु में निर्मित पात्र के द्वारा और शंख के द्वारा भी देना चाहिए। पात्र घर्ष-त्रय-नाम और मोक्ष का नम्यन होना है ॥४०॥

तदाममोत्तर दक्षामूलमन्त्रेण यवतः।

भृशपुष्पाक्षर्तश्चैव सिद्धार्थश्चन्दनंनया ॥४१॥

तार्थगन्धैर्यथातत्पर्यै दद्यात् तु सिद्धये।

अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ॥४२॥

पुत्रानु-मुखमोक्षाणि दानादर्थ्यस्य वै १ भेत् ।

न दद्याद् भान्करारार्घ्यं जलनोर्यविचक्षण ॥४३॥

नद्या न शुविनपात्रेण विध्वेज्यं निवेदयेत् ।

दद्यादाचमनीयं तु मुगन्धिमलिनं शुभं ॥४४॥

कर्पूरवामितंवापि कृष्णागुरुविधूपितः ।

यथा तथा सुगन्धैर्वा प्रसङ्गं फेनवर्जितं ॥४५॥

तत् तैजसेन पात्रेण शस्त्रेणापि प्रदापयेत् ।

उदकं दीयते यत् तत् प्रसन्नं फेनवर्जितम् ॥४६॥

आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते ।

केवलं तोयमात्रेण तद् वा दद्यात् मिश्रितम् ॥४७॥

वासितं तु सुगन्धाद्यं कर्तव्यं यदि लभ्यते ।

आयुर्वलं यशोवर्द्धिं प्रदायाचमनीयकम् ॥४८॥

उक्त समय में आसन के उत्तर में सभी ओर में मूल मन्त्र के द्वारा कृष्ण-पुष्प-अक्षत-सिद्धार्थ-चन्दन तथा यथा लब्ध अर्घ्य जो भी प्राप्त हो सकें जमी से सिद्धि के लिये अर्घ्य देना चाहिए । अर्घ्य में कामनाओं का लाभ होना है और अर्घ्य देने में धन की प्राप्ति हुआ करती है । ४५। ४६। अर्घ्य में पुत्र-आयु सुख-मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है । विचक्षण पुरुष को कभी भी शस्त्र के द्वारा जल का अर्घ्य भास्कर के लिये नहीं देना चाहिए । ४३। सोप के पात्र से भगवान् विष्णु के लिए अर्घ्य निवेदित नहीं करे । सुगन्ध से युक्त जल में भी जो परम शुभ होवे आचमनीय समर्पित करे । ४४। कर्पूर में वासित और कृष्णा गुरु से धूपित मिश्र प्रकार से सुगन्धित होवें वैसे ही प्रसङ्गों से और फेनो से रहित जल में तैजस (धातु निर्मित) पात्र के द्वारा और शस्त्र के द्वारा भी निवेदित करे । जो भी जल दिया जाता है वह स्पृच्छ और फेनो से रहित ही होना चाहिए । ४५। ४६। देवों के लिए जो आचमन करने की जल दिया जाता है वह ही आचमनीय कहा जाया करता है । अथवा केवल जल ही में देवे और मिश्रित नहीं देवे । ४७। सुगन्धित पदार्थों से उस जल को वासित करे । यदि इस प्रकार से प्राप्त होता है । आचमनीय का समर्पण करने माघव आयु—बल और यश की वृद्धि प्राप्त किया करता है । ४८।

लभते साधको नित्य कामाश्चैव यथोत्थितान् ।
 दप्रिसंपिर्जल क्षौद्र सिता ताभिश्च पञ्चभि ॥४६
 प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवोद्यतुष्टये ।
 जल तु सर्वत स्वल्प मितादधिघृत समम् ॥४७
 सर्वेभ्य इचाधिक् क्षौद्र मधुपर्क प्रयोजयेत् ।
 तद् दद्यात् काम्यपात्रेण रोक्मश्चेतमयेन वा ॥४८
 ज्योतिष्टोमाश्चमेघादौ पूर्वं चेष्टे च पूजने ।
 मधुपर्कं प्रदिष्टोऽय सर्वदेवोद्यतुष्टिद ॥४९
 धर्मार्थकाममोक्षाणा माधक् परिकीर्त्तितम् ।
 मधुपर्कं सौम्यभोग्य-तुष्टि-पुष्टि-प्रदायक ॥५०
 पिष्टातकोऽय वस्तूरी रोचन कुङ्कुम तथा ।
 गुड क्षौद्र पञ्चगव्य सर्वोपधिगणस्तथा ॥५१
 सिता निर्णेजन तैल स्निग्धन्नेहेन तनुतिना ।
 प्राग्ने तोयमिति प्रोक्त्वा स्नानीय कल्पकोविदं ॥५२
 स्वर्णरत्नोदक चैव कर्पूराद्यधिवापिनम् ।
 नैजसं वान्यपात्रैर्वा शर्खैर्वा तन्निवेदयेत् ॥५३

माधक् अपने हृदय में उठे हुए मनोरथों की भी प्राप्ति किया करता है । सभी देवों की तुष्टि के निवे मधुपर्क दिया करना है । दधि—घृत—जल—मधु—मिथी—इन्हीं पाँचों से मिश्रित करके मधुपर्क बनाया जाता है । इनमें जल तो बहुत ही थोड़ा होना चाहिए और मिथी—घृत और दधि समान परिमाण में होने चाहिए । इन सबसे अधिक मधु मधुपर्क में प्रयुक्त करे । यह मधुपर्क बर्तन के पात्र के द्वारा—मुखर्त अथवा चाँदी के पात्र में ही समर्पित करे । ज्योतिष्टोम और अश्वमेध आदि में—पूर्व में और इष्ट में पूजन में यह मधुपर्क प्रविष्ट होता है जो सभी देवों के समुदाय की तुष्टि के निवे हुआ करता है ॥४६—५३॥ यह मधुपर्क घट—अर्घ्य—काम और मोक्ष का साधन कीर्तित किया गया है । मधु-

पर्क सौख्य—भोग्य—तुष्टि—पुष्टि का प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५३॥ पिष्टातक—कस्तूरी—रोचन—कुंकुम—गुड—मधु—पञ्च-
गव्य—सर्वोपघियो का समुदाय—सिता (मिश्री)—निर्णेजन—तैल—
स्निग्ध स्नेह में तिल—ग्रान्त में जल—ये सभी पदार्थों को कव्य कोविदों
के द्वारा स्नानीय अर्थात् स्नान का जल कहा गया है ॥५४—५५॥ इस
स्नानीय जल को स्वर्ण और रत्नों का जल जो कपूर आदि मुगन्धित
पदार्थों से अधिवासित करे और उसको तैजस अर्थात् उत्तम धातु पात्रों
के द्वारा—कैसे के पात्रों से अथवा शस्त्रों के द्वारा निवेदित करना
चाहिए ॥५६॥

मण्डले केशरे देयमादित्यप्रतिमासु च ।

शिवलिङ्गे तथा भोगे पीठे देवतानी तथा ॥५७

सद्य स्निग्धे मृन्मये वा सर्पि सिन्दुरजे तथा ।

श्रीचन्दनप्रतिष्ठे वा लेपयेत् प्रतिमातनी ॥५८

स्वस्तिस्थापिते खडगे स्नापयेद् दर्पणोऽथ वा ।

एव दद्यात् तु स्नानीय महादेव्यं विशेषतः ॥५९

रश्मि विष्णुशिवेभ्यो वा यत्र तत्र प्रपूजने ।

पूजकः स्नानदानात् तु चिरायुर्लभ्यते ॥६०

सम्यक् स्नानप्रदानात् तु कल्पान्तं स्वर्गभागभवेत् ।

यदेव दीयते पाद्यं गन्धपुष्पादिकं तथा ॥६१

उपाचारास्तथा सर्वानर्घ्यपात्राहितंजर्जलैः ।

अमृतीकरणाद्यंस्तु सस्मृतंस्त्वभिषिच्य तैः ॥६२

प्रदद्यादिष्टदेवेभ्यो गृह्णाति च ततः स्वयम् ।

अर्घ्यपात्राणि तंस्तोयेविना यद्विनिवेदनम् ॥६३

दीयते चेष्टदेवेभ्यः सर्वं तान्नष्फलं भवेत् ।

रागाल्मोभात् प्रमादाद् वा ह्यर्घ्यं पात्रामृतीकृतम् ॥६४

आदित्य की प्रतिमाओं में मण्डप में और बेजर में देना चाहिए ।

शिवजी के लिङ्ग में तथा भोग में—पीठ में तथा देवता के तनु में देना चाहिए । मद्य स्निग्ध में—मृत्तिका में निमित्त में—घृत और सिन्दूर से निमित्त में अथवा श्री चन्दन प्रतिष्ठ में प्रतिमा के तनु में लेपन करना चाहिए ॥ ५८ ॥ स्वास्तिक में स्थापित धि—खड्ग में अथवा दपण में स्नपन कराना चाहिए । इसी प्रकार से और विशेष रूप में महादेवी के लिये स्नानीय को समर्पित करना चाहिए ॥ ५९ ॥ मूर्य—विष्णु—शिव के लिये जहाँ—तहाँ पर पूजन में पूजक स्नानीय के समर्पण करने से विराम्य को प्राप्त किया करता है ॥ ६० ॥ भली भाँति स्नानीय के समर्पण करने से पूजक बल्क के अन्त तर स्वर्ग के निवास का अधिकारी हो जाया करता है । जिस समय में हो पाद्य तथा गन्ध और पुष्प प्रभृति दिये जाया करते हैं । तथा सभी उपचार समर्पित किय जात हैं । इन सबको अर्घ्य पात्र में अवदिन जलो से अमृतीकरण आदि कर तथा मुमस्तन करे और फिर उनके द्वारा अभिषिञ्चन करना चाहिए । इसके उपरान्त ही इष्ट देवों की मेषा में समर्पित करना चाहिए । उस समर्पित को देव स्वयं ही ग्रहण किया करते हैं । अर्घ्य पात्रों को उस प्रकार के जलो के बिना जो निवेदन किया जाता है । ऐसा जो समर्पण है जो अपने इष्ट देवों के लिये किया जाता है वह सभी समर्पण निष्फल ही हुआ करता है जो गगन से—शसाद में अथवा लोभ में किया जाया जाता है वह फल ही नहीं होता है । अर्घ्य पात्र में अमती हुन होना चाहिए ॥ ६१—६४ ॥

तोम स्रुत स्यान् पात्रान् पुनः कुर्यात् तदामृतम् ।

स्वल्पावशेषतोये तु पात्रस्यै ह्यमृतीकृते ॥ ६५ ॥

तस्मान्यदुदकं दद्यात् तत्तर्तनं वा मृतं भवेत् ।

बहूनि यदि पुष्पाणि माला वा प्रचुरा यदि ॥ ६६ ॥

दीयन्ते चार्घ्यपात्रस्थजले. सासिन्ध्य चोत्सृजेत् ।

अन्यतोयं दुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेऽरः ॥ ६७ ॥

तन्न गृह्णातीष्टदेवो दत्तं विधिशर्तरपि ।
 सस्कृते त्वर्घ्यपात्रे तु नवभिः प्रतिपत्तिभिः ॥६८॥
 तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि पीयूषाणि च सर्वतः ।
 तस्मात् तत्र स्थितस्तोयैरभ्युक्ष्योपचारानुत्सृजेत् ॥६९॥
 न योग्यमर्घ्यपात्रेषु निधाय विनिवेदयेत् ।
 इदं ते भैरव प्रोक्त पट्क चंवासनादिकम् ।
 वस्त्रादि दश वक्ष्यामि शृणु विज्ञानवृद्धये ॥७०॥

पात्र से जल लुप्त होता है फिर उसको अमृत करना चाहिए ।
 अमृतीकृत जल जब पात्र में स्वल्प अवशेष रहे तो उस समय में उसमें
 अन्य जल दे देवे । वह उससे ही अमृत हो जाया करता है । यदि बहुत
 से पुष्प होवें और यदि प्रचुर भासाएँ होवें तो अर्घ्य पात्र में स्थित
 जलो से ससिञ्चन करके दो जाया करती हैं और उक्त जन करना
 चाहिए । दूसरे जलो से जो अर्घ्य पात्र में स्थित से भिन्न होवें जो
 उत्सृजन किया जाये तो सैकड़ों विधियों से भी समर्पित किये गये को
 इष्टदेव ग्रहण नहीं किया करते हैं । नवीन प्रति पत्तियों के द्वारा सस्कृत
 अर्घ्यान् सस्नान किये हुए अर्घ्य पात्र में जो स्थित रहें हैं ॥६५—६८॥
 वहाँ पर तो सभी तीर्थ और सभी ओर से पीयूष स्वरूप स्थित रहा
 करते हैं । इस कारण से उसमें स्थित रहन वाल जल से ही अभ्युक्षण
 करके ही उपचारों का उत्सृजन करना चाहिए ॥ ६९ ॥ अर्घ्य पात्रों में
 योग्य को निधान न करके जो विनिवेदन करे वह निवेदन करना उचित
 नहीं होता है । हे भैरव ! आपके सामने यह व्यासन आदि का पयक
 वर्णन करके बताया दिया गया है । अब वस्त्रादि दश को दत्तलाऊँगा ।
 उवाचा आप श्रवण विज्ञान की वृद्धि के लिए करिये ॥७०॥

॥ देवाधरान के अन्य उपचार ॥

कार्पास कम्बल चाल्क फोशज वस्त्रमिष्यते ।
 ननुपूर्वं पूजयित्वेव मन्त्रं देवाय चोत्पत्तेन ॥१॥
 निदेश मत्तिन जोर्ण छिन्न गात्रावलिङ्गितम् ।
 परकीय ह्याखदष्ट मूत्रादिषु तथोपितम् ॥२॥
 उपलेश विधौ च इलेप्समूत्रादिद्रुपितम् ।
 प्रदाने देवतान्मयश्च इवे पित्र्ये च कर्मणि ॥३॥
 वज्रयेन् स्वोपयोगेन यज्ञादावपयोजने ।
 उत्तरीयोत्तरासङ्गं निचोलां मोदचलक ॥४॥
 परिधानं च पञ्चतान्यस्यूतानि प्रयाजयन् ।
 शाणं यस्त्र मिशारं च तथवानपवारणम् ॥५॥
 चण्डातकं तथा दृश्यं पञ्च म्यूतान्यदुष्टये ।
 पताकाध्वजकुण्डादौ स्मृतं वस्त्रं प्रयोजयन् ॥६॥
 अन्यत्रावरणादौ च तद्विनाशस्य तेन तत् ।
 रक्षन् पीशेयवस्त्रं च महादेव्यं प्रशस्यते ॥७॥
 पीतं तथैव पीशेयं वातुदेवाय चोत्सृजेत् ।
 रक्ते तु कम्बलं दद्याच्छिवाय परमात्मने ॥८॥

श्री भगवान् च ब्रूह—वयाम का अर्थात् मूत्रे निमित्त—कम्बल—
 घान्क अर्थात् छात्र मे रविज और बरेजज वस्त्र ही अभीष्ट हुआ करता
 है । उपरा ही पूर्व म मन्त्रो ने द्वारा पूजन करके देवी के चित्त उन्मूलित
 करना चाहिए । १ । निदेश अर्थात् जोडा के द्वारा ब्रह्मा तथा हुतरा
 हुआ—मैला—जोर्ण—छिन्न और गात्र म अवलिङ्गित अर्थात् धृष्ट पर
 धारण किया हुआ—पयया और चूही के द्वारा काटा हुआ—गुई म
 पिष्ट तथा छपित गुप्त केज और बिघोन एवं इलेप्सा मूत्र आदि म दूषित
 देवताओं के निवे प्रदान म और देव तथा पित्र्य कर्म मे वर्जित कर
 देना चाहिये । अपने उपयोग म यज्ञादिव म उपयाजन म उत्तरीय-वत्त-

रासङ्ग-निचोल-मोद घातक और परिधान--इन पीधों को बिना मिले हुए ही प्रयुक्त करने चाहिए सन की वस्त्र-निशार तथा आतप-वारण-घण्डा तक और दृश्य--इन पीधों को मिले हुए ही उत्सृजित करे । पनाका और घनजा तथा कुण्डादि में मिले हुए वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥१—६॥ और अन्यत्र आवरणादि में उससे उमके विनाश के होने से रक्त वस्त्र और कौशेय वस्त्र महादेवी के लिये प्रशस्त होता है । ७ । पीत और कौशेय (रेशमी) वस्त्र भगवान् वासुदेव के लिए उत्सृजन करना चाहिए । परमारमा शिव के लिए रक्त वर्ण का कम्बल समर्पित करे ॥७॥८॥

विचित्र सर्वदेवेभ्यो देवीभ्योऽणु निवेदयेत् ।
 कर्पास सर्वतोमद्व दद्यात् सर्वेभ्य एव च ॥६
 नैकान्तरक्त दद्यात् तु वासुदेवाय चैलकम् ।
 तथा नैकान्तनील तु शिवाय विनिवेदयेत् ॥१०
 नीलीरक्त तु यद्यस्त्र तत् सर्वत्र विवर्जितम् ।
 दैवे पित्र्ये तूपयोगे वर्जयेत् तु विचक्षण ॥११
 नीलीरक्त प्रमादात्तु यो दद्याद् विष्णवे युध ।
 निष्फला तस्य तत्पूजा तदा भवति भैरव ॥१२
 विचित्रं वाससि पुनर्लग्न नीलीविरञ्जितम् ।
 वस्त्र दद्यान्महादेव्यै नान्यस्मै तु कदाचन ॥१३
 द्विपदा आहाणो यद्वद्देवाना वासवो मथा ।
 तथा भूषणवर्गेषु वस्त्रमुत्तममुच्यते ॥१४
 वस्त्रेण जीर्यते लज्जा वस्त्रेण हीयते त्वधम् ।
 वस्त्रात् स्यात् सवत सिद्धिश्चतुर्वर्गप्रद च तत् ॥१५
 वस्त्र ते कथित पुत्र सर्वप्रीतिप्रदायकम् ।
 भोग्य भूयोत्तम नित्य भूषणानि शृणुष्व मे ॥१६
 समस्त देवों के लिये और देवियों के लिये विचित्र वस्त्र का

निवेदन करना चाहिए । क्यान का सर्वे तो भद्र सभी के लिये निर्धारित
 परे । ६ । एतान्तर रक्त अर्थात् बहुत ही नाम चेतन भवमान् वानुदेव के
 लिए नहीं निर्वेदित करना चाहिए । सभी मान् एव दम नीला बन्ध
 शिव के लिए नमस्ति नहीं करना चाहिए । १० । नील और रक्त जो
 भी वस्त्र है वह सभी अवस्था पर विशेष रूप में वर्णित होता है । विवशतः
 पुरुष को देव और पित्र के उद्धारों में उभरा वर्जन कर देना चाहिए ।
 जो वृद्ध पुरुष प्रभाद से नील रक्त वस्त्र को भवमान् विष्णु के लिए
 निवेदन करता है हे भर्तव ! उसकी वह पूजा निष्फल हो दूआ करती
 है । १२ । विचित्र वस्त्र में जो कोई नीले वर्ण की विराजित हुई होवे
 तो ऐसे वस्त्र को महादेवी के लिए ही निवेदन करना चाहिए अन्य
 किसी देवता को कभी भी निवेदन न करे । १३ । जिस रीति में दो
 पक्ष वालों में आश्रय और देवी में इन्द्रदेव होता है उसी रीति भूषण
 वर्णों में वस्त्र उत्तम कहा जाता करता है । १४ । वस्त्र में मन्त्रा जीर्ण
 होनी है और वस्त्र के द्वारा अष्ट होन अर्थात् नष्ट हो जाना है—वस्त्र से
 सभी प्रकार की निद्रि होनी है अतः वस्त्र चारों वर्णों का वस्त्र प्रदान
 करने वाला होता है ॥ १५ ॥ हे पुत्र ! आपके सामने यह वस्त्र सब
 प्रीति का देने वाला वह दिया गया है । यह भोपते के योग्य उत्तम
 भूषण है जो निम्न ही होता है । अब भूषणों के विषय में सुनने भव्य
 करो ॥ १६ ॥

किरीटं च शिरोरत्नं कुण्डलं च लज्जाटिका ।

तालपत्रं च हराश्च ग्रैवेयकमधोमिका ॥ १७ ॥

प्रालम्बिकारत्नमूत्रमुत्तमोत्तममालिका ।

पाशवर्णतो नखघोनी ह्यङ्गुलीच्छादकस्तथा ॥ १८ ॥

जूटानक मानवकी मूर्धतारास्तन्निवा ।

अङ्गदो वाहुवनय, शिखाभूषण इक्षिका ॥ १९ ॥

प्राग्दण्डवन्धमुदभासना भिपूरोऽय मालिका ।

सप्तवी शृङ्खला चैव दन्तपत्र च कर्णक ॥२०॥

ऊरुसूत्र च नीवी च मुष्टिवन्ध प्रकीर्णकम् ।

पादाङ्गद हसकश्च नूपुर क्षुद्रघण्टिका ॥२१॥

मुखपट्टमिति प्रोक्ता बलङ्कारा मुशोभना ।

चन्दारशदमी प्रोक्ता लोके वेदे तु सौख्यदा ॥२२॥

अलङ्कारप्रदानेन चतुर्वगप्रसाधनम् ।

एतेषा पूजनं कृत्वा प्रदद्यादिष्टसिद्धये ॥२३॥

तेषा देवतमुच्चाय पूजयेत् तु विचक्षणः ।

शिरागतानि वा दद्यात् सोवर्णानि तु सर्वदा ॥२४॥

भूषण वताये जात है—बिरीट—शिरोरत्न—कुण्डल—लता
टिका—ताल पत्र—हार—कैवपक—ऊमिका—प्रासाम्बिका—रत्न सूत्र-
उत्तूङ्ग—तक्ष मालिका पाशवत्यात—नख स्वात—अगुलीच्छादक—
अङ्गद—बाहुवलय—शिखा भूषण—झाङ्गक—प्राग्दण्डवन्ध—उद्भासना-
भिपूर-मालिका-सप्तमी-शृङ्खला-दन्तमत्र कर्णक—ऊरुसूत्र—नीवी—मुष्टिबन्ध-
प्रकीर्णक—पादाङ्गद—हसक—नूपुर-क्षुद्रघण्टिका—मुख पट्ट—ये परम मुशोभन
अलङ्कार कहे गए हैं । ये कुल घालीस हत्त हैं जा ताक ओर वेद म
सौख्य क प्रदान करन वाल ह ॥१७-२२॥ अलङ्कार क प्रदान
करन स चारो (घम अथ-वाम-माध) वर्गों का प्रसाधन हाता है ।
इनकी पूजन करक ही इष्ट की सिद्धि क लिए समपण करन चाहिए ।
॥२३॥ विचक्षण पुरुष का उनक देवत का उच्चांगण करक ही पूजन
करना चाहिए । अथवा शिरोगत सोवर्णों का सर्वदा समर्पित करना
चाहिए ॥२४॥

चूडारत्नादिवानीह भूषणानि तु भंरव ।

प्रवयवादिहसान्त सोवर्ण राजत च वा ॥२५॥

निवेदयत् तु देवेभ्यः नान्यत् तंजससम्भवम् ।

रीतिरङ्गादि सजात पात्रोपकरणादिकम् ॥२६॥

दद्यादायुसमर्जं तु भूषणं न कदाचन ।
 घटाचामरकुम्भादिपात्रोपकरणादिकम् ॥२७॥
 तद्भूषणान्तरे दद्यादस्मान् तदुपभूषणम् ।
 सर्वं ताम्रमयं दद्याद यत् किंचिद् भूषणादिकम् ॥२८॥
 सर्वत्र स्वर्णं च ताम्रमय्यपात्रे ततोऽधिकम् ।
 पूजार्घ्यपात्रनवेद्याधारपात्रं च पानकम् ॥२९॥
 श्रीदुग्धरं सदा विष्णोः प्रीतिदं तोषदं तथा ।
 ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः गदा ॥३०॥
 मयंप्रीतिकरं ताम्रं तस्मात् ताम्रं प्रयोजयेत् ।
 स्वोपयोगे नरः कुर्याद् देवानामपि भैरव ॥३१॥
 प्रीवोर्ध्वदेशे रौप्यं तु न कदाचिच्च भूषणम् ।
 प्रावारं पानपात्रं च गण्टकीं गृहमेव च ॥३२॥

हे भैरव ! चडा गन आदि भूषण यै देवक मे आदि लेकर
 हंस के अस्त तन मय मुवर्ण ने निर्मित होये अथवा रजत (चाँदी) मे
 रचित होने चाहिए । २५ । इन्ही को देवताओं के लिए समर्पित करना
 चाहिए और अन्य तेजस अर्थात् घातुओं मे विश्वितों को निवेदित नहीं
 करना चाहिए । रीति रङ्ग आदि मे निर्मित पात्र और उपकरण आदि
 ही होने चाहिए । २६ । आमसमर्जं भूषण कभी भी निवेदित नहीं करे ।
 घटा चामर कुम्भ आदि पात्र तथा उपकरण आदि होने हैं । २७ । इन
 भूषणों की बीच मे हमसे उपभूषण देवे । सब ताम्रमय ओ कुछ भी
 भूषण आदि हैं निवेदित करे । २८ । सर्वत्र ताम्र स्वर्ण की ही तरह से
 देवे और अर्घ्य पात्र मे अधिक देना चाहिए । पूजा का अर्घ्य पात्र--
 नवेद्य का आधार पात्र--पालक है । २९ । भगवान् विष्णु के लिए सदा
 उदुग्धर (गूजर वृक्ष) मे निर्मित प्रीति तथा मन्तोष देने वाले होते है ।
 ताम्र पात्र मे देवगण प्रमग्न हुआ करते हैं क्योंकि ताम्र मे देव सदा
 स्थित रहा करते हैं । ३० । ताम्र सर्वके लिए प्रीति का बरने वाला

हुआ करता है अतएव ताम्र वा प्रयोग करना चाहिए । हे भैरव ! अपने उपयोग में भी ताम्र का ही प्रयोग करे और देवगणों के भी उपयोग में इसका प्रयोग करना चाहिए । ३१ । शीश के ऊपर के भाग में कभी भी रोप्य (चांदी का) भूषण का प्रयोग न कर । अथ उपभूषण बनाए जाते हैं-प्राकार-दान पात्र-गण्डव और गृह है ॥३२॥

पर्यङ्कादि यदन्तच्च सर्वं तद्रूपभूषणम् ।
 अयोमयमृते कास्यमृते यद्भूषण भवेत् ॥३३॥
 स्वर्णरोप्यस्य चाभावे त्वध काये नियोजयेत् ।
 एतेषा भूषणादीना तद् दातुं शक्यते नरं ॥३४॥
 तत् तद् दद्यात् सम्भवे तु सर्वमेव प्रदापयेत् ।
 चतुर्वर्गप्रदं त्वित्य भूषणं सर्वसौख्यदम् ॥३५॥
 तुष्टिपुष्टिप्रोतिकरं यथाशक्तोष्टये सृजेत् ।
 इव वा भूषणं प्रोक्तं सवदेवस्य तुष्टिदम् ॥३६॥
 गन्धं च सम्यक् शृणुत पुत्री वेतालभैरवी ।
 चूर्णीकृतो वा धूष्टो वा दाहाकपित एव वा ॥३७॥
 रसं सम्मदं गो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा ।
 गन्धं पञ्चविधं प्रोक्तो देवानां प्रीतिदायक ॥३८॥
 गन्धचूर्णं गन्धपत्रं चूर्णं सुमनसस्तथा ।
 प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि तु ॥३९॥
 तानि गन्धवहानि स्युः सगन्धं प्रथमं स्मृतं ।
 धूष्टो मलयजो गन्धं सचूर्णीकृतमेव वा ॥४०॥

पर्यङ्क आदि जो और हमारे हैं वे सब उपभूषण हैं । जो अयो-
 मय अर्थात् लोह से पूरिपूण के बिना और कांसे के बिना भूषण होता है
 वह सुवर्ण और रोप्य के अभाव में शरीर में नीचे नियोजित करना
 चाहिए । इन भूषण आदि में जो भी करो के द्वारा दिया जा सकता
 है, वही वही सम्भव होने पर सब ही देना चाहिए । इस प्रकार से

भूषण चतुर्वर्ग का दाता और सब मौख्य का प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥३३—३५॥ अपनी शक्ति के ही अनुसार तुष्टि और पुष्टि के करने वाला यह इष्ट के लिए मृजन करे । अथवा यह सभी देवी की तुष्टि का देने वाला भूषण कहा गया है । ३६ । हे पुत्री ! हे वेताल और पैरव ! अब सभी शक्ति गन्ध का श्रवण कीजिए । यह गन्ध पाँच प्रकार का होता है जो देवी की प्रीति को प्रदान करने वाला है । चूर्णों वृत्त—पृष्ठ अर्थात् घिसा हुआ—दाह को आरपिण करने वाला—सम्पदन से समुत्पन्न रस अथवा प्राणी के अङ्ग से उद्भूत ये ही पाँच भेद हैं ॥३७॥३८॥ गन्ध का चूर्ण—गन्ध पत्र—पुष्पों का चूर्ण—प्रशस्त्र गन्ध से पुष्पों के पत्रों का चूर्ण जो हैं वे सब गन्ध बढ़ होत हैं । वह प्रथम गन्ध कहा गया है । पृष्ठ मन्त्र से समुत्पन्न गन्ध है जो मन्त्र के द्वारा चूर्णीकृत है ॥३९॥४०॥

अगुरुप्रभृतिश्चापि मन्त्र पद्ध प्रदीयते ।
गन्धो हृष्टवामघृष्टोऽप्य द्वितीय परिकीर्तित ॥४१॥
देवदावंगुरुपद्मगन्धराशान् चन्दना ।
प्रियादीना च यो दग्ध्वा गृह्यते दाह्यां रस ॥४२॥
मदाहावर्षितो गन्धस्तृतीय परिकीर्तित ।
मुगन्धकरवीविल्वगन्धोऽपि तिलक तथा ॥४३॥
प्रभृतीना रसो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते ।
ससम्पदोद्भवो गन्ध सम्पदंज इतोप्यते ॥४४॥
मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोषोद्भव एव वा ।
गन्ध प्राप्यङ्गज प्रोक्तो मोदद स्वर्गवानिनाम् ॥४५॥
चूर्णं गन्धमाराध क्षोदे घृष्टे च सस्त्रियता ।
चन्द्रभागादयश्चापि रसे पद्धे च सङ्गता ॥४६॥
गन्धतार सक्तरस गन्धादौ च प्रयुज्यते ।
मृगनाभिर्भवेद् घृष्टश्चूर्णोऽप्यन्यस्य योगत ॥४७॥

तय सर्वं तु सर्वत्र गन्धो भवति पञ्चधा ।

धृष्टादिभावादन्योन्य गन्ध प्रीतिवर पर ॥४८॥

अगुरु प्रभृति भी गन्ध है जिसका पंख प्रदान किया जाया करता है । घिम वर भी अधृष्ट गन्ध द्वितीय कहा गया है । ४९ । देव दाह—अगुरु—पद्म—ब्रह्मा मान शारान्न चन्दन प्रियादि वा जो दाह वाके ग्रहण किया जाता है वह दाह मे समुत्पन्न रस है । ४२ । दाह के साथ आकर्षित गन्ध नीमरा कहा गया है । मृगन्ध—रखी—वित्त गन्धी—निलक प्रभृति का जो रस है वह निषोढन वाके ही परिग्रहीत किया जाया करता है । वही मम्मदं मे उत्पन्न गन्ध सम्मदंज—इस नाम से अभीष्ट हुआ करता है ॥४३॥४४॥ मृग की नाभि से समुत्पन्न—उसके कोप उद्भूत गन्ध प्राणी के अङ्ग मे जायमान कहा गया है जो स्वर्ग के निवासियों का भी मोह देने वाला है । ४५ । वर्षुर गन्ध साराष्ट्र छोद के धृष्टि होने पर मन्धिन होते हैं । चन्द्र भाग आदि भी रस म और पक मे सङ्गत हैं । ४६ । गन्ध सार सर्व रस और गन्धादि मे प्रयुक्त किया जाता है । मृग नाभि और धृष्ट चूर्ण भी अन्य के योग से होता है । ४७ । इस रीति मे सभी जगह पर गन्ध पाँच प्रकार का होता है । धृष्ट आदि भाव से परस्पर मे पर गन्ध प्रीति के करने वाला होता है ॥४८॥

गन्धस्य विस्तरो भेद प्रोक्त कान्तीयकादय ।

सर्वं पञ्चविधेऽप्येव प्रविष्टो भवति क्षणात् ॥४९॥

गन्धो मलयजो यस्तु दैवे पित्र्ये च सम्मत ।

तस्य पङ्क्तौ रसो वापि चूर्णो वा विष्णुतुष्टिद ॥५०॥

सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भव ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयज सदा ॥५१॥

कृष्णागुरु सकर्पूर सहितो मलयोद्वय ।

वैष्णवीप्रीतिदो गन्ध कामाद्यायाश्च भैरव ॥५२॥

जवा, तर्कारीका, कुम्भक, नगर कणिका, रोचना, चम्पक, आम्नातक,
चाण, दवंरामल्लिका—यशोक, मोघ निन्न अटम्प, जिगीप, ममी,
टोण, पद्म, उत्पल, तकारण, प्रेनारण शिमध्य पनाश खदिर, वनमाना
मेवन्ती, कुमुद, कदम्ब ॥६१—६४॥

चक्र कोकनद खंख तण्डिलो गिग्निगिका ।

नागकेशरपुन्नागो केतकयज्जलिका नया ॥६५

दीहदा बीजपूरञ्च नमेरु क्षाल एव च ।

अपुपो चण्डविम्बश्च झिण्टो पञ्चविधास्तथा ॥६६

एवमाद्युक्तकुमुदं पूजयेद् वरदा शिवाम् ।

अपामार्गस्य पत्र तु ततो भृङ्गारपनकम् ॥६७

ततोऽपि गन्धिनीपत्र वलाहकमन परम् ।

तस्मान् खदिरपत्र तु वज्जुलस्तवक मया ॥६८

आम्र तु ववगुच्छ तु जम्बुपत्र तत्र परम् ।

बीजपूरस्य पत्रं तु ततोऽपि कशपत्रकम् ॥६९

दूर्वाङ्गु तत आम्र शमीपत्रमन परम् ।

पद्ममालव तस्मादाम्रं पद्ममन्तव ॥७०

मवेतो विल्वपत्र तु देव्या प्रीतिनर मतम् ।

पुष्प कोकनन्द पद्म जवा वन्मुद एव च ॥७१

पत्र विल्वस्य मवम्भो वैष्णवीतुष्टिद मतम् ।

सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्ममिहोत्तमम् ॥७२

चक्र, कोकनद, तण्डिल, गिग्निगिका, नाग केशर, पुन्नाग,
केतकी, यज्जलिका, दीहदा, बीजपूर—नमेरु, क्षाल, अपुपो चण्डविम्ब,
झिण्टी पाँच प्रकार की एवमादि कहिय पुष्पों व द्वारा वरदा शिवा
का भजन करना चाहिए । अपामार्ग के पत्र, भृङ्गार के पत्र, गन्धिनी
कुपत्र, वलाहक इगते भी पर है । उसमे खदिर का पत्र, वज्जुलान्न-
क, आम्र, ववगुच्छ, इगम भी पर जम्बु का पत्र, बीजपूर का पत्र,

इससे भी पर युग पत्र है ॥ ६५—६६ ॥ इससे भी पर दूर्वा का अक्षुर
बहा गया है । इससे पर शमी का पत्र इससे पर आमलक पत्र और
उमने अन्न न आमल पत्र है । सबसे अधिक प्रीति के करने वाला देवी
की विलम्ब पत्र होता है । बानन्द पुष्प, पद्म, जवा, बन्धुव—इन
सबसे विलम्ब का पत्र वैष्णवी देवी की तुष्टि देने वाला माना गया
है । मय पुष्पा की जलिया म रत्न पद्म अतीव उत्तम होता है ।

॥ ७०—७२ ॥

रत्नपद्मगङ्ग्येण यो माता सम्प्रयच्छति ।

भक्तिपुष्पानो मन्त्रादेष्टव्यं तस्य पण्यफला शृणु ॥७३॥

बालपयोदिसङ्ख्याणि वरपयोदिसङ्ख्यानि च ।

स्थिरा मम पत्रे श्रीमाम्स्तनो राजा क्षितौ भवेत् ॥७४॥

पत्रेण विलम्बपत्र न देवीप्रीतिकर मत्तम ।

तत्तमङ्ग्यशृणा माना पूर्व्वेन फलदा भवेत् ॥७५॥

विचात्र घट्टनोक्तेन ममाङ्गेनेदमुच्यते ।

उपनानुवर्त्तन्त्यापार्णजंलजं स्थलमम्भवे ॥७६॥

पत्रं सर्व्वेयानाम् भवोपधिगणंरपि ।

दनं सर्व्वपुष्पोप पत्रंरपि शिवां यजेत् ॥७७॥

पुत्रंरपि परमेशानो पुष्पाभावेऽपि पत्रं ।

पत्राणामप्यभावे न पुष्पागुल्मीपद्यादिभिः ॥७८॥

ओषधीनामभावे न तत्पत्नीरपि पूजयेत् ।

अक्षीर्षा अक्षीर्षापि मदभावे न सर्व्वे ॥७९॥

गिर्यम्भार्याप्यनाभे न मानगी भक्तिमाधरेत् ।

मात्रि-... ..

सहस्र करोड़ और सौ करोड़ कल्पों तक वह मानव मेरे पुत्र में स्थित रहकर फिर वह श्रीमान् भू मण्डल में राजा हुआ करता है ॥ ७४ ॥ सभी पत्नी में विल्व पत्र देवी की परमाधिक प्रीति करने वाला माना गया है । उन विल्व पत्नी की एक सहस्र की बनाई हुई भाला पूर्व की हो भाँति फल देने वाली हुआ करती है ॥ ७५ ॥ इस विषय में बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है । साधारण रूप से यही कहा जाता है कि कहे हुए तथा न कहे हुये पुष्पों में स्थल में समुत्पन्न वृक्षों से तथा सब पत्नी से जो भी जैसा लाभ होता है वह सर्वोपधियों के समुदाय से भी होता है । सभी वन में समुत्पन्न पुष्पों से और पत्नी के द्वारा भी शिवा का यजन करना चाहिए ॥ ७६—७७ ॥ परमेनानी का पूजन पुष्पों के अभाव में पत्नी के द्वारा भी अर्चन करना चाहिए । यदि पत्नी का भी अभाव हो तो उस अवसर में तृण गुल्म और भीषण आदि के भी द्वारा यजन करे ॥ ७८ ॥ औपधियों के भी अभाव में उनके फलों के द्वारा हो यजन करना चाहिए । अथवा अक्षतों से या जलों के द्वारा यजन करे । इनके भी अभाव में सरसों से जो सित हो उनसे पूजन करे । सित के भी न प्राप्त होने पर मानसी भक्ति का समाचरण करना चाहिए । वाज दन्तक पत्रों से और पुष्पों की राशिके द्वारा पूजन करे ॥ ७९—८० ॥

तुलसीकुमुदं पत्ररचयच्छाविबुद्धये ।

पुरश्चरणकार्येषु विल्वपत्रयुतं स्तितं ॥ ८१ ॥

साक्षरं सघृतं वापि शिवामुद्दिश्य यत्नतः ।

गुह्यादनत यद्य सस्कृतं कामबुद्धये ॥ ८२ ॥

सकल्पितः कामसिद्धये सख्यया यः कृतो जपः ।

तदन्ते पूजनं यत्तु विहितं क्रियते द्विजैः ॥ ८३ ॥

पुरश्चरणसञ्च तु कीर्तितं द्विजसत्तमं ।

तस्मिन् पुराणके पूर्वं पूर्वोक्तं विस्तरोदितं ॥ ८४ ॥

विधानं पूजयेद् देवी कामाख्या यैष्णवीमपि ।

यथासम्भवमेवात्र दद्यात् षोडश साधकः ॥८५॥
 उपारास्तथैवोक्तान् विधिकृत्यान्न लघयेत् ।
 सम्पूर्णं पूजनं कृत्वा कल्पोक्तं शतघा जपेत् ॥८६॥
 जपान्ते जुहुयादग्निं होमान्ते तु बलित्रयम् ।
 त्रिजातीयं तु वितरेत्तीर्थत्रिकमतं परम् ॥८७॥
 पत्नी स्वयं वा भ्राता वा गुरुर्वा विनियोजयेत् ।
 नैवेद्यादीनि सर्वाणि स्वपुत्रं शिष्यं एव वा ॥८८॥

तुलसी के कुमुदो अर्थात् मञ्जारेयो से और तुलसी दलो से श्री की वृद्धि के लिये अर्चन करे । पुरश्चरण के कार्यों में बिल्ब पत्रों से मुक्त तिल—अक्षत अथवा धृत से शिखा का उद्देश्य लेकर यानपूर्वक काम की वृद्धि के लिए सस्कार की हुई वृद्ध अग्नि में हवन करना चाहिए । ॥ ८५—८६ ॥ कामना की वृद्धि के लिये सग्या से जो जप का सङ्कल्प किया गया है । उसके अन्त में जो पूजन किया है वह द्विजों के द्वारा करना चाहिए ॥ ८७ ॥ श्रेष्ठ द्विजों ने जिसको पुरश्चरण के नाम से कीर्तित किया है उसमें पूर्व में पुराण में पूर्वोक्त और विस्तार से वर्णित विधानों के द्वारा कामाख्या और वैष्णवी देवी का भी पूजन करे । जहाँ तक भी सम्भव हो साधक को यहाँ पर सोलह उपचार समर्पित करने ही चाहिए ॥ ८४—८५ ॥ उसी भाँति षोडश पूर्वोक्त उपचारों का और विधान के कृत्यों का लक्षण नहीं करना चाहिए । सम्पूर्ण पूजन करके कल्पोक्त का सौ बार जप करे ॥ ८६ ॥ जाप के अन्त में अग्नि में होम करे और होम के अन्त में तीन बलि देवे । तीन जाति की बलियों का वितरण करे तथा इसके उपरान्त नृत्य गीत करना चाहिए ॥ ८७ ॥ पत्नी-स्वयं अथवा भाई या गुरु-अपना पुत्र अथवा शिष्य सब नैवेद्य आदि का विनियोजन कराना चाहिए ॥ ८८ ॥

यज्ञावसाने दद्यात् तु गुरुवे दक्षिणां शुभाम् ।

चामीकारं तिलान् गाञ्चं तदश्वनीं तु चेलवम् ॥८९॥

अष्टम्या शुक्लपक्षस्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय ।
 नवम्या वा चतुर्दश्या महादेव्या पुरश्चरेत् ॥६०॥
 आदद्याद् गुरुवक्त्रात् तु विधिना विस्तरेण तु ।
 कल्पोदितेन सम्पूज्य त्रिविधेनासु भैरव ॥६१॥
 सम्पूर्णपूजा नो कृत्वा न दद्यान्मन्त्रमोक्षितम् ।
 न पुरश्चरणं वापि कुर्यान् कृत्वाऽप्यसीदति ॥६२॥
 नित्यपूजा सा तु पुनः सम्पूर्णा यदि शक्यते ।
 कल्पोदितं पूजयितुं तदा कुर्यादतन्द्रित ॥६३॥
 न चेद् विस्तरशः कर्तुं देव्या पूजा तु भैरव ।
 कल्पोक्ता वाऽन्यदेवस्य तत्रायं विधिश्च्यते ॥६४॥
 भार्जन्याद्यैस्तु सस्कृत्य स्थण्डिलं मण्डलं लिपेत् ।
 पात्रस्य प्रतिपत्तिं तु कृत्वा दाहं प्लवः तथा ॥६५॥
 ध्यायेदात्मानमथ च सस्कृत्याङ्गस्वरूपतः ।
 अगुण्ठाद्यस्त्रपर्यन्तं द्वादशाङ्गस्य शुद्धये ॥६६॥

पक्ष की समाप्ति हो जाने पर श्री गुरुदेव को शुभ दक्षिणा देनी चाहिए । मुक्कं—निल—गौं दक्षिणा में दव । और इनके दन की शक्ति न होवे तो केवल नैसर्ग ही निर्वाहित करे ॥ ६६ ॥ मास व शुक्ल-पक्ष की अष्टमी त्रिविध ब्रह्मवक्त्र रखन वाला तथा इन्द्रियोवा जीत लेने वाला रहे और नवमी ॥ अबवा चतुर्दशी में महादेवी वा पुरश्चरण करे ॥ ६० ॥ ह भैरव । श्री गुरुदेव के मुख में आशान करना चाहिए । जो भी विधि और विस्तार कल्प में कहा गया हो उससे इन उक्त त्रिविधों में भी भीति पूजन करे । सम्पूर्ण पूजा को न करके ईप्सित मन्त्र को नहीं दना चाहिए । अथवा पुरश्चरण भी नहीं करे । यदि ऐसा करता है तो अवसाद प्राप्त किया करता है ॥ ६१—६२ ॥ वह नित्य पूजा है यदि की जा सकती है तो सम्पूर्ण पूजा कर उस समय में अतन्द्रित होकर ही कल्प में वर्णित पूजन करना चाहिए ॥ ६३ । ह भैरव । यदि विस्तार

से देवी की पूजा करना न होवे तो कल्प में कथित अन्य देव की पूजा करे। वही पर यह ही विधि कही जाती है ॥ ६४ ॥ मार्जन आदि के द्वारा भूमिका सस्कार करके स्थण्डिल में मण्डल लिखना चाहिए। पात्र की प्रतिपत्ति करके तथा दाह सब करे ॥ ६५ ॥ और इसके अनन्तर आत्मा का ध्यान करे। अङ्ग के स्वरूप से सस्कार करके अगुष्ठ से आदि लेकर अस्त्र पर्यन्त द्वादश अङ्गों की शुद्धि के लिये करे ॥ ६६ ॥

अर्घ्यपात्रेऽष्टधा जप्त्वा उपचारान् प्रसेचयेत् ।
 आधारशिवितप्रमुख मूलवर्णान् प्रयुज्य च ॥ ६७ ॥
 हृदिस्था देवता ध्यात्वा वहिःकृत्य च वायुना ।
 आरोप्य मण्डले दद्यादुपचारान् यथाविधि ॥ ६८ ॥
 पूजयित्वा षडङ्गानि तथाष्टौ दलदेवताः ।
 पुष्पाञ्जलितय दत्त्वा जप्त्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥ ६९ ॥
 मुद्रामग्नं प्रदर्शयति ततः पश्चाद् विसर्जयेत् ।
 सर्वेषामेव देवानामेव एव विधिः स्मृतः ॥ ७० ॥
 सम्यक् कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।
 उपचारास्तथा दातुं पञ्चतान् पितरेत् तदा ॥ ७१ ॥
 गन्ध पुष्पं च धूपं च दीपं नेवेद्यमेव च ।
 अभावे पुष्पतोयाम्या तदभावे तु भविततः ॥ ७२ ॥
 संक्षेपपूजा कथिता तथा वस्त्रादेक पुनः ।
 पुरश्चरणकृत्ये च प्रदीप शृणु भैरवं ॥ ७३ ॥
 दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः ।
 चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद् दीपेयं जेच्छ्रियम् ॥ ७४ ॥

अर्घ्य पात्र में आठ बार जप करके उपचारों का प्रोक्षण करना चाहिए। आधार शक्ति के प्रमुख मूल वर्णों का प्रयोग करे और हृदय में संस्थित देवता का ध्यान करके और वायु के द्वारा शक्ति करके मण्डल में आरोपण करने विधि के अनुसार उपचारों

को देना चाहिए ॥ ६७—६८ ॥ छि अङ्गा का पूजन करके उमी भाति दल देवताओं का यजन करे । फिर तीन पुष्पाञ्जनिया का देकर—जप करके—स्नान करके और प्रणाम करे ॥ ६९ ॥ देवता के सामन मुद्रा को प्रदर्शित करके पीछे विसर्जन करना चाहिए । सभी देवताओं की यह ही विधि कही गयी है ॥ १०० ॥ यदि कल्प म कही हुई पूजा यदि भली भाँति नहीं की जा सकती है तो उपचारों का उस भाँति दन क नियम उम समय म इन पांचों को सदा वितरित करे ॥ १०१ ॥ ग घ—पुष्प—धूप—दीप और नैवेद्य—य पांच है । अभाव म पुष्प और ताप के द्वारा करे और इनके भी अभाव म भक्ति की भावना स ही करना चाहिए । यह सद्योप पूजा कह दी गयी है तथा फिर वस्त्रादिक भी बता दिये गये हैं । हे भैरव ! पुरश्चरण क वृत्त्य मे प्रदीप क विषय म आप श्रवण कीजिए । १०२—१०३ । दीप क द्वारा लोका क ऊपर जप प्राप्त कर लेता है और यह द्वीप तेजोमय बताया गया है । यह दीप चारों वनों के प्रदान करने वाला हुआ करना है इस कारण से दीप के द्वारा श्री ॥ ऊपर जप प्राप्त करना चाहिए ॥ १०४ ॥

सतत पुष्पदीपाभ्या पूजयेद यस्तु देवताम् ।
ताभ्यामेव चतुर्वंग कथिता नात्र सशय ॥ १०५
पुष्पैर्देवा प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च न स्थिता ।
चराचराश्च सकला सदा पुष्परसा स्मृता ॥ १०६
किंचाति बहुनोक्तेन पुष्पस्योक्तिमतल्लिका ।
पर ज्योति पप्पगत पुष्पणं प्रसीदति ॥ १०७
त्रिवंगसाधन पुष्प तुष्टिश्चैतुष्टिमोक्षदम् ।
पुष्पमूले वसेद ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशव ॥ १०८
पुष्पाग्र तु महादेव सर्वे देवा स्थिता दले ।
तस्मात् पुष्पैर्यजद देवान्नित्य भक्तियुक्तो नर ॥ १०९
उच्चारित नाममात्र जायते सर्वभूतय ।

घृतप्रदीप. प्रथमस्तिन्नर्तलोद्भवस्ततः ॥११०॥

सारपफलनिर्यासजातो वा राजिकोद्भवः ।

दधिजश्रान्नजश्च दीपा सप्त प्रकीर्तिता ॥१११॥

पद्मसुत्रभवा दभगर्भसूत्रभवाऽथवा ।

शणजा वादरी चापि फलकोपोद्भवा तथा ॥११२॥

जो पुष्प निरन्तर ही पुष्पो और दीपो के द्वारा देवता का अर्चन किया करता है । इन दोनों ही से चारों वर्गों की प्राप्ति वही गयी है—इससे नेश मात्र भी मजबूत नहीं है ॥ १०५ ॥ पुष्पो में देवगण परम प्रसन्न हुआ करते हैं और पुष्पो में देवगण मस्थित रहा करते हैं । चर और अचर समस्त मदा पुष्पो का ही रस कहे गये हैं ॥ १०६ ॥ अत्यधिक कहने से क्या लाभ है । पुष्पो के विषय में बचन मनस्विका है । पुष्पो में रहने वाली परम ज्योति है अतएव पुष्प से ही प्रसन्न होती है ॥ १०७ ॥ तीन वर्गों का अर्थात् धर्म—अर्थ और काम वा सा धन है । यह पुष्प तुष्टि—पुष्टि—श्री और मोक्ष के प्रदान करने वाला है । पुष्प के मूल में ब्रह्माजी रहा करते हैं और पुष्प के मध्य में केशव वा निवास है । १०८ । पुष्प के अग्रभाग में महादेवजी विराजमान रहते हैं और सभी देवगण दल में मस्थित रहते हैं । इस कारण से पुष्पो के द्वारा देवों का यजन करना चाहिए और भक्ति की भावना से मयुक्त होकर नित्य ही अर्चना करे । १०९ । नाम मान का उच्चारण करना सब विभूति लिये होता है । अब दीपक के भेदों के विषय में बतलाया जाता है—घृत वा दीप, जो सर्व प्रथम होता है—तिलो के तैल से बनाया हुआ—गरमों के तैल वा दीपक—पत्तो के निर्यास से बनाया हुआ दीप—रानिव अर्थात् राई के तैल से तैयार किया हुआ दीपक—दधि से बनाया हुआ और अन्न में किया हुआ दीपक—ये सात प्रकार के दीप बहे गये हैं ॥ ११०—१११ ॥ दीप में वृत्तिवारी पाँच प्रकार की होती है—पद्म के मूल से बनी हुई—दभ के मध्यस्थ मूल से

निर्माण की गयी—घण में निर्मिन बदरी—फन कोप में उद्भूत हुई
वर्तिका ॥११२॥

वर्तिका दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधा स्मृताः ।
तैजसं दारव सोह मात्तिक्य नारिकेलजम् ॥११३
तृणध्वजोद्भव वापि दीपपात्र प्रशम्यते ।
दीपवृक्षारव कर्तव्यास्त्रैजसार्थम्भु भैरव ॥११४
वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।
मर्वसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम् ॥११५
अकायपादघातं च दीपताप तर्ध्व च ।
तस्माद् ययः तु पृथिवी ताप नाप्नाति वं तथा ॥११६
दीप दद्यान्महादेव्यं अन्येभ्योऽपि च भैरव ।
कुर्वन्त पृथिवीनाप यो दीपमुत्सृजेन्नर ॥११७
स ताम्रताप नरक प्राप्नोत्येव भूत ममाः ।
मुवृत्तवर्ति मुन्नेह पात्रभग्न मुदशन ॥११८
मूच्छ्राये वृक्षकोटौ तु दीप दद्यात् प्रयत्नतः ।
सम्यक्ते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरगुलात् ॥११९
न न दीप इति ज्ञातो ह्योषवह्निस्तु स श्रुतः ।
नेत्राह्लादकर स्वचिद्रूपतापविवर्जित ॥१२०

दीपक के दृष्टी से वर्तिका सदा ही पांच तरह की बनायी गई
हैं । किसी धातु में निर्मिन जो भी उत्तम धातु होवे—काष्ठ में बना
हुआ—लोहे का—मृत्तिका में निर्मिन—नारियल में बनाया हुआ अथवा
तृण ध्वज में उद्भूत दीपक का पात्र प्रशस्त होता है । हे भैरव ! दीप
वृक्ष अर्थात् दीवट तैजस अर्थात् उत्तम धातुओं का ही बनाना चाहिए ।
॥११३-११४॥ वृक्षों पर ही अर्थात् दीवट पर ही दीप रखना चाहिए
और भूमि पर दीपक कभी भी नहीं रखना चाहिए । यह भूमि सभी को
सहन करने वाली होती है किन्तु दो बाया को यह सहन नहीं किया

करती है—एक तो बिना ही किसी काय व पादों का घात करना और दूसरा दीपक का ताप यह नहीं सहा करती है । इस कारण स जिस तरह स भी यह पृथ्वी ताप प्राप्त न कर वैसे ही करना चाहिए अर्थात् दीपक को भूमि पर कभी नहीं रखना चाहिए ॥ ११५—११६ ॥ हे भैरव ! महादेवी के लिये तथा अन्य देवों के लिये भी दीप समर्पित कर जो मानव पृथिवी को ताप दना हुआ दीपक का उत्सृजन किया करता है वह मनुष्य तत्र ताप नामक नरक को सौ वर्ष तक निश्चित रूप से प्राप्त किया करता ही है—इसमें कुछ संशय नहीं है । सुवृत्त वत्सी बाला—सुन्दर स्नेह से युक्त अर्थात् घृतादि से समुत्—पात्र भक्षण—देखने में भी अच्छा दीपक होता चाहिए ॥ ११७—११८ ॥ सुन्दर ऊँचाई से युक्त वृक्ष की कोट पर ही प्रयत्न पूर्वक दीपक रखना उचित है और उसका ही देवता के लिये उत्सृजन करे । चार अंगुल से जिस दीप का ताप प्राप्त किया जाया करता है वह दीपक—इस नाम से क्यात नहीं होता है । वह तो बाह्यका एक समूह ही है—ऐसा सुना गया है । दीपक नेत्रों का आह्लाद करने वाला—सुन्दर लो बाला और दूरी में नाम से रहित ही होना चाहिए ॥ ११९—१२० ॥

सुशिख शन्दरहितो निधूमा नातिह्रस्वक ।
 दक्षिणावतवर्तिस्तु प्रदीप श्रीविवृद्धय ॥ १२१
 दीपवृक्षस्थिते पात्र शुद्धस्नेहपूरिते ।
 दक्षिणावतवर्त्या तु चारुदीप्त प्रदीपक ॥ १२२
 उत्तम प्रोच्यते पुत्र सर्वतुष्टिप्रदायक ।
 वक्षेण वर्जितो दीपो मध्यम परिकीर्तित ॥ १२३
 विहीन पात्रतैलाम्यामघम परिकीर्तित ।
 शाण वा दारव वस्त्र जोर्ण मलिनमेव वा ॥ १२४
 उपयुक्त च नादद्याद वतिवार्थं तु साधक ।
 उपदद्यान्नुत्तमव मतत श्रीविवृद्धय ॥ १२५

कोपज रोमज वस्त्र वृत्तिकार्थं न चाददेत् ।

न मिथ्रीकृत्य दद्यात् तु दीपे स्नेहघृतादिकान् ॥१२६॥

कृत्वा मिथ्रीकत स्नेह तामिस्र नरक व्रजेत् ।

वसामज्जाम्थिनिर्यामि स्नेहै प्राण्यङ्गसम्भवे ॥१२७॥

प्रदीप नैव कुर्यात् त कृत्वा पङ्क्रेऽवसीदति ।

अस्थिपात्रेऽयं वा पञ्च्येद दुर्गन्धास्थिपवासिनि ॥१२८॥

सुन्दर शिखा मे युक्त—शस्त्र मे रहित—बिना घूंआ वाला—

अत्यधिक छोटा भी न होवे और जिसमें वस्ती दक्षिणावर्त्त वाली हो
ऐसा प्रदीप ही श्री की वृद्धि के लिये हुआ करता है । १२१ । दीपक का
पात्र दीप के वृक्ष पर अर्थात् दीवट पर स्थित होवे और शुद्ध घृतादि से
भरा हुआ हो तथा जिसकी वृत्तिका दक्षिण की ओर रहने वाली हो और
सुन्दर दीप्ति में समन्वित हो ऐसा ही दीप होना चाहिए । १२२ । हे
पुनः ! ऐसा ही दीपक उत्तम कहा जाया करता है जो सबकी तुष्टि के
देने वाला होवे । जो दीपक वृक्ष से अर्थात् दीवट से रहित होता है
वह मध्यम कहा जाता है । १२३ । जो पात्र और तैल से रहित होता
है वह दीपक अधम ही कहा गया है । शण अथवा काष्ठ निर्मित—जीर्ण
तथा मलिन वस्त्र का साधक उपयुक्त ही देवे और और अनुपयुक्त वस्ती
के लिये कभी भी ग्रहण न करे । निरन्तर नूतन ही वस्ती के लिये ग्रहण
करे । इसी से श्री की वृद्धि होती है ॥१२४॥१२५॥ कोप से उत्पन्न--
रोम से उद्भूत वस्त्र को वस्ती के लिये कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए
और दीपक में स्नेह घृतादि का मिश्रण करके कभी भी न देवे ॥१२६॥
जो घृतादिक का दीपक में मिश्रण न रखे रखता है वह तामिस्र नरक में
जाता है । वसा—मन्ना—अस्थियो का निर्यास के स्नेहा (चिकनाई)
से तथा किसी भी प्राणी के अङ्ग में समुत्पन्न स्नेह से दीपक की रचना
कभी भी नहीं करनी चाहिए । यदि ऐसा कोई भी मनुष्य करता है तो
वह पङ्क्रे में अवसाद प्राप्त किया करता है । दुर्गन्ध अस्थि पवासी अस्थियो
के पात्र में कभी पवन नहीं करे ॥१२७॥१२८॥

नैव दीप प्रतातव्यो विबुधं श्रीविवृद्धये ।
 नैव निर्वापयद् दीप वदाचिदपि यत्नतः ॥१२८॥
 सततं लक्षणोपेतं देवायैमुपकल्पितम् ।
 न हरेज्ज्ञानतो दीपं तथा लोभादिना नरः ॥१२९॥
 दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
 उद्दीप्तदीप्तप्रतिमः काष्ठकाण्डसमुदभवः ॥१३०॥
 वित्त्वेषमोदभवमेवायं दीपालाभे निवेदयेत् ।
 उत्सुकं नैव दीपार्थं कदाचिदपि चोत्सृजेत् ॥१३१॥
 प्रसन्नार्थं तु तं दद्यादुपचाराद् वहिष्कृतम् ।
 एव वा कथितो दीपो धूपं च शृणुत सुतौ ॥१३२॥
 नासाक्षिरन्ध्रमुखदः सुगन्धोऽतिमनोहरः ।
 दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतत्स्थं च ॥१३३॥
 परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्य जायते ।
 स धूप इति विज्ञायो देवानां तुष्टिदायकः ॥१३४॥
 राशीकतैर्न चैकत्र तद्रंध्यं परिधूपयेत् ।
 तुपाग्निवत्तुलां कृत्वा न तत् फलमवाप्नुयात् ॥१३५॥

ऐसा दीपक विबुध पुरुषों के द्वारा श्री की विशेष वृद्धि के लिये
 कभी भी नहीं देना चाहिए । दीपक को यत्नपूर्वक वदाचित् भी निर्वापित
 नहीं करे ॥१२८॥ निरन्तर ही देवों के लिये सुन्दर लक्षणों से युक्त ही
 दीपक उप कल्पित करना चाहिए । ज्ञान पूर्वक तथा लोभ आदि से
 मनुष्य को दीपक का हरण नहीं करना चाहिए ॥१२९॥ जो दीपक का
 हरण किया करता है वह अन्धा होता है और जो दीपक को बुझा दिया
 करता है वह काना हुआ करता है उद्दीप्त दीप्ति की प्रतिमासे युक्त काष्ठ
 के काण्ड से समुद्भूत अथवा वित्त के इष्टम से उत्पन्न का ही दीपक के
 अभाव में निवेदिन करना चाहिए । दीपक के लिये उत्सुक का कभी भी
 उत्सृजन न करे ॥१३०॥१३१॥ प्रसन्नता के ही लिये उपचार से

दक्षिणत उमको देवे । हे पुत्रो ! उन प्रकार में दीपक के विषय में
मैं कुछ कह दिया गया है । अब आप लोग घूप के विषय में श्रवण
करिए । १३३ । घूप भी ऐसी ही होनी चाहिए जो नानिका के रन्ध्रां
(छिद्रों) के लिये सुख प्रदान करने वाली होवे और मनका हरण करने
वाली सुन्दर गन्धमे युक्त होवे दाह किये गये काष्ठ का—प्रयत्न का अथवा
अग्न्य का अथवा पराग का जिक्रका घूप ताप रहित होवे वह घूप देवगणों
की तुष्टि के देने वाला होता है—ऐसा जान लेना चाहिए ॥ १३४—
१३५ ॥ उन द्रव्यों को मक्को एक समूह में एकत्रित करके परियूपित
नहीं करे । नृगग्नि में वत्तुल करके घूप न देवे । ऐसा करने में घूप
देने का जो भी कुछ फल प्राप्त हुआ करता है वह कभी भी प्राप्त
नहीं होता है । जब उमका कोई भी फल ही नहीं है तो वैसा नहीं
करे ॥ १३६ ॥

श्रीचन्दनं च सरलं शालं कृष्णागुरुस्तथा ।

उदयः सुरयम्कन्दो रक्तविद्रुम एव च ॥ १३७

पीतशालं परिमलो विमंदो काशलस्तथा ।

नमोर्द्ध्वदाक्षश्च विन्वमाणेऽयं खादिर ॥ १३८

मन्तानः पाग्जानश्च हरिचन्दनवल्लभौ ।

वृक्षेषु धूपाः सर्वेषां प्रीतिदाः परिकीर्तिताः ॥ १३९

अगलः सह सूत्रेण श्रीवासः पट्टवासकः ।

कर्पूरः श्रीकरश्चैव परागः श्रीहरामलौ ॥ १४०

सर्वोपघीव जातोव वराहश्चूर्ण उत्कलः ।

जातोकोपम्य चूर्णं च गन्धः कस्तूरिका तथा ॥ १४१

शोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृता ।

यक्षघृणो वृक्षधूपः श्रीपिटोऽगुरु क्षत्रंरु ॥ १४२

पत्तिवाहः पिण्डधूपः मुगोलः कण्ठ एव च ।

अन्योन्ययोगा निर्यासा धूपा एते प्रकीर्तिताः ॥ १४३

एतंविधूपयेद देवान् धूमिभि कृष्णवर्त्मना ।

येषा धूपोदभवन्ध्रान्नुष्टि गच्छन्ति जन्तव ॥१४४

अब यह बताया जाता है किन किन वृक्षों को धूप के लिये ग्रहण करना चाहिए । श्री चन्दन—सरल शाल तथा कृष्णा गुरु—उदय—सुरथस्कन्द—जाशल—नमेरु—देवदारु—विश्वभार—खादिर—सन्तान—पारिजात—हरिचन्दन—बल्लभ—इन वृक्षों की धूप सभी देवों के लिये प्रीति देने वाली परिकीर्त्तित की गयी है ॥१३७—१३९। सूत्र के साथ अराल—श्रीवास—पट्टवासक—वर्पूर—श्रीकर—पराग—श्रीहर—आमल—सर्वोपधीव—जानीव बराह—चूर्ण—उत्कल—जाती कोप का चूर्ण—गन्ध—वस्तूरिका—ओड़ वृक्ष में कही हुई ये धूप उदाहृत है । यक्ष धूप—वृक्ष धूप—श्री पिष्ट—अगुरु—अमर—हर्षि बाहा—पिण्ड धूप—रुगाल—कण्ठ—अन्योन्य योग—निर्यास—ये धूप कीर्त्तित किय गये हैं ॥१४०—१४३॥ इन धूपों के द्वारा देवों को धूपित करना चाहिए । जो धूप बाला हावे और कृष्ण वर्त्म स धूपित करे । जिन की धूपा से उद्भूत प्राणों के द्वारा जन्तुगण तुष्टि का प्राप्त हुआ करते हैं ॥१४४॥

निर्यासश्च परागश्च काष्ठ गन्ध तथैव च ।

कृत्रिमश्चेति पञ्चैते धूपा प्रीतिकरा परा ॥१४५

न यक्षधूप वितरेन्माधवाय कदाचन ।

न रक्त विद्रम मह्य सुरय कद्रिल तथा ॥१४६

यक्षधूप पुत्रिवाह पिण्डधूप सुगोलक ।

कृष्णागुरु मकपूर्वो महामायाप्रिय स्मृत ॥१४७

वृक्षधूपेन वा देवी महामाया प्रपूजयेत् ।

मेदोमज्जासमायुक्तान न पाघून् विनियोजयेत् ॥१४८

परकीयास्तथाघ्रातास्तेऽपि कृत्याभिमर्दितान् ।

पृष्प धूप च गन्ध च उपचारास्तथापरान् ॥१४९

येन तुष्यति कामाख्या त्रिपुरा वंष्णवी तथा ॥१५४॥
 सौवीर यामुन तुल्य मयूरयामुन तथा ।
 दुर्विका मेघनीलश्च अञ्जनानि भवन्ति पट् ॥१५५॥
 श्ववद्द्रुम च सौवीर यामुन प्रस्तरं तथा ।
 मयूरशीवक रत्न मेघनीलस्तु तंजमम् ॥१५६॥
 घृष्टानि ग्राह्य चैनानि शिलाया तंजसेऽथ वा ।
 प्रदद्यात् सर्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्रक ॥१५७॥
 घृततंलादियोगेन नाम्नादौ दीपवाहिनना ।
 यदञ्जन जायते तु द्रुविका परिकीर्तिता ॥१५८॥
 सर्वाभावे तु तद दद्याद् देवीभ्यो दाहजाञ्जनम् ।
 महामाया जगद्धात्री कामाख्या त्रिपुरा तथा ॥१५९॥
 आप्नुवन्ति महातोष पटभिरेभिः सदाञ्जनैः ।
 विधवा नाञ्जन कुर्यान्महामायार्यमुत्तमम् ॥१६०॥

हे पुत्र ! उसी भाँति यह धूप त्रिपुण्या को तथा नित्य ही मातृ-
 कामो को और समस्त पीठ देवों को और रत्न आदि को भी प्रिय हुआ
 करता है ॥१५४॥ यह धूप हमने आप दोनों को बनवा दिया है । अब
 नेत्रों के रञ्जन के विषय में आप दोनों ध्वषण करिये । जिसके द्वारा
 कामाख्या देवी, त्रिपुरा देवी तथा वंष्णवी देवी परम प्रसन्न हुआ करती
 है ॥१५५॥ अञ्जन छँ प्रहार के हुआ करते हैं उनके नाम ये हैं—सौ-
 वीर, यामुन, तुल्य, मयूरयामुन, द्रुविका मेघनील, ये छँ होते हैं ।
 ॥१५६॥ श्ववद् द्रुम, सौ वीर, यामुन, प्रस्तर, मयूर शीवक, रत्न,
 मेघ नील, तंजम ॥१५७॥ ये घिमे हुए घट्टण करने के योग्य होते हैं ।
 चाहे जिसका घर घिग हुए होवे या जिसी उत्तम धातु पर गृष्ट नित्य गये
 हों । हे पुत्र ! यह सभी देशों के निचे समर्पित करे और सभी देवियों
 को भी सेवा में निवेदिन करना चाहिए ॥१५८॥ घृत और तंज आदि
 के योग में पात्र आदि पर दोनह को अग्नि के दृश्या को अञ्जन बनाया

जाता है वही दर्विका, इस नाम से कहा गया है ॥१४८॥ मरता यदि अभाव हो तो देवियों की सेवा में इस श्राद्ध में समुत्पन्न अञ्जन को ही समर्पित करना चाहिए । महामाया देवी—जगत् की घात्री कामाख्या देशी तथा त्रिपुरा देवी इन उपर्युक्त छे प्रकार के अञ्जनो में जब ये निवेदिन किये गये हों तो मदा ही महान तोष को प्राप्त हुआ करती है अर्थात् उनको परमाधिक प्रमनना इनको हुआ करती है । महामाया के लिये प्रस्तुत इस उत्तम अञ्जन का विधवा नारी को कभी अपने उपयोग में नहीं लेना चाहिए । इसका तात्पर्य यही है कि विधवा नारी के द्वारा यह अञ्जन नहीं बनाया चाहिए ॥१६०॥

नादत्ते त्वञ्जन देवी वंणजी विधवाकृतम् ।

न मृत्पात्रे योजयेत् तु माघना नेत्ररञ्जनम् ॥१६१॥

न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रविहिताञ्जनं ।

चतुर्वर्गप्रदो धूप कामद नेत्ररञ्जनम् ॥१६२॥

नस्माद्वयमिदं दद्याद् देवेश्यो भविततो नर ।

इति वा गदितो धूपस्तथोक्त नेत्ररञ्जमम् ।

नैवेद्य तु महादेव्या शृण्वंकाग्रमना पुन ॥१६३॥

वंणकी देवी कभी भी विधवा नारी के द्वारा तयार किय हुए अञ्जन को स्वीकार नहीं किया करती है । माघना करने वाले को चाहिए कि मिट्टी के पात्र में नेत्र रञ्जन को योजित न करे ॥१६१॥ मिट्टी के पात्र में विहित अञ्जन को निवेदिन करने में पूजा के फल की भी प्राप्ति कभी नहीं हुआ करती है । ऐसा अञ्जन नहीं देना चाहिए क्योंकि जब इस अञ्जन को देवी स्वीकार ही नहीं किया करता है तो वह पूजा अधूरी होकर निष्फल हो जाया करती है । धूप चारों वर्गों का प्रदान करने वाला होता है और नेत्र रञ्जन कामनाओं के देने वाला हुआ करता है ॥१६२॥ इस कारण से धूप और नेत्र रञ्जन इन दोनों का ही देवियों के लिए भक्ति की भावना द्वारा मनुष्य को समर्पण

करना चाहिए । इस प्रकार से हमने आप दोनों के समक्ष में धूप और नेत्र रजन इन दोनों को बतला दिया है । अब एकाग्र मन वाले होकर महादेवी के लिए जो भी नैवेद्य समर्पित करना चाहिए, उसके विषय में श्रवण करिए ॥१६३॥



॥ षोडशोपचार निर्णय ॥

प्रसार्य दक्षिण हस्तं स्वयं नम्रशिरा पुन ।
 दक्षिणं दशयन् पार्श्वं मनसापि च दक्षिणं ॥१॥
 सकृन् त्रिर्वा वेष्टयेद्युद्ध्या प्रीतिं प्रजायते ।
 स च प्रदक्षिणो जयं सर्वदेवीघनुष्टिद ॥२॥
 अष्टोत्तरशतं यस्मिन् देव्या कुर्यान् प्रदक्षिणम् ।
 ॥ सर्वकाममासाद्य पञ्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥३॥
 मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम् ।
 प्रदक्षिणाद् यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥४॥
 कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।
 नमस्कारश्च ततस्तज्जहत्तमाधमं मध्यमं ॥५॥
 प्रसार्य पादौ हस्तौ च पतित्वा दण्डवत् क्षितौ ।
 जानुभ्यामवनिं गत्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ॥६॥
 क्रियते यो नमस्कार उत्तमः कायिकस्तु स ।
 जानुभ्यां न क्षितिं स्पृष्ट्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ॥७॥

श्री गणेशान् ने कहा—दक्षिण हाथ को प्रसारित करके फिर स्वयं नम्र शिर वाला हाथ और दाहिने पार्श्व को दर्शित करता हुआ मन से भी दक्षिण होवे ॥ १ ॥ एक बार अथवा तीन बार घेष्टित करें । इससे करने से देवी की प्रीति हुआ करती है । और उसको प्रदक्षिण

जानना चाहिए । वह सभी देवों की समष्टि के लिए तुष्टि देने वाला होता है ॥ २ ॥ और जो एक ही आठ बाग देवों की प्रदक्षिणा किया करता है वह पुष्प अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करके पीछे अग्न समय में मोक्ष की प्राप्ति का लाभ किया करता है ॥ ३ ॥ जो मन से भी भक्ति की भावना से देवों के लिये प्रदक्षिणा (परिभ्रमा) दिया करता है वह इस प्रदक्षिणा के ही पुण्य-प्रभाव से ही यमराज के गृह में अर्थात् समय की पूरी में जाकर नरकों को कभी नहीं देखा करता है ॥ ४ ॥ नमस्कार भी काया में होना चाहता—बाणी के द्वारा समुत्पन्न हुआ और मन में किया हुआ तीन प्रकार का हुआ करता है जो उसके ज्ञान रखन वालों के द्वारा उत्तम-मध्यम और अधम तीन प्रकार का सुना गया है ॥ ५ ॥ इस नमस्कार करने का भी तीनो श्रेणियों में करने का क्रम है । जो अपने दोनों हाथों का और पैरों को फैलाकर भूमि में एक दण्ड की भाँति गिरकर अपने घुटनों में भूमि में जाकर शिर से फिर भूमि में गमन करके अर्थात् शिर से भूमि का स्पर्श करके नमस्कार अपने आठों अङ्गों के सहित किया जाता है यही उत्तम नमस्कार होता है जो काया के ही द्वारा किया जाता करता है । इसी का कायिक कहा गया है । जो अपने घुटनों में भूमि का स्पर्श करके और शिर से पृथ्वी का स्पर्श करके किया जाता है वह नमस्कार मध्यम श्रेणी का कायिक कहा गया है ॥ ६—७ ॥

क्रियते यो नमस्कारो मध्यम कायिकः स्मृतः ।

गुटीवृत्त्य वरो शीघ्रं दीयते यद् यथा तथा ।

अस्पृष्ट्वा जानुशोर्ध्वान्धा क्षिति मोक्ष्यम उच्यते ॥८॥

या स्वयं गच्छपद्याभ्या घटिनाध्या नमस्कृतिः ।

क्रियते भक्ति युक्तेन वाचिकस्मृतमस्तु स ॥९॥

पौराणिकर्वेदिकैर्वा मन्त्रैर्वा क्रियते नातः ।

स मध्यमो नमस्कारो भवेद् वाचनिकः सदा ॥१०॥

यत् तु भानुप्यवाक्येन नमन क्रियते सदा ।

स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु पृथक् ॥११॥

इष्टमध्यानिष्टगतमनोभिस्त्रिविधं पन ।

नमन मानस प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥१२॥

त्रिविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तम स्मृत ।

कायिकंस्तु नमस्कारं देवास्तुप्यन्ति नित्यश ॥१३॥

अयमेव नमस्कारो दण्डादिप्रति नामभि ।

प्रणाम इति विज्ञेय स पूर्वं प्रतिपादित ॥१४॥

जो अपने दोनों करों को पुरस्त करके अर्थात् जोड़ कर जिस किसी प्रकार से अपने शिर में लगाकर ही नमस्कार किया जाता है और जिसमें घुटनों और मस्तक को भूमि में स्पश नहीं करके ही किया जाता है वह नमस्कार अधम कोटिका कहा जाता करता है ॥८॥ ये तीन तरह के नमस्कार काया से किय जाने वाले होते हैं । तथा जो नमस्कार गद्य तथा पद्य के द्वारा घटित करके किया जाता है और भक्ति की भावना से होता है वह वाचिक अर्थात् वाणी के द्वारा किय जाने वाला उत्तम श्रेणी का नमस्कार होता है ॥९॥ जो पुराणा में कहे हुए अथवा वेदों में बहे हुए मन्त्रों के द्वारा नमस्कार किया जाता करता है वह सदा ही वाणी द्वारा किया हुआ मध्यम कोटि का नमस्कार होता है ॥१०॥ और जो मनुष्य के वाक्य के ही द्वारा सदा नमस्कार किया जाता है, ह पुत्री । वह वाणी से ही किया हुआ अधम श्रेणी वाला नमस्कार समझना चाहिए जो सभी नमस्कारों में नीच कोटि का होता है ॥११॥ मनके द्वारा भी किया हुआ नमस्कार उत्तम-मध्यम और अधम ये तीन प्रकार का कहा गया है । जो मन को पूर्ण तथा सलग्न करके किया जावे तथा आगे मन में केवल ध्याना पूरी ही की जाय अथवा मन को इष्टगत न करके ही किया जाता करता है ये तीन प्रकारों वाला अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम मानस नमस्कार होता है ॥१२॥ इन तीनों प्रकार

के नमस्कारो मे कायिक अर्थात् शरीर के द्वारा किये जाने वाला नमस्कार ही उत्तम होता है । कायिक नमस्कारो मे ही देवगण नित्य परम प्रसन्न हुआ करते है ॥१३॥ यह ही नमस्कार जो दण्ड आदि के द्वारा प्रति नामो से पूर्व मे प्रतिपादित किया गया है उसी को प्रणाम जान लेना चाहिए ॥१४॥

नैवेद्येन भवेत् सर्वं नैवेद्येनामृत भवेत् ।

धर्मायैकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिता ॥१५॥

मर्वयज्ञमय नित्यं नैवेद्य सर्वतुष्टिदम् ।

ज्ञानदं कामद पुण्य सर्वभोग्यमय तथा ॥१६॥

मनसापि महादेव्यं नैवेद्य दातुमिच्छति ।

यो नरो भक्तियुक्तः सन् स दीर्घायुः सुखी भवेत् ॥१७॥

महामाया सदा देवीमर्चयिष्यामि भक्तितः ।

नानाविधैस्तु नैवेद्यंरिति चिन्ताकुलस्तु यः ।

स सर्वकामान् सम्प्राप्य मम शोके महोदते ॥१८॥

मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम् ।

स दक्षिणे यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥१९॥

देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा ।

नमस्कारेण तुप्यन्ति महात्मानः समन्ततः ॥२०॥

नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महामनिः ।

सर्वत्र सर्वसिद्धयर्थं नातिरेव प्रशस्यते ॥२१॥

नैवेद्य के द्वारा सभी कुछ होता है और नैवेद्य से अमृत होता है । धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष ये चारो परम पुरुषार्थ नैवेद्यो मे ही प्रतिष्ठित रह बरते हैं । १५ । नैवेद्य नित्य ही समस्त यज्ञो से परिपूर्ण होता है और यह नैवेद्य सब देवो की तुष्टि के प्रदान करने वाला है । यह नैवेद्य ज्ञान के देने वाला—काम अर्थात् मन की कामनाओ का प्रदान करने वाला—तथा पुण्य को देने वाला एव सभी भोग्यो से परिपूर्ण

हुआ करता है । १६ । जो मनुष्य महादेवी के नियमों के द्वारा भी नैवेद्य के समर्पित करने की इच्छा किया करता है वह मानव भक्ति से युक्त होता हुआ दीर्घ आयु वाला और सुखी हुआ करता है । १७ । जो मनुष्य सदा ही महामाया देवी की भक्ति से अनेक प्रकार के नैवेद्यादि द्वारा अर्चना करेगा—ऐसी चिन्ता से आपुलित रहा करता है वह सभी मन की कामनाओं की प्राप्ति करके अन्त में मरे ही लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । १८ । जो पुरुष मन में भी देवी के नियमों के भाव से प्रदक्षिणा देता है वह फिर दक्षिण यम राज की पुरी में सभी भी नरकों को नहीं देखा करता है । १९ । नमस्कार का बड़ा भारी महत्त्व होता है । देव-मनुष्य-गन्धर्व, यक्ष, राक्षस पन्नग और महान् आत्माओं वाले चारों ही ओर से नमस्कार करने से सुष्टि अर्थात् प्रसन्न हुआ करते हैं । २० । महती मति वाला पुरुष नमस्कार के द्वारा चारों वर्गों का लाभ प्राप्त किया करता है । सभी जगह सबकी मित्रि के नियमस्कार ही प्रशस्त माना जाया करता है । अर्थात् नमस्कार का करना सबकी प्राप्ति के लिये परम उत्तम साधन माना गया है ॥२१॥

नमः विजयते लोकान् नमस्त्यागुरपि बधते ।

नमस्कारेण दीर्घायु रच्छिन्ना लभते प्रजा ॥२२॥

नमस्करु महादेव्यै प्रदक्षिणमथो कुरु ।

नैवेद्यं देदि नितरामिति यो भाषते भुहु ।

सोऽपि कामानवाप्येह मम लोके प्रमोदते ॥२३॥

विदधाति च नैवेद्यं महादेव्यै सुभक्तिमान् ।

दातुं प्रति नरः सोऽपि देवीलोकमवाप्नुयात् ॥२४॥

इति वा कथिता सम्यगुपचारास्तु षोडश ।

किमन्यद्ब्रूचित वा तत् कथयिष्यामि पृच्छतो ॥२५॥

नमस्कार से लोको पर मानव विजय प्राप्त किया करता है और नमस्कार से आयु की भी वृद्धि होती है—नमन करने से मानव दीर्घ

आयु वाला होता है और नमस्कार से अविच्छिन्न भक्तित्व का लाभ प्राप्त किया करता है जो कि सन्तानियों का काम कभी भी टूटता नहीं है । २२ । अतएव महादेवी के लिये नमस्कार करो और प्रदक्षिण होकर ही नमस्कार करो । तात्पर्य यह है कि देवी का दक्षिण भाग में स्थित परके ही नमस्कार करना चाहिये । जो निरन्तर 'नैवेद्य दीजिए'—यह कहा करता है और बार-बार बोलता है वह मानव भी अपने समस्त मनोरथों की प्राप्ति करके मेरे ही लोक में आनन्द प्राप्त करता है । २३ । जो गुन्दर भक्ति वाला पुण्य महा देवी के प्रति समर्पित करने के लिये नैवेद्य को किया करता है वह मनुष्य भी देवी के मोक्ष की अन्त में प्राप्ति किया करता है । २४ । इस तरह ने आप दोनों को मैंने पौडग (मोल्ह) उपचार जो अभ्यर्चन के हुआ करता है बनवा दिय है । जो कि भली भाँति के होते हैं । अब आप दोनों को क्या रुचिकर है अर्थात् अन्य आप दोनों क्या पूछना पसन्द करते हैं उसी को बतला दूँगा ॥२५॥



॥ कामाख्या कवच माहात्म्य वर्णन ॥

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं शृणुत च वदामि वाम् ।
 साग तद् सरहस्यं च शृणु वेदान्तं गौरवम् ॥१॥
 एकदा गरुडेनाशु विष्णुर्विष्णुपरायणो ।
 गच्छन् देवीं तु कामाख्यां नीलस्थामाससाद ह ॥२॥
 आसाद्य तं गिरिश्रेष्ठमवज्ञाय भ केशवः ।
 गच्छ गच्छेति गर्भं चोदयामास तं गनी ॥३॥
 तं च देवी महामाया कामाख्या जगता प्रभूः ।
 गरुडेन समं कृष्ण स्तम्भयामास रोदरी ॥४॥
 स तु गन्तुं महामाया-मायया परिमोहितः ।

न गन्तुमथ वागन्तुमशकद् वद्धवत् स्थित ॥५॥

अशक्त गरुड दृष्ट्वा गमने गरुडध्वजः ।

क्रुद्धस्त पर्वतश्रेष्ठमुत्मारयितुमुद्यत ॥६॥

तत कराभ्या त शैल क्रोडोद्धृत्य जगत्पति ।

अमूत् क्षमश्चालयितु मनागपि न केशव ॥७॥

श्री भगवान् ने कहा—आप ठानो श्रवण कीजिए मैं कामाख्या देवी के माहात्म्य का वर्णन करूँगा । हे वतास ! हे भँवर ! अज्ञो के साहित उस रहस्य से युक्त को आप दोनों सुनिए । १ । एक समय में भगवान् विष्णु पदापन में शीघ्र ही अपने वाहन गरुड के द्वारा गमन करते हुए नील पर्वत पर विराजमाना कामाख्या देवी के समीप में प्राप्त हुए थे । २ । उस परम श्रेष्ठ पर्वत पर पहुँच कर उसका ज्ञान प्राप्त करके उन भगवान् के शव न गरुड को गमन करने की गति में 'चलो-चलो' इस प्रकार से प्रेरित किया था । ३ । समस्त जगता को समुत्पन्न करने वाली महामाया कामाख्या देवी ने उन भगवान् श्रीकृष्ण को गरुड के साथ आते हुए जान कर आकाश में ही स्तम्भित कर दिया था । ४ । व वहाँ पर गमन करने के लिये समुद्यत थे किन्तु महामाया की माया में ऐम परिमोहित हो गये थे कि वे न तो आगे गमन करने में और न वापिस आगमन करने में समर्थ हुए और वृद्ध की ही भाँति वही पर स्थिर रह गये थे । ५ । भगवान् गरुडध्वज ने गरुड को गमन करने में असमर्थ देखकर वे बहुत क्रुद्ध हुए थे और उस श्रेष्ठ पर्वत को उत्साहित करने के लिये समुद्यत हुए थे । ६ । इसके अनन्तर जगतों के स्वामी श्री कृष्ण ने मर्पण करो वे द्वारा उस पर्वत को गोद में ले लिया था किन्तु वे केशव प्रभु उसको थोड़ा-सा भी चालित करने में समर्थन ही हुए थे अर्थात् तनिक भी न हिला सके थे ॥७॥

त चिचालयिषु शैल कामाख्या क्रोधतत्परा ।

सिद्धसूत्रेण वंकुष्ठ वयन्ध गरुडेन हि ॥८॥

त वद्ध्वा सिद्धसूत्रेण ग्राहाग्रे लवणाणवे ।
 चिक्षेप हेलया देवी सक्षेपात् प्रापतत् तलम् ॥६
 त सागरतलं प्राप्तं पुनरेव स्वमायया ।
 यन्त्रयित्वा समात्रम्य अग्राहाब्धितलं स्थितम् ॥१०
 स प्रयत्नेन महता नोत्प्लुतिं कर्तुं मिष्टवान् ।
 महायत्नं प्रयुर्वाणं पुनरुन्मज्जने हरि ॥११
 तस्यासारं प्रसारं च कामाख्यां प्रतिपेधयेत् ।
 ज्ञानोद्गमनमप्यस्य सा देवा प्रतिपेधयेत् ॥१२
 नत प्रज्ञानरहितं प्रसारासारवर्जितं ।
 गरुडेन समं तोयतले शीर्णमभूच्चिरम् ॥१३
 मार्गमाणस्तु तं स्रष्टा सागरान्नरसस्यियम् ।
 हरिमामादयामामं विशोर्णं प्राकृतं यथा ॥१४

जिम समम म उस पर्वत का चालित करने की इच्छा और प्रयत्न करते हुए केशव भगवान् की देखा था तो महादेवी कामाख्या बहुत ही क्रोधित हुई थी और उस देवी ने सिद्ध सूत्र के द्वारा भगवान् कैवुण्ठनाथ को गरुड़ के साथ बाँध दिया था । ८ । उनको सिद्ध सूत्र से बाँध कर ग्राहाग्र क्षार समुद्र में देवी ने हला ही से उनको प्रक्षिप्त कर दिया था और वे मशगल करने से तल में प्रपतित हो गये थे । ६ । सागर के तले में प्राप्त हुए उन भगवान् केशव को फिर भी अपनी माया से मन्त्रित करके फिर वही पर समाक्रान्त होकर सागर के तले में स्थित हुए उनको ग्रहण कर लिया था । १० । उन केशव प्रभु ने बड़ा भारी प्रयत्न किया था । सागर के तले से ऊपर और महान् प्रयत्न करते हुए भी रहे कि पुनः उन्मज्जित हो जावे । हरि ने सब कुछ यत्न किया था कि उनके असार और प्रसार का उसदब न रोक दिया था । ११ । १२ । इससे अनन्तर वे प्रज्ञान से रहित हो गये थे तथा असार-प्रसार में अर्थात् हिलने झुलने से भी मू-य हो गये थे और गरुड़ के ही

साथ वे चिरवान तब मागर के जल के तल में ही शीर्ष रहे थे । १३ ।
 नृजन करने वाले ने उनही जब बहुत खोज की तो उनका सागर के तल
 में समवस्थित हुए हरि को पाया था और वे ऐंम विसीर्ष हा रह थे जैम
 कोई साधारण प्राणी होता है ॥१४॥

तमामाद्य सताशयं तु स्रष्टा लोवपितामह ।

हस्ताभ्या त समादाय वोत्प्लावयितुमिष्टवान् ॥१५॥

तमुत्प्लावयितु शक्तो नाभूल्लोकपितामह ।

स्वय च देवोमायाभिबद्ध सन् विस्मयन स्थित ॥१६॥

मार्गमाणास्तु ते सर्वे देवा शङ्गपुरोगमा ।

चिरेण चाथ कालेन समासे दुजलान्तरे ॥१७॥

तावासाद्य तत सर्वे सुरा शङ्गपुरोगमा ।

समुत्प्लावयितु यत्न चक्रुर्नाशिकनुवच ते ॥१८॥

तत सर्वेऽपि ते देवा मोहिना भायया भृशम् ।

विधिविष्णू स्थितौ यदवन तदवन त तत्र सस्थिता ॥१९॥

मागमाणोऽय तान् सर्वान् देवान् देवगुरुस्ततः ।

वृहस्पतिमंहादेव हिमवत्-सानुसस्थितम् ॥२०॥

समासाद्य च देवाना वृत्तान्तं देवपूजित ।

पुष्टवान सादर सम्यक् स्तुत्या तत्वा यथाविधि ॥२१॥

नृजन करने वाले लोको के पितामह ब्रह्मानी न गरुड के महित
 उनको प्राप्त करके उन्होंने अपन दोनों बग व द्वारा ऊपर लाने की भी
 इच्छा की थी । १५ । किन्तु नाका ने पितामह भी उनको उत्प्लावित
 करने में समर्थ नहीं हुए थे । और स्वय भी देवी की माया से बद्ध होकर
 विस्मय करते हुए ही स्थित रह गये थे । १६ । फिर समस्त देवगण
 जिनमें इन्द्र मन्त्र नायक थे सबके मन खोज करते हुए बहुत अधिक
 समय में उन्होंने मागर के दूषित जल के मध्य में उन दोनों को प्राप्त
 किया था और फिर सब इन्द्र आदि देवों ने उनको जल से ऊपर लाने

का बड़ा भारी प्रयत्न किया था किन्तु वे भी ऐसा न कर सक थे अर्थात् ऊपर उनके ले जाने में समर्थ नहीं हुए थे । १७।१८ । इसके अनन्तर वे मर देवगण भी देवी की माया ने अत्यधिक मोहित हो गए थे । जिस रीति में जन के तले भ भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी स्थित थे उसी प्रकार म के सर भी वही पर स्थित रह गए थे । १९ । उस समय में देव गुह बृहस्पति ने उन स्वरो छात्र करत हुए चले थे और हिमालय की शिखर पर विराजमान महादेवजी के समीप म पहुँच थे । देवी के द्वारा पूजित महादेवजी ने देवा का सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे पूछा था तब वृद्धे बादर के साथ देव गुरु न उनका प्रणाम करके तथा स्तवन पद्या विधि करके बृहस्पतिजी ने महादेवजी म निवेदन किया था ।। १२०—२१।।

महादेव जगद्धाम जगत्प्रशमकारण ।
 शक्रादीन्मार्गमाणोऽहं देवांस्त्वा समुपस्थित ॥२२
 ब्रह्मा विष्णुश्च न ब्रह्मसदने नापि नावत ।
 सस्थिती नापि कुशापि ज्ञायेते ह्यन्यदा यथा ॥२३
 तमिम सगय देव च्छिन्धि त्व देवदेवता ।
 पुत्र तिष्ठन्नि वम्माद् वा तथा भूत्वा ह्यवस्थिता ॥२४
 अनुयाम्यामि तान् सर्वानुपदेशान् तव प्रभो ।
 तेषां स्थितिं त्व कथय यदि ते वनंते दया ॥२५
 तस्य तद् वचन श्रुत्वा तदुद्देशमह पुन ।
 तत् सर्वमुक्त्वान् वमं यथा वद्धाश्च मायया ॥२६
 अवज्ञाता महादेवो महामाया जगन्मयी ।
 तेन तन्मायया बद्धो विष्णुस्तिष्ठति मार्गे ॥२७
 न मार्गमाणास्त्रिदशा ब्रह्माद्या मायया पुन ।
 निबद्धा निबद्धे तस्य स्थिताश्चात्पर्यमयता ॥२८
 देवगुरु न ब्रह्मा—हे महादेव ! आप तो ममस्त जानें

गतागतविहीनाश्च जडवज्जानवजिता ।

किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ॥३३॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा महादेवस्य केशव ।

शनैर्भगंमुवाचेद ब्रह्मादीनां पुरस्तदा ॥३४॥

यदि आप भी उनकी खोज करते हुए वहाँ पर जाते हैं और मेरे बिना अकेले ही वहाँ पर गमन करते हैं तो आप भी वहाँ पर उमी भक्ति बद्ध हो जायेंगे और फिर वहाँ से आने में समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ २६ ॥ इस कारण से मैं ही वहाँ पर जाता हूँ जहाँ पर गरुडछवज प्रभु स्थित हैं । मैं ही ब्रह्मा और इन्द्र आदि उन सबका क्रम से मार्चन करा दूँगा ॥ ३० ॥ इस प्रकार मैं देवगुरु के साथ मिलकर वृषभध्वज ने कहा था और फिर जहाँ पर देवों के ममुदाम स्थित थे वही पर वे महेश्वर गये थे ॥ ३१ ॥ वहाँ पर जाकर महादेवजी ने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी से तथा अन्य सब देवगणों से बातचीत करके पूछा था कि आप सब यहाँ पर किम लिये स्थित हो रहे हैं ॥ ३२ ॥ आप सब तो गमन और आगमन में रहित हो रहे हैं तथा एक जड़ की भाँति ज्ञान से वञ्चित हो रहे हैं आप सब एंमे किस लिए हो गये हैं ? हे देवगणों ! यह अब मुझे बतलाइए ॥ ३३ ॥ उन महादेवजी के इस वचन पर श्रवण करके केशव भगवान् ने धीरे से ब्रह्मा आदि देवों के आगे उस समय में महादेवजी से यह कहा था ॥ ३४ ॥

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।

विद्यता गरुडस्थेन मया नीलो महागिरि ॥३५॥

धृतः करेण चोद्धतुं गरुडागतिवारणे ।

तत्र मां सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ॥३६॥

योगनिद्रा स्वयं धृत्वा चिक्षेपाम्नुधिपुष्करे ।

ततोऽहं तलमासाद्य तोयराशेः सवाहनः ॥३७॥

पतितो निवसाम्यत्र चिरमन्यकसूदन ।

निषमामि चिरं चाहमत्र सागरतीरके ॥३८॥

हैं तथा जयत् के प्रणमन के कारण स्वरूप हैं । मैं इन्द्र आदि देवों की खोज करता हुआ ही इस समय में आपसी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । २२ । इस समय में ब्रह्माजी और विष्णु भगवान् न तो ब्रह्म सदन में हैं और न स्वर्ग में ही हैं । वे कहीं पर भी समवस्थित नहीं जाने जाते हैं । जैसे अन्य समय या स्थान में होवें ऐसा भी नहीं जाना जा रहा है । हे देव ! आप तो देवों के भी देव हैं । मेरे इस भगवान् मलय का छेदन कीजिए । वे इस समय में कहीं पर स्थित हैं, किम कारण से स्थित हो रहे हैं और ऐसे किस प्रकार से वे अवस्थित हो रहे हैं । २४ । हे प्रभो ! मैं अब आपके ही उपदेश में उन सबके पीछे अनुगमन करूँगा । यदि आपके हृदय में दया हो तो अब उन सबकी स्थिति के विषय में मुझे बतलाइए । २५ । महादेवजी ने देवगुरु के उन वचनों का श्रवण किया था और उनके उद्देश का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था । फिर महादेवजी ने कहा था जो कि कर्म हुआ था और जिस प्रकार में वे सब माया से बद्ध हुये थे यज्ञ मभी कुछ बतला दिया था ॥२६॥ महामाया जगन्मयी महादेवी को भी अब ज्ञात करा दिया था । इसी कारण से उस देवी की माया से बद्ध हुए भगवान् विष्णु सागर के जल में स्थित हैं । २७ । उनकी खोज करते हुए देवगण ब्रह्मा आदि सब फिर माया से बद्ध हुए उनके ही समीप में अत्यन्त संयत होने हुए स्थित रहते हैं ॥२८॥

तास्तु मार्गयितुं यासि यदिह त्व मया विना ।

बद्धस्तथैव त्व चापि नायातु भविता प्रभुः ॥२९॥

तस्माद् गच्छाम्यह तत्र यत्रास्ते गरुडध्वज ।

ब्रह्मेन्द्राद्यास्तथा गुप्तान्मोचयिष्ये च तान् क्रमान् ॥३०॥

इत्युक्त्वा गुरुणा सार्धं सम्भूय स वृषध्वजः ।

देवोषा यत्र तिष्ठन्ति गतस्तत्र महेश्वरः ॥३१॥

तत्र गत्वा महादेवो विष्णुमाभाष्य वेधसम् ।

सर्वास्तान् परिपप्रच्छ किमर्थं सस्थितास्त्वह ॥३२॥

गतागतविहीनाश्च जडवज्ज्ञानवर्जिताः ।
किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ॥३३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य केशवः ।

शनेभ्यंमुवाचेदं ब्रह्मादीनां पुरस्तदा ॥३४॥

यदि आप भी उनकी खोज करते हुए वहाँ पर जाते हैं और मेरे बिना अकेले ही वहाँ पर गमन करते हैं तो आप भी वहाँ पर उमंग भक्ति ब्रह्म हो जायेंगे और फिर वहाँ से आने में ममत्वं नहीं हो सकेंगे ॥ ३६ ॥ इस कारण से मैं ही वहाँ पर जाना हूँ जहाँ पर गरुडवज प्रभु स्थित हैं । मैं ही ब्रह्मा और इन्द्र आदि उन भवका क्रम में मोचन करा दूँगा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार मेरे देवगुरु के माथे मिस्रवा वृषभध्वज ने कहा था और फिर जहाँ पर देवों के समुदाय स्थित थे वहाँ पर वे महेश्वर गये थे ॥ ३९ ॥ वहाँ पर जाकर महादेवजी ने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी से तथा अन्य सब देवगणों से बातचीत करके पूछा था कि आप सब यहाँ पर किस लिये स्थित हो रहे हैं ॥ ३२ ॥ आप सब तो गमन और आगमन में रहित हो रहे हैं तथा एक जड़ की भाँति ज्ञान में वर्जित हो रहे हैं आप सब गये किस लिये हो गये हैं ? हे देवगणों ! यह अब मुझे बतलाइए ॥ ३३ ॥ उन महादेवजी के इस वचन का श्रवण करके केशव भगवान् ने धीरे से ब्रह्मा आदि देवों के आगे उन समय में महादेवजी से यह कहा था ॥ ३४ ॥

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।

विषतां गरुडस्थेन मया नीलो महागिरिः ॥३५॥

धृतं करेण चोद्धतुं गरुडागतिवारणं ।

तत्र मां सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ॥३६॥

योगनिद्रा स्वयं धृत्वा त्रिशेषाम्बुधिपुष्करे ।

ततोऽहं तलमासाद्य तीयराशेः सवाहनः ॥३७॥

पतितो निवसाम्यत्र चिरमन्धकसूदन ।

निषमामि चिरचाहमत्र सागरतीयके ॥३८॥

नाद्यापि सा महामाया नुदते मा महेश्वर ।

मदर्थमागता देवा ब्रह्मेन्द्राद्या गमन्तत ॥३६

तेऽपि बद्धा महादेव्या मायापाशेन वै हठात् ।

तस्मान्नो ह्यनुगृह्णीष्व नयेदार्त्तं शिवालये ॥४०

ता च प्रमादयिष्याम मय्यगबन्धविहिसया ।

हरेस्तदवचनं श्रुत्वा ह्यहं च वरुणायुत ॥४१

उवाच परमप्रीत्या दिधिविष्णु प्रति स्वयम् ।

ईश्वर्या कामपूर्व्या बवच सुमनोहरम् ॥४२

श्री भगवान् न ब्रह्मा—श्री कृष्ण के शिखर पर से ऊपर की

ओर आकाश में गरुड के द्वारा गमन करते हुए मैं महान् गिरि नील
को हाथ से पकड़ लिया था । और मैं उसको ऊपर उठाना चाहता था
क्योंकि वह गरुड की गति का कारण करने वाला था । वहाँ पर काम-
रूपो वाली उस महामाया कामाद्या जो योग निद्रा थी मुझका पकड़
कर मुझको महासागर के जल में फेंक दिया था । फिर मैं तब मैं पहुँच
कर जो समुद्र का था अपने वाहक के सहित गिर गया था । हे अन्धक
के मूढन करने वाले ! मैं बहुत अधिक समय से निवास कर रहा हूँ । मैं यहाँ
पर ही इस महा सागर के जल में ही चिरकाल से ही रहता हूँ ॥३५—
३८॥ हे महेश्वर ! वह महामाया मेरे ऊपर दया नहीं कर रही है और
अभी तक भी मैं वैसा ही हो रहा हूँ । मेरे ही लिये सभी ओर स ब्रह्मा
आदिक सब समागत हुए थे ॥ ३६ ॥ महा देवी ने हठ से उन सबका
भी माया के पाश से बद्ध कर दिया था । इस कारण से आप हमारे
ऊपर अनुग्रह कीजिए और अब आप मुझको शिवालय में ही ले चलिए
॥ ४० ॥ और हम लोग इस बन्धन की विशेष हिंसा से उस महादेवी
को प्रसन्न करेंगे । भगवान् हरि के उस वचन को सुनकर मैं करुणा से
मुक्त हो गया था अर्थात् मुझे दया आ गयी थी ॥ ४१ ॥ फिर मैं परम
प्रीति में स्वयं ही ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु से बोला था । कामद्वयी
ईश्वरी का एक सुमनोहर वचन है ॥४२॥

वद्ध्वा शरीरे चापनाव्य पश्चाद् गच्छन्तु ता प्रति ।
 अह निवद्धकवचस्तेनाह मायया त्विह ॥४३॥
 न वद्धो मम ससर्गान् तथा चेह वृहस्पति ।
 तस्माद् यूय तु कवच शृणुध्व कवचान्मम ॥४४॥
 येन सौर्यान् समुत्प्लुत्य द्रक्ष्याम परमेश्वरीम् ।
 ॐ कामाख्याकवचस्य ऋषिर्बृहस्पति मृत ॥४५॥
 देवी कामेश्वरी तस्य अनुत्प्लुच्छन्द एतत् ।
 विनियोग सर्वमिद्वी त च शृण्वन्तु देवता ॥४६॥
 शिर कामेश्वरी देवी कामाख्या ज्ञानपी मम ।
 शारदा वर्णयुगल त्रिपुरावदन तथा ॥४७॥
 कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुन ।
 कामाख्या जठरे पातु शारदा मा तु नाभिन ॥४८॥
 त्रिपुरा पार्श्वयो पातु महामाया तु मेढने ।
 गुदे कामेश्वरी पातु कामाक्ष्योरुद्वये तु माम् ॥४९॥

उस कवच को शरीर में बाँधकर और आप्लावित होकर पीछे
 मेरी ओर गमन करें । मैं भी कवच बाँधे हुए हूँ इसी कारण स माया
 के द्वारा महीं पर उमने द्वारा मेरे समर्प में ही वृहस्पति को निवद्ध नहीं
 किया गया है । इस कारण से तुम लोग मेरे वचन में उस कवच का
 श्रवण कर लीजिए ॥ ४३—४४ ॥ जिसके द्वारा मुझ के साथ मिली
 भाँति उपप्लुत होकर परमेश्वरी का दर्शन करेंगे । ॐ कामाख्या कवच के
 ऋषि वृहस्पति कहे गये हैं ॥४५॥ उसकी देवी कामेश्वरी देवी है तथा
 छन्द अनुत्प्लुप् होता है । उसका विनियोग सबकी मिट्टि में होता है । हे
 देवताओ । उसका ज्ञाप श्रवण कीजिए ॥४६॥ शिर तो कामेश्वरी देवी
 है और कामाख्या मेरे नेत्र हैं । शारदा दोनों का है तथा त्रिपुरादेवी
 मुख है ॥ ४७ ॥ कण्ठ में महामाया रक्षा करें फिर हृदय में कामेश्वरी
 रक्षा करें । कामाख्या जठर में रक्षा करें और मातङ्ग मुझको नाभि में

रक्षा करें । ४८ । त्रिपुरा दोनों पाश्वों में रक्षा करे । मेहन में महामाया रक्षा करे । गुद में कामेश्वरी रक्षा करे और बामाग्र्या मुखको दोनों ऊरुओं में रक्षित करे । ४९ ।

जानुनी शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयो ।
 महामाया पादयगे नित्य रक्षतु कामदा ॥५०॥
 केशे कोटेश्वरी पातु नासाया पातु दीघिका ।
 भैरवी दन्तसघाते मातङ्गवतु चाङ्गयो ॥५१॥
 बाहुवोर्मा ललिता पान पाण्योन्म वनवासिनी ।
 विश्ववासिनीङ्गुलिषु श्रीकामा नखकोटिषु ॥५२॥
 रोमकपेषु सर्वेषु गण्यकामा सदावत ।
 पादाङ्गुलिपाणिभागेषु पातु मा भवनेश्वरी ॥५३॥
 जिह्वाया पातु मा सेतु क कण्ठाभ्यन्तरेऽवतु ।
 ल पातु चान्तरे वक्ष इ पातु जठरान्तरे ॥५४॥
 सामीन्दु पातु मा वस्ताविन्दुविन्दुन्तरेऽवतु ।
 तकारस्त्वचि मा पातु रकारोऽस्थिषु सर्वदा ॥५५॥
 लकार सर्वनाडीषु ईकार सर्वमङ्घ्रिषु ।
 चन्द्र स्नायुषु मा पातु विन्दुमज्जासु सन्ततम् ॥५६॥

दोनों घुटनों में शारदा देवी रक्षा करे और त्रिपुरा देवी दोनों जाँघों में रक्षा करे । दोनों पादों में महामाया रक्षा करे और कामदा नित्य ही रक्षा करें ॥५०॥ केश में कोटेश्वरी रक्षा करे और नासिका में दीघिका रक्षा करे । दाँतों के समुदाय में भैरवी रक्षा करे तथा दोनों बङ्गों में मातङ्गी रक्षा करे ॥ ५१ ॥ सलिता मेरी बाहुओं में रक्षा करे और दोनों पाणियों में वनवासिनी रक्षा करे । अङ्गुलियों में विश्व-वासिनी देवी रक्षा करे और नखा की कोटियों में श्री कामा रक्षा करे । ५२ । समस्त रोम कूपों में सदा गुप्त कामा परित्राण करें । पैरों की अङ्गुलियों में तथा पाणिभाग में मेरी भुवनेश्वरी रक्षा करे । ५३ ।

जिह्वा मे मेरी सेतु रक्षा करे तथा कण्ठ के भीतर के रक्षा करे । वक्ष
मयल के अन्तर मे ल रक्षा करे और जठर के अन्तर मे इ रक्षा करे ।
॥ ५४ ॥ वस्ती मे मेरी मामीन्द्र रक्षा करे । विदु के अन्तर मे इन्दु रक्षा
करे । त्वार मेरी त्वचा मे रक्षा करे । रकार मवक्ष प्रस्थिय मे रक्षा
करे ॥ ५५ ॥ सपस्त नाडियो मे सकार रक्षा कर और दंकार सभी
सन्धियों मे मेरी रक्षा करे । स्नायुआ मे मरा परित्राण चन्द्र करे तथा
निरन्तर विन्दु मज्जाओं मे मरी रक्षा करे ॥ ५६ ॥

पूर्वस्या दिशि चाग्नेया दक्षिण नक्षत्रे तथा ।
वाहणे चैव वायव्या कौबेरे हरमन्दिर ॥ ५७ ॥
तानि प्रत्येकनो देवा आरुह्यारुह्य तन्क्षणात् ।
पपु सन्तु पूर्ववत् ते प्रीतिमाप्नुयात्तुनाम् ॥ ५८ ॥
निरामयाम्नाया जग्नुविम्भयाकिनष्टचनना ।
स्तुवन्त प्रस्तुवन्तश्च कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥ ५९ ॥
ततो देवगुरु नत्वा मा स्नुत्वा च मया पुन ।
विसृष्टास्त्रिदिव याता हर्षोत्फुल्लविलाचना ॥ ६० ॥
माहात्म्यमीदृण दव्या कामाख्यायास्तु भैरव ।
वचच चेदृश प्रोक्त्वा नत्वासाद्य पुत्रक ॥ ६१ ॥
ययेष्टविनियोगेन तामासाद्य सुखी भव ।
कामाख्यायश्च माहात्म्य किमन्यत् वययामि त ॥ ६२ ॥
मस्या योनिशिलायोगात्लोहाद्या यान्ति स्वणताम् ।
मद्योनिमण्डले स्नात्वा स्रुत् पीत्वा च भानव ।
नेहोत्पत्तिमवाप्नोति पर निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ६३ ॥
पूर्व दिशा मे—आग्नेयी मे—दक्षिण मे तथा नैऋत मे—वाहण

मे—वामन मे—वौशर मे—हर मन्दिर मे प्रत्येक मे उनका दबो वतःक्षण
मे भारोहण कर-करव पाद किया था—स्नान किया था और पूर्व की
ही भानि उन्होने अनुन प्रीति को प्राप्ता किया था ॥ ५७—५८ ॥ व च

नीरोग होकर अर्षान् परम स्वस्थ होते हुए वहीं से गमन कर गये थे और परम विष्णु ने आकृष्ट चेतना वाले होगये थे । वे सभी स्तवन करते हुए तथा प्रस्तवन करते हुए गये थे जो कि कामाख्या देवी के योनि मण्डन की स्तुति करते हुए ही यहाँ ग प्रमाण कर गये थे । ५६ । तमब अनन्तर देव गुरु को उन्होंने प्रणाम किया था और मुझका भी अभिवादन किया था और मेरी स्तुति भी थी । फिर मैं उनका विदा किया था और वे सब दक्षिण हृदय से विवसित होकर चले हान हुए स्वर्ग का चले गए थे । ६० । हे भैरव ! कामाख्या देवी का गमा ही माहात्म्य है और देवी का वचन भी इसी तरह का है जो कहा गया है । अथ ह पुन । तत्त्व को प्राप्त करके अपने अभीष्ट के अनुसार विनियोग करके उसके द्वारा उसकी प्राप्ति करके सुखी होओ । यह कामाख्या का माहात्म्य है । अब अन्य मैं क्या तुमको बतलाऊँ । ६१—६२ ॥ जिनकी योनि के शिला बल से आयोम स नीह आदि धातुओं मुक्कण हो जाया करती है । जो मानव इस के योनि मण्डन में स्नान करके और एक बार करता है और परम निर्वाण को प्राप्त किया करता है । ॥ ६३ ॥



॥ मातृका न्यास वर्णन ॥

मातृकान्यासमधुना शृणु वैताल भैरव ।
 तेन देवत्वमायाति नरोऽपि विहितेन वै ॥१
 बाग ब्रह्माणोमुखा देव्यो मातृका परिकीर्तिता ।
 तासा मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा ॥२
 चन्द्रविन्दुप्रयुक्तानि सर्वकाम प्रदानि च ।
 ऋषिस्तु मातृमन्त्राणा ग्रहैव परिकीर्तित ॥३

प्रोक्त्वच्छन्दश्च गायत्री देवता च सरस्वती ।

शरीरशुद्धिमुन्ये तु सर्वकामार्थमाधने ॥४॥

विनियोग समुद्दिष्टो मन्त्राणा न्यूनपूरणे ।

अकारेण सम आदिवर्गो य प्रथम स्मृत ॥५॥

तैश्चन्द्रविन्दुमयुक्तंस्तत्रस्थैरक्षरैर्वहि

आकार च तथोच्चार्य अगुष्ठाभ्या नमस्तथा ॥६॥

प्रथम मातृकामन्त्रमगुष्ठद्वयतो न्यसेत् ।

परे वर्गा स्वर साधे य वान्य न्यासकमणि ॥७॥

श्री भगवान् न क्हा—हे वताल भैरव । अब तुम मातृका

न्याम का श्रवण करी जिमके द्वारा मनुष्य भी किय ज्ञान से देवत्व का प्राप्त कर लिया करता है ॥ १ ॥ बाग् और ब्रह्माक्षी प्रमुख जिनम हैं एमी दक्षिण मातृका पर कीर्तिन को गयी हैं उनक प्रयोग किय हुए मन्त्र और सब व्यञ्जन तथा स्वरो को जो चन्द्र विन्दु स समन्वित हैं, सभी कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं । मातृका मन्त्र का ऋषि ब्रह्मा ही रह गय हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ इनका छन्द गायत्री कहा गया है और इनका देवता सरस्वती देवी है । शरीर शुद्धि मुक्त्य म और सब कामाय साधन म विनियोग समुद्दिष्ट किया गया है जो मन्त्रा की न्यूनता क पूरण करने म हाता है । अकार क समकादि वर्ग है जो प्रथम कहा गया है ॥ ४ ॥ ५ ॥ वही पर स्थित चन्द्र विन्दु स मयुक्त उन अक्षरा स बाहिर आकार का उमी भाँति उच्चारण करके तथा अगुष्ठा म नम —इमको कह करके सबसे प्रथम हा अगुष्ठों से मातृका मन्त्र का न्याम करना च हिए । परम स्वरो क साथ बग अथवा जो अन्य न्याम कर्म म हवें ॥ ६ ॥ ७ ॥

ते सर्वे चन्द्रविन्दुभ्या युक्ता कार्यास्तु सर्वत ।

ह्रस्वेकारश्च वर्णे दीर्घकारान्तकेन तु ॥८॥

तर्जन्योर्विन्यसेत् सम्यक् स्वाहान्तेन तु पूर्ववत् ।

ह्रस्वोकारश्च वर्णे दीर्घोरान्तकेन तु ॥९॥

मध्यमायुगले सम्यग्वपडन्तेन विन्यसेत् ।
 एकारादिटवर्गन्तु ऐकारान्तेन चैव हुम् ॥१०
 न्यसेदनामिकायुग्मे नियतं तत्र भैरव ।
 ओकारादिपवर्गं तु औकारान्तमशेषतः ॥११
 वौषडन्त कनिष्ठाया विन्यसेत् कायसिद्धये ।
 अकारादियकारादिवर्गेण क्षान्तकेन तु ॥१२
 अइत्यन्तेन वलयोर्विन्यसेत् पाणिपृष्ठयोः ।
 वपट्कार शेषभागे अस्त्रन्यासे नियोजयेत् ॥१३
 हृदयादिपङ्क्त्योः पूर्ववत् क्रमतो न्यसेत् ।
 अगुष्ठाद्युक्तवर्गस्तु क्रमात् पङ्क्तिस्तथाविधिः ॥१४

ये सब चन्द्र बिन्दुओ से युक्त सब ओर से ही करने चाहिये ।
 हुम् इकार से और दीर्घ ईकारान्त क वर्ग से पूर्व की ही भाँति जिसमें
 स्वाहा अन्त में होवे भली भाँति तर्जिनियों में विन्यास करना चाहिए ।
 एकार जिसके आदि में होवे ऐसा वर्ग को और ऐकारान्त से हुम् को
 अनामिकाओं के जोड़े में हे भैरव ! नियत रूप से वहाँ पर न्यास करे ।
 औकार जिसके आदि में होवे ऐसे पवर्ग को और अशेष की ओकार अन्त
 वाला तथा वौषट् अन्त में लगाकर काम की सिद्धि के लिए कनिष्ठिका
 में न्यास करना चाहिए । अकार जिसके आदि में होवे ऐस पकारादि
 वर्ग से और क्ष के अन्त वाले से तथा अ इ अन्त वाले वलय को पाणिपृष्ठ
 के पृष्ठों में न्यास करे । शेष भाग में वपट्कार अस्त्र न्यास करना
 चाहिए । हृदय आदि छँ अङ्गों में पूर्व की ही भाँति क्रम से न्यास करे ।
 अगुष्ठ जिनके आदि में होवे ऐसे—उक्त वर्गों से क्रम से उसी प्रकार छँ
 ओ से करे ॥८—१४॥

पुनस्तथा पादजानुनक्षत्रियेषु पार्श्वयोः ।
 परतो च विन्यसेन्मन्त्रान् क्रमात् पूर्ववदक्षरैः ॥१५

बाह्वो. पाण्योस्तथा कट्या नाभौ च जठरे तथा ।
 स्तनयोरपि विन्यास तथा षड्भिः समाचरेत् ॥१६॥
 वक्त्रे च चिबुके गण्डे कर्णयोश्च ललाटके ।
 अंसे कक्षे च षड्वर्गे. पूर्ववन्न्यासमाचरेत् ॥१७॥
 रोमकूपे ब्रह्मरन्ध्रे गुदे जघायुगे तथा ।
 नखेषु पादपाण्योश्च तथा पूर्ववदाचरेत् ॥१८॥
 एव तु मातृकान्यास य. कुर्यान्निरसत्तम. ।
 स सर्वयज्ञपूजासु पूतो योग्यस्तु जायते ॥१९॥
 नातः वरतर मन्त्र विद्यते क्वचिदेव हि ।
 यत्सर्वकाद पुण्यं चतुर्वर्गप्रद परम् ॥२०॥
 वाग्देवता हृदि ध्यात्वा मूर्तिसर्वाक्षराणि च ।
 त्रिधा च मातृकामन्त्रः सक्रमश्च पिवेज्जलम् ॥२१॥

फिर उसी प्रकार से पाद—जानु—सर्किय—गुह्य—मे और
 दोनो पाश्वो मे तथा वस्ता मे पूर्व की ही भाँति अक्षरो के द्वारा क्रम से
 मन्त्रो का न्यास करना चाहिए । १५ । दोनो बाहुओ मे—दोनो हाथो
 मे—करि मे—नाभि मे—जठर मे—दोनो स्तनो मे उसी प्रकार छँ ओ
 के द्वारा विन्यास का समाचरण करे । १६ । मुख मे—चिबुक मे—गण्ड
 मे—दोनो कानो मे—ललाट मे—दोनो अंसो मे—कक्ष मे षड् वर्गो से
 पूर्व का ही भाँति न्यास करना चाहिए । १७ । रोम कूप मे—ब्रह्म रन्ध्र
 मे—गुद मे—दोना जघाओ मे—नखो मे—दोनो हाथो मे और पादो
 मे उसी क्रम से पूर्व की ही भाँति समाचरण करना चाहिए । १८ । इस
 रीति से जो थोड़ा मनुष्य मातृकाओ का न्यास किया करता है वह
 समस्त यज्ञ पूजाओ मे पूत (पवित्र) और योग्य हो जाया करता है ।
 १९ । इससे परम थोड़ा मन्त्र वही पर भी विद्यमान नहीं है । जो सब
 कामनाओ का देने वाला—पुण्यमय—और परम चारो वर्गो का प्रदान
 करने वाला है । २० । वाग्देवता का हृदय मे ध्यान करके और सब

अक्षरो की मूर्तियों का ध्यान करके तीन बार क्रम युक्त मातृ ण मन्त्रा
स अभिमन्त्रित कर जल का पान करे ॥२१॥

म वाग्मी पण्डितो धीमान् जायते च वर कवि ।
चन्द्रविन्दुममायकान् स्वरान् पूर्व पठेद् बुध ॥२२॥
व्यञ्जनानि तु मूर्खाणि केवलानि पठेत् ततः ।
अकारादिक्षकारान्तान्येव श्वासंश्च पूरकं ॥२३॥
जल करसले गृह्य पठित्वाक्षरसंख्यकम् ।
अभिमन्त्र्य तु तत् तोय प्रथम पूरकं पिबेत् ॥२४॥
कुम्भकेन द्वितीयं तत् तृतीयन्त्वय रेचकं ।
एव सकृत् त्रिवारं तत् पीत्वा तोयं विचक्षण ॥२५॥
दृढाङ्ग पण्डितो भूयान् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
त्रिसन्ध्यमथ प त्वैव मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥२६॥
तोयं कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामास्तथैव च ।
सततं कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥२७॥
तोयपानं महाभाग पूरकुम्भकरचक ।
स सर्वकामान् संप्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥२८॥

वह कवित्व को प्राप्त हो जाता है तथा जो सभी कामों को मातृका मन्त्रों में मन्त्रित करके निरन्तर करता है । २७ । हे महाभाग ! पूरक-कुम्भक—रेचका से जल का पान करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके पुत्र पौत्र—समृद्धि वात्ता हो जाता है ॥२८॥

भूत्वा महाकविलोकि बलवान् सत्यविक्रमः ।

सर्वत्र वल्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥२९॥

राजानमथवा राजपुत्र भार्यामयापि वा ।

पशीकरोति नचिरान्मातृकामन्त्रपानतः ॥३०॥

न्यासक्रमे क्रमः प्रोक्तो वर्गक्रम इहैव तु ।

अक्षराणां क्रमेणाय तोयपान समाचरत् ॥३१॥

ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ।

ते मन्त्रा मातृकामन्त्रं नित्यमेव प्रतिष्ठिता ॥३२॥

सर्वमन्त्रमयश्चायं सर्ववेदमयस्तथा ।

चतुर्वर्गप्रदश्चायं मातृकामन्त्र उच्यते ॥३३॥

इति ते कथितं पत्न मातृकान्यासमद्भुतम् ।

विभागमथ मुद्राणां शृणु वेताल भैरव ॥३४॥

वह शोक में महा कवि बनवान् और सत्य विषय बतला तथा सर्वत्र वल्लभ होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥ २९ ॥ वह राजा—राजपुत्र और भार्या का वल्लभ से कर लेता है । वह शीघ्र ही मातृका मन्त्र के पान से वल्लभ से कर लेता है ॥ ३० ॥ न्यास क्रम में क्रम कहा गया है । यहाँ पर ही वर्ग क्रम कहा गया है । अक्षरों के क्रम से जल का पान करे ॥३१॥ जो-जो मन्त्र देवों के ऋषियों के—रक्षकों के हैं वे सर्व मन्त्र मातृका मन्त्रों में नित्य ही प्रतिष्ठित हैं ॥ ३२ ॥ यह मातृका मन्त्र सब मन्त्रों से तथा देवों से परिपूर्ण है । यह चतुर्वर्गप्रद यह मातृका मन्त्र कहा जाता है ॥३३॥ हे पुत्र ! यह अद्भुत मातृका न्यास तुमको यथा दिया है । अब हे वेताल भैरव ! मुद्राओं का विभाग सुनो ॥३४॥

॥ मार्कण्डेय कथन ॥

दक्षस्य तनया चाभूत् मुरभिर्नाम नामत ।
 गवा माता महाभागा सर्वलोकोपकारिणी ॥१॥
 तस्या तु तनया जज्ञे कश्यपात् तु प्रजापतेः ।
 नाम्ना सा रोहिणी शुभ्रा सर्ववामदुधा नृणाम् ॥२॥
 तस्या जज्ञे शुन शेषान्मुनैरतिनपोघनान् ।
 कामधेनुरिति ख्याता सर्यलक्षणमयुता ॥३॥
 सा सिताश्रप्रतोकाशा चतुर्वेदचतुष्पदा ।
 स्तनैश्चतुर्भिर्धर्मार्थकामप्रभवकारिणी ॥४॥
 सा सुवर्णशरीरा तु कालेन महता सती ।
 निर्मल यौवन प्राप कामधेनुर्मनोहरम् ॥५॥
 ता चरन्ती मेरुपृष्ठे चारुपा सुलक्षणाम् ॥६॥
 ददर्श स तु वेताल कामुकश्चाम्बपद्यन् ॥७॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—प्रजापति दक्ष को पुत्री नाम से मुरभि हुई थी । वह गौओं की माता थी और वह महाभागा सभी लोको के उपकार करने वाली थी । १ । प्रजापति कश्यप से उसके उदर से एक तन्या ने जन्म ग्रहण किया था । नाम से वह रोहिणी थी । वह शुभ्रा और मनुष्यों के सम्पूर्ण कामनाओं का दोहन करने वाली थी । २ । उसमें अतीव तपोघन शुन शेष मुनि से जिसने जन्म प्राप्त किया था वह समस्त सुलक्षणों से युक्त कामधेनु—इस नाम से प्रख्यात हुई थी । ३ । वह सित मेघ के सदृश थी और चारों वेदों के चरणों वाली थी । वह अपने चारों स्तनों के द्वारा धर्म—अर्थ और कामों के प्रसव करने वाली थी । ४ । सुवर्ण के समान शरीर वाली उस काम धेनु ने जो सती थी—बहुत काल के होन पर निर्मल और परम मनोहर यौवन को प्राप्त किया था । ५ । मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर मञ्चरण करती

हुई—चाह स्वस्व्य वाली—मुन्दर सभषां न ममन्वित उमको बेताल ने देखा था और वह उमका मौन्दर्य देखकर कामुक हो गया था अर्थात् बेताल के हृदय में काम वामना ममुत्पन्न हो गयो थी ॥६७॥

त कामुकं च बेताल विदित्वा कामधेनुका ।

पशुधर्मानि स्वय भेजे त पुत्र शशमृदभृत ॥८॥

मोक्षाय नस्या परममामोद शङ्करात्मजः ।

मा चापि परमा तन्मिन् मुदमापातिहृषिता ॥९॥

तयोः प्रवृत्ते मुरते तस्या गर्भोऽभवत् तदा ।

काले प्राप्ते तु मुपवे कामधेनुमंहवृषम् ॥१०॥

मोक्षचिरेणैव कालेन मुमहान वृषभोऽभवत् ।

महाकनुदमयवनश्चाशृङ्गममन्वितः ॥११॥

उत्क्षिप्य विचलन्-कर्णयुगलो दीर्घवालधि ।

कबुदेन च शृङ्गाभ्या कर्णाभ्या मससिताभ्रवत् ॥१२॥

विचलन् दृष्टे देवै शृङ्गैरिव सिताचल ।

बेतालस्त्वकरोन् तस्य नाम शृङ्ग इति द्विजा ॥१३॥

न तु शृङ्गां ज्ञानशाली ममाराधयदीश्वरम् ।

सोऽपि तुष्टो वर तस्मै ददाविष्ट हर प्रभु ॥१४॥

उम कामधेनु ने उम बेताल को कामुक जान कर उमने पशु धर्म

में स्वय ही उम चन्द्रशेखर के पुत्र था स्वय ही सेवन किया था ॥८॥

जग भगवान् शङ्कर के पुत्र ने उम कामधेनु में परम आनन्द की प्राप्ति

की थी और उमने भी उमने आनन्द की प्राप्ति करके बहुत ही हर्षित हुई

थी ॥९॥ उन दोनों में मुरत क्रीडा ने प्रवृत्त हो जाने पर उमने उम

समय में गर्भ स्थित हो गया था । जब प्रसव प्राप्त हुआ तो उम

समय में उमने महावृष को प्रसूत किया था ॥१०॥ वह थोड़े ही समय

में मुमहान वृषभ हो गया था । उसके बहुत बड़ा कबुद था और मुन्दर

मोर्गे में वह युक्त था ॥११॥ उत्क्षेपण करके विचलित दोनों जानो

वाला था और बहुत लम्बी उमकी पूँछ थी वह ककुद म — मींगो म और काना से सित ध्वज के ही समान था ॥१२॥ विचित्र करत हुये उमे शृङ्गो मे सिताचल की गी भाति देवा के द्वारा वह खड़ा गया था । वेतान ने उमका नाम ह द्विजो ' शृङ्ग—यही रखवा था । १३ । वह शृङ्ग बहुत ज्ञानवान् था और उसने ईश्वर की समाराधना की थी । वह भगवान् शम्भु भी उस पर परम तुष्ट हो गये थे और उसने उसको अभीष्ट वरदान दिया था ॥१४॥

तमेव वाहन चक्रे कृत्वा देवतनु वृषम् ।

मुचिरायुश्च बलवान् पृथिवीधारण क्षम ॥१५

शृङ्गो नाम महातेजा केतु सोऽप्यभवत् प्रभो ।

शृङ्गो भत्वा मतो यस्माच्छङ्करस्य महात्मन ॥१६

अत शृङ्ग इति श्यातिमथ पाह महेश्वर ।

स तु शृङ्गो महादेवे ध्यानामक्ते क्वचिन् क्वचित् ॥१७

वरुणस्य गृह गत्वा मुरभेस्तनयास्तु मा ।

अप्योवनसम्प ना भेजल्ल मुरतेन ता ॥१८

वरुणस्य गृहे गावः सवलक्षणसयुगा ।

तिष्ठन्ति सतत विप्रास्तामु तामु मुना पुन ॥१९

वहवधस्तु च समुत्पन्नास्तथा सूतिप्रसूतिभि ।

सर्वं जगदिदं व्याप्तं तेभ्यो यज्ञं प्रवतते ॥२०

आज्येन देवास्तुप्यन्ति यज्ञा आज्ये प्रतिष्ठिता ।

यज्ञाधानमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥२१

भगवान् हर मे उमा वृष की देव नरीर वाला बनाकर उसका ही अपना वाहन बना लिया था । वह बल वाला और चिराय था तथा पृथ्वी के धारण करने में समर्थ था ॥१५॥ शृङ्ग महान् तेज वाला था और वह प्रभु का केतु भी हो गया था । क्योंकि शृङ्ग द्वारा वह महान् आत्मा वाले भगवान् शङ्कर का धारा हा गया था । अतएव

रहा करता है । २२ । वे सब गीर्ण वेताल ने वन में ही होने वाली हैं और सदा सबकी प्रिय होती हैं । जो महात्मा वेताल के इस चरित्र का निरूपण श्रवण किया करता है और इनके वशों से जन्म को मुक्तता है वह सर्व सुखी और बलवान् हुआ करता है । उस पुरुष की न तो गीर्ण नष्ट होती है और न कभी विभव हों विनष्ट हुआ करते हैं । २३ । २४ । उस पुरुष को भूत-पिशाच आदि भी कभी नहीं देखा करते हैं । वेताल स्वयं ही उनकी निरन्तर रक्षा के कर्म का समाचरण किया करता है । २५ । हे विप्रो ! यह मैंने आपको बतला दिया है जिस तरह से वेताल और भैरव दोनों ने जन्म लिया था और पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । अब तो आपके सभी मशय विच्छिन्न हो गये होंगे । २६ । जिस तरह से कालिका देवी ने शंकर मोहित किया था और जैसे शरीर के अर्ध में उत्पन्न हुई थी और भगवान् शम्भु ने जेमे-जेसे किया था—यह सब कह दिया है । २७ । जो मनुष्य कालिका के लिये 'आपसो' तमस्कार है—ऐसा स्वयं कहता है उस पुरुष के हाथ में ही मुक्ति तो स्थित रहा करती है और तीनों का अर्थात् धर्म—अर्थ—काम का वश मुक्ति के ही वश में रहने वाला इनका अनुगामी हुआ करता है । २८ ।

इति च कथितं पुण्यं पुराणं कालिकाह्वयम् ।

मन्त्रयन्त्रमयं शुद्धज्ञानदकामदपरम् ॥२९॥

इति गुह्यतमं लोके वेदेषु च तथा द्विजा ।

देवगन्धर्वसिद्धार्थं स्पृहणीयमिदं सदा ॥३०॥

अधीतं च श्रुतं मत्तो वसिष्ठेन महात्मना ।

इदं पुराणममृतं कालिकाह्वयमुत्तमम् ॥३१॥

तेन गुप्तमिदं सर्वं कामरूपे मुरालये ।

तमिदानीं समाख्यातं व्यक्नोवृत्त्यं महर्षय ॥३२॥

युष्माभिरपि नो देयं गोप्यं लोकेषु सर्वदा ।

समाय चतुर्चिन्ताय नास्तिकायाजितात्मने ॥३३॥

भक्तिश्रद्धाविहीनाय न दातव्य कदाचन ।

इदं सकृद् पठद् यस्तु पुराण कालिकाह्वयम् ॥३४

स कामानघिलान् प्राप्य शपऽमृतमवाप्नुयात् ।

मन्दिरे लिखित यस्य पुराणमिदमुत्तमम् ॥३५

सदा तिष्ठति ना तस्य विघ्न सजायते द्विजा ।

योऽधीतेऽहंयहंयतद् गुह्यं तन्नामिदं परम् ॥३६

अघोता मकला वेदास्तनेह द्विजसत्तमा ।

तस्मान्नवाधिकोऽन्योऽस्ति कृतकृत्या विचक्षण ॥३७

यह इस रीति से परम पुण्यमय कालिका नाम वाला पुराण आपको वर्णित करके सुना दिया है । जो मना और यत्रा से परिपूर्ण है—शुद्ध—ज्ञान का देन वाला—कामनाओं का दाता परम श्रेष्ठ है । ॥ २६ ॥ हे द्विजगणो ! यह लोक म और वेदो म भी परम गोपनीय है । इसके लिये देव—गंधर्व और सिद्ध आदि सभी सदा स्तूहा किया करते हैं । ३० । इस परमोत्तम कालिका नामक पुराणामृत को महात्मा बसिष्ठ न मुचने ही सुना था और अध्ययन किया था । ३१ । यह काम रूप सुरालय म भी इसी कारण से गुप्त है । हे महर्षिगणो ! उसको इस समय म प्रकट करके ही अपना भाँति आनन्दान किया है । ३२ । आप लोग भी उसका नही देव । यह सबदा लोका म गोपन करने के योग्य है । जो शठ हो—चञ्चल चित्त वाला हो—नास्तिक हा—अविजित आत्मा हुवाला हा—भक्ति और श्रद्धा से रहित होव उसको इसे कभी भी नही देना चाहिए । जो एक बार भी इस कालिका नामक पुराण का पाठ करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके शेष म अमृतत्व अर्थात् देवत्व का प्राप्त किया करता है । जिसक मन्दिर म यह लिखा हुआ उत्तम पुराण सदा स्थिर रहता है हे द्विजो ! उसका कभी विघ्न नहीं होता है । जो इसको प्रति दिन इसका गोपनीय अध्ययन करता है जा कि यह परम तम है । हे द्विज श्रेष्ठो ! उसने यहाँ पर ही सम्पूर्ण वंश का अध्ययन कर लिया है । इस कारण

से इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है । विचक्षण पुरुष इनके अध्ययन से वृत्त कृत्य हो जाता है ॥३३—३७॥

स सुखी बल्लवांरलोके दीर्घायुरपि जायते ॥३८

यो लोकमीश सतत विभर्ति यः पालयत्यन्तकरस्तयान्ते ।

इदं समस्तं भ्रममभ्रमं वा मदोयरूपं च नमाञ्स्तु तस्मै ॥३९

प्रधानपुरुषो यस्य प्रपञ्चो यागिना हृदि ।

यः पुराणाधिपो विष्णुः प्रसीदतु सः च शिवः ॥४०

यो हेतुस्तत्र पुरुषः पुराणः सनातनः शश्वत ईश्वरः परः ।

पुराणकृद्वेदपुराणवेद्यं प्रस्तौभि तन्नोमि पुराणशेषः ॥४१

इति सकलजगद् विभर्ति यासां मधुरिपुमोहकरी रमास्वरूपा ।

रमयति च हरः शिवास्वरूपा वितरतु वो विभवः शुभानि माया ॥४२

इसके अध्ययन तथा श्रवण करने वाला पुरुष परम सुखी तथा लोक में बलवान् और दीर्घ आयु वाला भी हो जाता है । ३८ । जो निरन्तर लोक का विभरण किया करता है । जो पालन करता है और अन्त में विनाश करने वाला है । यह सम्पूर्ण भ्रम या अभ्रम से युक्त है मेरा ही स्वरूप है अतएव उसके लिये नमस्कार है । ३९ । योगियों के हृदय में जिसका प्रपञ्च प्रधान पुरुष है—जो पुराणा का अधिप भगवान् विष्णु और वह भगवान् शिव आप सबके ऊपर प्रसन्न हों । ४० । जो उग्र हेतु है—पुराण पुरुष है—जो शश्वत तथा सनातन पर ईश्वर है—जो पुराणों का करने वाला और वेदों तथा पुराणा के द्वारा जानने के योग्य है उस पुराण शेष के लिये मैं प्रस्तवधन करता हूँ और अभिवादन करता हूँ । ४१ । जो इस प्रकार से समस्त जगत् का विशेष रूप से भरण किया करती है—जो मधुरिपु को भी मोह कर देने वाली है—जिसका स्वरूप रमा है और शिवा के स्वरूप से जो भगवान् शङ्कर या रमण कराया करती है वह माया आप क विभव को और शुभों को वितरित करे ॥४२॥

॥ कालिका पुराण (द्वितीय खण्ड) समाप्त ॥